EXHAUSTIVE NOTES
ON
संक्षिप्त बाल-हितोपदेश

(संसारचन्द्र)

संधि-विच्छेद, संधि-नियम, समास, रूप, अन्वय, शब्दार्थ, व्याख्या, भावार्थ, प्रश्नोत्तर से युक्त

लेखक—
आचार्य सुदर्शनदेव, शास्त्री, साहित्यरत्न,
अध्यापक,
सरदार हाई स्कूल, जोधपुर

दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी
जयपुर जोधपुर
१९५९] [मूल्य ६.०० न०

प्रकाशक :—
दी स्टूडेन्ट्स बुक कम्पनी
जयपुर जोधपुर

विषय-सूची

मुद्रक :—
[illegible]न्ति प्रेस,
जयपुर

सत्यं शिवं सुन्दरं

EXHAUSTIVE NOTES

ON

संक्षिप्त बाल-हितोपदेश

"हितोपदेश" प० नारायण की उत्तम कृति है। इसके चार भाग हैं—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि। सरल और छोटी-छोटी कहानियों द्वारा नारायण पंडित ने गागर में सागर भर दिया है। ये कहानियाँ मनोरंजक तो हैं ही; साथ ही उच्च शिक्षाप्रद और राज-नीति का सीधा सरल मार्ग दिखाने में भी पूर्णतया सक्षम हैं। राजनीति का उपदेश जिस सरल ढंग से दिया गया है; वास्तव में वह प्रशंसनीय है। इसकी शैली नवीन और उत्तम है। इस पुस्तक की सर्वोत्तमता एवं प्रियता का मुख्य प्रमाण यही है कि इसका अनुवाद हिन्दी, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, जर्मनी, फ्रेंच, ग्रीक, उर्दू, बंगला, गुजराती, रूसी प्रभृति प्राचीन तथा आधुनिक सभी भाषाओं में हो चुका है। शायद ही अन्य किसी ग्रन्थ का अनुवाद संसार की इतनी भाषाओं में हुआ हो।

संस्कृत के प्रारम्भिक छात्रों को यह पुस्तक बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुई है।

सिद्धिः साध्ये··············शशिनः कला ॥१॥

संधि-विच्छेद—जाह्नवी फेन-लेखेव—जाह्नवी-फेन-लेखा+इव=गुण संधि—यदि लघु या दीर्घ अ के बाद, इ, उ, या ऋ वर्णों में से कोई अक्षर आता है तो अ+इ=ए; अ+उ=ओ, अ+ऋ=अर् हो जाता है।

सन्मूर्ध्नि—सत्+मूर्ध्नि=त् को न्—व्यंजन संधि।

समास—धूर्जटेः—धूर्जटा यस्य सः—तस्य बहुव्रीहि। जाह्नवीफेनलेखा—जाह्नव्याः फेनस्य लेखा—इति तत्पुरुष।

. रूप—सताम्—सत्—भेद=शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन सतोः, सताम्। अस्तु—अस्—होना धातु, परस्मैपदी, आज्ञा लोट्, अन्य पु

उसी प्रकार वह पुत्र कानी आँख के समान व्यर्थ और दुःखदाता ही होता है जो कि विद्वान् तथा धर्मात्मा नहीं होता है।

भावार्थ—मूर्ख और पापी पुत्र कानी आँख के समान व्यर्थ और कष्टदाता ही होता है।

स जातो येन·········को वा न जायते ॥४॥

रूप—जातः–जन्–उत्पन्न होना–धातु से क्त (त) प्रत्यय। याति=या–जाना–धातु–परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–याति, यातः, यान्ति। जायते–जन् (जा) उत्पन्न होना–धातु आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–जायते, जायेते, जायन्ते।

अन्वय—स जातः, येन जातेन वंशः समुन्नति याति। परिवर्तिनि संसारे मृतः कः न जायते।

शब्दार्थ—येन जातेन=जिसके उत्पन्न होने से। समुन्नति याति=उन्नति को पहुंच जाता है। परिवर्तिनि संसारे=परिवर्तनशील संसार में आवागमन की दुनिया में। न जायते=जन्म नहीं लेता।

व्याख्या—उसी पुरुष का जन्म सार्थक समझना चाहिए जिसके जन्म लेने से वंश उन्नति को प्राप्त होता है अर्थात् जो पुरुष अपने वंश का नाम उज्ज्वल करता है। इस आवागमन के संसार में मर कर कौन जन्म नहीं लेता अर्थात् सब ही मृत्यु प्राप्त कर फिर नया जन्म धारण करते हैं।

भावार्थ—आर्यधर्म के मूल सिद्धान्त आवागमन का इस श्लोक में वर्णन है।

वरमेको गुणी·········तारागणोऽपि च ॥५॥

संधि-विच्छेद—मूर्ख-शतान्यपि–मूर्ख–शतानि+अपि=यण्‌संधि–यदि लघु व दीर्घ, इ, उ, ऋ या लृ, के बाद भिन्न स्वर आते हैं तो इ को य्, उ को व्, ऋ को रेफ (र्) और लृ को ल् हो जाता है।

रूप—गुणी–गुणिन्–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एक वचन–गुणी, गुणिनौ, गुणिनः। तमः–तमस्–अंधकार–शब्द, नपुंसकलिंग, द्वितीया विभक्ति–तमः, तमसी, तमांसि। हन्ति हन्–मार डालना–धातु, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–हन्ति, हतः घ्नन्ति।

सत्संनिपातेन–सतां संनिपातेन इति–तत्पुरुष।

रूप—धत्ते–धा धारण करना–धातु, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष एकवचन–धत्ते, दधाते, दधते। याति–या–जाना–धातु, परस्मैपद, वर्तमान काल एकवचन–याति, यातः, यान्ति।

अन्वय—काचः काञ्चन-संसर्गात् मारकतद्युतिं धत्ते। तथा मूर्खः सत्संनिपातेन प्रवीणतां याति।

शब्दार्थ—काचः=शीशा–काच। काञ्चन=संसर्गात्=सोने के साथ से। मारकतद्युतिं धत्ते–मरकत मणि की शोभा को धारण करता है। सत्संनिपातेन= सज्जनों के संसर्ग से। प्रवीणतां याति=चतुराई प्राप्त करता है।

व्याख्या—यदि काच सुवर्ण में जड़ दिया जाता है तो वह मरकत मणि सा प्रतीत होने लगता है। इसी प्रकार मूर्ख पुरुष भी विद्वानों के साथ रहने से चतुर हो जाता है। सत्संगति का प्रभाव अवर्णनीय है।

भावार्थ—सत्संगति का प्रभाव अमिट है।

अत्रान्तरे·········नीतिं ग्राहयितुं शक्यन्ते॥

समास—महापण्डितः महान् चासौ पण्डितः इति–कर्मधारय। सकल-नीति-शास्त्रतत्वज्ञः–सकलानां नीतिशास्त्राणां तत्वं जानाति इति–तत्पुरुष। महाकुल-संभूताः-महत् च तत् कुलम् इति महाकुलम्–कर्मधारय; महाकुले संभूता इति–तत्पुरुष।

रूप— अब्रवीत् –ब्रू–बोलना–धातु, परस्मैपद, भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन–अब्रवीत्, अब्रूताम्, अब्रुवन्।

शब्दार्थ—अत्रान्तरे=इसी बीच में। सकल-नीति-शास्त्र-तत्वज्ञः=समस्त नीति शास्त्रों के तत्व रहस्य-का ज्ञाता। अब्रवीत्=बोला। महाकुल–संभूताः=महान् कुल में वंश में–उत्पन्न। ग्राहयितुं शक्यन्ते=ग्रहण कराई जा सकती है।

—राजा सुदर्शन के कहने पर समस्त नीति शास्त्र के तत्व को जानने ···न बृहस्पति के समान चतुर विष्णु शर्मा नामक पण्डित बोले–··· के ये पुत्र उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हैं, अतएव इन राजकुमारों ··· पढ़ा कर नीति शास्त्र में चतुर बना सकता हूँ ··· कि

नाद्रव्ये निहिता.........शुकवत् पाठ्यते बकः ॥

रूप—फलवती-फलवाली-शब्द, स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-फलवती, फलवत्यौ, फलवत्यः । भवेत्-भू(भव)होना-धातु, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-भवेत्, भावेताम्, भवेयुः ।

अन्वय—अद्रव्ये निहिता काचित् क्रिया फलवती न भवेत् । बकः व्यापार-शतेन अपि शुकवत् न पाठ्यते ।

शब्दार्थ—अद्रव्ये निहिता=निर्गुण स्थान में रखी हुई अर्थात् की हुई। काचित् क्रिया=कोई भी कार्य । फलवती न भवेत्=फलदायक नहीं होता । बकः=बगुला । व्यापार-शतेन अपि=सैकड़ों प्रयास करने पर भी। शुकवत् न पाठ्यते=तोते के समान नहीं पढ़ाया जा सकता ।

व्याख्या—अयोग्य स्थान पर किया हुआ काम कभी भी सफल नहीं हो सकता है । जिस प्रकार प्रयत्न करने पर तोते को तो पढ़ाया जा सकता है परन्तु अनेक प्रयत्न करने पर बगुले को तोते के समान पढ़ाना असंभव है ।

अस्मिंस्तु निर्गुणो गोत्रे...............काचमणेः कुतः ॥६॥

अन्वय—अस्मिन् गोत्रे निर्गुणं अपत्यं न उपजायते । पद्मरागाणां आकरे काचमणेः जन्म कुतः ?

शब्दार्थ—अस्मिन् गोत्रे=इस गोत्र-वंश-में-आपके कुल में । निर्गुणं अपत्यं न उपजायते=गुणहीन सन्तान उत्पन्न नहीं होती । पद्मरागाणां आकरे=पद्मराग मणि की खान में । काचमणेः जन्म कुतः=कांच का जन्म कहाँ होता है अर्थात् नहीं होता ।

व्याख्या—हे राजन् ! आप के इस श्रेष्ठ वंश में गुणहीन संतान उत्पन्न नहीं होती अर्थात् उत्तम वंश में उत्तम सन्तान ही पैदा होती है । जिस प्रकार पद्मराग मणि की खान में कांच का उत्पन्न होना असंभव है । वहां तो पद्मराग मणि ही उत्पन्न होगी, न कि कांच ।

अतोऽहं.........राजा सजविनयं पुनरुवाच ॥

शब्दार्थ—अतः अहम्=इसलिए मैं । षण्मासाभ्यन्तरे=छः मास में तव पुत्रान्=तुम्हारे पुत्रों को । नीति-शास्त्राभिज्ञान् करिष्यामि=नीति-शास्त्र का ज्ञाता कर दूंगा । .... बोला । ...

चमकीले दिखाई देते हैं क्योंकि वे उदयाचल के पास हैं जहाँ से सूर्य उदय होता है। उसी प्रकार सज्जनों के समीप रहने से मूर्ख मनुष्य भी चतुर हो जाता है। यही तो सत्संगति का प्रभाव है।

भावार्थ—सत्संगति से लघु मानव महान हो जाता है। सत्संगति का प्रभाव अमिट है।

तत् एतेषां मम पुत्राणाम्=तो मेरे इन पुत्रों को। नीतिशास्त्रस्य-उपदेशाय=नीति-शास्त्र के उपदेश के लिए—नीति की शिक्षा देने के वास्ते। भवन्तः प्रमाणम्= आप को पूर्ण अधिकार है। इति उक्त्वा=यह कह कर। तस्य विष्णु शर्मणः=उन पं० विष्णु शर्मा को। बहुमान-पुरःसरम्=बड़े आदर भाव के सहित। पुत्रान समर्पितवान=अपने पुत्रों—राजकुमारों—को सौंप दिया। राजा ने अपने पुत्रों को शिक्षा के लिए विष्णु शर्मा को दे दिया।

प्रासाद-पृष्ठे=राजमहल की छत पर। सुखोपविष्टान=सुख से बैठे हुए राजपुत्राणां पुरस्तात्=राजकुमारों के सम्मुख। प्रस्ताव-क्रमेण=शिक्षा प्रारम्भ करने के विचार से। विष्णु शर्मा अब्रवीत्=महापण्डित विष्णु शर्मा कहने लगे।

काव्य-शास्त्रविनोदेन·········निद्रया कलहेन वा ॥१२॥

रूप—धीमताम—धीमत=बुद्धिमान्-शब्द, पुल्लिङ्ग, षष्ठी विभक्ति, बहु-वचन—धीमतः, धीमतोः, धीमताम्।

अन्वय—धीमतां कालः काव्य शास्त्रविनोदेन गच्छति। मूर्खाणां (कालः) व्यसनेन, निद्रया वा कलहेन (गच्छति)।

शब्दार्थ—धीमताम=बुद्धिमानों का।

व्याख्या—विष्णु शर्मा ने राजकुमारों से कहा कि विद्वानों का समय काव्यों और शास्त्रों के पढ़ने से प्राप्त होने वाले हर्ष में बीत जाता है परन्तु मूर्खों का समय व्यसन, नीद अथवा लड़ाई झगड़े में बीतता है (यही मूर्ख और विद्वानों में अन्तर है)।

तद भवतां··········साम्प्रतं मित्र-लाभः प्रस्तूयते ॥१३॥

व्याख्या—विष्णु शर्मा कहते हैं कि आप के मनोविनोद के लिए कौए कबूतर आदि की अनोखी कहानी कहता हूँ। राजकुमारों ने कहा—हे आर्य कहिये।

चन्द्रमसि चन्द्रमसोः, चन्द्रमस्सु । प्रबुद्धः—प्र उपसर्ग बुध्—जानना-क्रिया, त प्रत्यय।

शब्दार्थ—शाल्मली-तरुः = सेमल का वृक्ष । नानादिग्देशात्=अनेक दिशाओं से । अवसन्नायां रात्रौ=रात्रि के समाप्त होने—बीतने—पर । अस्ताचल-चूडावलम्बिनि = अस्ताचल के मस्तक पर लटकने वाले अर्थात् अस्ताचल की ओर जाने वाले—अस्तोन्मुख । कुमुदिनी-नायके=कुमुदिनी के स्वामी चन्द्रमा । प्रबुद्धः=जागा । कृतान्तम् इव = यमराज के समान । अनभिमतम् = अनिष्ट अप्रिय । विकीर्य=बिखेर कर । प्रच्छन्नो भूत्वा=छिप कर ।

व्याख्या—गोदावरी के तट पर विशाल सेमल का वृक्ष है । वहाँ अनेक दिशाओं से आकर रात में पक्षी बसेरा लेते हैं । किसी समय रात के बीतने पर, कुमुदिनी के स्वामी भगवान् चन्द्रमा के अस्ताचल की ओर जाने पर लघुपतनक नामक कौआ जागा और उसने जाल हाथ में धारण करने वाले दूसरे यमराज के समान घूमने वाले एक शिकारी को देखा । उसको देख कर कौए ने विचार किया । आज प्रातःकाल ही अप्रिय—अनिष्ट—का दर्शन हुआ है, न मालूम आज क्या अप्रिय होगा । यह कह कर वह उस शिकारी के पीछे-पीछे व्याकुल होकर चल दिया । उस शिकारी ने चावल के कण बिखेर कर जाल फैला दिया और वह छिपकर बैठ गया ।

सारांश—पक्षियों को प्रातःकाल शिकारी का दर्शन अनिष्ट माना जाता है तस्मिन एव काले·········अस्माभिरपि तथा भवितव्यम् ।

सन्धि-विच्छेद—अस्मिन्नेव—अस्मिन् + एव—न् को द्वित्व (डबल) हो गया है—व्यंजन सन्धि ।

समास—तण्डुल-कण-लुब्धान् तण्डुलानां कणाः इति तण्डुलकणाः तेः लुब्धाः—तत्पुरुष ।

रूप—आह—ब्रू—बोलना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष एकवचन—आह, आहतुः, आहुः । भवितव्यम्—भू—होना-क्रिया, तव्य प्रत्यय ।

शब्दार्थ—वियति=आकाश में । अवलोकयामास=देखा । तण्डुल कण-लुब्धान्=चावल के कणों को देख कर ललचाने वालों को । भद्रम् = कल्याण

व्याख्या—उसी समय परिवार सहित आकाश में उड़ने वाले चित्रग्रीव

नामक कबूतरों के राजा ने उन चावल-कणों को देखा (जिन्हें शिकारी बिखेरा था)। चावल के कण देख कर ललचाने वाले अन्य कबूतरों से चित्र कहता है—इस जन हीन जंगल में चावल कणों का होना कैसे संभव है! अब निर्जन वन में चावल कहाँ से आये, यह जानना आवश्यक है। मैं यहाँ कल्या नहीं देखता हूँ। कहीं चावल के लोभ में फँस कर हमको भी वैसा ही न होना हमें भी उसी प्रकार न मरना पड़े जिस, प्रकार कि एक लोभी मारा गया)।

कंकणस्य तु··········स मृतो यथा । १४॥

अन्वय—कंकणस्य लोभेन सुदुस्तरे पंके मग्नः वृद्ध—व्याघ्रेण संप्राप्तः पथि यथा मृतः।

शब्दार्थ—मग्नः = फँसा हुआ—डूबा हुआ। सुदुस्तरे = घनी—कठिन—में मृतः=मर गया।

व्याख्या—जैसे कंगन के लालच में गहरी कीचड़ में फँसा हुआ एक प बूढ़े बाघ द्वारा मारा गया।

कपोताः ऊचुः=दूसरे कबूतर बोले। कथम् एतत् = यह किस प्रकार हुआ सः अब्रवीत्=वह (चित्रग्रीव) बोला।

कंकणलोभि पथिककथा

(१) कंकण के लालची यात्री की कहानी।

अहमेकदा दक्षिणारण्ये······अनर्जने प्रवृत्तिः संदेह एव भवति।

सन्धि विच्छेद—भाग्येनैतत्–भाग्येन + एतत् = अ + ए = ऐ–वृद्धि सन्धि। इष्टलाभेऽपि–इष्टलाभे+अपि–पूर्व रूप सन्धि। यदि ए या ओ बाद ह्रस्व अ आता है तो उसका पूर्वरूप हो जाता है और उसके स्थान पर (ऽ) जैसा चिन्ह बना दिया जाता है।

समास—लोभाकृष्टेन–लोभेन आकृष्ट इति लोभाकृष्टः तेन—तत्पुरुष

रूप—चरन्–चरत्–चर (अत्) प्रत्ययान्त शब्द, पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन—चरन्, चरन्तौ, चरन्तः। ब्रूते–ब्रू–कहना–बोलना–क्रिया, आत्मनेपद वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते।

शब्दार्थ—दक्षिणारण्ये चरन्–दक्षिण के वन में घूमता हुआ। लोभा = लालच में फँसे हुए ने। आलोचितम्=विचार किया। प्रवृत्तिः न विधेया प्रवृत्ति न करना चाहिए। अनिष्टात्=अनिष्ट से। इष्टलाभेऽपि=मि

(वस्तु) का लाभ होने-पर भी। अर्थार्जने=धन के अर्जन-कमाने-में।

व्याख्या—चित्रग्रीव कहने लगा कि एक बार दक्षिण के जंगल में घूमते हुए मैंने देखा कि कुश हाथ में धारण करने वाला स्नान किये हुए एक बूढ़ा बाघ सरोवर के तट पर कहता है—हे पथिको! इस सोने के कंगन को ग्रहण करो। लालच के वशीभूत होने वाले किसी यात्री ने (बाघ के वचन सुन कर) सोचा—यह सब भाग्य से होता है—भाग्य का खेल है। परन्तु शरीर को नष्ट करने वाले (इस बाघ से) वृत्ति-जीविका-प्राप्त करना (कंगन लेना) उचित नहीं, क्योंकि यह हिंसक है।

अनिष्टात्..........तथापि मृत्यवे ॥१५॥

व्याख्या—कहा भी है अप्रिय से प्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर शुभ गति नहीं होती अर्थात् कल्याण नहीं होता है। जिस अमृत में जरा सा भी विष मिला होता है वह अवश्य ही मृत्यु कर देता है। फिर भी देखा जाता है कि सभी जगह धन प्राप्त करने में सन्देह शक होता ही है। मनुष्य जब रिस्क (खतरा) उठाता है तब ही उसे धन की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं।

तथा च उक्तम्=और वैसा ही कहा गया है।

न संशयमनारुह्य..........यदि जीवति पश्यति ॥१६॥

अन्वय—नरः संशयम् अनारुह्य भद्राणि न पश्यति। संशयम् आरुह्य यदि जीवति पुनः पश्यति।

शब्दार्थ—अनारुह्य=बिना चढ़े-बिना सवार हुए। भद्राणि=कल्याण।

व्याख्या—मनुष्य संशय-सन्देह में बिना पड़े कल्याण नहीं देखता अर्थात् रिस्क (खतरा) उठाये बिना मनुष्य का कल्याण नहीं होता, उसे धन आदि की प्राप्ति नहीं होती है। संशय पर चढ़ कर अर्थात् रिस्क उठा कर यदि वह जिन्दा रहता है तो फिर कल्याण के दर्शन कर पाता है। तात्पर्य यह है कि जान जोखिम में डाले बिना-रिस्क उठाये बिना कभी सुख नहीं पा सकता है।

तन्निरूपयामि तावत्..........कथं न विश्वासभूमिः।

समास—वंश-हीनः=वंशेन हीन इति-तत्पुरुष। गलित-नख

नखाः दन्ताः च यस्य सः=बहुव्रीहि।

रूप—शृणु-श्रु-सुनना-क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष,

एकवचन-शप्तु शप्तुवान्, शप्तुतम, शप्तुत। आगम्-आ-गम्-देना-किया-पद, भूतकाल, उत्तम पुरुष, एकवचन—आगम, आगम्व, आगम। मृदा—क्रिया व (क्त) प्रत्यय।

शब्दार्थ—निरूपयामि=निरूपण=करता हूँ—भली प्रकार देख लेता हूँ। प्रसार्य=फैलाकर। दुर्वृत्तः=दुराचारी। दारा=पत्नी। आदिष्ट=आज्ञा दिया गया गलित-नख-दन्ताः=गल गये हैं नाखून और दाँत जिसके अर्थात् बूढ़ा। विश्वास भूमिः=विश्वासपात्र।

व्याख्या—पथिक ने सोचा तो पहले अच्छी तरह से देख-भाल कर चाहिए। फिर वह व्याघ्र से बोला—कहाँ है तेरा कंगन? व्याघ्र हाथ कैल कर दिखा देता है। पथिक ने कहा—तुम जैसे हिंसक पर किस प्रकार विश्व किया जाय? व्याघ्र ने कहा—रे पथिक! सुन। मैं पहले युवावस्था में बड़ा दुष्ट-दुराचारी था। मैंने अनेक गायें और मनुष्यों को मार दिया। इसी कारण मेरे पुत्र-पत्नी मर गये। इस समय मैं वंश-हीन हूँ-मेरे कुल में कोई नहीं है इसके बाद किसी धर्मात्मा ने मुझे आदेश दिया कि तुम दान करो, धार्मिक कार्य करो। उसके उपदेश से इस समय मैं स्नान करके दाता के रूप में उपस्थित हूँ। मेरे नख और दाँत टूट गये हैं तथा मैं बूढ़ा हो गया हूँ अतएव अब मैं सब विश्वास का पात्र नहीं हूँ अर्थात् अवश्य ही विश्वास करने योग्य हूँ।

उक्तं च=कहा भी है।

इज्याध्ययनदानानि·········धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥७

समास—इज्या ध्ययन-दानानि—इज्या च अध्ययनं च दानं च=द्वंद्व।

रूप—तपः-तपस्—सकारान्त नपुंसकलिंग शब्द, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-तपः, तपसी, तपांसि।

अन्वय—इज्याध्ययन दानानि, तपः सत्यं धृतिः क्षमा अलोभ इति धर्मस्य अयम् अष्टविधः मार्गः स्मृतः।

शब्दार्थ—इज्याध्ययन-दानानि=यज्ञ, विद्या-अभ्यास और दान। धृतिः धैर्य। अष्टविधः=आठ प्रकार का। स्मृतः=स्मरण किया-कहा गया है।

—बूढ़ा व्याघ्र धर्म के आठ मार्ग बता रहा है। यज्ञ, विद्याअभ्यास, सत्य, धैर्य, क्षमा और निर्लोभ रहना—यह आठ प्रकार का मार्ग धर्म

का है अर्थात् आठ प्रकार से धर्म किया जा सकता है। प्रकार ऊपर वर्णित हैं।

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गः·········महात्मन्येव तिष्ठति ॥१८॥

संधि-विच्छेद—महात्मन्येव–महात्मनि+एव–इ को य–यण् संधि।

समास—चतुर्वर्ग–चतुर्णाम् वर्गं इति–तत्पुरुष। महात्मनि–महान् आत्मा यस्य सः–महात्मा–बहुव्रीहि–तस्मिन्।

रूप—महात्मनि–महात्मन्–महात्मा–शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन–महात्मनि, महात्मनोः, महात्मसु। तिष्ठति–स्था (तिष्ठ्) ठहरना–धातु, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–तिष्ठति, तिष्ठतः, तिष्ठन्ति।

अन्वय—तत्र पूर्वः चतुर्वर्गः दम्भार्थम् अपि सेव्यते। तु उत्तरः चतुर्वर्गः महात्मनि एव तिष्ठति।

शब्दार्थ—पूर्व चतुर्वर्ग–यज्ञ, विद्याभ्यास, दान और तप–यह पहला चतुर्वर्ग–चारो। दम्भार्थम् अपि सेव्यते=ढोंगी मनुष्य भी कर सकते हैं। उत्तरः= आगे का। चतुर्वर्ग–सत्य, धैर्य, क्षमा और निर्लोभता। महात्मनि एव तिष्ठति= महात्मा पुरुषों में ही देखे जाते हैं।

व्याख्या—यज्ञ, विद्याभ्यास, दान और तप को ढोंगी पुरुष भी कर सकते हैं परन्तु सत्य, धैर्य, क्षमा, और निर्लोभता केवल महात्मा पुरुषों में होते हैं अर्थात् ढोंगी पुरुष अन्तिम चारों को नहीं अपना सकता, क्योंकि इनके लिए आत्म-शुद्धि की आवश्यकता होती है।

मम चैतावांल्लोभविरहः·········लोकप्रवादो दुर्निवारः ॥

संधिविच्छेद—चैतावाँल्लोभविरहः–च+एतावान्=अ+ए=ऐ–वृद्धि संधि। एतावान्+लोभ विरहः–न् को ल् और अनुनासिक व्यंजन संधि।

समास—लोभ विरहः=लोभात् लोभस्य वा विरहः=तत्पुरुष। स्वहस्तस्थम्–स्वहस्ते स्थितः इति स्वहस्तथः–तम्–तत्पुरुष लोक-प्रवादः=लोकस्य प्रवादः इति= तत्पुरुष

रूप—इच्छामि–इष् (इच्छ्) इच्छा करना, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन–इच्छामि, इच्छावः इच्छामः। एतावान्–एतावत्–इतना, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–एतावान्, एतावन्तौ, एतावन्तः।

शब्दार्थ—आत्मनः=प्राणा अभीष्टाः=अपने प्राण प्यारे हैं। भूतानाम् अपि=प्राणियों के भी प्रिय हैं। आत्मौपम्येन=अपने समान ही। दयां कुर्वन्ति=दया करते हैं। भूतेषु=प्राणियों पर।

व्याख्या—जैसे अपने आपको अपने प्राण प्यारे हैं वैसे ही दूसरे प्राणियों को भी अपने प्राण प्रिय हैं। यह ध्यान रख कर सज्जन अपने प्राणों के समान ही दूसरों के प्राणों का मूल्य समझ कर प्राणियों पर दया करते हैं। उनके प्रति दयालु रहते हैं।

प्रत्याख्याने च दाने च··········प्रमाणमधिगच्छति ॥२१॥

समास—सुखं च दुःखं च–तस्मिन्–द्वन्द्व। प्रियाप्रिये–प्रियं च अप्रियं च–द्वन्द्व–तस्मिन्।

रूप—अधिगच्छति–अधि उपसर्ग, गम् (गच्छ) जाना, अधिगम्–प्राप्त करना–धातु, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–अधिगच्छति, अधिगच्छतः, अधिगच्छन्ति।

अन्वय—पुरुषः प्रत्याख्याने, दाने, सुख-दुःखे, प्रियाप्रिये च आत्मौपम्येन प्रमाणम् अधिगच्छति।

शब्दार्थ—प्रत्याख्याने=तिरस्कार में–अपमान में। आत्मौपम्येन=अपने समान ही। सुख दुःखे=आनन्द और कष्ट में। प्रियाप्रिये=प्रिय–संतोष जनक व्यवहार तथा प्रतिकूल आचरण के समय।

व्याख्या—अपना अपमान होने पर तथा लाभ होने पर तथा प्रिय और अप्रिय बातें सुनकर जिस प्रकार स्वयं को सुख तथा दुःख का अनुभव होता है उसी प्रकार समस्त प्राणियों को भी होता है–यह विचार कर सज्जन सदा समस्त जीवों के प्रति दया का व्यवहार–बर्ताव—ही करते हैं।

त्वं च अति दुर्गतः=और तुम अति दरिद्री हो। तेन=इस कारण से। एतत्=यह सुवर्ण कंकण। तुभ्यं दातुं=तुम्हें देने के लिए। अहं सयत्नः=मैं प्रयत्नशील हूँ। तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा है।

दरिद्रान् भर कौन्तेय··········नीरुजस्य किमौषधैः ॥२२॥

संधि-विच्छेद—प्रयच्छेश्वरे–प्रयच्छ+ईश्वरे–अ+ई=ए–गुण संधि। व्याधितस्यौषधम्=व्याधितस्य+औषधम्–अ+औ=औ–वृद्धि संधि।

रूप—भर-भृ-भरण करना-भरना-धातु, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, पुरुष, एकवचन-भर-भरतात्, भरतम्, भरत। प्रयच्छ-दा (यच्छ्) प्र उपसर्ग, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, ... प्रयच्छतम्, प्रयच्छत।

अन्वय—हे कौन्तेय ! दरिद्रान् भर, ईश्वरे धनं मा प्रयच्छ। औषधं पथ्यम् (अस्ति) नीरुजस्य औषधैः किम् (प्रयोजनम् अस्ति)

शब्दार्थ—भर=भरण कर। मा प्रयच्छ=मत दो। पथ्यम्= नीरुजस्य=रोग हीन को।

व्याख्या—हे धर्मराज ! गरीबों का भरण-पोषण करो, धनी को क्योंकि रोगी को औषध देना लाभदायक है, नीरोग को औषध देना

दातव्यमिति.........सात्विकं विदुः ॥२३॥

अन्वय—दातव्यं यद् दानम् अनुपकारिणे दीयते, देशे काले च तद् दानं सात्विकं विदुः।

शब्दार्थ—दातव्यम्=देने के योग्य। अनुपकारिणे=उपकार न क को। दीयते=दिया जाता है। देशे काले पात्रे च=देश, काल और देखकर। तद्दानं=वह दान। सात्विकं विदुः=सात्विक दान कहलाता है

व्याख्या—देने के योग्य उपकार न करने वाले को जो दिया जात दान कहलाता है। देश, काल और पात्र का विचार कर जो दान दिया वह सात्विक दान कहा गया है।

सारांश—योग्य को दान चाहिए, अयोग्य को नहीं।

यदात्र सरसिस्नात्वा......तेन व्याघ्रेण स पान्थो धृतोऽखिन

समास—महापंके-महान् च असौ पंकः=कर्मधारय-तस्मिन्।

रूप—सरसि-सरस्=सरोवर-शब्द. नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, ए सरसि, सरसोः सरस्सु। इसी प्रकार वचसि, वचसोः वचस्सु।

शब्दार्थ—गृहाण=ग्रहण करो। पलायितुम् अक्षमः=न भाग सका। वचसि=उठाता हूँ। शनैः=धीरे। उपगम्य=समीप आकर।

... में ... इस कंगन को ग्रहण

... करने ... के वशीभूत हो

स्नान करने को प्रविष्ट हुआ त्यों ही गहरी कीचड़ में फंस गया और भाग न सका। उसको कीचड़ में फँसा हुआ देख कर व्याघ्र बोला—अहह! तुम धनी दलदल में फँस गये हो? इसलिये मैं तुम्हें उठाता–निकालता हूँ। इतना कहकर उस पथिक के समीप धीरे-धीरे जाकर व्याघ्र ने उसे धर दबाया—पकड़ लिया। उस समय पथिक सोचने लगा—

न धर्मशास्त्रं पठतीति·········मधुरं गवां पयः ॥२४॥

समास—वेदाध्ययनम्—वेदस्य वेदानां वा अध्ययनम्—तत्पुरुष। दुरात्मनः—दुष्टः आत्मा यस्य सः तस्य=बहुव्रीहि।

रूप—गवाम्–गो–गाय या सांड शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन—गोः, गवोः, गवाम्।

अन्वय—धर्मशास्त्रं पठति इति कारणं दुरात्मनः न भवति, वेदाध्ययनम् अपि (कारणं न भवति) अत्र स्वभाव एव अतिरिच्यते। यथा गवां पयः प्रकृत्या मधुरं भवति।

शब्दार्थ—दुरात्मनः=दुष्ट पुरुष का। अतिरिच्यते=बढ़ कर होता है–प्रधान होता है।

व्याख्या—धर्म-शास्त्र का तथा वेदों का अध्ययन दुष्ट पुरुषों की दुष्टता को दूर नहीं कर सकता। इसमें तो स्वभाव ही प्रधान–मुख्य रहता है अर्थात् दुर्जन उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन करने पर भी अपने दुष्ट स्वभाव को नहीं छोड़ता है। जैसे गाय का दूध स्वभाव से ही मधुर होता है।

भावार्थ—"अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते" स्वभाव सर्वदा अपरित्याज्य है। तत् मया भद्रं न कृतम्=अतएव मैंने अच्छा नहीं किया। यत् अत्र मारात्मके विश्वासः कृतः=जो इस हिंसक के वचनों पर विश्वास किया। तथा च उक्तम्=कहा भी है।

नदीनां शस्त्रपाणीनां·········स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥२५॥

समास—शस्त्र–पाणीनाम्=शस्त्रं पाणौ (पाणिषु वा) येषां तेषाम्=बहुव्रीहि।

शब्दार्थ—शस्त्र–पाणीनाम्=शस्त्रधारियों का।

नख-धारियों–सिंह, व्याघ्र आदि का तथा

र करने को प्रविष्ट हुआ त्यों ही गहरी कीचड़ में फंस गया और भाग न उसको कीचड़ में फँसा हुआ देख कर व्याघ्र बोला—अहह ! तुम घनी में फँस गये हो ! इसलिये मैं तुम्हें उठाता-निकालता हूँ। इतना कहकर यक के समीप धीरे धीरे आकर व्याघ्र ने उसे धर दबाया—पकड़ लिया। तब पथिक सोचने लगा—

धर्मशास्त्रं पठतीति·········मधुरं गवां पयः ॥२४॥

मास—वेदाध्ययनम्—वेदस्य वेदानां वा अध्ययनम्—तत्पुरुष। दुरात्मनः—आत्मा यस्य सः तस्य=बहुव्रीहि।

रूप—गवाम्–गो–गाय या साँड शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन–वोः, गवाम्।

अन्वय—धर्मशास्त्रं पठति इति कारणं दुरात्मनः न भवति, वेदाध्ययनम् (कारणं न भवति) अत्र स्वभाव एव अतिरिच्यते। यथा गवां पयः प्रकृत्या भवति।

शब्दार्थ—दुरात्मनः=दुष्ट पुरुष का। अतिरिच्यते=बढ़ कर होता है–प्रधान।

व्याख्या—धर्म-शास्त्र का तथा वेदों का अध्ययन दुष्ट पुरुषों की दुष्टता को नहीं कर सकता। इसमें तो स्वभाव ही प्रधान–मुख्य रहता है अर्थात् दुर्जन ग्रन्थों का अध्ययन करने पर भी अपने दुष्ट स्वभाव को नहीं छोड़ता है। गाय का दूध स्वभाव से ही मधुर होता है।

भावार्थ—"अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते" स्वभाव सर्वदा त्याज्य है। तत् मया भद्रं न कृतम्=अतएव मैंने अच्छा नहीं किया। यत् मारात्मके विश्वासः कृतः=जो इस हिंसक के वचनों पर विश्वास किया। तथा कम्=कहा भी है।

नदीनां शस्त्रपाणीनां·········स्त्रीषु

सम··· ··· ॥

म्। हि।

शील धारण करने वालों, राजवंश का और महिलाओं का विश्वास नहीं करना चाहिए।

सर्वस्य हि परीक्षन्ते .... [illegible] मूर्ध्नि वर्तते ॥२४॥

रूप—ईक्ष्=देखना, परि उपसर्ग, [illegible] परीक्षा करना-क्रिया, कर्तवाच्य आत्मनेपद, अन्य पुरुष, बहुवचन-परीक्ष[illegible], परीक्षेते, परीक्षन्ते। मूर्ध्नि-मूर्धन् मस्तक-माथा-शब्द, पुल्लिग, सप्तमी वि[illegible]क्ति, एकवचन, मूर्ध्नि-मूर्धनि, मूर्ध्नोः मूर्धसु।

शब्दार्थ—अतीत्य=बिताकर-पीछे रख कर।

व्याख्या—सबके स्वभाव की परीक्षा की जाती है, अन्य गुणों की नहीं स्वभाव समस्त गुणों को पीछे रखकर मस्तक पर विद्यमान रहता है अर्थात स्वभाव प्रमुख माना गया है न कि गुण।

स हि गगनविहारी .... प्रोज्झितुं कः समर्थः ? २५।

समास—गगन-विहारी-गगने विहर्तुं शील यस्य स —बहुव्रीहि [illegible] मध्य-चारी-मध्ये चरति इति=तत्पुरुष।

रूप—विहारी-विहारिन्—हलन्त शब्द, पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-विहारी, विहारिणौ, विहारिणः। ज्योतिषां—ज्योतिष्—शब्द—षष्ठी विभक्ति, बहुवचन—ज्योतिषः, ज्योतिषोः, ज्योतिषाम्।

अन्वय—हि स गगन विहारी, कल्मषध्वंसकारी, दशशतकरधारी, ज्योतिषां मध्यचारी असौ विधुः अपि विधि—योगात् राहुणा ग्रस्यते ललाटे लिखितं प्रोज्झितुं कः समर्थः ?

शब्दार्थ—गगन-विहारी=आकाश में विहार करने वाला। कल्मष-ध्वंसकारी=अन्धकार का ध्वंस—विनाश करने वाला। दश शत करधारी—हजारों—असंख्य किरणों को रखनेवाला। ज्योतिषां मध्यचारी—नक्षत्रों के मध्य में विचरण करने वाला। विधुः अपि=चन्द्रमा भी। विधि-योगात्=विधाता के विधान के योग से प्रारब्ध के वश के कारण। राहुणा ग्रस्यते=राहु द्वारा ग्रस लिया जाता है ललाटे लिखितं=मस्तक में लिखे हुए—तकदीर में लिखे हुए को। प्रोज्झितुं समर्थः=मिटाने में कौन समर्थ है—उसको दूर करने को कौन समर्थ हो सकता अर्थात् कोई नहीं हो सकता।

अन्वय—संहता इमे विहंगमाः मम जालं हरन्ति यदा तु निपतिष्यन्ति तदा मे वशम् एष्यन्ति।

शब्दार्थ—संहताः=सुसंगठित। विहंगमाः=पक्षी। निपतिष्यन्ति=गिर जायेंगे। मे वशम् एष्यन्ति=मेरे वश में हो जायेंगे।

व्याख्या—ये सब कबूतर सुसंगठित होकर-मिल कर मेरे जाल को ले जा रहे हैं। जब ये गिरेंगे-नीचे उतरेंगे-तब तो मेरे वशीभूत हो जायेंगे-मेरे हाथ आ जायेंगे।

शब्दार्थ—ततः=तत्पश्चात्। चक्षुर्विषम-अति क्रान्तेषु=आँख से ओझल हो जाने पर। निवृत्तः=लौटा।

व्याख्या—तब पक्षियों के आँख से ओझल हो जाने पर-दिखाई न देने पर शिकारी निराश होकर लौटा।

अथ लुब्धकं निवृत्तं दृष्ट्वा कपोता ऊचुः=शिकारी को निराश लौटा देखकर कबूतर बोले। इदानीं किम् उचितम्=इस समय क्या करना चाहिए। चित्रग्रीव उवाच=चित्रग्रीव बोला।

माता मित्रं पिता चेति··········भवन्ति हित-बुद्धयः ॥३६॥

अन्वय—माता मित्रं पिता च इति त्रितयं स्वभावात् हितं (भवति)। अन्ये च कार्यकारणतः हितबुद्धयः भवन्ति।

शब्दार्थ—मित्रं=स्वाभाविक मित्र। त्रितयं=तीनों। स्वभावात् हितं भवति=स्वभाव से हित करने वाले होते हैं। अन्ये=दूसरे। कार्य-कारणतः=कार्य और कारणरूपी स्वार्थ से। हित-बुद्धयः भवन्ति=हितकारी हो जाते हैं।

व्याख्या—जननी, जनक और मित्र और स्वभाव से ही हितकारी होते हैं। दूसरे तो कार्य या कारणरूपी स्वार्थ के वशीभूत होकर हितकारी बन जाते हैं। अर्थात् दूसरे स्वभाव से ही हितकारी नहीं होते हैं।

शब्दार्थ—तद्अस्माकं मित्रं हिरण्यको नाम मूषक राजो गण्डकीतीरे चित्रवने निवसति=हमारा मित्र हिरण्यक नाम मूषक राज गण्डकी नदी के तट पर रहता है। सः अस्माकं पाशान् छेत्स्यति=वह हमारे बन्धनों को काट देगा। इति आलोच्य=यह विचार कर। सर्वे हिरण्यक-विवर-समीपं गताः=सब हिरण्यक के बिल के पास गये। हिरण्यकः च = हिरण्यक भी। [illegible]

विपत्ति की शंका से-विघ्नों के सन्देह से। शतद्वारं विवरं कृत्वा निवसति=सौ द्वार वाले बिल में रहता है। ततः हिरण्यकः कपोत-अवपात-भयात्=कबूतरों के नीचे उतरने पर होने वाले शब्द को सुन कर भय से। चकितः तूष्णींस्थितः=चकित होकर चुपचाप बैठा रहा।

व्याख्या—हमारा मित्र हिरण्यक नाम मूषकराज गण्डकी नदी के तट पर चित्रवन में रहता है। वह हमारे बन्धनों को अवश्य ही काट देगा। ऐसा विचार करके सब कबूतर हिरण्यक के बिल के पास गये। हिरण्यक भी विपत्ति की शंका से सौ द्वार वाले बिल में निवास करता है। कबूतरों के नीचे उतरने पर होने वाले शब्द-आवाज़-को सुन कर भय से चकित हो वह चुपचाप बैठा रहा।

चित्रग्रीव उवाच·········प्राक्तनजन्मकर्मणः फलमेतत् ॥

सन्धि-विच्छेद—स्थित्वोवाच-स्थित्वा+उवाच-अ+उ=ओ-गुणसंधि।

शब्दार्थ—प्रत्यभिज्ञाय=पहचान कर। निःसृत्य=निकल कर। प्राक्तनजन्मकर्मणः=पहले जन्म के कर्म का।

व्याख्या—(बिल के द्वार पर) चित्रग्रीव बोला—मित्र हिरण्यक! हम से क्यों नहीं बोलते हो? तब हिरण्यक चित्रग्रीव का शब्द पहिचान कर सहसा बाहर आकर बोला—आ! मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ कि आज मेरा परम मित्र चित्रग्रीव आया है। उन सब को जाल में बँधा देख कर विस्मित हो क्षण भर ठहर कर वह (हिरण्यक) बोला—मित्र! यह क्या? चित्रग्रीव ने कहा—मित्र! यह पूर्व-जन्म के कर्म का फल है।

रोग-शोक-परीताप·········फलान्येतानि देहिनाम् ॥४०॥

व्याख्या—रोग, शोक, परीताप,—दुःख—बन्धन और व्यसन आत्मा के अपराध रूपी वृक्ष के फल प्राणियों को मिलते हैं। अर्थात् ये सब मानव के दुष्कर्मों के फल हैं जो कि उसे भोगने पड़ते हैं।

सारांश—अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। शुभ-अशुभ कार्यों का फल भोगना ही पड़ता है।

एतत् श्रुत्वा हिरण्यकः······परिरक्षणं तन्नीतिविदां संमतम् ॥

[illegible] विच्छेद—दैवम्-मा+एवम्-आ+ए=ऐ=वृद्धि संधि। वाक्यद्वयम्-

यावत्+शक्यम्-त् को च्, श को छ्—व्यंजन संधि। हिरण्यकेनोक्तम्-हिरण्य-केन+उक्तम्-अ+उ=ओ गुण सन्धि।

समास—अल्पशक्तिः-अल्पा शक्तिः यस्य सः बहुव्रीहि। यथाशक्ति-शक्तिम् अनतिक्रम्य-यथाशक्ति-अव्ययी भाव।

रूप—छिन्धि-छिद्-छेदना=काटना क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट, मध्यम-पुरुष एकवचन-छिन्धि,-छिन्तात्, छिन्तम्, छिन्त। छिनद्मि-छिद्-काटना-क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन-छिनद्मि, छिन्द्वः, छिन्द्मः। सोढुम्-सह्-सहन करना-क्रिया, तुम् (तुमन्) प्रत्यय।

शब्दार्थ—छेत्तुम्=काटने को। उपसर्पति=समीप जाता है। मा=नहीं। छिन्धि=काट दो। छिनद्मि=काटता हूं। परिरक्षणम्=रक्षा। सोढुम्=सहन करने को।

व्याख्या—इतना सुनकर हिरण्यक (चूहा) चित्रग्रीव के बन्धन काटने को शीघ्र ही उसके पास जाता है। चित्रग्रीव बोला—मित्र! नहीं, नहीं,। पहले हमारे आश्रितों—साथियों के बन्धन काट दो, तत्पश्चात् मेरे काटो। हिरण्यक कहता है—मैं अल्प शक्ति वाला हूँ, मेरे दांत कोमल हैं, अतः इनके बन्धन कैसे काट सकूंगा? अतएव जब तक मेरे दांत नहीं टूटते हैं तब तक तुम्हारे बन्धन काट देता हूँ। इसके बाद शक्ति के अनुसार इनके बन्धन भी काट दूँगा। चित्रग्रीव ने कहा—यह ठीक है, तब भी अपनी शक्ति के अनुसार इनके बन्धन काट दो। हिरण्यक ने कहा—अपनी चिन्ता न कर अपने आश्रय में रहने वालों की रक्षा करना नीतिज्ञों की सम्मति नहीं है।

आपदर्थं धनं रक्षेत्·········दारैरपि धनैरपि।४१॥

समास—आपदर्थम्-आपदाम् अर्थः-तत्पुरुष-तम्।

रूप—रक्षेत्-रक्ष्-रक्षा करना-धातु-परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-रक्षेत, रक्षेताम्, रक्षेयुः। आत्मानम्-आत्मन्-शब्द, पुल्लिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन-आत्मानं, आत्मानौ, आत्मनः। दारान्-दारा=स्त्री-शब्द, पुल्लिंग, नित्य बहुवचनान्त-दाराः, दारान्, दारैः, दारेभ्यः, दाराणाम्, दारेषु-दारा-शब्द स्त्रीवाचक है परन्तु इसके रूप पुल्लिंग के समान होते हैं और इस के रूप सदा बहुवचन में होते हैं, अतएव यह शब्द नित्य बहुवचनान्त है।

अन्वय—आपदर्थं धनं रक्षेत्, धनैः अपि दारान् रक्षेत् दारैः धनैः
अपि सततम् आत्मानं रक्षेत्।

शब्दार्थ—आपदर्थं=आपत्ति के लिए दुर्भिक्ष आदि आपत्तियाँ दूर करने
के। धनं रक्षेत्=धन की रक्षा करनी चाहिए-धन इकट्ठा करना चाहिए।
धनैः दारान् रक्षेत्=धन द्वारा स्त्री की रक्षा करनी चाहिए अर्थात् धन व्यय करके
स्त्री की रक्षा करना उचित है, धन की नहीं। दारैः धनैः अपि आत्मानं सततं
रक्षेत्=स्त्री, धन द्वारा अर्थात् इनका व्यय तथा त्याग करके अपनी रक्षा करनी
चाहिए।

व्याख्या—आपत्तियाँ दूर करने के लिए धन संचय करना चाहिए। धन
को व्यय करके विपत्ति में पड़ी हुई स्त्री की-पत्नी की-रक्षा करनी चाहिए। पत्नी
तथा धन का त्याग और व्यय करके सदा अपनी रक्षा करनी चाहिए।

भावार्थ—आत्म-रक्षार्थ धन का व्यय और पत्नी का त्याग सर्वथ
उचित है।

धर्मार्थ-काम-मोक्षाणाम्……रक्षता किं न रक्षितम् ॥४८॥

समास—धर्मार्थ-काम-मोक्षाणाम्-धर्मः च अर्थः च कामः च मोक्षः
तेषां-द्वन्द्व। संस्थिति-हेतवः-संस्थितेः हेतवः इति-षष्ठी तत्पुरुष।

रूप—तान्-तत्-सर्व-शब्द, पुल्लिंग, द्वितीया विभक्ति, बहुवचन-तम्,
तौ तान्। रक्षता-रक्षत्=रक्षा करता हुआ-शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्द, तृतीया
विभक्ति, एकवचन-रक्षता, रक्षद्भ्याम्, रक्षद्भिः।

अन्वय—प्राणः धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां संस्थिति-हेतवः (सन्ति)। तान्
निघ्नता (तत्पुरुषेण) किं न हतम्। रक्षता किं न रक्षितम्।

शब्दार्थ—धर्मार्थ-काम-मोक्षाणाम्-धर्म, धन, काम और मोक्ष-इन चारों
के संस्थिति-हेतवः=रक्षा के कारण-प्राप्ति के साधन। निघ्नता=विनाश करने
वाले ने। किं न हतम्=क्या नष्ट नहीं किया अर्थात् सब कुछ नष्ट कर दिया
रक्षता किं न रक्षितम्=और प्राणों की रक्षा करते हुए किसका रक्षण नहीं किया
अर्थात् सब की ही रक्षा की।

व्याख्या—प्राण ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं
प्राणों का विनाश करने वालों ने किस का नाश नहीं किया अर्थात्

नष्ट कर दिया और प्राण-जीवन की रक्षा करने वालों ने किस वस्तु का रक्षण नहीं किया, अर्थात् सब का रक्षण किया।

भावार्थ—प्राण ही धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं, अतः सदा रक्षणीय हैं।

शब्दार्थ—चित्रग्रीव उवाच=चित्रग्रीव बोला। सखे ! नीतिः तावत् ईदृशो =नीति तो यही है जो कि तुमने कही है। किंतु अहम् अस्मद्-आश्रितानां दुःखं सोढुम् सर्वथा असमर्थः=किन्तु मैं अपने आश्रय में रहने वाले (इन कबूतरों) के दुःख को सहन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। तेन इदं ब्रवीमि= इसलिए ऐसा कहता हूँ।

जाति-द्रव्य-गुणानां च·········कदा किं तद् भविष्यति ? ॥४३॥

समास—जाति-द्रव्य गुणानाम्-जातिः च द्रव्यं च गुणाः च-तेषां-द्वन्द्व।

रूप—ब्रूहि-ब्रू=बोलना-क्रिया-परस्मैपद, आज्ञार्थ, मध्यम पुरुष, एकवचन-ब्रूहि-ब्रूतात्, ब्रूत, ब्रूत।

अन्वय—मया सह एषां जाति-द्रव्य-गुणाना च साम्यं (अस्ति)। तद् ब्रूहि मत्प्रभुत्वफल किं कदा भविष्यति ?

शब्दार्थ—मया सह=मुझ चित्रग्रीव के साथ। जाति-द्रव्य-गुणानाम्= इनकी जाति, पंख, चंचु आदि द्रव्य और गुण। साम्यम्=बराबर ही हैं। मत्प्रभुत्वफलं=मेरे आधिपत्य का फल। किं कदा भविष्यति=क्या और कब होगा।

व्याख्या—मेरे समस्त अनुयायियों-साथियों-की जाति-कबूतर, द्रव्य-पंख, चंचु आदि, गुण-साथ साथ रहना ये सब मेरे समान ही हैं अर्थात् ये सब किसी बात में भी मुझ से कम नहीं हैं। मुझ में केवल इन सब का आधिपत्य-प्रभुता ही अधिक है। कहिये, यदि इस समय मैं इनकी रक्षा न करूँ तो मेरे आधिपत्य का अन्य फल क्या होगा ? अर्थात् कुछ नहीं। इसलिए इनका संरक्षण आवश्यक है।

भावार्थ—मेरी प्रभुता का फल है-इनके जीवन की रक्षा।

विना वर्त्तनमेवैते·········एतान् ममाश्रितान् ॥४४॥

सन्धि-विच्छेद—जीवयैतान्-जीवय+एतान्-वृद्धिसंधि-यदि लघु या गुरु

अ के बाद, ए, ऐ, ओ या औ आते हैं तो क्रमशः [illegible]; [illegible] अगर
ओ-औ हो जाते हैं।

समास—प्राण-अर्पण-प्राणानां अर्पण इति तत्पुरुष-तेन।

रूप—जीवय-जीव्-जीवित देखना-क्रिया-आज्ञा लोट्, परस्मै प्रयोग, मध्यम पुरुष, एकवचन—जीवय-जीवतं, जीवत। [illegible]

अन्वय—एते वर्तनं विना मम पार्श्वम् एव न त्यजन्ति। तत् मे प्राण अर्पणेन अपि एतान् मम आश्रितान् जीवय।

शब्दार्थ—वर्तनं विना=बिना वेतन के। पार्श्वम् न त्यजन्ति=मेरा साथ नहीं छोड़ते हैं। प्राण अर्पणेन अपि=मेरे प्राणों के त्याग से—मेरे जीवन के बदले में। जीवय=रक्षा करो।

व्याख्या—ये समस्त मेरे साथी बिना वेतन लिये हुए मेरे साथ रहते हैं—मेरा साथ नहीं छोड़ते हैं। अतएव मेरे प्राणों के त्याग से—मेरे जीवन के बदले में—मेरे इन समस्त आश्रितों को जीवित करो अर्थात् इनकी रक्षा करो।

इत्याकर्ण्य हिरण्यकः·········आत्मानं अवज्ञा न कर्त्तव्या।

समास—आश्रित-जन-वात्सल्येन—आश्रिताः च अमी जना इति आश्रित जनाः—कर्मधारय, आश्रित-जनेषु वात्सल्येन—तत्पुरुष।

रूप—सन्-होता हुआ-शतृ प्रत्ययान्त सत्-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति एकवचन—सन्, सन्तौ, सन्तः।

शब्दार्थ—प्रहृष्ट-मनाः=हर्षित। आश्रित-जन-वात्सल्येन=आश्रित-जनों इन साथी कबूतरों पर—वात्सल्य—स्नेह द्वारा। सम्पूज्य=पूजन कर—आदर-सत्कार कर। जाल-बन्धन-विधौ=जाल में फँस जाने पर। आशंक्य=आशंका करके—बार बार ख्याल करके। अवज्ञा=आत्मापमान—अपना अनादर—अपने प्रति तुच्छ विचार।

व्याख्या—अपने मित्र कपोतराज चित्रग्रीव के ऊपर लिखे वचन सुनकर हिरण्यक अतीव हर्षित हो पुलकित होता हुआ बोला—मित्र! साधु साधु! अपने आश्रितों—साथियों-पर इस असीम वात्सल्य—स्नेह के कारण तू तीनों लोकों का राजा होने के योग्य है। यह कह हिरण्यक ने सबके बन्धन काट दिये बाद हिरण्यक उन सबका पूजन-आदर-सत्कार कर बोला—आप सबका आ

में फँस जाना भवितव्यता–होनहार थी, अतएव बंधन में फँस जाना अनिवार्य था। इसको दोष समझ कर–बार-बार मन में सोच कर–अवज्ञा अनादर करना अनुचित है–अपने को तुच्छ समझना, तुच्छ विचार है। जो अपने को तुच्छ समझता है, वह उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता है।

भावार्थ—नात्मानमवसादयेत्। अपने को तुच्छ मत समझो आत्मैव आत्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः—भगवद्गीता

अपनी अवज्ञा करना अनुचित है। आत्मा ही अपना बन्धु है और वही अपना शत्रु भी है।

योऽधिकाद्.........पाशबन्ध न पश्यति ॥४५॥

सधि विच्छेद—पश्यतीहामिषम्–पश्यति+इह+आमिषम्–दीर्घसंधि।

समास—योजन-शतात्–योजनानां शतात्=तत्पुरुष। खगः–खे गच्छति इति–तत्पुरुष। प्राप्त-कालः=प्राप्तः कालः यस्य सः=बहुव्रीहि। पाशस्य बन्धः=तत्पुरुष–तम्।

रूप—पश्यति–दृश् (पश्य्) देखना क्रिया परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–पश्यति, पश्यतः, पश्यन्ति।

अन्वय—इह यः खगः योजन-शतात् अधिकात् आमिषं पश्यति। स एव प्राप्त-कालः तु पाशबन्धं न पश्यति।

शब्दार्थ—योजन-शतात् अधिकात्=सौ योजन की दूरी से। आमिषं पश्यति=मांसादि को देख लेता है। प्राप्त-कालः तु = मृत्यु निकट आती है तो। पाश-बन्धं न पश्यति=जाल को नहीं देख पाता है।

व्याख्या—इस संसार में खग–श्येन पक्षी–सौ योजन की दूरी से अपने आहार–मांस आदि को देखता है, परन्तु मृत्यु सन्निकट आने पर वही पक्षी (सम्मुख स्थित) जाल को नहीं देख पाता है।

भावार्थ—मृत्यु के सामने सब साधन व्यर्थ हो जाते हैं।

शशि-दिवाकरयोः.........विधिरहो बलवान् इति मे मतिः ॥४६॥

समास—शशि-दिवाकरयोः–शशी दिवाकरः च=द्वन्द्व–तयोः। ग्रह-पीडनम्–ग्रहेण पीडनम्–तत्पुरुष। गजः च भुजंगमः च =द्वंद्व–तयोः।

शब्दार्थ—व्योमैकान्त-विहारिणः=आकाश में भ्रमण करने वाले। आपदं सम्प्राप्नुवन्ति=आपत्तियों में फँस जाते हैं। अगाध-सलिलात् समुद्रात्=अगाध समुद्र से। वध्यन्ते=पकड़ लिये जाते हैं। किं दुर्नीतं (अस्ति)=इस जगत् में क्या दुर्नीति है। किं सुचरितम् (अस्ति)=और क्या सुनीति है। स्थान-लाभे कः गुणः=पक्षियों तथा अन्य जीवों को पाश-हीन स्थान में रहने से क्या लाभ? व्यसन-प्रसारित-कर=विपत्तिरूपी हाथों को फैलाने वाला। कालः=मृत्यु। दूरात् अपि गृह्णाति=दूर से ही ग्रहण कर लेता—सब को पकड़ लेता—है।

व्याख्या—एकान्त आकाश में भ्रमण करने वाले निरपराध पक्षी भी आपत्ति में—जाल में फँस जाते हैं, धीवर लोग अथाह समुद्र से भी निरपराध मत्स्यों को पकड़ लाते हैं। इस संसार में दुश्चरित—दुर्नीति क्या है? सुचरित्र—सुनीति क्या है? पाश-रहित स्थान में रहने से—उत्तम स्थान में रहने से भी क्या लाभ है? काल विपत्तिरूपी हाथों को फैला कर दूर से ही सब को ग्रहण कर लेता है—पकड़ लेता है।

भावार्थ—काल भगवान् की महिमा अपार है।

शब्दार्थ—इति प्रबोध्य=इस प्रकार समझा कर। आतिथ्यं कृत्वा=मित्र और उसके साथियों का अतिथि सत्कार करके। आलिंग्य च=गले मिल कर। चित्रग्रीवः तेन संप्रेषितः=हिरण्यक से विदाई लेकर चित्रग्रीव। सपरिवारः यथेष्ट देशान् ययौ=अपने परिवार वालों के साथ इच्छित दिशा की ओर चला गया। हिरण्यकः अपि स्वविवरं=प्रविष्ट हिरण्यक भी अपने बिल में घुस गया।

अथ लघुपतनक नामा काकः······का त्वया सह मैत्री?

समास—सर्ववृत्तान्तदर्शी-सर्वं वृत्तान्तं दर्शी-उपपद तत्पुरुष। विवराभ्यन्तरात्=विवरस्य अभ्यन्तरात्=तत्पुरुष।

शब्दार्थ—सर्व वृत्तान्त-दर्शी=समस्त घटना को देखने वाला। अनुग्रहीतुम् अर्हसि=अनुग्रहीत कीजिये—कृपा कीजिये। विवराभ्यन्तरात्=बिल के अन्दर से। विहस्य=हँस कर।

व्याख्या—कथा के प्रारम्भ में लघुपतनक ने प्रातःकाल जाग कर व्याध के कार्य से लेकर अब तक की समस्त घटना देखी थी। वह यह देख कर अत्यधिक प्रभावित हुआ। समस्त वृत्तान्त को देखने वाला लघुपतनक आश्चर्य से बोला—

हे हिरण्यक ! तू श्लाघ्य-प्रशस्य—प्रशंसा के योग्य है। इसलिए मैं मं साथ मित्रता करना चाहता हूँ। मुझे अपना मित्र बनाकर अनुगृहीत कर। सुन हिरण्यक बिल के अन्दर से कहता है—तू कौन है ? वह कहता है—मैं पतनक नामक एक काक हूँ। हिरण्यक हँस कर कहता है—तेरे साथ मेरी ि कैसे हो सकती है ! क्योंकि—

यद् येन युज्यते लोके..........कथं प्रीतिर्भविष्यति ॥४८॥

रूप—युज्यते-युज्—युक्त करना—जोड़ देना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्तम काल, अन्य पुरुष, एकवचन-युज्यते, युज्येते, युज्यन्ते। भवान्-भवत्-आप-श पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन भवान्, भवन्तौ, भवन्तः। भोक्ता-भोत भोग करने वाला-शब्द, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-भोक्ता, भोक्तारौ, भोक्तार

अन्वय—लोके येन यत् युज्यते, बुधः तत् तेन (सह) योजयेत्। अ अन्नम् (अस्मि) भवान् भोक्ता (अस्ति) प्रीतिः कथं भविष्यति ?

शब्दार्थ—लोके=संसार में। येन (व्यक्तिना सह)=जिस व्यक्ति के साथ यत् युज्यते=जो जोड़ा जा सकता है। योजयेत्=मिला देना चाहिए। भवा भोक्ता=आप भोजन करने वाले हैं। कथं प्रीतिः भविष्यति=किस प्रकार प्रीति सकेगी।

व्याख्या—हिरण्यक चूहा लघुपतनक नामक काक से कह रहा है कि संस में जो जिसके साथ मेल के योग्य होता है, बुद्धिमान् उसी के साथ उसे मिला देत है—जोड़ देता है। मैं (चूहा) आप (काक) का भोजन हूँ। तब किस प्रकार प्रीति हो सकती है ?

भावार्थ—घोड़े की घास से मित्रता कैसी ?

भक्ष्य-भक्षकयोः प्रीतिः......मृगः काकेन रक्षितः ॥४९॥

समास—भक्ष्य-भक्षकयोः-भक्ष्यः च भक्षकः च-द्वन्द्व-तयोः। पाशबद्ध- पाशेन बद्ध इति-तत्पुरुषः।

रूप—विपत्तेः-विपत्तिः-आपत्ति-शब्द, षष्ठी विभक्ति, स्त्रीलिंग, एकवचन- विपत्तेः, विपत्त्याः, विपत्त्योः, विपत्तीनाम्।

अन्वय—भक्ष्य-भक्षकयोः प्रीतिः विपत्तेः कारणम् (भवति)। शृगालात् -. असौ मृगः काकेन रक्षितः।

शब्दार्थ—भक्ष्य-भक्षकयोः=खाद्य और भक्षक-भोजन और भोजन करने
वाले की। प्रीतिः=प्रेम। विपत्तेः कारणं (भवति)=विपत्ति का ही कारण होता
है। पाशबद्धः=जाल में फँसा हुआ। काकेन रक्षितः=कौए द्वारा बचाया
गया।

व्याख्या—भक्ष्य-भक्षक—भोजन और भोजन करने वाले की प्रीति विपत्ति
का कारण हो जाती है। जैसे शृगाल द्वारा जाल में फँसाये हुए मृग को कौए ने
बचाया।

शब्दार्थ—वायसः अब्रवीत्=लघुपतनक काक बोला। कथम् एतत्=यह
कैसे ! हिरण्यकः कथयति=हिरण्यक—चूहा कहता है।

काकरक्षितमृगस्य कथा

(कौए द्वारा रक्षा किये हुए हिरन की कहानी)

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती अरण्यानी ''' जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि।

संधि-विच्छेद—चिरान्महता—चिरात् + महता=त् को न्—व्यंजन संधि।
केनचिच्छृगालेन—केनचित्+शृगालेन=त् को च् और श् को छ्=व्यंजन संधि।
इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत्=इति+आलोच्य=यण् संधि। आलोच्य+उपसृत्य=अ+उ=
ओ=गुणसंधि। उपसृत्य+अब्रवीत्=दीर्घ संधि। मृतवन्निवसामि—त् को न्=
व्यंजन संधि।

समास—मृग-काकौ—मृगः काकःच=द्वन्द्व=तौ। हृष्ट-पुष्टांगः=हृष्टानि
पुष्टानि च अङ्गानि यस्य सः=बहुव्रीहि। स्वेच्छया=स्वस्य इच्छया=तत्पुरुष। क्षुद्र-
बुद्धिः=क्षुद्रा बुद्धिर्यस्य सः=बहुव्रीहि। बन्धु-हीनः=बन्धुभिः हीनः=तत्पुरुष। जीव-
लोकम्=जीवानां लोक इति—तत्पुरुष—तम्।

रूप—तस्याम्—तत्=वह—स्त्रीलिंग—शब्द, सप्तमी विभक्ति, एकवचन—
तस्यां, तयोः, तासु। महता—महत्=बड़ा=शब्द, तृतीया विभक्ति, एकवचन—
महता, महद्भ्यां महद्भिः। अवलोकितः=अव उपसर्ग—लोक्—क्रिया—क्त (त)
प्रत्यय। अचिन्तयत्—चिन्त्=चिन्ता करना—क्रिया, परस्मैपद, भूतकाल अन्य
पुरुष, एकवचन अचिन्तयत्, अचिन्तयताम्, अचिन्तयन्। भक्षयानि—
भक्ष्=भोजन करना—धातु, परस्मैपद, आज्ञा लोट् उत्तम पुरुष, एकवचन—
भक्षयानि, भक्षयाव, भक्षयाम। अब्रवीत्—ब्रू=बोलना—कहना—क्रिया, परस्मैपद,

भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन=अब्रवीत्, अब्रूताम्; अब्रुवन्। ब्रूते=ब्रू-क्रिया, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते।

शब्दार्थ—अरण्यानी=वन-जंगल। महता स्नेहेन=बड़े स्नेह से। स्वे अपनी इच्छा से। भ्राम्यन्=भ्रमण करता हुआ। हृष्ट-पुष्टाङ्गः=मोटा-ताजा शृगालेन अवलोकितः=गीदड़ ने देखा। सुललितं मांस=सुन्दर मांस विश्वासं उत्पादयामि=विश्वास उत्पन्न करता हूँ। आलोच्य=विचार उपसृत्य=समीप जाकर। क्षुद्रबुद्धि-नामा=क्षुद्रबुद्धि नामक। बन्धुहीन बन्धुओं से रहित। मृतवत् निवसामि=मुर्दे जैसा पड़ा रहता हूँ। आसाद्य= कर। सबंधुः=बन्धु सहित। जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि=संसार में प्रविष्ट हुआ हूँ

व्याख्या—मगध प्रदेश में चम्पकवती नामक एक महान् अरण्य उसमें मृग और काक बहुत समय से स्नेहपूर्वक रहते थे। स्वतन्त्रतापूर्वक इधर उधर भ्रमण करते हुए मोटे-ताजे मृग को किसी गीदड़ ने देखा। मृग देख कर गीदड़ ने सोचा-आ! किस प्रकार इसका सुन्दर मांस मुझे खाने मिले। अच्छा, विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। यह विचार कर शृगाल हरि के समीप जाकर बोला—मित्र! कुशलपूर्वक हो? मृग ने कहा—तू कौन है वह कहता है मैं क्षुद्रबुद्धि नामक गीदड़ हूँ। इस जंगल में बन्धु-बान्धव रहि हो मुर्दे के समान रहता हूँ। इस समय तुम-सा बन्धु प्राप्त कर फिर बन्धु-युत होकर संसार में प्रविष्ट हुआ हूँ।

अधुना सर्वथा मया······अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता।

शब्दार्थ—तव अनुचरेण भवितव्यम्=तुम्हारा अनुचर होना चाहिए-तुम्हारा सेवक बन कर रहना चाहिए। सख्यम् इच्छन्=मित्रता का अभिलाषी। आगन्तुना सह=आने वाले-अपरिचित-के साथ।

व्याख्या—क्षुद्रबुद्धि शृगाल मृग से कह रहा है कि इस समय मैं आपका अनुचर हो गया हूँ। मृग ने कहा—यह ठीक है—ऐसा ही हो। इसके बाद भगवान् सूर्य के अस्त होने पर वे दोनों रहने के स्थान पर गये। वहाँ चम्पक वृक्ष की शाखा पर मृग का एक मित्र सुबुद्धि नामक काक रहता है। उन, दोनों को देख कर काक बोला—सखे चित्रांग! यह दूसरा कौन है? चित्रांग (मृग) कहता है—यह शृगाल [illegible] साथ मित्रता करने के विचार से यहाँ आया

है। सुबुद्धि काक कहता है—मित्र ! अकस्मात् आने वाले—अपरिचित—के साथ मैत्री उचित नहीं।

तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा है—

अज्ञातकुल-शीलस्य······गृध्रो जरद्गवः ॥५०॥

समास—अज्ञात-कुल-शीलस्य—न ज्ञातम् इति अज्ञातम्—नञ् (निषेध-वाचक तत्पुरुष) अज्ञात कुलं च शीलं यस्य स. तस्य=बहुव्रीहि।

शब्दार्थ—अज्ञात-कुल-शीलस्य=वंश और स्वभाव से अपरिचित को। वासः=ठहरने-रहने-का स्थान। हतः मारा गया।

व्याख्या—सुबुद्धि कौआ कह रहा है कि जिसके वंश और शील-स्वभाव का पता नहीं है, उसे रहने के लिये स्थान देना—उसके साथ मित्रता करना—उचित नहीं। बिलाव के अपराध से जरद्गव नामक गिद्ध मारा गया।

तौ आहतुः=मृग और गीदड़ कहते हैं। एतत् कथम्=यह कैसे। काकः कथयति=सुबुद्धि कौआ कहता है।

जरद्गव-गृध्रस्य कथा
(जरद्गव गीध की कहानी)

अस्ति भागीरथीतीरे······तावद् विश्वासमुत्पाद्यास्य समीपमुपगच्छामि।

संधि-विच्छेद—तज्जीवनाय—तत्+जीवनाय—त् को ज्=व्यंजन संधि।

समास—गलित-नख-नयन—गलिता. नखा. नयने च यस्य सः=बहुव्रीहि। पक्षिशावकैः—पक्षिणां शावकैः—तत्पुरुष।

रूप—ददति—दा—देना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन—ददाति, दत्तः ददति। आयाति—या-जाना आ उपसर्ग—आ या—आना—क्रिया-परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—आयाति, आयातः आयान्ति।

शब्दार्थ—कोटरे=खोखल में। गलित-नख-नयनः=नख गये हैं नख और नेत्र जिसके अर्थात् बूढ़ा और अन्धा। दैव-दुर्विपाकात्=दुर्भाग्य के परिणाम से। किंचित् उद्धृत्य=कुछ निकाल कर। ददति=देते हैं। आयान्तम्=आते हुए को। भयार्तैः=भयभीत। सन्निधाने=समीप में। पलायितुम्=भागने को—उड़ने देने को।

व्याख्या—भागीरथी के तट पर गृध्रकूट नामक पर्वत पर पाकर का एक विशाल वृक्ष है। दुर्भाग्य के परिणाम से बूढ़ा तथा अन्धा जरद्गव नामक

एक गीध उसके खोखल में रहता है। उस (पाकर) के पेड़ पर रहने पक्षी अपने-अपने भोजन में से थोड़ा-थोड़ा भोजन बचाकर उस (गृध्र जीवन के लिए दे देते हैं। उससे वह जीवित रहता है और पक्षियों के की रक्षा करता है। किसी समय दीर्घकर्ण नामक बिलाव (वृक्ष पर रहने वा पक्षियों के बच्चों को खाने के विचार से वहाँ आया। उसे आता देख भयभीत पक्षि शावकों ने कोलाहल-शोर करना शुरू किया। उस (कोलाह को सुन कर अन्धे जरद्गव ने कहा—यह कौन आ रहा है ? दीर्घकर्ण गीध देख भयपूर्वक कहता है—हाय ! मैं मारा गया, अब क्या करूँ ? इस समय इ सामने से भागने में भी असमर्थ हूँ। जो कुछ होता है, वह हो। तो विश्वा उत्पन्न करके इनके समीप जाऊँ। यतः=क्योंकि—

तावद् भयस्य भेतव्यम्'''नरःकुर्यात् यथोचितम् ॥५१॥

शब्दार्थ—भेतव्यम्=डरना चाहिए।

व्याख्या—भय से उसी समय तक डरना चाहिए जब तक कि वह नहीं आया है। भय को आया हुआ देख कर मनुष्य को उचित कार्यवाही करनी चाहिए।

इत्यालोच्य'''''''''वध्यस्तदा हन्तव्यः।

संधि-विच्छेद—इत्यालोच्योपसृत्य-इति+आलोच्य=इ को य्=यण् संधि। आलोच्य+उपसृत्य-अ+उ=गुण संधि।

रूप—अभिवन्दे-अभि उपसर्ग, वन्द्-वन्दना करना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन-अभिवन्दे, अभिवन्दावहे, अभिवन्दामहे।

शब्दार्थ—उत्पाद्य=उत्पन्न कर। आलोच्य=विचार कर। उपसृत्य=समीप जाकर। अभिवन्दे=वन्दना करता हूँ। अपसर=भाग जा। श्रूयताम्=सुनिये।

व्याख्या—यह सोच पास आकर बोला—हे आर्य ! तुम्हें प्रणाम करता हूँ। गीध बोला—तू कौन है ? वह बोला—मैं बिलाव हूँ। गीध कहता है—दूर भाग जा, नहीं तो मार दिया जायगा। बिलाव बोला—पहले मेरी बात सुनिये, फिर यदि मैं मारने योग्य समझा जाऊँ तो मार डालना।

यतः=क्योंकि—

जातिमात्रेण किं कश्चिद्''''''पूज्योऽथवा भवेत् ॥५२॥

रूप—हन्यते=हन्—जान से मार देना—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल अन्य पुरुष, एकवचन—हन्यते, हन्येते, हन्यन्ते।

शब्दार्थ—हन्यते=मारा जाता है। परिज्ञाय=जान कर।

व्याख्या—क्या कोई जातिमात्र से—किसी जाति में पैदा होने से—ही मारने या पूजने योग्य होता है? वास्तव में व्यवहार जान कर—व्यवहार देख कर—कोई मारने या पूजा करने के योग्य होता है।

गृध्रो ब्रूते··········गृहस्थधर्मश्च एषः।

समास—धर्म-ज्ञान-रताः—धर्मस्य ज्ञाने रताः अथवा धर्मे च ज्ञाने च रताः—तत्पुरुष। विद्या-वयो-वृद्धेभ्यः=विद्यया वयसा च वृद्धेभ्यः—तत्पुरुष। गृहस्थधर्मः—गृहे तिष्ठति इति गृहस्थः, गृहस्थस्य धर्म इति—तत्पुरुष।

रूप—ब्रह्मचारी—ब्रह्मचारिन्—इन् अन्त शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणौ, ब्रह्मचारिणः।

शब्दार्थ—नित्य-स्नायी=सदा स्नान करने वाला। चान्द्रायण व्रतम् आचरन्=चान्द्रायण व्रत करता हुआ। विद्या-वयो-वृद्धेभ्यः=विद्या और अवस्था में बड़े अर्थात् अधिक विद्वान् और अधिक अनुभवी।

व्याख्या—जरद्गव गीध दीर्घकर्ण बिलाव से कहता है—बता, किसलिये आया है? बिलाव बोला—मैं यहाँ गंगा के तट पर रहता हूँ, प्रतिदिन स्नान करता और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ चन्द्रायण व्रत करता हूँ। आप धर्मात्मा, ज्ञानी और विश्वासपात्र हैं—ऐसा सभी पक्षी मुझ से कहते रहते हैं। इसलिए आप जैसे विद्वान् और अनुभवी से मैं धर्म सुनने के लिए यहाँ आया हूँ। यह तो गृहस्थ का धर्म ही है।

अरावप्युचितम्··········नोपसंहरते द्रुमः ॥४३॥

संधि-विच्छेद—अरावप्युचितम्—अरौ+अपि—औ को आव्,—अयादि संधि, यदि ए, ऐ, ओ या औ के बाद स्वर आते हैं तो ए को अय्, ऐ को आय्, ओ को अव्, और औ को आव् हो जाता है। अप्युचितम्—अपि+उचितम्—इ को य्—यण् संधि।

रूप—अरौ—अरि—शत्रु—शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन—

एक गीध उसके खोखल में रहता है। उस (पाकर) के पेड़ पर पक्षी अपने-अपने भोजन में से थोड़ा-थोड़ा भोजन बचाकर उस (जीवन के लिए दे देते हैं। उससे वह जीवित रहता है और पक्षियों की रक्षा करता है। किसी समय दीर्घकर्ण नामक बिलाव (वृक्ष पर रह पक्षियों के बच्चों को खाने के विचार से वहाँ आया। उसे आता भयभीत पक्षि शावकों ने कोलाहल-शोर करना शुरू किया। उस (को सुन कर अन्धे जरद्गव ने कहा—यह कौन आ रहा है ! दीर्घकर्ण देख भयपूर्वक कहता है—हाय ! मैं मारा गया, अब क्या करूँ ! इस सम सामने से भागने में भी असमर्थ हूँ। जो कुछ होता है, वह हो। तो उत्पन्न करके इसके समीप जाऊँ। यतः=क्योंकि—

तावद् भयस्य भेतव्यम्···नरःकुर्यात् यथोचितम् ॥५१॥

शब्दार्थ—भेतव्यम्=डरना चाहिए।

व्याख्या—भय से उसी समय तक डरना चाहिए जब तक कि व आया है। भय को आया हुआ देख कर मनुष्य को उचित कार्यवाही चाहिए।

इत्यालोच्य·········वध्यस्तदा हन्तव्यः।

संधि विच्छेद—इत्यालोच्योपसृत्य-इति+आलोच्य=इ को य्-यण् र आलोच्य+उपसृत्य-अ+उ=गुण सधि।

रूप—अभिवन्दे-अभि उपसर्ग, वन्द-वन्दना करना-क्रिया, आत्म वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन-अभिवन्दे, अभिवन्दावहे, अभिवन्दाम

शब्दार्थ—उत्पाद्य=उत्पन्न कर। आलोच्य=विचार कर। उपसृत्य=ज जाकर। अभिवन्दे=वन्दना करता हूँ। अपसर=भाग जा। श्रूयताम्=सुनिये

व्याख्या—यह सोच पास जाकर बोला—हे आर्य ! तुम्हें प्रणाम करता गीध बोला—तू कौन है ! वह बोला—मैं बिलाव हूँ। गीध कहता है—दूर भ जा, नहीं तो मार दिया जायगा। बिलाव बोला—पहले मेरी बात सुनिये, कि यदि मैं मारने योग्य समझा जाऊँ तो मार डालना।

यतः=क्योंकि—

जातिमात्रेण किं कश्चिद्······पूज्योऽथवा भवेत् ॥५२॥

रूप—हन्यते=हन्-जान से मार देना-क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल अन्य पुरुष, एकवचन-हन्यते, हन्येते, हन्यन्ते।

शब्दार्थ—हन्यते=मारा जाता है। परिज्ञाय=जान कर।

व्याख्या—क्या कोई जातिमात्र से-किसी जाति में पैदा होने से-ही मारने या पूजने योग्य होता है ? वास्तव में व्यवहार जान कर-व्यवहार देख कर-कोई मारने या पूजा करने के योग्य होता है।

गृध्रो ब्रूते·········गृहस्थधर्मश्च एषः।

समास—धर्म-ज्ञान-रताः-धर्मस्य ज्ञाने रताः अथवा धर्मे च ज्ञाने च रताः-तत्पुरुष। विद्या-वयो-वृद्धेभ्यः=विद्यया वयसा च वृद्धेभ्यः-तत्पुरुष। गृहस्थधर्मः-गृहे तिष्ठति इति गृहस्थः, गृहस्थस्य धर्म इति-तत्पुरुष।

रूप—ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिन्-इन् अन्त शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणौ, ब्रह्मचारिणः।

शब्दार्थ—नित्य-स्नायी=सदा स्नान करने वाला। चान्द्रायण व्रतम् आचरन्=चान्द्रायण व्रत करता हुआ। विद्या-वयो-वृद्धेभ्यः=विद्या और अवस्था में बड़े अर्थात् अधिक विद्वान् और अधिक अनुभवी।

व्याख्या—जरद्गव गीध दीर्घकर्ण बिलाव से कहता है—बता, किसलिये आया है ? बिलाव बोला—मैं यहाँ गंगा के तट पर रहता हूँ, प्रतिदिन स्नान करता और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ चन्द्रायण व्रत करता हूँ। आप धर्मात्मा, ज्ञानी और विश्वासपात्र हैं—ऐसा सभी पक्षी मुझ से कहते रहते हैं। इसलिए आप जैसे विद्वान् और अनुभवी से मैं धर्म सुनने के लिए यहाँ आया हूँ। यह तो गृहस्थ का धर्म ही है।

अरावप्युचितम्·········नोपसंहरते द्रुमः ॥५३॥

संधि-विच्छेद—अरावप्युचितम्-अरौ+अपि-औ को आव्,-अयादि संधि, यदि ए, ऐ, ओ या औ के बाद स्वर आते हैं तो ए को अय्, ऐ को आय्, ओ को अव्, और औ को आव् हो जाता है। अरावपि+उचितम्-इ को य्-यण् संधि।

रूप—अरौ-अरि-शत्रु-शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन—

क्योंकि अतिथि में सब देवता वास करते हैं, इसीलिए अतिथि को ... गया है।

भावार्थ—अतिथिः सर्वदा आदरणीयः।

गृध्रोऽवदत्······अहिंसा परमो धर्म इत्यत्रैकमत्यम्॥

सन्धि-विच्छेद—गृध्रः+अवदत्–विसर्ग को उ=विसर्ग संधि; अ + उ=ओ गुण संधि, तत्पश्चात् अ का पूर्वरूप–पूर्वरूप संधि ए या ओ के बाद लघु अ आता है तो उसका लोप हो जाता है और उसके स्थान पर (ऽ) ऐसा चिह्न बना दिया जाता है। पक्षि–शावकाश्चात्र–पक्षि–शावकाः+च विसर्ग को स्, फिर स् को श्– व्यंजन संधि। तच्छ्रुत्वा–तत्+श्रुत्वा–त् को च्, श को छ्–व्यंजन संधि। वीतरागेणेदम्–वीतरागेण+इदम्=अ+इ=ए=गुण संधि। इत्यत्रैकमत्यम्–इत्यत्र+ ऐकमत्यम्–अ+ऐ=ऐ=वृद्धि संधि।

समास—मासरुचिः–मासे रुचि. यस्य सः=बहुव्रीहि। पक्षिशावकाः– पक्षिणः शावका इति=तत्पुरुष। वीतरागेण–वीतः रागः यस्य सः=बहुव्रीहि–तेन।

रूप—अवदत्–वद्=बोलना–क्रिया–परस्मैपद, भूतकाल, अन्य पुरुष, एक वचन–अवदत्, अवदताम्, अवदन्। ब्रवीमि–ब्रू=बोलना–क्रिया–परस्मैपद, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष–ब्रवीमि, ब्रूवः, ब्रूमः।

शब्दार्थ—मार्जारः=बिलाव। मास-रुचिः=मास का प्रेमी–शौकीन। एवं ब्रवीमि=ऐसा कहता हूँ। श्रुत्वा=सुनकर। भूमि स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति=भूमि को छूकर कानों को छूता है–तोबा-तोबा करता है। वीतरागेण=संसार से विरक्त होने वाले ने। दुष्करं=कठिन। चन्द्रायणव्रतम्=चन्द्रायण नामक व्रत। अध्यवसितम्= अनुष्ठान किया है। विवदमानानाम् धर्मशास्त्राणां=विरुद्ध विचार रखने वाले धर्मशास्त्र। अहिंसा परमो धर्मः=हिंसा न करना परम् धर्म है–इस विषय में। ऐकमत्यम्=एक मत है अर्थात् सब का एक विचार है–विरोध नहीं है।

व्याख्या—गीध बोला—बिलाव मांस का शौकीन होता है। इस वृक्ष पर पक्षियों के बच्चे रहते हैं। इस कारण मैं ऐसा कहता हूँ, अर्था तुम्हें आने को करता हूँ। गीध के वचन सुनकर बिलाव जमीन छूकर कानों का स्पर्श है अर्थात् तोबा-तोबा करता और कहता है कि मैंने धर्मशास्त्र सुनकर से विरक्त होकर–तृष्णा आदि का परित्याग कर–अति कठिन चान्द्रायण व्रत

किया है, क्यों कि परस्पर भिन्न-भिन्न निर्णय देने वाले धर्मशास्त्रों का "अहिंसा परम धर्म है"—इस बात में एक मत है।

भावार्थ—चान्द्रायणव्रत—जैसे जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है, वैसे चान्द्रायणव्रत को करने वाले एक एक ग्रास बढ़ते हैं और जैसे जैसे चन्द्रमा कृष्ण पक्ष में घटता जाता है वैसे वैसे एक ग्रास कम होता आता है। यहाँ तक कि अमावस और प्रतिपदा को चन्द्र के दर्शन न होने से व्रत करने वाले को निराहार रहना पड़ता है।

सर्व-हिंसा-निवृत्ताः··········ते नराः स्वर्ग-गामिनः ॥४७॥

समास—सर्व हिंसा-निवृत्ता—सर्वेषा प्राणिना हिंसायाः निवृत्ता इति=तत्पुरुष। सर्व-सहाः=सर्वं सहन्ते इति—तत्पुरुष। स्वर्ग-गामिनः—स्वर्गं गच्छन्ति इति=तत्पुरुष।

रूप—स्वर्ग-गामिनः—स्वर्ग-गामिन्—स्वर्ग जाने वाला—शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन—गामी, गामिनौ, गामिनः।

अन्वय—ये नराः सर्व हिंसा निवृत्ताः, ये च नराः सर्व-सहाः, ये (नराः) सर्वस्य आश्रयभूताः ते नरा. स्वर्ग-गामिनः।

शब्दार्थ—सर्व-हिंसा निवृत्ताः=सब प्रकार की हिंसा से विमुख। सर्व-सहाः=सब कुछ सहन करने वाले अर्थात् सुख-दुःख, मान-अपमान आदि के सहिष्णु। सर्वस्य आश्रयभूताः=शरण में आने वालों को आश्रय देने वाले। स्वर्ग-गामिनः=स्वर्ग जाने वाले।

व्याख्या—जो लोग सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त हो गये हैं, जो सुख-दुःख, मान-अपमान आदि को सहन कर लेते हैं, जो शरणागत की रक्षा करते हैं, वे लोग अवश्य ही स्वर्गगामी होते हैं।

योऽत्ति यस्य यदा मांसम्·····अन्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥४८॥

संधि-विच्छेद—योऽत्ति=यः+अत्ति—विसर्ग को उ=विसर्ग संधि, अ+उ=ओ-गुण संधि, तत्पश्चात् पूर्वरूपसंधि। पश्यतान्तरम्—पश्यत+अन्तरम्—अ+अ=आ—दीर्घ संधि। प्रीतिरन्यः—प्रीतिः+अन्यः=विसर्गों को रेफ (र्) विसर्ग संधि।

रूप—अत्ति=अद्=भोजन करना=क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—अत्ति, अत्तः, अदन्ति। पश्यत=दृश् (पश्य्) देखना=क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, बहुवचन=पश्य—पश्यतात्, पश्यतम्, पश्यत।

विमुच्यते—वि उपसर्ग, मुच्—क्रिया, आत्मनेपद, कर्मवाच्य, वर्तमान काल, प्र पुरुष, एकवचन—विमुच्यते, विमुच्येते, विमुच्यन्ते।

अन्वय—यः यस्य मांसं अत्ति (तदा) उभयोः अन्तरं पश्यत। एकस्य क्षणिका प्रीतिः, अन्यः प्राणैः विमुच्यते।

शब्दार्थ—अत्ति=खाता है। उभयोः=दोनों में। अन्तरम्=फर्क—भेद। पश्यत=देखिए। विमुच्यते=मुक्त हो जाता है।

व्याख्या—जो प्राणी जिस प्राणी का मांस खाता है, उन दोनों के भेद पर दृष्टि डालिये। मांस खाने वाले को क्षणमात्र की तृप्ति होती है परन्तु दूसरे प्राण ही चले जाते हैं।

श्रणु पुनः=फिर सुनिये—

स्वच्छन्द-वन-जातेन······क कुर्यात् पातकं महत् ॥४६॥

संधि-विच्छेद—दग्धोदरस्यार्थे—दग्ध+उदरस्य+अर्थे=गुण और दीर्घ संधि।

समास—स्वच्छन्द—वन—जातेन—स्वच्छन्देन वने वा वनात् जातः इति तत्पुरुष। दग्धोदरस्य—दग्धं च तद् उदरं इति दग्धोदरम्=कर्मधारय=तस्य।

रूप—प्रपूर्यते—प्र उपसर्ग, पूर्=पूरण करना—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन, प्रपूर्यते, प्रपूर्येते, प्रपूर्यन्ते। कुर्यात्=कृ= करना—क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ अन्यपुरुष, एकवचन—कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्युः।

अन्वय—(यद् उदरम्) स्वच्छन्द—वन—जातेन शाकेन अपि प्रपूर्यते। अस्य दग्धोदरस्यार्थे कः महत्, पातकं कुर्यात्।

शब्दार्थ—स्वच्छन्द—वन—जातेन=बिना जोते—बोये स्वयं उत्पन्न होने वाले। प्रपूर्यते=पूर्ण किया जाता—भर लिया जाता है। दग्ध उदरस्य अर्थे=पापी पेट के लिए। पातक कुर्यात्=पाप करे।

व्याख्या—बिना जोते और बिना बोये अर्थात् खुदरी—स्वयम् हो उत्पन्न होने वाले—शाक को खाकर जब उदर—पूर्ति हो जाती अर्थात् पेट भरा जा सकता है (तब) इस पापी पेट के लिए (हिंसा करके) महान् पातक—पाप—क्यों किया जाय, अर्थात् हिंसा रूपी महान् पातक करने को कौन तत्पर होगा अर्थात् हिंसा का ... ही होगा अन्य नही।

शब्दार्थ—एवं विश्वास्य=इस प्रकार जरद्गव को विश्वास दिलाकर। स मार्जारः=वह दीर्घकर्ण बिलाव। तरु-कोटरे स्थितः=वृक्ष की खोखल में ठहर गया—रहने लगा।

ततो दिनेषु गच्छत्सु ··· अतोऽहं ब्रवीमि-'अज्ञातकुलशीलस्य' इत्यादि।

संधि-विच्छेद—विलपद्भिरितस्ततः-विलपद्भिः + इत. + तत:=विसर्ग को रेफ(र्) विसर्ग को स-विसर्ग संधि। कोटरान्निःसृत्य=कोटरात्+निःसृत्य-त् को न्-व्यंजन संधि-यदि त् के पश्चात् न आता है तो त् को न् हो जाता है। अनेनैव+अनेन+एव=अ+ए=ऐ=वृद्धि संधि।

समास—तरु-कोटरे-तरोः कोटरे=तत्पुरुष। शोकार्तैः=शोकेन आर्ता इति= तत्पुरुष-तै.। शावकास्थानि-शावकाना अस्थीनि=तत्पुरुष।

रूप—गच्छत्सु-गच्छत्=जाता हुआ-शतृ-अत्-प्रत्ययान्त शब्द, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन-गच्छति, गच्छतोः, गच्छत्सु। विलपद्भिः-लप्-बोलना, वि उपसर्ग-विलप्=विलाप करना-क्रिया, शतृ (अत्) प्रत्यय, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन-विलपता, विलपद्भ्या, विलपद्भि.। पक्षिभि.-पक्षिन्-पक्षी-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन-पक्षिणा, पक्षिभ्या पक्षिभिः अस्थीनि-अस्थि-हड्डी-शब्द, नपुसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन अस्थि, अस्थिनी, अस्थीनि।

शब्दार्थ—दिनेषु गच्छत्सु=दिन बीतने पर। शावकान्=बच्चों को। आक्रम्य= पकड़ कर। आनीय=लाकर। प्रत्यह=प्रतिदिन। अपत्यानि=सन्तानें। शोकार्तैः= शोक से व्याकुल। विलपद्भिः=विलाप करने-रोने-भींकने वालों ने। इतस्ततः= इधर-उधर। जिज्ञासा=नष्ट हुए बच्चों का अन्वेषण। समारब्धा=प्रारम्भ किया। परिज्ञाय=जान कर। कोटरात् निःसृत्य=खोखल से निकल कर। बहिः पलायितः= बाहर भाग गया। पश्चात्=मार्जार के भाग जाने के बाद। निरूपयद्भिः पक्षिभिः अन्वेषण करनेवाले पक्षियों ने। शावक-अस्थीनि प्राप्तानि=बच्चों की हड्डियाँ प्राप्त कीं-देखीं। निश्चित्य=निश्चय करके। व्यापादितः=मार डाला।

व्याख्या—कुछ दिन बीतने पर दीर्घकर्ण बिलाव पक्षियों के बच्चे पकड़ कर खोखल में लाकर प्रतिदिन खाने लगा। जिन पक्षियों के बच्चों को खा लिया था, वे शोक से व्याकुल हो, विलाप करते हुए उन पक्षियों ने देख-भाल शुरू

थी। यह कह कर सियार कोटर से निकल कर बाहर भाग गया। तब इधर उधर ढूंढने वाले पक्षियों ने वृक्ष के कोटर में बच्चों की हड्डियों को देखा—इसी जरद्गव नामक गीध ने हमारे बच्चे खा लिये हैं—ऐसा पक्षियों ने निश्चय कर उस गीध को मार डाला। क्षुद्रबुद्धि काक कहता है इसलिये मैं ऐसा कहता हूं कि कुल शील को बिना जाने किसी को वास न देना चाहिए।

इतिआकर्ण्य·········उत्तरोत्तरं वर्धते।

इति आकर्ण्य=यह सुन कर। सम्भुक सक्रोधम् आह=क्षुद्र बुद्धि शृगाल क्रोध भर कर कहता है। मृगस्य प्रथम-दर्शन-दिने भवान् अपि अज्ञात-कुल-शील एव आसीत=मृग के प्रथम दर्शन के दिन अर्थात् प्रथम बार साक्षात्कार करने दिन आप भी अज्ञात-कुल-शील ही थे। तत् कथं भवता सह=तो क्यों आपके साथ। एतस्य स्नेहानुवृत्तिः उत्तरोत्तरं वर्धते=इसका स्नेहबन्धन दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

अयं निजः परो वेति·········वसुधैव कुटुम्बकम् ॥६०॥

संधि-विच्छेद—वसुधैव—वसुधा+एव—आ+ए=ऐ —वृद्धि संधि।

समास—उदार-चरितानाम्=उदाराणि चरितानि येषां ते तेषाम्—बहुव्रीहि।

शब्दार्थ—लघु-चेतसाम्=छोटे चित्त वालों —तुच्छ विचार वालों का।

अन्वय—अयं निजः परः वा इति लघु चेतसा गणना (अस्ति) उदार-चरितानां तु वसुधा एव कुटुम्बकम् (अस्ति)।

व्याख्या—यह अपना है, यह पराया है—यह विचार छोटे मन वाले मनुष्यों के होते हैं। जो उदार-चरित होते हैं, वे समस्त संसार को अपना कुटुम्ब ही समझते हैं।

मृगोऽब्रवीत्=मृग बोला। अनेन उत्तरोत्तरेण किम्=इस उत्तर-प्रत्युत्तर से क्या लाभ। सर्वैः एकत्र विश्रम्भालापैः=सब एक स्थान पर विश्वासपूर्वक। सुखिभिः स्थीयताम्=सुख से रहें।

श्लोक ६१—न कोई किसी का मित्र है और न कोई शत्रु। व्यवहार से मित्र शत्रु जाने जाते हैं।

काकेन उक्तम्=कौवे ने कहा। एवम् अस्तु=ऐसा ही हो।

एकदा·········सत्वरं त्रायस्व माम्

संधि-विच्छेद—वनैकदेशे—वन+एकदेशे=वृद्धि संधि । मित्रादन्यः=मित्रात्+ —त् को द्—व्यंजन संधि ।

समास—मांसासृग्लिप्तानि—मांसेन असृजा च लिप्तानि=तत्पुरुष । —निर्मिताः—स्नायुभिः निर्मिताः=तत्पुरुष ।

रूप—ब्रूते—ब्रू=बोलना—कहना—क्रिया, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य- . एकवचन ब्रूते ब्रुवाते, ब्रुवते । छिन्धि—छिद्—छेदना—काटना—क्रिया, पद, आज्ञा लोट् , मध्यम पुरुष, एकवचन—छिन्धि—छिन्तात्, छिन्तम्, छिन्त।

शब्दार्थ—नीत्वा=ले जाकर पाशो नियोजितः=जाल फैला दिया । पाशैः जाल में फँसा हुआ । त्रातुम्=रक्षा करने को— बचाने को । उत्कृत्यमानस्य= जाने पर । मांसासृग्लिप्तानि=मांस और रुधिर से लिप्त—भरी—हुई । —काट दो । सत्वर=शीघ्र । मां त्रायस्व=मेरी रक्षा करो—मुझे बचाओ ।

व्याख्या—एक बार एकान्त में क्षुद्र बुद्धि गीदड़ चित्राग हरिण से कहता मित्र ! जंगल के एक भाग में अनाज से पूर्ण एक खेत है । मैं तुझे वहाँ कर दिखा देना चाहता हूँ । ऐसा करने पर हरिण प्रतिदिन वहाँ जाकर ज खाता है । यह देख कर खेत के स्वामी ने जाल फैला दिया । मृग जब वहाँ गया तो जाल में फँस गया और सोचने लगा । मित्र के अतिरिक्त ऐसा कौन है जो मुझे यमराज के पाश के समान व्याध के इस पाश—जाल—से सकता है अर्थात् मित्र ही मुझे छुटकारा दिला सकता है—अन्य नहीं । समय क्षुद्रबुद्धि गीदड़ वहाँ आ उपस्थित हुआ और सोचने लगा—कपट ार से अब मेरी इच्छा फलीभूत हो गई, क्योंकि अब इस हरिण को काटा गा, तब मांस और रक्त से सनी हुई इसकी हड्डियाँ मुझे अवश्य ही प्राप्त , जो कि बहुत दिनों के भोजन के लिए पर्याप्त हो सकेंगी । मृग गीदड़ को हर्षित हो कहता है—मित्र ! मेरे बन्धन को काट दो और मुझे शीघ्र ओ ।

यतः=क्योंकि—

आपत्सु मित्रं जानीयात्·········व्यसनेषु च बान्धवान् ॥६२॥

रूप—आपत्सु=आपत्=आपत्ति—शब्द, स्त्रीलिंग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन—

आपदि, आपदोः, आपत्सु । जानीयात्=ज्ञा–जानना–क्रिया, ज्ञा को जा
गया है । जा–क्रिया–विधिलिङ्, परस्मैपद, अन्य पुरुष, एकवचन,
जानीयाताम्, जानीयुः ।

अन्वय—आपत्सु मित्रम्, युद्धे शूरम्, ऋणे शुचिम्, वित्ते षु चै
व्यसनेषु च बान्धवान् जानीयात् ।

शब्दार्थ—ऋणे=कर्ज के समय । शुचिम्=अकपट जन को । ज
जानना चाहिए–परीक्षा करनी चाहिए ।

व्याख्या—आपत्ति में मित्र की, युद्ध में शूरवीर की, ऋण में सत्य
गरीबी में पत्नी की और दुःख पड़ने पर बन्धुओं की परीक्षा होती है ।

जम्बुको मुहुर्मुहुः पाशं विलोक्य ''' अवधीरित-सुहृद्-वाक्य फल

संधि-विच्छेद—इत्युक्त्वा=इति+उक्त्वा=इ को य्=यण् संधि । अव
स्तत=अवलोक्य+इतस्ततः=अ+इ=ए–गुण संधि । दृष्ट्वोवाच=दृष्ट्वा+
गुण सधि ।

समास—स्नायु–निर्मिताः=स्नायुभिः निर्मिता इति=तत्पुरुष । अव
सुहृद्–वाक्यम्–अवधीरितं सुहृदः वाक्यं इति तत्पुरुष–तत्य ।

रूप—अचिन्तयत्–चिन्त्–सोचना–क्रिया, भूतकाल, अन्य पुरुष, ए
अचिन्तयत्, अचिन्तयताम्, अचिन्तयन् । सखे–सखि–मित्र–शब्द,
विभक्ति, एकवचन–हे सखे, हे सखायौ, हे सखायः । स्पृशामि–स्पृश=छूना
परस्मैपद, वर्त्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन–स्पृशामि, स्पृशावः, स्पृ
मन्तव्यम=मन् मानना–जानना–क्रिया–से तव्य प्रत्यय । वक्तव्यम्–वच्=
क्रिया से तव्य प्रत्यय । कर्त्तव्यम्–कृ=करना–क्रिया से तव्य प्रत्यय । आत्म
आत्मन्–अपना–शब्द, पुल्लिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन–आ
आत्मानौ, आत्मनः । अन्विष्यन्–इष्–चाहना–अनु उपसर्ग, अनु इष्–
क्रिया, शतृ प्रत्यय, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति एकवचन, अन्विष्यन्, अन्वि
अन्विष्यन्तः । उवाच–ब्रू–कहना–क्रिया, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, ए
ब्रू को वच् आदेश हो जाता है । उवाच, ऊचतुः, ऊचुः ।

शब्दार्थ—मुहुः मुहुः=बार बार । पाशं विलोक्य=जाल को देख कर
बन्धः दारुणः इह=यह पाश का बन्धन तो मजबूत है । एते पाशाः= अ

पाश। स्नायु-निर्मिताः=स्नायु-नसों से बने हैं। भट्टारकवारे=रविवार के दिन। दन्तैः स्पृशामि=दाँतों से स्पर्श करूँ अर्थात् काटूँ। अन्यथा न मन्तव्यम्=दूसरी बात न मानना-न समझना। वक्तव्यम्=कहा है। कर्त्तव्यम्=करने योग्य। आत्मानम् आच्छाद्य स्थितः=अपने आपको छिपा कर बैठ गया—अर्थात् गीदड़ छिप गया। प्रदोषकाले=संध्या के समय। इतः ततः अन्विष्यन्=इधर-उधर ढूँढता हुआ। तथाविधं दृष्ट्वा=जाल में फँसा देख कर। अवधीरित-सुहृद्-वाक्यम्=मित्र के वचनों का अनादर करने-मित्र की बात न मानने का। एतत् फलम्=यह फल-परिणाम है।

व्याख्या—क्षुद्र-बुद्धि गीदड़ बार बार जाल को देख कर सोचने लगा—ये बन्धन तो मजबूत हैं। फिर कहता है—हे मित्र! यह जाल स्नायु-नसों से बनाया हुआ है। आज रविवार के दिन मैं दाँतों से इनका स्पर्श कैसे करूँ, क्योंकि रविवार के दिन मांस खाना निषिद्ध है। हे मित्र मृग! यदि तुम अपने मन में विपरीत-अनुचित-न समझो तो प्रातःकाल क्षेत्र के स्वामी के आगमन से पहले ही जो तुम कहोगे, मैं वह कर दूँगा। यह कह कर क्षुद्रबुद्धि गीदड़ छिप गया। तत्पश्चात् काक सायंकाल को मृग को न आया देख कर इधर-उधर खोजता हुआ वहाँ आ पहुँचा और मृग को जाल में फँसा देख कर बोला—हे मित्र! यह क्या, अर्थात् यह बन्धन कैसे हुआ! मृग बोला—मित्र के वचनों के अनादर का ही यह फल है—मित्र की बात न मानने का ही यह परिणाम है इसलिए मैं जाल में फँस गया हूँ।

तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा है—

सुहृदां हितकामानां··········स नरः शत्रुनन्दनः।

समास—हित-कामानाम्=हितं कामयन्ते इति हितकामाः-तत्पुरुष-तेषां। शत्रुनन्दनः—नन्दयति इति नन्दनः, शत्रूणां नन्दन इति-शत्रुनन्दनः-तत्पुरुष।

रूप—सुहृदाम्-सुहृत्-मित्र शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन-सुहृदः, सुहृदोः, सुहृदाम्। शृणोति-श्रु-सुनना-क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, एकवचन-शृणोति, शृणुतः, शृण्वन्ति।

अन्वय—यः हित-कामानां सुहृदां हितभाषितं न शृणोति। तस्य विपत् सन्निहिता (अस्ति) स नरः शत्रुनन्दनः (भवति)।

शब्दार्थ—हितकामानाम=हित की कामना करने वाले–हितैषी। श्रे मलाई की बात। विपद् सन्निहिता=विपत्ति समीप है। शत्रु-नन्दनः आनन्द देने वाला।

व्याख्या—जो अपने हितकारी मित्रों के वचन नहीं मानता है विपत्तियां शीघ्र ही आ घेरती हैं और वह शत्रु के मन को प्रसन्न क होता है। क्योंकि उसे आपत्ति में फँसा देख कर शत्रु लोग प्रसन्न होते हैं।

शब्दार्थ—काको ब्रूते=कौआ कहता है। स वंचकः=वह ठग। क्व कहाँ है। मृगेण उक्तम्=मृग ने कहा। मन्मामार्थी=मेरे मांस का अर्थि अत्र एव तिष्ठति=यहीं स्थित है। काको ब्रूते=कौआ कहता है। मया पूर्व उक्तम्=मैंने तो पहले ही कहा था। ततः काकः दीर्घं निःश्वस्य=तत्पश्चात् गहरी सांस लेकर। अरे वंचक=रे ठग। किं त्वया पाप-कर्मणा कृतम्= करने वाले तू ने यह क्या किया।

यतः क्योंकि—

संलापितानां मधुरैः वचोभिः ···किमर्थिनां वंचयितव्यमस्ति॥

समास—मिथ्याः च ते उपचाराः=कर्मधारय–तै·। वशीकृतानाम् शिनः वशिनः कृताः इति तेषाम्।

रूप—वचोभिः–वचस्–वचन–शब्द, नपुंसकलिंग, तृतीया विभक्ति, बचन=वचसा, वचोभ्यां, वचोभिः। आशावताम्–आशावत्–आशावान्– पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन, आशावतः, आशावतोः, आशावताम्।

अन्वय—लोके मधुरैः वचोभिः संलापितानां मिथ्योपचारैः च वशी श्रद्दधतां आशावतां अर्थिनां किं वंचयितव्यम् अस्ति।

शब्दार्थ—मधुरैः वचोभिः=मीठे वचनों से। संलापितानाम्=संला बात-चीत किए हुए, अर्थात् प्रलोभन में–लालच में–फँसाये हुए। मिथ्योप च वशीकृतानाम्=कपट-पूर्ण व्यवहार से वश में किये हुए। श्रद्दधत=श्र विश्वास करने वाले। आशावताम् अर्थिनाम्=अपने मनोरथ की पूर्ति की आ रखने वालों को। किं वंचयितव्यम् अस्ति=ठगना क्या बड़ी बात है अर्थात् कु नहीं।

व्याख्या—संसार में मधुर वचनों द्वारा लालच के जाल में फँसे हुए

कपट-पूर्ण व्यवहार से अपने वश में किये हुए, श्रद्धा और विश्वास रखने वाले तथा अपने मनोरथ की पूर्ति की इच्छा करने वालों को ठग लेना–अपने जाल में फाँस लेना–क्या बड़ी बात है, अर्थात् कोई बड़ी बात नही, किन्तु यह तो बाँये हाथ का खेल है।

दुर्जनेन समं वैरं······शीतः कृष्णायते करम् ।६५॥

अन्वय—दुर्जनेन समं वैरं सख्यं च अपि न कारयेत् । उष्णः अङ्गारः करं दहति शीतः च करं कृष्णायते ।

शब्दार्थ—सख्यम्=मित्रता । न कारयेत=न करनी चाहिये । करं कृष्णायते=हाथ को काला करता है ।

व्याख्या—दुष्ट पुरुष के साथ वैर अथवा मित्रता दोनों ही नहीं करनी चाहिए । क्योंकि वह दोनों ही स्थिति में हानि पहुँचाता है । जैसे अङ्गार छूने से हाथ को जलाता है और ठंडा हो जाने पर छूने से हाथ को काला कर देता है, इसी प्रकार दोनों स्थिति में ही दुर्जन भयंकर होता है ।

अथवा—स्थितिः इयं दुर्जनानाम्=दुर्जनों का यह स्वभाव ही है ।

प्राक्पादयोः पतति खादति···सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति॥६६॥

संधि-विच्छेद—प्रविशत्यशंक.–प्रविशति+अशंकः=इ को यण् संधि ।

रूप—करोति–कृ=करना–क्रिया, परस्मैपद वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एक-वचन–करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति ।

अन्वय—मशकः प्राक्पादयोः पतति (ततः) पृष्ठमांसं खादति । कर्णे किम् अपि शनैः विचित्रं कलं रौति । अशंकः छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशति (इत्थं) मशकः खलस्य सर्वं चरितं करोति ।

शब्दार्थ—मशकः=मच्छर । प्राक् पादयोः पतति=पहले चरणों में गिरता है । पृष्ठ-मांस खादति=पीठ में काटता है । रौति=शब्द करता है । छिद्रं=सूराख, बुराई । प्रविशति=प्रवेश करता है ।

नोट—इस श्लोक का अर्थ मच्छर और दुष्ट जन (दोनों) पक्षों में लिखा जाता है ।

व्याख्या—(मच्छर के पक्ष में)—मच्छर पहले पैरों पर गिरता है, फिर पीठ में काटता है और फिर कान के पास आकर भन-भन शब्द करता है । छिद्र–

शब्दार्थ—हितकामानाम्=हित की कामना करने वाले—हितैषी। हितमाशिव मलाई की बात। विपत् सन्निहिता=विपत्ति समीप है। शत्रु-नन्दनः=शत्रु को आनन्द देने वाला।

व्याख्या—जो अपने हितकारी मित्रों के वचन नहीं मानता है, उसको विपत्तियाँ शीघ्र ही आ घेरती हैं और वह शत्रु के मन को प्रसन्न करने वाला होता है। क्योंकि उसे आपत्ति में फँसा देख कर शत्रु लोग प्रसन्न होते हैं।

शब्दार्थ—काको ब्रूते=कौआ कहता है। स वंचकः=वह ठग। क्व आस्ते= कहाँ है? मृगेण उक्तम्=मृग ने कहा। मन्मांसार्थी=मेरे मांस का अभिलाषी। अत्र एव तिष्ठति=यहीं स्थित है। काको ब्रूते=कौआ कहता है। मया पूर्वम् एव उक्तम्=मैंने तो पहले ही कहा था। ततः काकः दीर्घं निःश्वस्य=तत्पश्चात् काक गहरी साँस लेकर। अरे वंचक=रे ठग। किं त्वया पाप-कर्मणा कृतम्=पाप कर्म करने वाले तू ने यह क्या किया।

यतः क्योंकि—

संलापितानां मधुरैः वचोभिः'''किमर्थिनां वंचयितव्यमस्ति ॥६४॥

समास—मिथ्याः च ते उपचाराः=कर्मधारय-तैः। वशीकृतानाम्-अवशिनः वशिनः कृताः इति तेषाम्।

रूप—वचोभिः-वचस्-वचन-शब्द, नपुंसकलिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन=वचसा, वचोभ्यां, वचोभिः। आशावताम्-आशावत-आशावान्-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन, आशावतः, आशावतोः, आशावताम्।

अन्वय—लोके मधुरैः वचोभिः संलापितानां मिथ्योपचारैः च वशीकृतानां श्रद्धवतां आशावतां अर्थिनां किं वंचयितव्यम् अस्ति।

शब्दार्थ—मधुरैः वचोभिः=मीठे वचनों से। संलापितानाम्=संलापित-बात-चीत किए हुए, अर्थात् प्रलोभन में-लालच में-फँसाये हुए। मिथ्योपचारैः च वशीकृतानाम्=कपट-पूर्ण व्यवहार से वश में किये हुए। श्रद्धतां=श्रद्धा-विश्वास करने वाले। आशावताम् अर्थिनाम्=अपने मनोरथ की पूर्ति की आशा रखने वालों को। किं वंचयितव्यम् अस्ति=ठगना क्या बड़ी बात है अर्थात् कुछ नहीं।

व्याख्या—संसार में मधुर वचनों द्वारा लालच के जाल में फँसे हुए,

सुराग-अन्दर जाने का स्थान-देग पर सहसा अन्दर प्रवेश करता है और काटता रहता-लोहू पीता रहता है। इस प्रकार मच्छर दुष्ट पुरुष के समान ही सब कार्य करता है।

(दुष्ट के पक्ष में)-दुष्ट-जन विश्वास उत्पन्न करने को आवश्यकतानुसार पैरों में गिरता-चरण छूता है, किन्तु पीठ पीछे बुराइयाँ करता रहता है। मन्त्रणा-सलाह-करने को कान के पास मुँह ले जाकर बात चीत करता है। (मित्र की) बुराई देखकर सहसा अन्दर प्रवेश करता-अन्तरंग मित्र बन कर डराता-धमकाता है। इस प्रकार दुष्ट जन और मशक के कार्यों में साम्य दिखाई देता है।

अन्यच्च=और भी।

दुर्जनः प्रियवादी च······हृदि हालाहलं विषम् ॥६७॥

संधि विच्छेद—नैतद्-न+एतद्=वृद्धि संधि।

समास—प्रियवादी-प्रियं वदति इति प्रियवादी-तत्पुरुष। विश्वास-कारणम्=विश्वासस्य कारणम्=षष्ठी तत्पुरुष। जिह्वाग्रे=जिह्वाया अग्रे=तत्पुरुष।

रूप—प्रियवादी-प्रियवादिन=प्रिय बोलने वाला- इन्नन्त शब्द-पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-प्रियवादी, प्रियवादिनौ, प्रियवादिनः।

अन्वय—दुर्जनः प्रियवादी च एतद् विश्वास कारणं न (तस्य) जिह्वा अग्रे मधु तिष्ठति, हृदये तु हालाहलं विष (भवति)

शब्दार्थ—प्रियवादी=प्रियवक्ता। एतद्=मधुर वचन। विश्वास कारणं न=विश्वास का कारण नहीं हो सकता है। जिह्वा अग्रे=जीभ के आगे। मधु=मधुरता। हालाहलं विषम=कपट रूपी भयकर जहर।

व्याख्या—दुर्जन मधुर वचन बोलता है, किन्तु मधुर वचन से ही उसका विश्वास नहीं करना चाहिये। उसकी जीभ के आगे के भाग में अर्थात् जिह्वा में तो मधुरता रहती है, परन्तु हृदय में कपटरूपी विष भरा होता है, अतएव दुर्जन का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

अथ प्रभाते क्षेत्रपतिः···क्षिप्तेन लगुडेन शृगालो हतः पंचत्वं च गतः।

[illegible]—काकेनोक्तम्-काकेन+उक्तम्। वातेनोदरम्-वातेन+उदरम्=

समास—लगुडहस्तः-लगुडः हस्ते यस्य सः=बहुव्रीहि। हर्षोत्फुल्ललोचनेन हर्षेण उत्फुल्ले लोचने यस्य सः=बहुव्रीहि तेन।

रूप—अवलोकितः-अव उपसर्ग-लोक् धातु से त (क्त) प्रत्यय। आत्मानम्-आत्मन्-अपना या आत्मा-शब्द, पुल्लिंग, द्वितीया विभक्ति एकवचन-आत्मानं, आत्मानौ आत्मनः। बभूव-भू-होना-क्रिया, परोक्ष भूत काल, परस्मैपद, अन्य पुरुष, एकवचन-बभूव, बभूवतुः, बभूवुः। हतः-हन्-मार डालना-क्रिया, तत्पुरुष) प्रत्यय।

शब्दार्थ—लगुड-हस्त=लट्ठ लिये हुए। आगच्छन्=आता हुआ। संदर्श्य=दिखा कर। स्तब्धीकृत्य=निश्चल कर। हर्षोत्फुल्ल-लोचनेन=हर्ष से खिल गये हैं नेत्र जिसके-अतिशय प्रसन्न मन वाले ने। पलायित.=भाग गया। क्षिप्तेन=फेंकी हुई से।

व्याख्या—प्रात:काल लट्ठ लिए खेत के स्वामी को उस ओर आते हुए काक ने देखा। उसको देख काक बोला—मित्र हरिण ! तू स्वयं को मुर्दे के समान दिखाकर वायु से पेट फुला कर, पैरों को निश्चल कर पड़ा रह। जब मैं शब्द करूँ तब तुम उठ कर शीघ्र भाग जाना। काक के कहने से मृग ने वैसा ही किया। अतिशय हर्षित, खेत के स्वामी ने मृग को उस दशा-मृत अवस्था-में देखा। ओह, तुम तो स्वयं ही मर गये हो, यह कह कर मृग को बन्धन से मुक्त कर जाल समेटने में लग गया। तब काक ने शब्द किया। काक का शब्द सुन कर हरिण शीघ्र ही उठ कर भाग निकला। हरिण को लक्ष्य कर खेत के मालिक द्वारा मारने के लिए फेंके हुए लगुड़-लट्ठ-से झाड़ी में छिपा गीदड़ मारा गया।

तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा गया है।

त्रिभिःवर्षैः·········फलमश्नुते ॥६८॥

अन्वय—त्रिभिः दिनैः त्रिभिः पक्षैः त्रिभिः मासैः अत्युत्कटैः पाप पुण्यैः इह एव फलम् अश्नुते।

व्याख्या—प्राणी तीन दिन, तीन पक्ष, तीन मास और तीन वर्ष में अ तीव्र पापों और पुण्यों का फल यहीं प्राप्त कर लेता है अर्थात् भले-बुरे कार्यों परिणाम यहीं भोगता है।

अतोऽहं ब्रवीमि=हिरण्यक लघुपतनक काक से कहता है कि इसीलिए मैं कहता हूँ। भक्ष्य-भक्षकयोः प्रीतिः=भोजन और भक्षक का स्नेह विपत्ति का कारण हुआ करता है। इति श्रुत्वा=यह सुन कर। लघुपतनकः काकः पुन आह=लघुपतनक नामक काक फिर कहता है।

भक्षितेनापि भवतः··········चित्रग्रीव इवानघ ॥६६॥

रूप—जीवति–जीवत्–जीवित रहता हुआ शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन–जीवति, जीवतोः, जीवत्सु।

अन्वय—हे अनघ! भवतः भक्षितेन अपि मम पुष्कलः आहारः न। त्वयि जीवति (सति) चित्रग्रीव इव अहं जीवामि।

शब्दार्थ—भक्षितेन=भोजन करने से। पुष्कलः आहारः=अधिक भोजन। अनघ=निष्पाप।

व्याख्या—काक हिरण्यक चूहे को कहता है–आप को भोजन बनाने–खा जाने–पर भी मेरा पुष्कल आहार–अधिक भोजन–नहीं हो सकता, क्योंकि तुम्हारा शरीर छोटा है। हे निष्पाप! तुम्हारे जीवित रहने पर ही मैं कपोतराज चित्रग्रीव के समान जीवित हूँ अर्थात् जैसे कपोतराज से तुम्हारी मित्रता है, वैसे ही मुझ से भी मित्रता कीजिए।

तिरश्चामपि विश्वासः··········स्वभावो न निवर्तते ॥७०॥

समास—पुण्यैक=कर्मणाम्–पुण्यम् एव एकं कर्म येषां ते–बहुव्रीहि–तेषाम्

रूप—निवर्तते–वृत्=होना–क्रिया, नि उपसर्ग–वृत्=लौटना–क्रिया, आत्मने पद, वर्तमान काल; अन्य पुरुष, एकवचन–निवर्तते, निवर्तेते, निवर्तन्ते।

अन्वय—पुण्यैक-कर्मणां तिरश्चाम् अपि विश्वासः दृष्टः। हि सतां साधु-शीलत्वात् स्वभावः न निवर्तते।

शब्दार्थ—पुण्यैक-कर्मणाम्=केवल पुण्य कार्यों को करने वाले। तिरश्चाम् अपि=पक्षियों का भी। विश्वासः दृष्टः=विश्वास करना चाहिए। साधु-शीलत्वात्=साधु स्वभाव होने से। न निवर्तते=नहीं बदलता है।

व्याख्या—केवल पुण्य कार्य करने वाले, टेढ़ी चाल चलने वाले अर्थात् पक्षि वर्ग का भी विश्वास करना चाहिए क्योंकि सज्जनों का स्वभाव सरल होता है। अतएव सज्जनों के स्वभाव में कभी परिवर्तन नहीं होता है

शब्दार्थ—हिरण्यको ब्रूते=हिरण्यक कहता है । त्वं चपलः=तू चंचल
चपलेन सह स्नेहः सर्वथा न कर्तव्यः=चंचल स्वभाव वालों के साथ किसी
से भी स्नेह नहीं करना चाहिए ।

तथा च उक्तम्=वैसा ही कहा है—

मार्जारो महिषो मेषः······विश्वासस्तत्र नोचितः ।।७१।।

संधि विच्छेद—प्रभवन्त्येते-प्रभवन्ति+एते-इ को य्=यण् संधि ।

अन्वय—मार्जारः, महिषः, मेषः, काकः तथा कापुरुषः एते विश्व
प्रभवन्ति तत्र विश्वासः न उचितः ।

शब्दार्थ—मार्जारः=बिलाव । महिषः=भैंसा । मेषः=भेड़ा । कापु
कायर आदमी । प्रभवन्ति=समर्थ होते हैं ।

व्याख्या—बिलाव, भैंसा, मेढ़ा-नर भेड़, कौआ और कायर पुरुष-ये
विश्वास करने से ही अहित करने में समर्थ होते हैं । अतः इनका विश्वास
नहीं करना चाहिए ।

किं च अन्यत्=और क्या । भवान् अस्माकं शत्रुपक्षः=आप हमारे श
के हैं अर्थात् काक चूहे का दुश्मन होता है । शत्रुणा सधिः नैव करणीयः=श
साथ संधि नहीं करनी चाहिए ।

एतत् उक्तं च=यह कहा गया है ।

शत्रुणा न हि सन्दध्यात्······शमयत्येव पावकम् ।।७२।।

संधि-विच्छेद—शमयत्येव-शमयति+एव-इ को य्=यण् संधि ।

अन्वय—सुश्लिष्टेन अपि संधिना शत्रुणा न हि सन्दध्यात् । सुतप्तम
पानीयं पावकं शमयति एव ।

शब्दार्थ—सुश्लिष्टेन अपि सन्धिना=सुदृढ सन्धि करने पर भी । न
ध्यात्=संधि नहीं करनी चाहिए । सुतप्तम=खूब खौला हुआ । पावकं=अग्नि
शमयति=बुझा देता है ।

व्याख्या—शत्रु यदि दृढ़ संधि कर ले तो भी उसका विश्वास नहीं
चाहिए, क्योंकि खूब खौला हुआ जल भी अग्नि को बुझा ही देता है

महताप्यर्थसारेण······तदन्तं तस्य जीवनम् ॥५३॥

अन्वय—यः महता अपि अर्थसारेण शत्रुषु विश्वसिति, विरक्तासु भा-र्यासु च विश्वसिति तस्य जीवनं तदन्तं (भवति)

शब्दार्थ—अर्थ सारेण=उत्तम प्रयोजन। विश्वसिति=विश्वास करता विरक्तासु=स्वामी से विरक्त रहने वाली–अन्य किसी से अनुराग करने वाली।

व्याख्या—जो पुरुष किसी महान् प्रयोजन के वशीभूत होकर शत्रु के प्र विश्वास कर लेता है तथा स्वामी से विरक्त–स्नेह-शून्य होकर–अन्य के प्र अनुराग करने वाली–स्नेह शून्य पत्नी का विश्वास कर लेता है, तो विश्व के कारण ही उसके प्राणों का अन्त हो जाता है, अर्थात् वह अपने प्राणों से ह धो बैठता है।

शब्दार्थ—लघुपतनको ब्रूते=लघुपतनक कहता है। मया सर्वं श्रुतम्-मैंने सब सुना। तथापि च मम एतावान् संकल्पः=तथापि मैंने यह संकल्प क लिया है। त्वया सह सौहार्दम् अवश्यं करणीयम्=तेरे साथ मित्रता अवश्य कर चाहिए। नो चेत् अनाहारेण=नहीं तो भोजन न करके–भूख हड़ताल करके आत्मानं तव द्वारि व्यापादयिष्यामि=स्वयं को तेरे द्वार पर ही नष्ट कर दूँगा–म जाऊँगा। तथा हि=उसी प्रकार।

मृद्-घटवत् सुखभेद्यः······दुर्भेदश्चाशु सन्धेयः ॥५४॥

समास—सुखभेद्यः=सुखेन भेद्यः=तृतीया तत्पुरुष।

अन्वय—दुर्जनः मृद्-घटवत् सुखभेद्य. दु.सन्धान' च भवति। सुजनः तु कनक-घट-वत् दुर्भेद्यः च आशु सन्धेय. (भवति)

शब्दार्थ—मृद्-घटवत्=मिट्टी से बने घड़े के समान। सुख-भेद्यः=सुगमता से टूटने योग्य। दुःसन्धानः=जोड़ने के अयोग्य। दुर्भेद्यः=कठिनाई से टूटने वाला। *आशु सन्धेयः=शीघ्र जुड़ने वाला।*

व्याख्या—दुष्ट पुरुष मिट्टी के बने घड़े के समान सरलता से तोड़ा जा सकता है और फिर जोड़ा नहीं जा सकता अर्थात् दुर्जन शीघ्र ही मैत्री समाप्त कर सकता है और फिर मैत्री-निर्वाह नहीं कर सकता है। परन्तु सज्जन सुवर्ण के घड़े के समान कठिनाई से भेदन करने के योग्य होता है और सरलता से जोड़ा जा सकता है—यही दुर्जन और सज्जन मित्रों के चिह्न हैं।

द्रवत्वात् सर्वलोहानाम्····· संगतं दर्शनात् सताम् ॥७५॥

सन्धि-विच्छेद—भयाल्लोभाच्च–भयात्+लोभात्+च–त् के बाद यदि ल आता है तो त् को ल् हो जाता है, और यदि त् के बाद च आता है, तो त् को च हो जाता है—व्यंजन संधि।

अन्वय—सर्व-लोहानां द्रवत्वात्, मृग-पक्षिणाम् निमित्तात्, मूर्खाणां भयात् च लोभात्, सतां दर्शनात् सगतं भवति।

शब्दार्थ—द्रवत्वात्=द्रवीभाव के कारण। निमित्तात्=निमित्त से—खेतों में अनाज खाने से। सताम्=सज्जनों का। दर्शनात्=परस्पर देखने मात्र से। संगतं (भवति)=मेल हो जाता है।

व्याख्या—सोना-चाँदी आदि धातुओं का द्रवीभूत होने से मेल हो जाता है। पशु-पक्षियों का खेत में एकत्र अनाज खाने से, मूर्खों का भय और लोभ से तथा सज्जनों का परस्पर दर्शनमात्र से ही मेल-जोल हो जाता है।

शब्दार्थ—अन्यच्च एतत् ज्ञात्वा=और यही जान कर। सतां संगतम् इष्यते=सज्जनों की संगति अभिलाषित होती है।

यतः=क्योंकि—

नारिकेल-समाकारा·········बहिरेव मनोहराः ॥७६॥

अन्वय—सुहृज्जनाःनारिकेल=समाकाराः दृश्यन्ते। अन्ये बदरिकाकारा बहिः एव मनोहराः (भवन्ति)।

व्याख्या—सज्जन नारियल के समान बाहर से कठोर परन्तु अन्दर से कोमल होते हैं। दुष्ट पुरुष बाहर से बेर के समान कोमल परन्तु अन्दर से कठोर अर्थात् कपटभाव युक्त होते हैं।

स्नेहच्छेदेऽपि·········अनुबध्नन्ति तन्तवः ॥७७॥

रूप—आयान्ति—या—जाना, आ उपसर्ग आ या=आना-क्रिया, परस्मैपद वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन आयाति, आयातः, आयान्ति। अनुबध्नन्ति—अनुबध्=बाँधना-किया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन—अनुबध्नाति, अनुबध्नीतः, अनुबध्नन्ति।

अन्वय—साधूनां स्नेहच्छेदेऽपि गुणा विक्रियां न आयान्ति। हि मृणालानां भंगेऽपि तन्तवः अनुबध्नन्ति।

शब्दार्थ—स्नेहच्छेदेऽपि=स्नेह भंग होने पर भी। गुणाः=दया, परोपकार आदि गुण। विक्रियां=विकार को। मृणालानां=कमल के नाल के। तन्तवः=उसके अन्दर के अति सूक्ष्म तन्तु–सूत–रेशे। अनुबध्नन्ति=जुड़े रहते हैं—अलग नहीं होते।

व्याख्या—साधुजनों का स्नेह नष्ट हो जाने पर भी उनके गुण सदा ही गुण के रूप में रहते हैं, जिस प्रकार कि कमल-नाल के टूट जाने पर भी उसके तन्तु–रेशे जुड़े रहते हैं।

शब्दार्थ—अन्यत् च शृणु=और भी सुनिये—

शुचित्वं त्यागिता शौर्यं·········सत्यता च सुहृद्–गुणाः ॥७८॥

समास—सुख–दुःखयोः–सुखं च दुःखं च–द्वन्द्व–तयोः।

अन्वय—शुचित्वं त्यागिता, शौर्यं, सुख–दुःखयोः सामान्य, दाक्षिण्यम् अनुरक्तिः सत्यता च सुहृद्–गुणाः सन्ति।

शब्दार्थ—शुचित्वं=पवित्रता। सुख–दुःखयोः सामान्यम्=सुख–दुख में समानता। दाक्षिण्यम्–उदारता और सरलता। अनुरक्ति=अनुराग। सुहृद्–गुणाः मित्र के गुण।

व्याख्या—पवित्रता, दानशीलता, शूरवीरता, सुख–दुःख में समानता, उदारता, अनुराग और सचाई—ये सब मित्र के गुण हैं।

शब्दार्थ—एतैः गुणैः उपेतः=इन गुणों से युक्त। भवत् अन्य=आपके अतिरिक्त। मया कः सुहृत् प्राप्तव्यः=मुझे कौन मित्र मिलेगा। इत्यादि वचनम् आकर्ण्य=इत्यादि वचन लघुपतनक के सुनकर। हिरण्यकः बहिः निःसृत्य=हिरण्यक बिल से बाहर आकर। आह=कहता है। अहं भवता अनेन वचनेन आप्यायितः=आपके इस अमृत रूपी वचन से मैं सन्तुष्ट–प्रसन्न हो गया हूँ।

तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा है—

घर्मार्त्तं न तथा सुशीतलजलैः···आकृष्टिमंत्रोपम् ॥७९॥

समास—सुशीतल-जलैः=सुशीतलानि च तानि जलानि=कर्मधारय–तैः। श्रीखण्डविलेपनम्=श्रीखण्डस्य विलेपनम्–तत्पुरुष। आकृष्टि-मन्त्रोपमम्=आकृष्टौ यः मन्त्रः स एव उपमा यस्य तत्–बहुव्रीहि।

रूप—चेतसः—चेतस्=चित्त-शब्द, नपुंसकलिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन—चेतसः, चेतसोः, चेतसाम्।

अन्वय—सद्युक्त्या परिष्कृतं सुकृतिनाम् आकृष्टि-मन्त्रोपमं च सज्जन-भाषितं यथा चेतसः प्रीत्यै प्रायः भवति, तथा घर्मार्तं सुशीतल जलैः स्नानं न, मुक्तावली न, प्रत्यंगमर्पितं श्रीखण्डविलेपनं च न सुखयति।

शब्दार्थ—सद्युक्त्या=सुन्दर नीति से पूर्ण युक्तियों से। परिष्कृतम्=स्पष्ट अर्थ से पूर्ण। सुकृतिनाम् आकृष्टिमन्त्रोपमम्=उत्तम कार्य करने वाले को वशीकरण मन्त्र के समान। यथा चेतसः प्रीत्यै भवति—जिस प्रकार मन को हर्ष प्रदान करता है। तथा=उस प्रकार। घर्मार्तम्=धूप से थके को। मुक्तावली=मोतियों की माला। प्रत्यंगम्=प्रत्येक अङ्ग में। अर्पितम्=लेप किया हुआ।

व्याख्या—सुन्दर नीतिपूर्ण युक्तियों से स्पष्ट अर्थ को प्रकट करने वाला, वशीकरण मन्त्र के समान प्रभावशाली, मित्र का वचन इतना अधिक मन को प्रसन्न करता है जितना कि गर्मी से तप्त पुरुष को शीतल जल से स्नान नहीं कर सकता और गले में पहनी हुई मोतियों की माला तथा प्रत्येक अंग में चन्दन का लेप भी ऐसा आनन्द तथा शान्ति प्रदान नहीं कर सकते, जिस प्रकार कि मित्र का वचन।

भावार्थ—केन रचितं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्।

'मित्र' यह-दो अक्षर का रत्न किसने बनाया है!

रहस्यभेदो याच्ञा च··········चलचित्तस्य दूषणम् ॥८८॥

समास—रहस्यभेदः—रहस्यस्य भेदः=तत्पुरुष,। चलचित्तता—चलम् चित्तं तस्य भावः=चलचित्तता।

अन्वय—रहस्यभेदः, याच्ञा, नैष्ठुर्यं, चलचित्तता, क्रोधः, निःसत्यता द्यूतं-एतत् मित्रस्य दूषणम्।

शब्दार्थ—रहस्यभेदः=रहस्य खोल देना—गुप्त बात प्रकट कर देना। नैष्ठुर्यम्=कठोरता—निर्दयता। चलचित्तता=चित्त की चंचलता। द्यूतम्—जुआ खेलना। दूषणम्=दूषण।

व्याख्या—मित्र की गुप्त बातों को प्रकट कर देना, मित्र से धन माँगना,

क्रूरता–निर्दयता, चित्त का चंचल होना, क्रोध, असत्यभाषण और जुआ खेलना–ये मित्र के दूषण–दोष हैं।

शब्दार्थ—तद्भवतः अभिमतम् एव भवतु=तो तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण हो इति उक्त्वा हिरण्यकः=यह कह कर हिरण्यक। मैत्र्यं विधाय=लघुपतनक काक साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर। भोजन–विशेषैः=विशेष प्रकार के भोजनों लघुपतनक को संतुष्ट कर। विवरं प्रविष्टः=विल में चला गया। वायसः अपि स्वस्थानं गतः=काक भी अपने स्थान को चला गया।

ततः प्रभृति=उस दिन से। प्रत्यहं=प्रति दिन। तयो=हिरण्यक और लघुपतनक का। अन्योन्य–आहार–प्रदानेन=एक दूसरे को भोजन देने। कुशलप्रश्नै विश्रम्भालापैः च=कुशलप्रश्नों और विश्वासपूर्वक बातचीत से। काल अतिवर्तते=समय व्यतीत होता है।

शब्दार्थ—एकदा=एक बार। लघुपतनकः हिरण्यकम् आह=लघुपतनक काक हिरण्यक चूहे से कहता है। सखे! कष्टर–लभ्य–आहारम् इद स्थानम्=इस स्थान पर भोजन अति कठिनाई से प्राप्त होता है। एतत् परित्यज्य=इसको त्याग कर। स्थानान्तरं गन्तुम् इच्छामि=अन्य स्थान पर जाना चाहता हूँ।

हिरण्यको ब्रूते मित्र! क्व गन्तव्यम्=हिरण्यक कहता है मित्र कहाँ चलना चाहिये।

तथा च उक्तम्=जैसा कहा है—

स्थानभ्रष्टाः न शोभन्ते ...... स्वस्थान न परित्यजेत् ॥८१॥

रूप—शोभन्ते–शुभ–शोभ–शोभित होना–क्रिया,–आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन–शोभते, शोभेते, शोभन्ते। मतिमान्—मतिमत्=बुद्धिमान्–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–मतिमान्, मतिमन्तौ, मतिमन्तः। परित्यजेत्–परि उपसर्ग, त्यज्–त्यागना–क्रिया परस्मैपद, विधि लिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन–परित्यजेत्, परित्यजेताम्, परित्यजेयुः।

समास—स्थान–भ्रष्टाः–स्थानात् भ्रष्टा इति=तत्पुरुष।

अन्वय—दन्ताः केशाः नखाः नराः स्थानभ्रष्टाः न शोभन्ते। मतिमान् इति विज्ञाय स्वस्थानं न परित्यजेत्।

मन्थर नामक कछुए ने दूर से ह [illegible] विधाय=लघुपतनक का यथायोग्य अतिथि सत्कार करके । [illegible]कस्य अतिथि-सत्कारं चकार=हिरण्यक चूहे का भी अतिथि सत्कार किया ।

यतः=क्योंकि—

बालो वा यदि वा वृद्धः·········सर्वत्राभ्यागतो गुरुः ॥८७॥

रूप—युवा युवन् जवान-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन—युवा, युवानौ, युवानः । विधातव्या—वि उपसर्ग, धा क्रिया से तव्य प्रत्यय ।

अन्वय—गृहम् आगतः बालः वा वृद्धः यदि वा युवा तस्य पूजा विधातव्या (एव) सर्वत्र अभ्यागतः गुरुः (अस्ति)

शब्दार्थ—गृहम् आगतः=घर आया हुआ । पूजा विधातव्या=उसकी पूजा—उसका अतिथि-सत्कार अवश्य करना चाहिए । अभ्यागतः=अतिथि ।

व्याख्या—घर आने वाला बालक हो, बूढ़ा हो अथवा युवा हो—चाहे कोई भी हो उसका अतिथि सत्कार करना ही चाहिए । किसी भी आश्रमधर्म के पालन करने वालों के लिए अतिथि गुरु के समान पूज्य है ।

भावार्थ—अतिथिः सदा पूज्यः ।

वायसोऽवदत् सखे मन्थर···निर्जनवनागमनकारणम् आख्यातुमर्हसि

समास—पुण्यकर्मणाम्—पुण्यानि कर्माणि येषां ते तेषाम्—बहुव्रीहि । वनागमन-कारणम्—वने आगमनस्य कारणम्—तत्पुरुष ।

शब्दार्थ—पुण्य कर्मणां धुरीणः=पवित्र कार्य करने वालों में—महात्माओं में—अग्रणी । कारुण्यरत्नाकरः=दया का सागर । जिह्वा-सहस्र-द्वयेन=दो हजार जीभों से । उपाख्यानम्=कथा ।

व्याख्या—तत्पश्चात् लघुपतनक काक कहने लगा—मित्र मन्थर ! मेरे इस मित्र की विशेष पूजा करो, क्योंकि यह महात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ तथा दया का सागर मूषकराज हिरण्यक है । इसके गुणों का वर्णन सर्पराज शेषनाग दो हजार जिह्वाओं से भी नहीं कर सकते अर्थात् यह अतिशय गुणशाली है । यह कह कर वायस ने चित्रग्रीव की समस्त कथा का वर्णन कर दिया । मन्थर उसका आदर-पूर्वक पूजन कर कहता है—सज्जन ! निर्जन वन में अपने आगमन का कारण कहिये । हिरण्यक बोला—कहता हूँ, सुनिये ।

कारण हो सकता है। क्षण भर सोचकर वीणाकर्ण संन्यासी ने कहा–धन की अधिकता ही यहां कारण है।

धनवान् बलवांल्लोके············राज्ञामप्युपजायते ॥८८॥

संधि विच्छेद—बलवान्+लोके–त् को ल्–व्यजन संधि। राज्ञामप्युपजायते-राज्ञाम्+अपि+उपजायते=संधि का साधारण नियम और यण् संधि।

रूप—बलवान्–बलवत्–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–बलवान्, बलवन्तौ, बलवन्तः। राज्ञाम्–राजन–राजा–शब्द, पुल्लिग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन–राज्ञः, राज्ञोः, राज्ञाम्।

अन्वय—सर्वः धनवान् लोके सर्वदा बलवान् (भवति) हि राज्ञाम् अपि प्रभुत्वं धनमूलं उपजायते।

शब्दार्थ—धन–मूलम्=द्रव्य ही है मूल जिसका–धन के प्रताप से ही।

व्याख्या—सम्पूर्ण धनी लोग इस विश्व में सर्वत्र सदा ही बलशाली होते हैं। यह निश्चित है कि राजाओं का प्रभुत्व भी धनमूलक ही होता है अर्थात् धन के बल से ही राजा शासन कर सकता है, अन्यथा नहीं।

ततः खनित्रम् आदाय······चूडाकर्णेन अहम् अवलोकितः॥

सन्धि-विच्छेद—सत्वोत्साह–रहित :—सत्व+उत्साह–रहितः–अ+उ=ओ= गुण संधि। स्वाहारामप्युत्पादयितुम्–स्व+आहारम्+अपि+उत्पादयितुम्–दीर्घ संधि और संधि का साधारण नियम तथा यण् संधि।

समास—निज–शक्ति–हीनः–निजस्य शक्त्या हीनः=तत्पुरुष। सत्व–उत्साह–रहितः=सत्वस्य उत्साहेन रहितः=तत्पुरुष।

रूप—उपसर्पत्–शतृ–अत् प्रत्ययान्त शब्द, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–उपसर्पन्, उपसर्पन्तौ, उपसर्पन्तः।

शब्दार्थ=खनित्रम् आदाय=कुदाली=फावड़ा–लेकर। विवरं खनित्वा= बिल खोद कर। चिरसंचितम्–अधिक समय से इकट्ठा किया हुआ। सत्व–उत्साह–रहितः=धन या मन के उत्साह से हीन। उत्पादयितुम् अक्षमः=उदर पूर्ण करने में असमर्थ। उपसर्पन्=जाता हुआ।

व्याख्या—तत्पश्चात् संन्यासी ने फावड़ा लेकर मेरा बिल खोद कर चिर काल से इकट्ठा किया हुआ मेरा सब धन अपने अधिकार में कर लिया। उस

समास—अर्थोष्मणा=अर्थस्य ऊष्मणा=षष्ठी तत्पुरुष ।

अन्वय—तानि अविकलानि इन्द्रियाणि (सन्ति) तत् एव नाम, सा अप्रतिहता बुद्धिः, तत् एव वचनम्, स एव पुरुषः, अर्थोष्मणा विरहितः क्षणेन अन्यः भवति इति एतत् विचित्रम् ॥

शब्दार्थ—अविकलानि इन्द्रियाणि=बधिरता आदि दोषों से रहित वे ही चक्षु-कान-नासिका आदि इन्द्रियाँ । सा अप्रतिहता बुद्धिः=वही तीक्ष्ण बुद्धि । तत् एव वचनम्=वही धनी होने के समय जैसा गर्वपूर्ण वाक्य । स एव पुरुषः= धनाढ्य और दरिद्र अवस्था वाला वही एक मनुष्य । अर्थोष्मणा विरहित=धन की गर्मी-द्रव्य के गर्व-से हीन ।

व्याख्या—जो पहले धनी था किन्तु अब निर्धन हो गया है, उस पुरुष का चित्र इस श्लोक में अंकित किया गया है । निर्धन पुरुष की वे ही अविकल—बधिरता आदि दोषों से हीन इन्द्रियाँ अब भी हैं जो धनी अवस्था में थीं । वही उसका नाम है—नाम भी नहीं बदला । वही तीक्ष्ण बुद्धि है, जो धनी होने पर लाखों के वारे-न्यारे किया करती थी । वैसी ही गर्व-पूर्ण वाणी उसे धनी अवस्था में थी, अब भी है अर्थात् निर्धन दशा में भी वह गर्व भरे वचन ही कहता है । यही वह पुरुष है जो धनाढ्य दशा में था तथापि धन की ऊष्मा—गर्व—से हीन अर्थात् निर्धन क्षणमात्र में अन्य हो जाता है—बदल जाता है अर्थात् निस्तेज—प्रभाव-हीन हो जाता है—यह एक अचरज की बात है ।

शब्दार्थ—एतत् सर्वम् आकर्ण्य=यह सब सुन कर । मया आलोचितम्= मैंने सोचा । मम अत्र अवस्थानम्=मेरा यहाँ रहना । अयुक्तम्=अनुचित है । अन्यस्मै च=और दूसरे के लिए । एतद्-वृत्तान्त-कथनम्=यह समाचार कहना भी । अनुचितम्=उचित नहीं है ।

यत उक्तं हि—

अर्थनाशं मनस्तापं ·· ·············मतिमान् न प्रकाशयेत् ॥

समास—अर्थ-नाशम्=अर्थस्य नाशम्=तत्पुरुष । मनस्तापम्=मनसः तापम्=तत्पुरुष ।

रूप—मतिमान्—मतिमत्=बुद्धिमान्-शब्द, पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन—मतिमान्, मतिमन्तौ, मतिमन्तः ।

अन्वय—मतिमान् अर्थनाशं मनस्तापं च गृहे दुश्चरितानि, अपमानं च न प्रकाशयेत् ।

शब्दार्थ—अर्थ नाशं=धन का नाश । मनस्तापं=मानसिक व्यथा

व्याख्या—बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि धन का विनाश, व्यथा, गृहजन की बुराइयाँ, दूसरों के द्वारा ठगा जाना और अपने अ प्रकाशित न करे ।

भावार्थ—रहिमन निज मन की विथा, मन ही राखो गोय ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय ॥

मनस्वी म्रियते कामम्……नानलो याति शीतताम् ॥६३॥

रूप—मनस्वी–मनस्विन्–तेजस्वी–शब्द, प्रथमा विभक्ति, एक वचन मनस्विनौ, मनस्विनः । म्रियते=मृ–मरना–क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान एक वचन–म्रियते, म्रियेते, म्रियन्ते । याति–या–जाना–क्रिया, वर्तमान अन्य पुरुष, एकवचन–याति, यातः, यान्ति ।

अन्वय—मनस्वी काम म्रियते न तु कार्पण्य गच्छति । अनलः आयाति शीततां न याति ।

शब्दार्थ—मनस्वी=तेजस्वी । कार्पण्यम्=कृपणता । अनलः निर्वाणम्=विराम–शान्त ।

व्याख्या—तेजस्वी पुरुष मृत्यु का सहर्ष आलिंगन करते हैं–मर परन्तु कृपणता–दीनता–धारण नहीं करते हैं । जैसे कि अग्नि जल से जाती है–बुझ जाती है, किन्तु शीतलता कभी ग्रहण नहीं करती है ।

भावार्थ—तेजस्वी अपनी टेक नहीं छोड़ता है ।

अन्यत् च=और भी…

कुसुमस्तवकस्येव द्वे वृत्ती……विशीर्यत वनेऽथवा ॥६४॥

संधि विच्छेद—कुसुमस्तवकस्येव–कुसुम–स्तवकस्य+इव=कुसु…

रूप—सर्वेषाम्–सर्व–सर्व–शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति बहुवचन सर्वयोः, सर्वेषाम् । मूर्ध्नि–मूर्धन–मस्तक शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एक

अन्वय—मनस्विनः कुसुम-स्तवकस्य इव द्वे वृत्ती (स्तः) सर्वेषां मूर्ध्नि तिष्ठेत् अथवा वने विशीर्येत।

शब्दार्थ—कुसुम-स्तवकस्य इव=फूलों के गुच्छों के समान। मूर्ध्नि तिष्ठेत्=सबके ऊपर ठहरे अर्थात् सबका सरदार बन कर रहे। वने विशीर्येत=अथवा जंगल में विनाश को प्राप्त हो जाय—मुरझा जाय।

व्याख्या—फूलों के गुच्छे के समान तेजस्वी पुरुष के केवल दो ही व्यापार होते हैं—एक तो सबके मस्तक पर विराजमान होना अर्थात् सबका सरदार बन कर रहना अथवा वन में जाकर एकान्त में रह कर विनाश को प्राप्त हो जाय।

शब्दार्थ—यत् च अत्र एव याच्ञया जीवनम्=जो यहां रह कर अर्थात् अपने प्रतिकूल स्थान में वास करके भिक्षा द्वारा जीवन चलाना। तत् अतीव गर्हितम्=वह बहुत ही निन्दनीय है।

यतः=क्यों कि—

दारिद्र्यात्···ह्रियमेति·············सर्वापदामास्पदम्॥ ६५॥

संधि-विच्छेद—दारिद्र्याद्ध्रियमेति–दारिद्र्यात्+ह्रियम्+एति–त् को द् और ह को ध्–व्यंजन संधि। परिभवान्निर्वेदम्–परिभवात्+निर्वेदम्–त् को न्–व्यंजन संधि। क्षयमेत्यहो=क्षयम्+एति+अहो=इ को य्=यण् सन्धि।

समास—ह्रीपरिगतः=ह्रिया परिगतः=तृतीया तत्पुरुष। शोक-पिहित=शोकेन पिहितः=तृतीया तत्पुरुष।

रूप—एति=इ–जाना–प्राप्त होना–क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–एति, इतः, यन्ति। परिभ्रश्यते–भ्रश्–क्रिया, परि उपसर्ग–परिभ्रंश्–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–परिभ्रश्यते, परिभ्रश्येते, परिभ्रश्यन्ते। परित्यज्यते–परि उपसर्ग, त्यज्–क्रिया, कर्मवाच्य वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–परित्यज्यते, परित्यज्येते, परित्यज्यन्ते।

अन्वय—(नरः) दारिद्र्यात् ह्रियम् एति। ह्रीपरिगतः सत्त्वात् परिभ्रश्यते। निःसत्त्वः परिभूयते, परिभवात् निर्वेदम् आपद्यते। निर्विण्णः शुचम् एति। शोक-पिहितः बुद्ध्या परित्यज्यते। निर्बुद्धिः क्षयम् एति। अहो! निधनता सर्व-आपदाम् आस्पदम् अस्ति।

शब्दार्थ—दारिद्र्यात्=गरीबी से। ह्रियम् एति=लज्जा पाता है—शरमा ह्रीपरिगतः=लज्जायुक्त—लज्जाधीन—होकर। सत्त्वात् परिभ्रश्यते=पराक्रम से गिर जाता है अर्थात् पराक्रमहीन हो जाता—पराक्रम के कार्य नहीं कर पात निःसत्त्वः जनः सर्वत्र) परिभूयते=पराक्रम हीन मनुष्य सर्वत्र अनादर पात परिभवात्=अनादर से। निर्वेदम् आपद्यते=निर्वेद ग्लानि-पाता है अर्थात् स धिक्कारने लगता है। निर्विण्णः=खेद को प्राप्त होने पर। शुचम् एति=शो पाता—शोकातुर होने लगता है। शोक पिहित=शोकातुर होने पर। बुद्ध्या प त्यज्यते=बुद्धि द्वारा छोड़ दिया जाता है अर्थात् निर्बुद्धि हो जाता है। निर्बु बुद्धिहीन (जन) क्षयम् एति=विनाश को प्राप्त होना—विनष्ट हो जाता निधनता=गरीबी। सर्व—आपदाम्=समस्त विपत्तियों का। आस्पदम् अस्ति—स्थ घर—है।

व्याख्या—इस श्लोक में समस्त आपत्तियों का मूलकारण निर्धनता को बताया गया है। मनुष्य निर्धनता द्वारा लजाने लगता है। लज्जा के क पराक्रमहीन हो जाता है। जो शर्म करते हैं, वे सफलता नहीं पा सकते हैं। पर हीन होने पर मनुष्य का सर्वत्र अनादर होता है। जो अनादर पाता है, वह स्व अपने को—धिक्कारने लगता है। सदा खिन्न रहने वाला जन शोकातुर हो ज है। शोकातुर—शोक—पीड़ित—को बुद्धि—विवेचनशक्ति—छोड़कर चल देती निर्बुद्धि जन विनष्ट हो जाता है—नाश को प्राप्त होता है, अतएव गरीबी ही आपत्तियों को बुलाती है।

भावार्थ—गरीबी महापाप है।

वरं मौनं कार्यम्··········अविवेकाधिप-पुरे ॥६६॥

संधि-विच्छेद—पिशुन वाक्येष्वभिरुचिः—पिशुनवाक्येषु=अभिरुचिः=उ ऋ=यण् संधि।

समास—प्राण-त्यागः—प्राणानां त्याग इति=षष्ठी तत्पुरुष। पिशुन वाक्ये पिशुनानां वाक्यानि—त पुरुष तेषु। अविवेकाधिप पुरे—अविवेकः चासौ अधिप इ अविवेकाधिप :—कर्मधारय, अविवेकाधिपस्य पुरं तत्पुरुष।

अन्वय—मौनं कार्यं वरम्, यत् अनृतं वचनम् उक्तं न च (वरम्) प्राण-त्यागः वरं (किन्तु) पिशुन वाक्येषु अभिरुचिः न (वरम्)। भिक्षाशितं व

न्तु) पर धन-आस्वादन सुखं न (वरम्) । अरण्ये वास वर पुन अविवेक-धिप-पुरे (वासः) न वरम् ।

शब्दार्थ—मौन कार्यं वरम्=मौन रहना उत्तम है । अनृतम उक्त वचनं =किन्तु असत्य बोलना अच्छा नहीं । प्राण-त्याग वरम्=प्राणों का त्याग अच्छा । पिशुन=वाक्येषु अभिरुचि न=चुगलखोर के वचनों पर विश्वास करना च्छा नहीं । भिक्षाशित्व वरम्=भीख मांग कर खाना अच्छा है । पर धन-आस्वादन-सुख न=दूसरों के धन का उपभोग का सुख नहीं । वास =रहना । विवेक-अधिप-पुरे=अज्ञानी राजा के नगर-राज्य में ।

व्याख्या—असत्य भाषण करने की अपेक्षा चुप रहना उत्तम है । चुगलखोर वचनों का विश्वास करने की अपेक्षा प्राणों का त्याग करना ही श्रेयस्कर है योंकि चुगलखोर भी प्राणों का विनाश करा ही देता है । भीख माग कर पेट रना अच्छा है, किन्तु दूसरे के मुफ्त के माल उड़ा कर सुख पाना अच्छा नहीं । गल में-एकान्त स्थान में-रहना श्रेयस्कर है, किन्तु अज्ञानी-मूर्ख-राजा के राज्य में वास करना उचित नहीं । टके सेर भाजी, टके सेर खाजा जैसे राजा के राज्य में वास करने पर मानव दुर्दशाग्रस्त ही होगा, क्योंकि वहां न्याय पाना सर्वथा असम्भव है ।

शब्दार्थ—इति विमृश्य=यह सोचकर । तत् किम अहम=तो क्या मैं । पर-अन्नेन=दूसरों के अन्न से । आत्मानं पोषयामि=अपने शरीर का पोषण करूं । कष्टं भोः=अरे यह तो महान कष्टप्रद बात है । तदपि द्वितीयं मृत्यु-द्वारम्=पराया भोजन भी मृत्यु का द्वार है । इति आलोच्य=यह विचार कर । लोभात् पुनः अपि अर्थं ग्रहीतुम्=लोभ के वशीभूत हो, फिर धन-सञ्चय का । मतिम् अकरवम्= विचार किया ।

तथा च उक्तम् = जैसा कि कहा गया है

लोभेन बुद्धिश्चलति·········परत्रेह च मानव ॥८७॥

समास—तृषार्तः=तृषया आर्तः=ततपुरुष ।

रूप—आप्नोति–आप्=पाना–क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-आप्नोति, आप्नुतः आप्नुवन्ति ।

अन्वय—लोभेन बुद्धिः चलति । लोभः तृषां जनयते । तृषार्तः मानवः परत्र इह च दुःखम् आप्नोति ।

शब्दार्थ—तृषां जनयते=तृष्णा को उत्पन्न करता है। प
इह=इस लोक में। आप्नोति=प्राप्त करता है।

व्याख्या—लोभ से बुद्धि चलायमान होती है। धन का
की उत्कट इच्छा उत्पन्न करता है। धन की तृष्णा से पीड़ि
प्रकार के कष्ट सहन करता है तथा वह इस लोक और परलोक
कष्ट भोगता है।

(१) भावार्थ—निन्यानवे के फेर में पड़ने से कष्ट ही होता
(२) एक हुआ तब दो की इच्छा, चार हुए फिर हुए हजा
लाखों पर तब नौबत पहुँची और हो गया जागीरदार
ठाट-बाट सब बना निराला, सब कहते हैं उसको आल
झुक कर नर कहते हैं नमस्ते, आज बने ये स्वर्ग फरिश्ते
फिर यह निज गृह भरता है, औरों की सम्पत् हरता है
इच्छा उभरी बढ़ती जाती ज्यों ज्यों वह पूरी करता है

शब्दार्थ—ततः अहम्=तब मैं। मन्दं मन्दम् उपसर्पन्=धी
हुआ। वीणाकर्णेन जर्जर वंश दण्डेन ताड़ितः=सन्यासी वीणाकर्ण
बाँस से पीटा। तदा अहम् अचिन्तयम्=तब मैं सोचने लगा।

धनलुब्धो ह्यसन्तुष्ट ·········यस्य तुष्टं न मानसम्

संधि-विच्छेद—ह्यसन्तुष्ट =इ को य=यण् संधि।

समास—धन लुब्ध=धने लुब्ध इति=तत्पुरुष। अनियतात्मा
आत्मा यस्य स=बहुव्रीहि। अजितेन्द्रिय=न जितानि इन्द्रिया
बहुव्रीहि।

रूप—आपदः—आपद्=आपत्ति=शब्द, स्त्रीलिंग, प्रथमा विभ
आपद्, आपदौ, आपदः।

अन्वय—यस्य मानसं न तुष्टं (तादृशः) धनलुब्धः, अस
यतात्मा, अजितेन्द्रिय, तस्य एव सर्वा आपदः (भवन्ति)।

शब्दार्थ—मानसं=मन। न तुष्टम्=असन्तुष्ट नहीं। धन लु

यदि कुल का त्याग करना पड़े तो कर देना चाहिए। देश की रक्षा के लिए ग्राम–जन्मभूमि–का त्याग करना सर्वथा उचित है। अपनी रक्षा के लिए यदि देश का त्याग कर विदेश में जाना पड़ जाय तो देश का त्याग कर देना चाहिए।

पानीयं वा निरायासम्‌·············तत्सुखं यत्र निर्वृत्तिः ॥ १०३ ॥

अन्वय—निरायासं पानीयं भयोत्तरं स्वादु अन्नं वा, लघु विचार्य पश्यामि, यत् निर्वृतिः—तत् सुखम्।

शब्दार्थ=निरायासम्=बिना आयास के–आसानी से। भयोत्तरम्=भय से युक्त। स्वादु अन्नम्=स्वादिष्ट भोजन। निर्वृत्तिः=निर्भयता और चित्त-शान्ति। तत् सुखम्=वह आनन्दप्रद है।

व्याख्या—बिना प्रयास से प्राप्त जल तथा भय और दुःखप्रद स्वादिष्ट भोजन–इन दोनों के संबंध में विचार कर देखता हूँ तो ज्ञात होता है कि जिसमें निर्भयता और शान्ति प्राप्त होती है, वही सुखप्रद है–ऐसा मेरा विचार है।

शब्दार्थ—इति आलोच्य=यह विचार कर। अहं निर्जन वनम् आगतः=मैं एकान्त–जन-शून्य–वन में आ गया। यतः=क्योंकि—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्र—सेवितम्‌·········न बन्धु–मध्ये धन–हीन–जीवनम् ॥ १०४ ॥

समास—व्याघ्र–गजेन्द्र–सेवितम्=व्याघ्रैः गजेन्द्रैः च सेवितम्=तत्पुरुष। द्रुमालयम्–द्रुमः एव आलयः तम्। पक्व–फल–अम्बु–भक्षणम्–पक्वानां फलानां अम्बुनः च भक्षणम्=तत्पुरुष। धन–हीन–जीवनम्–धनेन हीनम् इति धन–हीनम्–तत्पुरुष; धन-हीनं तत् जीवनम्–कर्मधारय।

अन्वय—(यत्र) द्रुमालयः पक्व [illegible] र्नं, तृणानि शय्या, परिधान–वल्कलं (तादृशं) व्या [illegible] (अस्ति) किन्तु बन्धु–मध्ये धन–हीन–जीवनं [illegible]

[illegible]
फल खाकर और शीतल जल पीकर रह जाना, तिनकों की शैया प
वृक्षों की छाल के वस्त्र पहन कर निर्वाह करना तथा व्याघ्र, हाथी
जन्तुओं से पूर्ण वन में रह कर जीवन-यापन करना-जिन्दगी बिता
परन्तु निर्धन होकर-धन के अभाव से नाना प्रकार के क्लेश भोगते
बन्धुओं के ताने सहते हुए-उनके मध्य रहना अच्छा नहीं है।

भावार्थ—बन्धुओं के साथ निर्धन होकर रहने की अपेक्षा
अच्छा है।

शब्दार्थ—ततः अस्मद्-पुण्योदयेन=धन में आने के पश्चात्
के उदय होने से। अनेन मित्रेण=इस लघुपतनक नामक मित्र
स्नेहानुवृत्त्या अनुगृहीत=मैं (हिरण्यक) स्नेह से अनुगृहीत किया गया
पुण्य-परम्परया=और अब पुण्यों के प्रताप से भवत्-आश्रयः स्वर्ग
प्राप्त=स्वर्ग के समान आप का आश्रय पाया है अर्थात् आपके आश्रय
रह कर मुझे स्वर्गीय आनन्द मिला है।

यतः=क्योंकि—

संसार-विष-वृक्षस्य ·········संगमः सुजनैः सह ॥

अन्वय—असार-विष-वृक्षस्य द्वे एव रसवत्-फले (स्तः) (प्र
मृत-रसास्वादः (द्वितीय) सुजनैः सह संगमः।

शब्दार्थ—संसार-विष-वृक्षस्य=संसाररूपी विष-वृक्ष के
दो ही रसीले फल हैं। काव्यामृत-रसास्वाद=काव्यरूपी अमृत का
सह संगमः=दूसरा सज्जनों का साथ।

व्याख्या=संसाररूपी विष-वृक्ष के केवल दो ही रसीले फ
काव्यरूपी अमृत का चखना और दूसरा सज्जनों का साथ है अर्थात्
विषवृक्ष के समान है, जहाँ अनेक प्रकार के कष्ट भोग
परन्तु काव्य-आनन्द और सज्जन-संगति से प्राप्त होने वाला
इस संसार में श्रेष्ठ है।

अर्थाः पाद-रजोपमा ············शोकाग्निना दह्यते ॥१०६॥

समास—जल-लोल-बिन्दु-चपलम्=जलस्य लोल-बिन्दव इव चपलम् इति। स्वर्ग-अर्गल-उद्घाटनम्=स्वर्गस्य अर्गलस्य उद्घाटनम्—तत्पुरुष। निन्दित-मतिः=निन्दिता मतिः यस्यम्=बहुव्रीहि। पश्चात्ताप-युत=पश्चात्तापेन युतः इति=तत्पुरुष। जरा-परिगतः=जरया परिगत=तत्पुरुष।

रूप—दह्यते=दह्-जलना-क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमाने काल, अन्य पुरुष, एकवचन—दह्यते, दह्येते, दह्यन्ते।

अन्वय—अर्थाः पाद-रजोपमा (भवन्ति)। यौवन गिरि-नदी-वेगोपमम् (अस्ति)। आयुष्यं जल-लोल-बिन्दु-चपलम्। फेनोपमम् जीवितं (अस्ति) पुस्तक में वेगोपमम्-पाठ के स्थान पर फेनोपम् होना चाहिए। य. निन्दितमतिः स्वर्ग-अर्गल-उद्घाटनम् धर्मं न करोति (सः)जरा-परिगतः पश्चात्तापयुतः शोक-अग्निना परिदह्यते।

शब्दार्थ—अर्थाः=धन। पाद-रजोपमाः भन्ति=चरण की धूलि के समान क्षण भर में ही अलग हो जाने वाले हैं। यौवनं=युवावस्था-जवानी। गिरि-नदी-वेगोपमम्=पहाड़ी नदी के वेग के समान अस्थिर है। आयुष्यं=आयु-मानव-शरीर। जल-लोल-बिन्दु-चपलम्=जल की बूँद के समान सब जाने वाला है। जीवितं=जीवन। फेनोपमम्=फेन के समान विनाश को प्राप्त होने वाला। निन्दित-मतिः=दुर्मति-दुष्ट बुद्धि। स्वर्ग-अर्गल-उद्घाटनम्=स्वर्ग के-अर्गल-प्रतिबन्ध को नहीं खोलता। जरा-परिगतः=बुढ़ापे से पीड़ित। दह्यते=जलता रहता है।

व्याख्या—धन चरण-धूल के समान आने वाला-नाशशील है अर्थात् जैसे धूल पैरों को लगती है और छूट जाती है; इसी प्रकार धन भी नष्ट होने वाला है। युवावस्था पहाड़ी नदी के वेग के समान है अर्थात् जिस प्रकार पहाड़ी नदी का वेग स्थिर नहीं इसी प्रकार जवानी में भी स्थिरता नहीं-आई और गई। आयु-मानव-शरीरजल के चंचल बिन्दु के समान चपल है अर्थात् जैसे चलबिन्दु क्षणमात्र में ही सूख जाता है इसी प्रकार आयु की भी दशा है। जीवन फेनके समान अस्थिर है। जो दुर्मति-दुष्टमति स्वर्ग के आगल को खोलने वाले धर्म का आचरण नहीं करता है अर्थात् स्वर्ग प्रदान करने वाले धार्मिक कार्य नहीं करता वह बुढ़ापे में पश्चात्ताप करता हुआ शोक की अग्नि से जलता रहता है अर्थात पछताया करके दुःख का अनुभव करता है।

शब्दार्थ—युष्माभिः=तुमने । अतिसंचयः
किया । तस्य अयं दोषः=उस संचय का ही यह दोष
शृणु=सुनिये—

उपार्जितानां वित्तानाम्...........परीव

समास—ताडागोदर-संस्थानाम्—तडागस्य उद

रूप—अम्भसाम्—अम्भस् जल—शब्द, नपुंसक
वचन—अम्भसः, अम्भसोः, अम्भसाम् ।

अन्वय—तडागोदर—संस्थानाम् अम्भसां परीव
त्याग एव हि रक्षणम् (अस्ति) ।

शब्दार्थ—तडागोदर—संस्थानाम्=तालाब के अ
निर्गम मार्ग—बाहर निकलने के रास्ते के समान । उ
किए हुए ।

व्याख्या—जिस प्रकार कि तालाब में स्थित
जाता है तो उसका बाहर निकालना ही श्रेयस्कर है
द्वारा कमाए और संचित किए हुए धन को दान कर
यदि दे दिया जायगा तो ठीक है, वरन् स्वयं नष्ट हो

भावार्थ—जब जल बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े
दोऊ हाथ उलीचिये, यहै सयानो

निज—सौख्यं निरुन्धानः.........क्लेशास्यै

संधि-विच्छेद—भारवाहीव=भार—वाही+इव=ई
+एव=अ+ए=ऐ वृद्धिसंधि ।

समास—परार्थम्=परस्य अर्थम्=तत्पुरुष । भारव

रूप—इच्छति—इष=चाहना—क्रिया, परस्मैपद, स

शब्दार्थ—निजं सौख्यं=अपने सुख को। निरुन्धानः=रोकता हुआ। परार्थं=दूसरे के लिए। भार-वाही इव=बोझा ढोने वाले के समान। क्लेशस्य भाजनम् भवति=दुःख का पात्र होता है।

व्याख्या—जो मनुष्य अपने सुख को रोक कर अर्थात् अपने लिए धन व्यय न कर धन का संचय करता है, वह दूसरों के लिए बोझा ढोने वाले गदहे के समान केवल क्लेश ही भोगता है अर्थात् वह द्रव्य उपार्जन के क्लेश को तो प्राप्त करता है, किन्तु उसका फल नहीं प्राप्त करता है।

भावार्थ—(१) कृपण कभी सुख शांति नहीं प्राप्त कर सकता है।

मीत न नीति गलीत ह्वै, संचय करिये दौर।
खाये खरचै जो बचे, तो जोरिये करोर॥

दानोपभोग-हीनेन धनेन.........धनेन धनिनो वयम् ॥१०६॥

सन्धि-विच्छेद—तेनैव-तेन+एव=वृद्धिसंधि।

समास—दानोपभोग-हीनेन-दान-उपभोगाभ्यां हीन.-तत्पुरुष=तेन।

रूप—धनिनः=धनिन्=धनवान्=इन्नन्त शब्द, पुल्लिंग, बहुवचन-धनी, धनिनौ, धनिनः। भवामः=भू (भव) होना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमानकाल, उत्तम पुरुष, बहुवचन-भवामि, भवावः, भवामः।

अन्वय—यदि दान-उपभोग-हीनेन धनेन धनिनः (भवन्ति) तदा तेन एव धनेन वयं किं धनिनो न भवामः।

शब्दार्थ—दान-उपभोग हीनेन=दान और भोग से हीन अर्थात् धन दान न देकर और धन का उपभोग न करके अर्थात् धन को आवश्यक निजी कार्यों में व्यय न करके।

व्याख्या—यदि अपने संचित धन ... [illegible] ... और आवश्यक कार्यों में व्यय न करके मनुष्य ... [illegible] ... उस धन से धनी नहीं कहलाये जा सकते हैं? ... [illegible] ... में व्यय न करके ... जो धन ... [illegible] ... नहीं जाता ... [illegible] ... ता है। ... [illegible] ... प्रदत्त उस

धन-रक्षक के समान हम भी उसके स्वामी कहला सकते हैं। न तो उपभोग कर सकता है और न दान ही।

भावार्थ (१) आज आठ घर जायेंगे, साल रहके खायेंगे ॥

(२) कृपण धन रक्षक ही होता है उपभोक्ता नहीं।

अपरं च शृणु=और भी सुनिये—

कर्त्तव्य. संचयो नित्यं······धनुषा जम्बुको हतः ॥११०॥

अन्वय—नित्यं सञ्चयः कर्त्तव्यः, अति संचयः न कर्त्तव्यः प शीलः असौ जम्बुकः धनुषा हतः।

शब्दार्थ—संचय शीलः=अधिक सञ्चय करने वाला।

व्याख्या—सदा सञ्चय करना चाहिए परन्तु अति संचय नहीं कर देखो-अत्यधिक संचय करने वाला गीदड़ धनुष द्वारा मारा गया।

तौ आहतुः=हिरण्यक और लघुपतनक कहते हैं। एतत् कथ मन्थरः कथमति=मन्थर कछुआ कहता है।

आसीत् कल्याण-कटक-वास्तव्यः·············मामत्र गमिष्यति।

संधि-विच्छेद—नैकदा=न+एकदा=वृद्धि संधि। अचिन्तयच्च च=त् को च व्यंजन सन्धि।

समास—घोराकृति—घोरा आकृतिः यस्य सः—बहुव्रीहि। संछिन्नः च असौ द्रुमः—कर्मधारय।

रूप—गतवान्—गतवत्—चला गया—शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा वचन,—गतवान्, गतवन्तौ गतवन्तः। निपपात—नि उपसर्ग, पत् परस्मैपद, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन—निपपात, निपेत गमिष्यति—गम्—जाना—क्रिया, परस्मैपद, अन्य पुरुष, एकवच गमिष्यतः, गमिष्यन्ति।

शब्दार्थ—अन्विष्यमाणः=अन्वेषण करता-ढूढ़ता हुआ। अ ——·——देखा। निधाय=रख कर। मर्मदेशे=मर्म की ज

के ताड़न—आघात से। आहारार्थी=भोजनाभिलाषी। सुखेन गमिष्यति=सुख से चला जायगा—बीत जायगा।

व्याख्या—कल्याण-कटक में रहने वाला भैरव नामक शिकारी था। एक बार वह शिकार की खोज करता हुआ विन्ध्य के जंगल में पहुंचा। तत्पश्चात् मरे हुए मृग को ले जाते हुए व्याधने भयंकर आकृति वाले सूअर को देखा। उस व्याध ने मृग को जमीन पर रख कर सूअर को बाण से मार दिया। सूअर ने भी घनघोर शब्द कर उस व्याध के मर्मस्थल पर चोट की जिससे शिकारी कटे हुए वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा। शिकारी और सूअर के पैरों के आघात से वहाँ एक साँप भी मारा गया। इसके पश्चात् घूमते हुए भोजन प्राप्त करने के अभिलाषी दीर्घरव नामक गीदड़ ने मरे हुए उन तीनों—हरिण शिकारी और सूअर को देखा। वह सोचने लगा—अहा! आज मुझे अधिक भोजन मिल गया है। इनके मारने से तीन मास सुख-पूर्वक बीत जायगे। तथा च=उसी प्रकार—

मासमेकं नरो याति.........अद्य भक्ष्यो धनुर्गुणः ॥१११॥

समास—मृग-शूकरौ—मृगः च शूकरः च—द्वन्द्व। धनुर्गुणः—धनुषः गुणः तत्पुरुष।

अन्वय—नरः एक मासं याति, मृग-शूकरौ द्वौ मासौ। अहिः एकं दिनं याति, अद्य धनुर्गुणः भक्ष्यः।

व्याख्या—एक महीने तक मनुष्य का, दो मास तक हिरण और सूअर का मांस खाऊँगा। साँप एक दिन के लिए होगा। आज धनुष की डोरी खा लेनी चाहिए।

ततः प्रथम बुभुक्षायाम्.........स्वयं मोत्साहेन भक्षितव्यम् ॥

सन्धि विच्छेद—इत्युक्त्वा—इति+उक्त्वा=यण् संधि।

समास—कोदण्ड लग्नम्—कोदण्डे लग्नम्—तत्पुरुष।

शब्दार्थ—निःस्वादु=स्वाद हीन। उत्थितेन=ऊपर उठे हुए। दंतर्वं गतः=मर गया। मोत्साहेन भक्षितव्यम्=उत्साह होना चाहिये। वधः न मन्तव्यम्=बुरा नहीं मानना चाहिए।

व्याख्या—दीर्घरव गीदड़ ने सोचा—भूख में पहली बार स्वादहीन धनुष में लगे हुए स्नायु-जन्य-के बन्धन को खाना चाहिये। यह कह कर वैसा करने

रूप—आयान्ति=या=जाना–क्रिया, आ उपसर्ग–आ या–आना–क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन–आयाति, आयातः, आयान्ति ।

अन्वय—मण्डूकाः निपानम् इव, अण्डजाः पूर्णम् सर इव सर्वसम्पदः विवशाः सोद्योगं नरम् आयान्ति ।

शब्दार्थ—मण्डूकाः=मेढ़क । निपानम् इव=क्षुद्र जलाशय के समान । अण्डजाः=पक्षी । पूर्णम् सर इव=अधिक जल से भरे हुये तालाब के समान । सर्वसम्पदः=समस्त सम्पत्तियाँ । विवशाः=विवश होकर । सोद्योगं जनम् आयान्ति= उद्योगी पुरुष के समीप स्वतः चली आती है ।

व्याख्या—जिस प्रकार मेढ़क छोटे सरोवरों में और पक्षी बड़े तड़ागों के प्रति स्वतः चले आते हैं (उन्हें कोई बुलाने नहीं जाता है) इसी प्रकार सम्पत्तियाँ स्वयं ही विवश होकर उद्योगी पुरुष के चरणों में लोटने लगती हैं–उसकी सेवा में चली आती हैं ।

भावार्थ—उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।

सुखमापतितं सेव्यम्.........दुःखानि च सुखानि च ॥११४॥

रूप—परिवर्तन्ते–वृत्–होना, परि उपसर्ग, परिवृत्–परिवर्तन होना–क्रिया, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन–परिवर्तते, परिवर्तेते, परिवर्तन्ते ।

अन्वय—आपतितं सुखं तथा आपतितं दुःखं सेव्यम् । सुखानि च दुःखानि च चक्रवत् परिवर्तन्ते ।

शब्दार्थ—आपतितम्=आया हुआ । सेव्यम्=सहन करना चाहिए । चक्रवत् परिवर्तन्ते=चक्र की तरह परिवर्तित होते रहते हैं ।

व्याख्या—उपस्थित होने वाले–आने वाले सुख और दुःख को सहन करना चाहिये क्योंकि सुख और दुःख जगत् में चक्र–पहिये–की तरह परिवर्तित होते रहते हैं अर्थात् जिस प्रकार चक्र–पहिया–ऊपर–नीचे आता जाता है, उसी प्रकार सुख–दुःख आते और जाते रहते हैं ।

भावार्थ—न सदा सुख रहता है–और न सदा दुःख ।

अन्यत् च=और भी—

उत्साहसम्पन्न मदीर्घ सूत्रम्''''''लक्ष्मी स्वयं याति निवासहेतो ॥११५॥

सन्धि–विच्छेद–व्यसनेष्वसक्तम्=व्यसनेषु+असक्तम्–उ को व्=यण् संधि ॥

समास [illegible] सम्मानम् [illegible] तत्पुरुष-सम् ।
[illegible] इति [illegible] तत्पुरुष-सम् ।
[illegible] दृढ-सौहृदम्=दृढ सौहृदम् [illegible]
[illegible] क्रिया [illegible] वर्तमान काल, [illegible], अन्य पुरुष,
याति, यात [illegible]

अन्वय-लक्ष्मी निवास-हेतोः [illegible] उत्साह-[illegible]
[illegible] व्यसनेषु असक्त [illegible] दृढ सौहृदं याति ।

शब्दार्थ लक्ष्मी=लक्ष्मी । निवासहेतो=निवास के लिए । उत्साह-
उद्योग में युक्त को । अदीर्घ-सूत्रम्=शीघ्र कार्य करने वाले को । क्रिया-
कार्य के अनुष्ठान-विधि-ढंग-को जानने वाले को । व्यसनेषु=बुरे शौक
पान, जुआ खेलना आदि व्यसनों में । असक्तम्=न लगे रहने वाले को। कृ
उपकार को जानने वाले-अहमानन्द-को । दृढ-सौहृदम्=दृढ़ मित्र वाले
याति=समीप जाती है ।

व्याख्या—लक्ष्मी निवास-स्थान-रहने के-लिए स्वयं ही उत्साही,
कार्यकर्ता-फुर्ती से काम करने वाले, क्रिया की विधि के ज्ञाता-कर्त्तव्य-अक
का विवेक रखने वाले, व्यसनों से शून्य, शूरवीर, कृतज्ञ-अहमानन्द-
दृढ़ मित्रता करने वाले के पास जाती है ।

विशेषतः च=विशेष रूप से—

विनाप्यर्थैः वीरः स्पृशति ·····धृतकनकमालोऽपि दधते ॥ ११६ ॥

सन्धि—विच्छेद—विनाप्यर्थैः=विना+अपि+अर्थैः-दीर्घ और यण् सन्धि।
बहुमानोन्नतिपदम्=बहुमान+उन्नतिपदम्-अ+उ=ओ=गुणसंधि ।

समास—बहुमानोन्नति-पदम्-बहुमानस्य उन्नतेः च पदम्=तत्पुरुष । गुण-
समुदायावाप्ति-विषयाम्=गुण-समुदस्य अवाप्तेः विषया-इति गुण-समुद-
यावाप्ति-विषया-तत्पुरुष=ताम् । धृत-कनक-मालः=धृताकनकस्य माला येन सः=
बहुव्रीहि ।

रूप—श्वा—श्वन्=कुत्ता-शब्द, पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-
श्वा, श्वानौ, श्वानः । लभते=लभ्-पाना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल,
अन्य पुरुष, एकवचन-लभेते, लभते,लभन्ते ।

अन्वय—वीरः अर्थैः विना अपि बहुमान-उन्नति-पदं स्पृशति । कृपणः अर्थैः समायुक्तःअपि परिभव-पदं याति । धृत-कनक-मालः श्वः स्वाभावात् उद्भूतां गुण-समुदय-अवाप्ति-विषया किं सैंही द्युतिं लभते ।

शब्दार्थ—अर्थैः विना अपि=द्रव्य के बिना भी। बहुमान-उन्नति-पदं स्पृशति=अत्यधिक सम्मान और उन्नति-अभ्युदय को प्राप्त करता है। अर्थैः समायुक्तः-धन से युक्त-धनी-होकर भी। परिभव-पदं+याति=अनादर ही पाता है। धृतकनक-मालः श्वा=सुवर्ण की माला पहनने वाला कुत्ता। स्वभावात् उद्-भूताम्=स्वभाव से उत्पन्न होने वाली अर्थात् स्वाभाविक। गुण-समुदयावाप्ति-विषयाम्=शौर्य आदि गुण समूह को सूचित करने वाली। सैंहीं द्युति लभते= सिंह की कान्ति को प्राप्त कर सकता है? अर्थात् कदापि नहीं पा सकता।

व्याख्या—वीर पुरुष धन का अभाव होने पर भी अत्यधिक आदर और अभ्युदय-उन्नति-को पाता है। कृपण मनुष्य धनवान् होकर भी सदा अनादर ही पाता है। सोने की जंजीर पहनने वाले कुत्ते की क्या स्वभाव से उत्पन्न होने वाली, शूरता आदि गुणों को प्रकट करने-वाली सिंह की कान्ति जैसी कान्ति हो सकती है? कदापि नहीं। अर्थात् सिंह की शोभा के समान सोने की जंजीर पहनने पर भी कुत्ते की शोभा कभी नहीं हो सकती।

भावार्थ—संसार में गुणों का आदर होता है, न कि आडम्बर का।

धनवानिति मदो मे..........पातोत्पाता मनुष्याणाम्॥ ११७॥

समास—गत-विभवः=गतो विभवः यस्य सः=गत-विभवः=बहुव्रीहि। कर-निहित-कन्दुकसमाः-करे निहितेन कन्दुकेन समा इति=तत्पुरुष।

अन्वय—धनवान् इति मे मदः (आसीत्) गतविभवः (अहं) किं विषादम् उपयामि। मनुष्याणां पातोत्पाताः कर-निहित-कन्दुक-समाः (भवन्ति)

शब्दार्थ—गत विभवः=निर्धन। विषादम् उपयामि=खेद का अनुभव करूं। पातोत्पाताः=उत्थान और पतन। कर निहित-कन्दुक-समाः भवन्ति=हाथ से खेले जाने वाले कन्दुक-गेंद-के समान होते हैं।

व्याख्या—मैं धनवान् हूँ—मुझे ऐसा मद था, किन्तु निर्धन होने पर मैं शोक क्यों करूँ? क्योंकि मनुष्यों का उत्थान और पतन हाथ से खेले जाने वाले

गेंद के समान होता है अर्थात् जैसे गेंद का ऊपर जाने के बाद नीचे गि
निश्चित है, उसी प्रकार मनुष्य का भी समझना चाहिए।

अपि च सखे=मित्र ! और भी—

येन शुक्लीकृता हंसाः·········स ते वृत्तिं विधास्यति ॥ ११८॥

अन्वय—येन (विधात्रा) हंसाः शुक्लीकृताः, च शुका हरितीकृताः, के मयूराः चित्रिताः स (विधाता) ते वृत्तिं विधास्यति।

शब्दार्थ—शुक्ली-कृताः=श्वेत रंग का बनाया है। हरिती-कृताः=हरा बना दिया। चित्रिताः=विविध रंगों का बनाया है। विधास्यति=उपस्थित करेगा-चलायेगा।

व्याख्या—जिस ब्रह्मा ने हंसों को श्वेत, तोतों को हरा और मोरों को विरंगा बनाया है, वही ब्रह्मा तुम्हारा भी भरण-पोषण करेगा-तुम्हारी जी चलायेगा।

अपरं च सतां रहस्यं शृणु=हे मित्र ! बड़ों का रहस्य सुनिये—

जनयन्त्यर्जने दुःखम्···········कथमर्थाः सुखावहाः ॥ ११९।

संधि-विच्छेद—जनयन्त्यर्जने=जनयन्ति+अर्जने=इ को य्=यणसन्धि।

अन्वय—अर्थाः अर्जने दुःखं जनयन्ति, विपत्तिषु तापयन्ति, सम्पत्तौ मोहयन्ति (अतः ते) कथं सुखावहाः।

शब्दार्थ—अर्जने=उपार्जन करने में–कमाने में। जनयन्ति=उत्पन्न करते हैं विपत्तिषु=चोरों द्वारा चुराये जाने पर। तापयन्ति=क्लेश पहुँचाते हैं। सम्पत्तौ= ऐश्वर्य काल में। मोहयन्ति=मद उत्पन्न कर देते हैं। सुखावहाः=सुखप्रदाता।

व्याख्या—धन उपार्जन करने में अत्यधिक कष्ट होता है। चोर आदि द्वारा चुराये जाने पर अधिक क्लेश होता है, अति धनी हो जाने पर मद हो ही जाता है, अतएव धन किसी भी दशा में सुखदायी नहीं होते हैं।

अन्यत् च भ्रातः शृणु=हे भाई ! और भी सुनिये—

धनं तावदसुलभम्·····तस्मादेतन्न चिन्तयेत् ॥१२०॥

समास—लब्धनाशः=लब्धस्य नाशः इति=तत्पुरुष।

रूप—रक्ष्यते–रक्ष्=रक्षा करना=क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–रक्ष्यते, रक्ष्येते, रक्ष्यन्ते। चिन्तयेत्–चिन्त्=चिन्ता

करना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-चिन्तयेत्, चिन्तयेताम्, चिन्तयेयुः।

अन्वय—तावत् धनम् असुलभम् (अस्ति) लब्धं (च) कृच्छ्रेण रक्ष्यते। लब्ध-नाशः यथा मृत्युः (भवति) तस्मात् एतत् न चिन्तयेत्।

भावार्थ—असुलभम्=आसानी से प्राप्त नहीं होता। लब्धम्=प्राप्त होने पर। कृच्छ्रेण पाल्यते=बड़ी कठिनाई से धन की रक्षा की जाती है। लब्ध-नाशः= धन मिल जाने के पश्चात् उसका विनाश हो जाना। यथा मृत्युः=जैसे मृत्यु के समय कष्ट होता है, उसी के समान कष्ट देने वाला। न चिन्तयेत्=धन की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

व्याख्या—पहले तो धन आसानी से मिलता नहीं अर्थात् धन-प्राप्ति के लिए महान् कष्ट झेलना पड़ता है, धन प्राप्त हो भी गया तो उसकी रक्षा करना प्राप्ति की अपेक्षा अति कठिन है। और यदि धन का नाश हो गया तो मृत्यु के समान कष्ट होता है। इसलिए धन की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

यद्यदेव हि वाञ्छयेत·········यतो वाञ्छा निवर्तते ॥१२१॥

अन्वय—यद् यद् एव हि वाञ्छयेत, ततो वाञ्छा अनुवर्तते। यतः वाञ्छा निवर्तते स अर्थः अर्थतः प्राप्त एव।

शब्दार्थ—वाञ्छा अनुवर्तते=इच्छा बढ़ती जाती है। निवर्तते=विलीन हो जाती है। अर्थः=वस्तु।

व्याख्या—जिस वस्तु की कामना निरन्तर की जाती है, उस वस्तु की कामना बढ़ती ही जाती है। जिस वस्तु के प्रति निवृत्ति हो जाती है अर्थात् प्राप्ति की इच्छा शांत हो जाती है, वही वस्तु वास्तव में प्राप्त की गई समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि तृप्ति-सन्तोष-ही सुख है।

शब्दार्थ—किम्बहुना मम पक्षपातेन=मेरे अधिक पक्षपात से क्या। मया सह अत्र कालो नीयताम्=मेरे साथ यहीं रहकर समय बिताइये। इति श्रुत्वा लघु पतनको ब्रूते=यह सुनकर लघुपतनक काक कहता है। धन्योऽसि मन्थर != हे मन्थर! तुम धन्य हो। सर्वथा श्लाघ्य गुणोऽसि=सब प्रकार से तुम्हारे गुण प्रशंसनीय हैं अर्थात् इन्हीं उदात्त-उत्तम-गुणों के कारण तुम प्रशंसा के योग्य हो।

समास—लुब्धकत्रासितः—लुब्धकेन त्रासितः—तत्पुरुष । जलासन्न-तरु-च्छायायाम्=जलस्य आसन्नता तरुणां छायायाम्=तत्पुरुष ।

रूप—उड्डीय—उत् उपसर्ग, डी—उड़ना-क्रिया से "त्वा" प्रत्यय, उपसर्ग पूर्व में होने से "त्वा" का "या" हो गया है । स्थीयताम्—स्था-ठहरना-क्रिया—कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष एकवचन—स्थीयताम्, स्थीयेताम्-स्थीयन्ताम । उपविष्टः—उप उपसर्ग, विश्-क्रिया से त (क्त) प्रत्यय ।

शब्दार्थ—त्रासितः=सताया हुआ । आयान्तम्=आते हुए को । उड्डीय=उड़ कर । निरूप्य=भली प्रकार देख कर । अवस्थानेन=वास करने-रहने से सनाथी क्रियताम्=सुशोभित कीजिये । लुब्धक-त्रासित=व्याध से पीडित । सख्यम् =मित्रता । स्वीगृह-निर्विशेषम्=अपने घर के समान ।

व्याख्या—किसी समय चित्रांग नामक मृग किसी से सताया हुआ वहाँ आ पहुँचा । तब आते हुए मृग को देख कर मन्थर जल में प्रविष्ट हो गया और चूहा बिल में घुस गया और कौवा भी उड़ कर वृक्ष पर जा बैठा । फिर लघुपतन ने दूर तक निरीक्षण किया कि कोई भय का कारण तो उपस्थित नहीं है । भय का कोई कारण नहीं है—लघुपतनक के ऐसा कहने पर फिर सब वहाँ आकर एकत्रित हो बैठ गए । मन्थर ने कहा—भद्र मृग ! तुम्हारा स्वागत है । इच्छापूर्वक जल पीजिए और भोजन कीजिये । यहाँ रह कर—वास करके—इस वन को सुशोभित कीजिये । चित्रांग मृग कहता है—व्याध से पीडित मैं आपकी शरण में आया हूँ । आपके साथ मित्रता का अभिलाषी हूँ । हिरण्यक ने कहा—आपने मित्रता तो हमारे साथ बिना प्रयास के प्राप्त कर ली है ।

यतः=क्योंकि—

औरसं कृत-सम्बन्धम्·········मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् ॥१२४॥

समास—औरसम्=उरसः जातम्—औरसम् । कृत-सम्बन्धम्—कृतः सम्बन्धः येन तत्=बहुव्रीहि । वंश-क्रमागतम्—वंशस्य क्रमेण (सह) आगतम् इति= तत्पुरुष ।

अन्वय—औरसं कृत-संबंधं तथा वंश-क्रम-आगतं, व्यसनेभ्यः च रक्षकम् इति चतुर्विधं मित्रं ज्ञेयम् ।

शब्दार्थ—औरसम्=शरीर के सम्बन्ध से उत्पन्न-पुत्रादि । कृत-संबंधम्= विवाह आदि रूप से संबंधी जन । वंश-क्रम-आगतम्=वंश-परम्परा से चले

कर्पूरमद नामक राजा है। वह दिशाओं के जीतने के उपक्रम में—सिलसिले में—यहाँ आया है और उसने अपनी छावनी—पड़ाव चन्द्रभागा नदी के किनारे डाल दिया है अर्थात् वह सेना सहित नदी के तट पर ठहरा हुआ है। प्रातःकाल उसे कर्पूर नामक सरोवर के समीप आ जाना चाहिए अर्थात् सुबह वह यहाँ आ जायगा—यह जनश्रुति—चर्चा—सुनी जाती है। अतएव सुबह तक यहाँ ठहरना भी भयप्रद ही होगा—यह सोचकर समयानुकूल कार्य करना चाहिये। यह सुनकर मन्थर कछुआ भय से कहता है—हम दूसरे सरोवर में जाना चाहते हैं। लघुपतनक काक और चित्रांग मृग कहने लगे—ऐसा ही हो अर्थात् यह ठीक है। तब हिरण्यक चूहा सोचकर कहता है—अन्य सरोवर में पहुँच जाने पर मन्थर की तो कुशल है अर्थात् वहाँ रक्षा हो जायगी, परन्तु स्थल—जमीन—पर जाते हुए के बचाव का क्या उपाय होगा अर्थात् इसका भी कोई उपाय सोचना चाहिए। यतः=क्यों कि—

अम्भांसि जल-जन्तूनाम्·············राज्ञां मन्त्री परं बलम् ॥ १२४ ॥

समास—जल—जन्तूनाम्=जलस्य जन्तवः=तत्पुरुष—तेषाम्। दुर्गे निवसन्ति इति दुर्गनिवासिनः=तत्पुरुष—तेषाम्। श्वापदादीनाम्=शुनः पदम्, इव पदं येषां ते=बहुव्रीहि—तेषाम्।

रूप—अम्भांसि=अम्भस्=जल=शब्द, नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन=अम्भः, अम्भसी, अम्भांसि। राज्ञाम्—राजन्—शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन—राज्ञः, राज्ञोः, राज्ञाम्।

अन्वय—जल—जन्तूनाम् अम्भांसि, दुर्ग—निवासिनां दुर्गम्, श्वापदादीनां स्वभूमिः, राज्ञां मन्त्री परं बलम्।

शब्दार्थ—जल—जन्तूनाम्=जलचरों का। दुर्ग—निवासिनाम्=किले में रहने वालों का। श्वापदादीनाम्=व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं का। परं बलम्=बड़ा बल है।

व्याख्या=जल में रहने वाले जीवों का बल जल है। किले में निवास करने वालों का बल दुर्ग है। व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं का बल अपना निवासस्थान होता है और राजाओं का बल उनकी सेना होती है।

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तम् ······छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥१२६॥

संधि-विच्छेद—गच्छाम्यहम्=गच्छामि+अहम् : छिद्रेष्वनर्थाः—छिद्रेषु + अनर्थाः—इ को य् और उ को व्=दोनों स्थान पर यण् संधि ।

अन्वय—अहं यावत् एकस्य दुःखस्य अर्णवस्य पारम् इव अन्त न गच्छामि तावत् द्वितीयं (दुःखं) मे समुपस्थितं (भवति) । छिद्रेषु अनर्थाः बहुलीभवन्ति ।

शब्दार्थ—अर्णवस्य पारम्=इव=समुद्र के पार के समान । छिद्रेषु=बुराइयों—कष्टों में । अनर्थाः=बुराइयां । बहुलीभवन्ति=बहुतायत से हुआ करती हैं ।

व्याख्या—मैं जब तक समुद्र के पार जाने के समान एक दुःख के पार नहीं पहुँच पाता हूँ, तब तक दूसरा दुःख उपस्थित हो जाता है अर्थात् एक दुःख का अन्त नहीं हो पाता, तब तक दूसरा आ घेरता है । (यही मालूम होता है) कि बुराइयों में अन्य बुराइयाँ अधिकता से हुआ करती हैं अर्थात् आपत्ति कभी अकेली नहीं आती है ।

भावार्थ—कोढ़ में खाज भी होती है ।

भावार्थ—गूँगा बहरा भी होता है ।

स्वाभाविकं तु यन्मित्रम् ······आपत्स्वपि न मुंचति ॥१२७॥

व्याख्या—सच्चा मित्र भाग्य से ही प्राप्त होता है । वह स्वाभाविक—सच्चा—मित्र आपत्तिकाल में भी साथ नहीं छोड़ता ।

न मातरि न दारेषु ······यादृङ् मित्रे स्वभावजे ॥१२८॥

सन्धि-विच्छेद—भाग्येनैवाभिजायते=भाग्येन+एव=वृद्धिसंधि । आपत्स्वपि=आपत्सु+अपि=उ को व्=यण् संधि ।

समास—अकृत्रिम-सौहार्दम्=अकृत्रिमं च तत् सौहार्दम्=कर्मधारय । आत्मजे=आत्मना जायते इति आत्मजः—तत्पुरुष—तस्मिन् ।

रूप—मातरि=मातृ=माता-शब्द, स्त्रीलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन—मातरि, मात्रोः, मातृषु । दारेषु=दारा-पत्नी-शब्द, पुल्लिंग, बहुवचनान्त, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन—दाराः, दारान् , दारैः, दारेभ्यः, दारेभ्यः, दाराणाम्, दारेषु हे दाराः । दारा-शब्द का अर्थ पत्नी है परन्तु यह शब्द पुल्लिंग और सदा बहुवचनान्त होता है । पुंसाम्-पुंस्-पुरुष-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति बहुवचन-पुंसः, पुंसोः, पुंसाम् ।

अन्वय—शोक-अराति-भय-त्राणं प्रीति-विश्रम्भ-भाजनं मित्रम् इति अक्षरद्वयम् इदं रत्नं केन सृष्टम्।

शब्दार्थ—शोक-अराति-भय-त्राणं=शोक रूपी शत्रु के भय से रक्षा करने वाला-बचाने वाला। प्रीति-विश्रम्भ-भाजनम्=प्रीति और विश्वास का पात्र। केन सृष्टम्=किसने बनाया।

व्याख्या—हिरण्यक चूहा कहता है—मित्र शोक को शांत करता, शत्रु के भय से रक्षा करता तथा प्रीति और विश्वास का पात्र होता है। "मित्र" यह दो अक्षर का शब्द रत्नके समान है। इसका निर्माता कौन है? तात्पर्य यह है कि दुःख कठिनाई-उपस्थित होने पर मित्र की सहानुभूति और सेवा ही दुःख को शांत कर देती है। दुश्मन के भी मित्र छक्के छुड़ा देता है। मित्र के प्रति अनन्य सौहार्द और विश्वास होता है, अतएव मित्र रत्नवत् है।

मित्रं प्रीति-रसायनं नयनयोः···तत्त्व-निकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥१३१॥

सन्धि-विच्छेद—नयनयोरानन्दनम्-नयनयोः+आनन्दनम्-विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग सन्धि। भवेन्मित्रेण-भवेत्+मित्रेण-त् को न्-व्यञ्जन संधि।

समास—सुख-दुःखयोः-सुखं च दुःखं च-सुख-दुःखम्-द्वन्द्व-तयोः। द्रव्याभिलाषाकुल=द्रव्यस्य अभिलाषया आकुल इति-तत्पुरुष। तत्त्व-निकष ग्रावा-तत्त्वस्य निकषग्रावा इति-तत्पुरुष-विपद् का विशेषण है।

रूप—चेतसः-चेतस्-चित्त-शब्द, नपुंसकलिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन-चेतसः, चेतसोः, चेतसाम्। सुहृदः-सुहृद्-मित्र शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति बहुवचन-सुहृत्, सुहृदौ, सुहृदः। तेषाम्-तत्-यद्-पुल्लिंग, सर्वनाम शब्द, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन-तस्य, तयोः, तेषाम्।

अन्वय—मित्रं नयनयोः प्रीति-रसायनं, चेतसः आनन्दनं, यत् (मित्रम्) मित्रेण सह सुखदुःखयोः पात्रं भवेत् तत् (मित्र) दुर्लभं। ये च अन्ये समृद्धि-समये द्रव्याभिलाषाकुलाः (ते) सुहृदः सर्वत्र मिलन्ति (किंतु) तेषां तत्त्व-निकष-ग्रावा विपत् एव।

शब्दार्थ—मित्रम्-सुहृत्। नयनयोः=नेत्रों को। प्रीति-रसायनम्=प्रीति के रसायन के समान-जिस प्रकार रसायन नेत्रों के लिए हितकर, शरीर पुष्टि कारक व मांसवर्धक, वीर्य वर्धक होता है-उसी प्रकार सच्चा मित्र नेत्र, मन, शरीर

प्रउपसर्ग-प्रविश्-प्रवेश करना-क्रिया, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन-प्रविवेश, प्रविविशतु, प्रविविशुः । उत्थाय-स्था-ठहरना, उत् उपसर्ग-उतस्था-उठना-क्रिया से त्वा प्रत्यय, उपसर्ग होने से त्वा को य।

शब्दार्थ—मोचयितुम्=मुक्त कराने-छुड़ाने-को। आत्मान दर्शयतु=स्वय को दिखावे। चञ्च्वा किमपि विलिखतु=चोंच से कुरेदने लगे—चोंच मारने लग जाय। परित्यज्य=त्यागकर। मृग-मांसार्थिना=हिरण के मांस के अभिलाषी—व्याध से। सत्वरं गन्तव्यम्=शीघ्र जाने का प्रयत्न करना होगा अर्थात वह वहाँ अवश्य जायगा। छेत्स्यामि=काट कर दूँगा। सन्निहिते लुब्धके=शिकारी के पास होने पर। भवद्भ्याम्-पलायितव्यम्=आप दोनों को भाग जाना—उड़ च हो जाना—चाहिए। श्रान्तः=थका हुआ। अधस्तात् उपविष्टः=नीचे बैठ गया। कर्तरिकाम्=छुरी को। आसन्नम्=समीप। प्रत्यावृत्य=लौट कर। असमीक्ष्य कार्यकारिणः=बिना सोचे समझे कार्य करने वाले का। अध्रुव-लाभाय=अनिश्चित लाभ के लिए।

व्याख्या—इस प्रकार बहुत विलाप कर (मन्थर के पकड़े जाने पर) हिरण्यक (चूहा) चित्रांग हरिण और लघुपतनक-काक से कहता है—जब तक यह शिकारी वन से नहीं निकलता है, तब तक मन्थर-कछुए को मुक्त कराने-छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। उन दोनों ने कहा—जो करने के योग्य हो उसे शीघ्र कहिये। हिरण्यक कहता है-चित्रांग जल के समीप जाकर अपने को मुर्दे के समान दिखावे। काक उसके ऊपर बैठ कर चोंच से उसे नोचने लग जाय। निश्चय ही हरिण के मांस का अभिलाषी यह शिकारी मन्थर को छोड़कर वहां शीघ्र जायगा। तब मैं मन्थर के बन्धन काट दूँगा। शिकारी के पास आने पर तुम दोनों भाग जाना। चित्रांग और लघुपतनक ने शीघ्र जाकर (हिरण्यक द्वारा बताये हुए) कार्य को किया। थका हुआ वह व्याध पानी पीकर वृक्ष के नीचे बैठा और उसने मृतवत् मृग को देखा। वह प्रसन्न हो मृग के समीप चला। इतने में ही हिरण्यक ने आकर मन्थर के बन्धन काट दिये। मन्थर शीघ्र ही जलाशय में घुस गया। समीप आते हुए शिकारी को देखकर मृग उठकर भाग गया। शिकारी लौटकर ज्यों ही वृक्ष के नीचे गया, त्यों ही कछुए को न देख कर मन में सोचने लगा—बिना विचार किये कार्य करने वाले मेरे लिए यह ठीक फल मिला, जो प्राप्त वस्तु को त्याग कर अनिश्चित वस्तु को प्राप्त करने के लिए गया।

रूप—ऊचुः ब्रू—कहना—बोलना—क्रिया, परोक्ष भूतकाल, परस्मैपद, अन्य पुरुष, बहुवचन=उवाच, ऊचतुः, ऊचुः। श्रोतुम्-श्रु—सुनना-क्रिया,—तुम (तुमुन्) प्रत्यय। इच्छामः—इष् (इच्छ्) चाहना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, बहुवचन—इच्छामि, इच्छावः, इच्छामः। शृणुत-श्रु—सुनना—क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, बहुवचन—शृणु, शृणुतम, शृणुत।

शब्दार्थ—ऊचुः=बोले—कहने लगे। श्रुतः=सुना, सुहृद्भेदम=मित्रभेद को। श्रोतुम् इच्छामः=सुनना चाहते हैं। तावत्—तो, पहले। शृणुत=श्रवण कीजिए—सुनियेगा।

व्याख्या—राजकुमारों ने कहा—हे आर्य-महोदय ! हमने मित्रलाभ भली भाँति सुन लिया। इस समय हम सुहृद्भेद सुनना चाहते हैं। अखिल नीति-शास्त्र के वेत्ता पं० विष्णुशर्मा ने कहा—आप लोग इस समय सुहृद्भेद सुनियेगा।

यस्य अयम् आद्यःश्लोकः=जिसका यह पहला श्लोक है।

वर्धमानो महान्······जम्बुकेन विनाशितः ॥१॥

सन्धि-विच्छेद—वर्धमानो महास्नेहो—वर्धमानः+महास्नेहः—यहाँ दोनों स्थानों पर विसर्गों को स्, फिर स् को र, तत्पश्चात् र को उ, विसर्ग सन्धि, फिर अ+उ=ओ—गुण सन्धि।

समास—महास्नेहः—महान् च असौ स्नेहः—इति महास्नेहः—कर्मधारय समास। मृगेन्द्रवृषयोः—मृगाणाम इन्द्रः मृगेन्द्रः—षष्ठी तत्पुरुष, मृगेन्द्रः च वृषश्च मृगेन्द्र—वृषौ—द्वन्द्व समास, तयोः—मृगेन्द्र—वृषयोः।

अन्वय—वने मृगेन्द्र-वृषयोः वर्धमानः महास्नेहः अतिलुब्धेन पिशुनेन जम्बुकेन विनाशितः।

शब्दार्थ—मृगेन्द्र-वृषयोः=पिंगल नामक सिंह और सजीवक नाम बैल का। वर्धमान=बढ़ा हुआ। महास्नेहः=महान् स्नेह, ... । अतिलुब्धेन=अत्यन्त लालची। पिशुनेन=चुगलखोर से। ... दिया—छुड़ा दिया गया।

... में ... क नाम बैल का आपस में ... खोर गीदड़ ने उस स्नेह ... ार ...

अधोऽधः························सर्व एव दरिद्रति ॥ २ ॥

संधि-विच्छेद—नोपचीयते—न+उपचीयते—गुण सन्धि । उपर्युपरि—उपरि+उपरि—इ को य—यण् संधि ।

रूप—पश्यतः—दृश—पश्—देखना—क्रिया का शतृ प्रत्ययान्त रूप पश्यत्—देखता हुआ—शब्द षष्ठी विभक्ति, एकवचन—पश्यतः, पश्यतोः, पश्यताम् । महिमा—महिमन्—गौरव—शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन—महिमा, महिमानौ, महिमानः । उपचीयते—उप उपसर्ग, चि—चुनना—इकट्ठा करना—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—उपचीयते, उपचीयेते उपचीयन्ते ।

अन्वय—अधः अधः पश्यतः कस्य (पुरुषस्य) महिमा न उपचीयते, उपरि उपरि पश्यतः सर्वः एव दरिद्रति ।

शब्दार्थ—अधः अधः=नीचे की ओर अर्थात् अपने से छोटे मनुष्यों की तरफ पश्यतः=देखते हुए । न उपचीयते=नहीं बढ़ जाता अर्थात् सब का बढ़ ही जाता है । उपरि उपरि पश्यतः=ऊपर की ओर अर्थात अपने से अधिक धनवानों को देखते हुए । सर्व एव दरिद्रति=अपने को सब ही गरीब समझते हैं ।

व्याख्या—अपने से छोटों अर्थात् कम धन वालों को देखकर किस का गौरव नहीं बढ़ जाता अर्थात् सभी का बढ़ जाता है—सभी अपने को धनवान् समझते हैं । परन्तु ऊपर की ओर अर्थात अपने से बड़ों—अधिक धनवानों को देखकर सभी पुरुष दरिद्रता का अनुभव करते हैं अर्थात् स्वय को दरिद्री समझते हैं ।

अपरं च=और भी—

ब्रह्म—हापि नरः पूज्यः·········निर्धनः परिभूयते ॥३॥

संधि-विच्छेद—ब्रह्महापि, यस्यास्ति—ब्रह्महा+अपि, यस्य+अस्ति=दीर्घ संधि । शशिनस्तुल्यवंशोऽपि=शशिनः+ तुल्यवंशो+अपि=विसर्ग को स विसर्ग संधि, तत् पश्चात् अ का पूर्वरूप—पूर्वरूप सन्धि—यदि ए या ओ के बाद अ आता है तो उसका लोप कर देते हैं और उसके स्थान पर (ऽ) ऐसा चिन्ह लगा देते हैं ।

समास—ब्रह्महा=ब्रह्माणं हन्ति इति ब्रह्महा=द्वितीया तत्पुरुष । निर्धनः=निर्गतं धनं यस्य सः=बहुव्रीहि ।

रूप—शशिनः—शशिन्—इन्नन्त शब्द—चन्द्रमा—पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, , शशिनोः, शशिनाम् । परिभूयते—भू—होना परि उपसर्ग,

अन्वय—अलब्ध (धन) च एव लिप्सेत, लब्धं च अव क्षयात् रक्षेत्, रक्षितं सम्यक् वर्धयेत्, वृद्धं (धनं) तीर्थेषु निक्षिपेत् ।

शब्दार्थ—अलब्धं धनं च एव=अप्राप्त धन को । लिप्सेत्=प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए । प्राप्त हुए धन की । अवक्षयात्=फिजूलखर्चा, चोरी आदि से । रक्षितं वर्धयेत्=रक्षित–संचित–धन को व्यापार आदि द्वारा बढाना चाहिए । सम्यक् वृद्धम्=और भलि भाँति वृद्धि को प्राप्त धन को । तीर्थेषु निक्षिपेत्=विद्वानों और सत्पात्रों को दान देना चाहिये ।

व्याख्या—सर्व प्रथम धन–प्राप्ति का उपाय सोच कर धनोपार्जन करना ही पुरुष का पौरुष है । जब धन–प्राप्ति होने लगे तब अनावश्यक व्यय, चौर्य आदि नाश से उसकी रक्षा करना पुरुष का परम कर्त्तव्य है । जब मानव इस प्रकार धन का संरक्षण करने–संचय करने–में समर्थ हो जाता है तब उस धन को व्यापार आदि से बढ़ाना चाहिए और जब धन की खूब वृद्धि हो जाय तब उस धन को विद्वानों और सत्पात्रों को दान देना चाहिए तथा सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति के लिए दान दे देना ही मनुष्य का मनुष्यत्व है ।

भावार्थ—धन–उपार्जन, धन–संरक्षण एवं धन–संचय ही पुरुष का पौरुष है ।

तत्पश्चात्—

भावार्थ— जब जल बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम ।
दोऊ हाथ उलीचिये यही स्याना काम ।। महात्मा कबीर)

यतो लब्धुमनिच्छतः······निष्प्रयोजन एव सः ॥

संधि-विच्छेद—अनिच्छतोऽनुद्योगात्–पूर्वरूप संधि । लब्धस्यापि रक्षितस्य= लब्धस्य+अपि=दीर्घ संधि । अपि+अरक्षितस्य=यण् संधि–इ, ई, उ, ऊ ऋ या लृ के बाद भिन्न स्वर आते हैं । तो इ ई को य्, उ ऊ को व, ऋ को रेफ (र्) और लृ को ल् हो जाता है । अवर्धमानश्चार्थ —अवर्धमानः+च+अर्थः—यहाँ पहले विसर्ग को स् हुआ फिर स् को श् हुआ है–व्यंजन संधि–नियम–यदि सकार या तवर्ग के पूर्व या पश्चात् शकार या चवर्ग आते हैं तो स् को श् और तवर्ग को क्रमशः चवर्ग हो जाता है । स्वल्पव्ययो+अपि–पूर्वरूप संधि । अपि+अवनवत्=

गया और न धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय कार्यों में तो फिर मक्खीचूस बने रहने से उस धन से क्या लाभ हुआ फिर तो धनी होना और न होना बराबर ही है।

भावार्थ—दानं भोगो नाशः तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

दान, भोग और नाश धन की तीन गतियाँ होती हैं, यदि निजी कार्यों में, दान आदि में धन का उपयोग न किया गया तो जोड़ जोड़ कर मर जायेंगे, माल लँवाई खायेंगे।

तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा है—

धनेन किं यो न ददाति……किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥४॥

संधि-विच्छेद—यो न—यः+न=विसर्ग को स्, फिर स् को रु, तत्पश्चात् रु को उ—विसर्ग संधि, फिर अ+उ=ओ=गुणसंधि।

समास—जितेन्द्रियः=जितानि इन्द्रियाणि येन सः=बहुव्रीहि।

रूप—ददाति=दा—देना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—ददाति, दत्तः, ददति। आचरेत्=चर्—चलना—घूमना, आ उपसर्ग, आ चर्=आचरण करना—क्रिया, विधिलिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन आचरेत्, आचरेताम्, आचरेयुः। आत्मना—आत्मन्—अपना या आत्मा—शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन आत्मना, आत्मभ्यां, आत्मभिः। भवेत्—भू (भव्) होना क्रिया, विध्यर्थ, परस्मैपद, एकवचन—भवेत्, भवेताम्, भवेयुः।

अन्वय—(तेन) धनेन किम्, (यः पुरुषः) यत् न ददाति न च अश्नुते। तेन बलेन किम्, यः (पुरुषः) (तेन) रिपून् न बाधते। (तेन) श्रुतेन किम्, यः धर्मं न आचरेत्। (तेन) आत्मना किं यः जितेन्द्रियः न भवेत्।

शब्दार्थ—तेन धनेन किम्=उस धन से क्या लाभ। यः=जो पुरुष। तत् धनम्=उस धन को। न ददाति=न दान देता है। न च अश्नुते=और न स्वयं उसका उपभोग करता है अर्थात् दान न देने और स्वयं उपभोग न करने से धन का लाभ नहीं, धन जैसा हुआ वैसा ही न हुआ—दोनों दशाओं में समान ही है। (तेन) बलेन किम्=उस बल—शक्ति—से क्या लाभ। यः=जो पुरुष। रिपून् न बाधते=शत्रुओं को पीड़ा नहीं पहुँचाता—वैरियों का विनाश नहीं करता। श्रुतेन किम्=उस ज्ञान से क्या लाभ। यः=जो पुरुष ज्ञानी—शास्त्रज्ञाता—होकर भी।

धर्मं न आचरेत=धर्म का आचरण नहीं करता—धार्मिक कार्यों में प्रवृत्त नहीं होता। तेन आत्मना किम्=उस आत्मा से क्या लाभ। यो जितेन्द्रियः न भवेत्= जो मनुष्य जितेन्द्रिय न हुआ—अपनी इन्द्रियों पर विजयी न हुआ।

व्याख्या—विद्वानों ने उस धन को व्यर्थ कहा है, जिस धन को धनी मनुष्य न किसी को दान देता है और न उसका स्वयं ही उपभोग करता है। उस बल से क्या लाभ जो शत्रुओं को पीड़ित—परास्त—करने में उपयुक्त नहीं किया जाता—उस बल का होना न होना समान ही है। इसी प्रकार उस शास्त्रीय ज्ञान से क्या लाभ जिसके द्वारा धार्मिक आचरण—धार्मिक कार्य—नहीं किया जाता तथा वह शरीर व्यर्थ है जो जितेन्द्रिय नहीं अर्थात जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं की। उस प्राणी का संसार में होना न होना बराबर ही है।

भावार्थ—धन, बल और ज्ञान का सदुपयोग करना एवं जितेन्द्रिय होना ही जीवन का सार है।

जल-बिन्दु-निपातेन .... धर्मस्य च धनस्य च ॥ ६ ॥

समास—जलबिन्दु-निपातेन—जलस्य बिन्दु इति जलबिन्दुः, जल बिन्दोः निपातः इति जलबिन्दु-निपातः तत्पुरुष—तेन।

रूप—पूर्यते-पृ-पूरा करना—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, अन्य पुरुष एकवचन—पूर्यते, पूर्येते, पूर्यन्ते।

अन्वय—(यथा) जल-बिन्दु-निपातेन क्रमशः घटः पूर्यते (तथैव) स एव हेतुः सर्व विद्यानां, धर्मस्य, धनस्य च हेतुः अस्ति।

शब्दार्थ—जल-बिन्दु-निपातेन=जल की एक एक बूँद गिरने से। क्रमशः= धीरे-धीरे। घटः पूर्यते=घड़ा भर जाता है। सर्व विद्यानाम्=सम्पूर्ण विद्याओं का। धर्मस्य धनस्य च—धर्म और धन का भी। स एव हेतुः=(वह एक) बूँद ही कारण है अर्थात जैसे बूँद बूँद से घट भर जाता है, इसी प्रकार विद्या, धन और धर्म भी धीरे धीरे संचित किए जाते हैं।

व्याख्या—यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध एवं सर्वमान्य है कि बूँद-बूँद से घड़ा भर जाता है उसी प्रकार विद्या, धन और धर्म भी धीरे धीरे ही संचित किये जा सकते हैं एक दिन में कोई भी मनुष्य विद्वान, धर्मात्मा एवं धनी नहीं हो सकता है।

भावार्थ—क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च चिन्तयेत ।
क्षणे नष्टे कुतो विद्या कणे नष्टे कुतो धनम् ॥
कन कन जोरे मन जुरै यह जानत सब कोय ।
बूँद बूँद से घट भरे रीतो निकसत होय ॥

दानोपभोग-रहिताः·············**श्वसन्नपि न जीवति ॥ ७ ॥**

संधि-विच्छेद—कर्मकार-भस्त्रेव-कर्मकार-भस्त्रा+इव-यदि अ, या, आ के बाद लघु या गुरु इ, उ या ऋ आते हैं तो दोनों को मिलाकर ए, ओ, अर् हो जाता है—गुण संधि । श्वसन्नपि-श्वसन्+अपि-यदि ङ्, ण् या न् के पहले ह्रस्व स्वर हो और आगे कोई स्वर हो तो ङ्, ण् और न, को द्वित्व (डबल) हो जाता है—व्यंजन संधि ।

समास—दानोपभोग-रहिताः—दानश्च उपभोगश्च-दानोपभोगौ-द्वन्द्व समास-दानोपभोगाभ्यां रहिताः-इति दानोपभोग-रहिताः-तत्पुरुष । कर्मकार-भस्त्रा-कर्म करोति इति कर्मकारः, कर्म-कारस्य भस्त्रा इति कर्मकार-भस्त्रा-षष्ठी तत्पुरुष ।

रूप—यस्य-यत्-जो-सर्वनाम शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन-यस्य, ययोः, येषाम् । यान्ति-या-प्राप्त होना-जाना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष बहुवचन-याति, यातः, यान्ति । श्वसन् श्वसत्-शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-श्वसन् श्वसन्तौ, श्वसन्तः ।

अन्वय—यस्य (पुरुषस्य) दिवसाः दानोपभोग-रहिताः वै यान्ति । सः (पुरुषः) कर्मकार-भस्त्रा इव श्वसन् अपि न जीवति ।

शब्दार्थ—यस्य पुरुषस्य=जिस पुरुष के । दानोपभोग-रहिताः=(धन होने पर भी) दान न करने और उस धन का स्वयं उपभोग न करने से । यान्ति=जाते हैं-व्यतीत होते हैं । कर्म-कार-भस्त्रा इव=लुहार की धौंकनी के समान । श्वसन् अपि=साँस लेता हुआ-जीवित होता हुआ-भी । न जीवति=जिन्दा नहीं है अर्थात् मरे हुए के समान है ।

व्याख्या—जो मनुष्य धनवान् तो है पर उस धन को धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय कार्यों के लिए दान नहीं देता, और न उस धन का स्वयं ही उप-

नामक घने जंगल में पहुंचा, तब संजीवक का घुटना टूट गया और वह वहीं गिर गया। उसे देख कर वर्धमान सोचने लगा।

करोतु नाम नीतिज्ञः·············यद् विधेर्मनसि स्थितम् ॥८॥

सन्धि-विच्छेद-पुनरन्यदेवास्य-पुनः+तत्+एव+अस्य-विसर्ग का सु-विसर्ग सन्धि, त् को द=व्यञ्जन सन्धि, दीर्घ सन्धि। विधेर्मनसि-विधेः+मनसि-यदि स् अथवा विसर्ग के पहले अ और आ के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर हो और आगे स्वर अथवा मृदु व्यञ्जन हो तो उसको रेफ (र) हो जाता है।

समास—नीतिज्ञः नीतिं जानाति इति नीतिज्ञ=तत्पुरुष।

रूप—करोतु—कृ=करना, क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एक वचन-करोतु-कुरुतात, कुरुताम, कुर्वन्तु। विधेः-विधि-ब्रह्मा-शब्द पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन-विधेः, विध्योः, विधीनाम। मनसि-मनस्-मन-शब्द, नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति-एकवचन-मनसि, मनसी, मनस्सु।

अन्वय—नीतिज्ञः इतः ततः व्यापारं करोतु नाम, पुनः अस्य तत् एव फलं यत् विधेः मनसि स्थितम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—नीतिज्ञ-नीति-नियम अर्थात् उचित-अनुचित का ज्ञाता। व्यापारं करोतु नाम=भले ही व्यापार करे। यत् विधेः मनसि स्थितम्=जो कि विधाता के मन में है अर्थात मनुष्य कार्य करने में तो स्वतन्त्र है, परन्तु फल प्राप्ति में नहीं, फल विधाता के हाथ में है।

व्याख्या—नीति-नियम-से भली भाँति परिचित मनुष्य भले ही [illegible] परिश्रम करे, परन्तु फल-परिणाम-उसे वही प्राप्त होता है, जो कि विधाता के मन में है, अर्थात् मनुष्य कार्य करने में तो स्वतन्त्र है, पर फल उसके आधीन नहीं, वह विधाता के हाथ है।

भावार्थ—कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।—(श्रीम. भगवद्गीता) कर्म करने में तेरा अधिकार है फल-प्राप्ति में नहीं।

इति संचिन्त्य··· ··· गुरुतरे भरे कृत्वा संस्थितः।

समास—महाकानन-महत् कानन—कर्म[illegible], महाकाय-बहुव्रीहि[illegible]।

रूप—[illegible] उपसर्ग, [illegible] उपसर्ग, [illegible]

व्याख्या—यदि मनुष्य का जीवन शेष है तो उसकी मृत्यु नहीं हो सकती है। समुद्र में डूबे हुए, पर्वत से गिरे हुए एवं तक्षक नामक भयंकर सर्प द्वारा काटे हुए पुरुष के मर्मस्थानों की रक्षा आयु ही करती है अर्थात् यदि जीवन शेष है तो बड़ी से बड़ी विपत्ति एवं दुर्घटना का शिकार होने पर भी प्राणी सुरक्षित रहता है—मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।

भावार्थ—जाको राखै साइयाँ मारि न सकि है कोय।
काल न बाँका करि सकै जो जग वैरी होय ॥

नाकाले म्रियते जन्तुः·············प्राप्तकालो न जीवति ॥ १० ॥

संधि विच्छेद—शर-शतैरपि—शर-शतैः+अपि-विसर्ग को रेफ-विसर्ग संधि। कुशाग्रेणैव—कुशा+अग्रेण+एव—दीर्घ और वृद्धि संधि।

समास—अकाले—न काल इति अकालः तस्मिन् अकाले—नञ्—निषेध वाचक तत्पुरुष। शरशतैः—शराणां शतैः—षष्ठी तत्पुरुष। कुशाग्रेण—कुशायाः अग्रः इति कुशाग्रः—तेन—तत्पुरुष। प्राप्तः कालः—प्राप्त-कालः यं सः—प्राप्त-कालः—बहुब्रीहि।

रूप—म्रियते—मृ—मरना—क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—म्रियते, म्रियेते, म्रियन्ते। विद्धः—व्यध्—बींधना—क्रिया, क्त (त) प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, व्यध् के य को इ होकर विद्धः, विद्धौ, विद्धाः। संस्पृष्टः—सम् उपसर्ग, स्पृश—छूना—क्रिया, क्त (त) प्रत्यय।

अन्वय—शर-शतैः अपि विद्धः जन्तुः अकाले न म्रियते। प्राप्तकालः तु कुशाग्रेण एव संस्पृष्टः न जीवति।

शब्दार्थ—शर-शतैः अपि=सैंकड़ों तीक्ष्ण बाणों से भी। विद्धः जन्तुः= बिंधा हुआ प्राणी। अकाले न म्रियते=काल—मृत्यु—न होने पर नहीं मरता। प्राप्त-कालः=मृत्यु का समय आ जाने पर। कुशाग्रेण एव=कुशा के अग्र भाग से ही। संस्पृष्टः=स्पर्श किये जाने पर। न जीवति=जीवित नहीं रहता अर्थात् मर जाता है।

व्याख्या—यह बात सही है कि जब तक प्राणी का काल—मृत्यु—नहीं है, तब तक उसके शरीर को चाहे सैंकड़ों ही बाण क्यों न बींध दें, वह नहीं मरता। पर जब मृत्यु आती है तो कुशा के अग्र भाग के छूने से ही उसकी मृत्यु हो जाती है।

भावार्थ—मनुष्य अल्प शक्ति है। महती शक्ति कोई अन्य है।

ततो दिनेषु गच्छत्सु·········अनुभवन् निवसति।

समास—हृष्ट-पुष्टाग.–हृष्टानि पुष्टानि च अंगानि यस्य सः–हृष्ट-पुष्टागः=बहुव्रीहि। स्वभुजोपार्जित राज्य-सुखम्–स्वभुजाभ्याम् उपार्जितम्–इति स्वभुजोपार्जितम्=तत्पुरुष, स्वभुजोपार्जित यत् राज्य तस्य सुखम्।

रूप—गच्छत्सु–गच्छत्–शतृ प्रत्ययान्त जाता हुआ–शब्द, पुलिंग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन–गच्छति, गच्छती., गच्छत्सु। ननाद–नद्–शब्द करना—क्रिया, परस्मैपद, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन–ननाद, नेदतुः, नेदुः।

शब्दार्थ—दिनेषु गच्छत्सु=दिनों के जाने–बीतने–पर। स्वेच्छाहार विहार कृत्वा=अपनी इच्छा के अनुसार भोजन और भ्रमण करके। भ्राम्यन=घूमता हुआ। हृष्ट-पुष्टांगः=मोटा ताजा। ननाद=शब्द किया–रंभाया। स्वभुजोपार्जित-राज्य सुखम्=अपनी भुजाओं से प्राप्त किये राज्य के सुख को।

व्याख्या—तत्पश्चात् दिन व्यतीत होने पर संजीवक इच्छानुसार भोजन—भ्रमण करके मोटा ताजा हो गया और जंगल में घूमते हुए जोर से रंभाने लगा। उस वन में पिंगलक नामक सिंह अपने भुजबल से प्राप्त किये राज्य के सुख का अनुभव करते हुए निवास करता है

तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा है—

नाभिषेको न संस्कार ······· मृगेन्द्रता ॥१२॥

समास—विक्रमार्जितराज्यस्य–विक्रमेण अर्जितं राज्यम् येन स तस्य बहुव्रीहि मृगेन्द्रता–मृगाणाम् इन्द्रः–मृगेन्द्रः–तत्पुरुषः मृगेन्द्रस्य भाव. मृगेन्द्रता।

रूप—क्रियते–कृ–करना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल अन्य पुरुष, एकवचन–क्रियते, क्रियेते, क्रियन्ते।

अन्वय—मृगैः सिंहस्य न संस्कारः न अभिषेकः क्रियते। (किन्तु) विक्रमार्जित-राज्यस्य (सिंहस्य) स्वयम् एव मृगेन्द्रता (अस्ति)।

शब्दार्थ—अभिषेकः=राज्याभिषेक। विक्रमार्जितराज्यस्य=पराक्रम से राज्य प्राप्त करने वाले को। मृगेन्द्रता=पशुओं का स्वामित्व।

व्याख्या—जंगल के पशु सिंह का संस्कार, राज्याभिषेक नहीं करते हैं, परन्तु सिंह अपने भुजबल से जंगल का स्वामित्व–राज्य–प्राप्त करता है।

के सेवक तो स्वामी के हित की बात सोचता है। हम मन से स्वामी के सेवक नहीं अतः यह विचार करना कि बिना जल पिये हमारा स्वामी यहा क्यों है—इस बात को सोचना व्यर्थ है, क्योंकि इस राजा ने बिना अपराध के ही हमारा तिरस्कार किया है और अनादर प्राप्त कर हमने महान् दुःख भोगा है।

सेवया धनमिच्छद्भिः·········तदपि हारितम् ॥१३॥

संधि-विच्छेद—यच्छरीरस्य–यत+शरीरस्य–यदि सकार या तवर्ग से पहले या पीछे श या चवर्ग आते हैं तो स को श और तवर्ग क्रमशः च वर्ग हो जाता है–त् को च् हो जाने पर यच+शरीरस्य–फिर यदि पद के अन्त में वर्ग के प्रथम चार वर्गों के बाद यदि श् हो और श के बाद यदि कोई स्वर या ह, य, व, र, ल में से कोई अक्षर हो तो श को विकल्प से छ हो जाता है–दोनों स्थानों पर व्यंजन सन्धि।

रूप—इच्छद्भिः–इच्छत्–चाहता हुआ–शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन इच्छता, इच्छद्भ्यां, इच्छद्भिः। पश्य–दृश्–पश्य्–देखना–क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन–पश्य–पश्यतात्, पश्यतम्, पश्यत।

अन्वय—सेवया धनम् इच्छद्भिः सेवकैः यत् कृतं तत् पश्य। शरीरस्य यत् स्वातन्त्र्यम् (अस्ति) तत् (स्वातन्त्र्यम्) अपि मूढैः (सेवकैः) हारितम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—सेवया=सेवा द्वारा। धनम् इच्छद्भिः=धन चाहने वाले। सेवकैः= नौकरों ने। यत्कृतम्=जो कुछ किया। तत् पश्य=उसे देखो–उस पर गौर करो। शरीरस्य यत् स्वातन्त्र्यम् अस्ति=शरीर की जो स्वतन्त्रता है। तदपि हारितम्=वह भी हार दी अर्थात् खो दी। भाव यह है कि सेवक स्वतन्त्रता खोकर सेवा कर सकता है।

व्याख्या—सेवा करके धन के अभिलाषी सेवकों ने जो कुछ किया, उस पर ज़रा दृष्टिपात तो कीजिए। शरीर की जो स्वतन्त्रता थी, इन मूर्खों ने सेवक होने के नाते उसे–स्वतन्त्रता को–भी तिलांजलि दे दी अर्थात् सेवक बन कर परतन्त्र हो गये।

भावार्थ—स्वातन्त्र्य विनाश का दूसरा नाम ही सेवा है।

समास—प्रवचनपटुः-प्रवचने पटुः इति-सप्तमी तत्पुरुष । सेवा धर्मः-षष्ठी तत्पुरुष । परमगहनः- परमः चासौ गहनः इति-कर्मधारय । अगम्यः—न गम्य इति-नञ् -निषेधवाचक तत्पुरुष ।

रूप—क्षान्त्या-क्षान्ति-क्षमा-शब्द, स्त्रीलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन-क्षान्त्या, क्षान्तिभ्या, क्षान्तिभिः । योगिनाम्-योगिन्-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन-योगिनः, योगिनोः, योगिनाम् ।

अन्वय—सेवकः मौनात् मूर्खः (भवति) प्रवचनपटु वातुल वा जल्पकः (कथ्यते) क्षान्त्या भीरुः, यदि न सहते प्रायशः अभिजातः न, नियत पार्श्वे वसति (तदा) धृष्टः, दूरतः च अप्रगल्भः (कथ्यते) सेवाधर्म परमगहन, अत योगिनाम् अपि अगम्यः (अस्ति) ।

शब्दार्थ—मौनात=चुपचाप रहने से । प्रवचनपटुः=बातचीत करने में अधिक चतुर होने से । वातुल वा जल्पक=बकवादी तथा उन्मत्त । क्षान्त्या=क्षमाशील होने से । भीरुः=कायर । यदि न सहते=यदि सहनशील नहीं है तो । अभिजातः न=कुलीन या नीतिज्ञ नहीं माना जाता है । यदि नियत पार्श्वे वसति=यदि स्वामी के पास निरन्तर रहता है तो । धृष्ट=ढीठ । दूरत=यदि सेवक स्वामी से दूर रहता है तो । अप्रगल्भ=घमंडी कहलाता है । सेवाधर्म=सेवा का कार्य । परमगहन=बड़ा ही कठिन है । योगिनाम् अपि अगम्य=जो योगियों के लिये भी कठिन है अर्थात् योगियों द्वारा भी पालन नहीं किया जा सका ।

व्याख्या—यदि सेवक राजदरबार में राजा के समक्ष मौन-चुपचाप-रहता है तो वह मूर्ख समझा जाता है और यदि वह बोलने में चतुर है-अधिक बोलता है तो वातुल या पागल समझा जाता है । यदि सेवक क्षमाशील है तो भीरु-डरपोक और यदि असहिष्णु-असहन शील है तो अकुलीन-नीच घर का और अनीतिज्ञ समझा जाता है । वह सदा राजा के समीप रहने से ढीठ और दूर रहने से घमंडी कहलाता है । इसलिये सेवा का कार्य बड़ा ही कठिन है, जो कि इस प्रकार के गुणों को सहन करने वाले योगी लोगों के लिये भी कठिन है ।

भावार्थ—सेवक की सब प्रकार से निन्दा ही निश्चित है ।
[illegible] सत्य ही यह है—

समास—परमेश्वरा परमाश्च ते ईश्वरा इति—परमेश्वरा =कर्मधारय ।

रूप—सेव्यन्ते—सेव्—सेवा करना—क्रिया—कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन—सेव्यते, सेव्येते, सेव्यन्ते । पूरयन्ति—पूर—पूर्ण करना—क्रिया, परस्मैपद, अन्य पुरुष, बहुवचन—पूरयति, पूरयतः, पूरयन्ति ।

शब्दार्थ—परमेश्वरा=स्वामी लोग । यत्न=यत्नपूर्वक । नाम कथम् न सेव्यन्ते=क्यों न सेवे जायं अर्थात स्वामियों की सेवा क्यों न की जाय । अचिरेण=शीघ्र ही । मनोरथान पूरयन्ति=सेवकों के मनोरथ पूर्ण कर देते हैं ।

व्याख्या—करटक का लम्बा-चौड़ा व्याख्यान सुनकर दमनक बोला—यत्नपूर्वक स्वामियों की सेवा क्यों नहीं करनी चाहिए अर्थात अवश्य करनी चाहिए । स्वामी सेवा से शीघ्र ही प्रसन्न होकर सेवक की समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं ।

भावार्थ—सर्वभाव से स्वामी की सेवा करने से सेवक सदा सुखी रहता है ।

अन्यत् च पश्य=और भी देखो—

पुनः सेवा-विहीनानाम् ·························· जि-वारण-वाहिनी ॥ १८ ॥

समास—सेवा-विहीनानाम्—सेवया विहीना इति—सेवा-विहीना —तृतीया तत्पुरुष—तेषाम् । चामरोद्धृत—सम्पदः—चामरेण उद्धृता, सम्पद इति—तत्पुरुष । उद्दण्ड—धवलच्छत्रम्—उद्दण्ड च तत् धवलं च छत्रम् इति—कर्मधारय । वाजि-वारण-वाहिनी—वाजिनः च वारणा, च—वाजिवारणाः—द्वन्द्व, वाजि-वारणानां वाहिनी इति—वाजि-वारण-वाहिनी—तत्पुरुष ।

अन्वय—सेवा-विहीनानाम् (सेवकानाम्) चामरोद्धृत—सम्पदः, उद्दण्ड-धवलच्छत्रम् तथा वाजि-वारण-वाहिनी कुतः

शब्दार्थ—सेवा विहीनानाम्=सेवा न करने वालों को । चामरोद्धृत-सम्पदः=चमर के इधर-उधर डुलाने से प्राप्त होने वाला ऐश्वर्य । उद्दण्ड-धवलच्छत्रम्=ऊंचे दण्ड वाला श्वेतछत्र । वाजि-वारण-वाहिनी=घोड़े और हाथियों की सेना । कुतः=कहां रखी है ?

व्याख्या—स्वामी की सेवा न करने वाले सेवकों को चमर के डुलाने से प्राप्त होने वाला ऐश्वर्य, ऊंचे दण्ड वाला श्वेत छत्र तथा घोड़े और हाथियों की सेना कहां से प्राप्त हो सकती है अर्थात् सेवक स्वामी के आश्रय से ही इन समस्त विभूतियों के ठाट-बाट का उपभोग कर सकता है, अन्यथा नहीं ।

शब्दार्थ—स्वामि-चेष्टा-निरूपणम्=स्वामी की चेष्टा-कार्य-को देखना। सेवकेन अवश्यं करणीयम्=सेवक को अवश्य करना चाहिये। सर्वस्मिन् अधिकारे= समस्त अधिकार पर। य एव नियुक्तः=जो नियुक्त किया गया है। अनुजीविना= नौकर द्वारा। पराधिकार-चर्चा=दूसरों के अधिकार-काम की चर्चा। सर्वथा न कर्त्तव्या=सब प्रकार से नहीं करनी चाहिए अर्थात् जो काम दूसरे सेवक का है, उसको कोई अन्य न करे।

व्याख्या—दमनक कहता है कि तब भी स्वामी के कार्यों पर दृष्टि रखना चाहिए अर्थात् स्वामी के कार्यों को सेवक को अवश्य देखना चाहिए।

करटक कहता है—स्वामी ने जिस प्रधान मन्त्री को सर्व-सत्ता-सब अधिकार दे रखा है, वह प्रधान मन्त्री इस पचड़े में पड़े अर्थात् यह सब प्रधान मन्त्री का कर्त्तव्य है न कि राजा के अन्य सेवकों का। इसलिए यह सर्वथा उचित है कि राजा के एक सेवक को राजा के दूसरे सेवक के अधिकार की चर्चा नहीं करनी चाहिए अर्थात् जिस नौकर को राजा ने जो काम सौंप दिया, वही काम उस सेवक को करना चाहिए अन्य नहीं।

पद्य=देखो—

पराधिकार-चर्चां······गर्दभस्ताडितो तया ॥१६॥

सन्धि-विच्छेद—गर्दभस्ताडित—गर्दभः + ताडितः—यदि विसर्ग के बाद च, छ, ट, ठ, त अथवा थ में से कोई अक्षर आगे होता है तो विसर्ग को क्रमशः श, ष या स हो जाता है—विसर्गसंधि।

समास—स्वामिहितेच्छया—स्वामिनः हितस्य इच्छा इति स्वामिहितेच्छा तया-षष्ठी तत्पुरुष।

रूप—कुर्यात्—कृ—करना—क्रिया, परस्मैपद, विधि लिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन—कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्युः। विषीदति—सद् (सीद) दुःख होना—क्रिया, वि उपसर्ग (द पहले होने से स को ष हो गया है) वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—विषीदति, विषीदतः, विषीदन्ति।

अन्वय—यः (सेवकः) स्वामि-हितेच्छया पराधिकार-चर्चां कुर्यात् स विषीदति तथा चीत्कारात् ताडितः गर्दभः।

शब्दार्थ—स्वामि हितेच्छया=स्वामी की भलाई की इच्छा से। पराधिकार-चर्चां कुर्यात्=दूसरे सेवक के काम की चर्चा करता है अर्थात् अन्य सेवक के

ा चाहिये। क्या तुम नहीं जानते हो कि मैं उसके (स्वामी के) घर की दिन-रात करता हूँ और यह बहुत काल से बेफिक्र होकर मेरा उपयोग नहीं जानता इसलिए अब वह मुझे भोजन देने में भी शिथिलता दिखाता-कम भोजन है। स्वामी कठिनाइयां देखे बिना नौकरों का कम आदर करते हैं अर्थात् स्वामी कठिनाइयां भोगते हैं, तभी वे नौकरों के वास्तविक उपयोग को समझते हैं।

गर्दभो ब्रूते=गधा कहता है। शृणु रे बर्बर=रे मूर्ख सुन।

याचते कार्यकाले······सः किंभृत्यः सः किंसुहृत्॥

अन्वय—यः कार्यकाले याचते सः किं भृत्यः किं सुहृत्।

शब्दार्थ—याचते=मांगता है। किंभृत्यः=नीच सेवक। सः किंसुहृत्=वह नीच मित्र है।

व्याख्या—जो सेवक अथवा मित्र काम पड़ने-काम अटकने-पर याचना करता-मांगता है। वास्तव में वह सेवक और मित्र दोनों ही नीच हैं।

कुक्कुरो ब्रूते=कुत्ता कहता है।

भृत्यान् संभाषयेत्·········सः किंप्रभुः॥२७॥

अन्वय—यः (प्रभुः) तु भृत्यान् कार्यकाले संभाषयेत् सः किंप्रभुः (अस्ति)।

शब्दार्थ—भृत्यान्=नौकरों से। संभाषयेत्=संभाषण-बात-चीत करनी चाहिये। किं प्रभुः-कुत्सित-नीच-स्वामी है।

व्याख्या—केवल काम पड़ने पर ही नौकरों से बात-चीत करनी चाहिये—जो यह समझता है, वह नीच स्वामी है।

ततो गर्दभः·········· ··········तन्मया कर्त्तव्यम्

संधि-विच्छेद—पारीयांस्त्वम्-पारीयान्+त्वम्—यदि शब्द के अन्त में न् हो और उसके आगे च, छ, ट, ठ, त अथवा थ में से कोई अक्षर आवे तो न् के स्थान में अनुस्वार और विसर्ग हो जाते हैं—व्यंजन संधि-विसर्ग को स् हो जाता है—विसर्ग संधि। तन्मया-तत्+मया-त् को न्—व्यंजन संधि।

समास—······ ··· मतिः यस्य सः=दुष्टमतिः-बहुव्रीहि, संबोधन में

इत्युक्त्वा उच्चैः चीत्कारं···भवान् आहारार्थी केवलं राजानं सेवते।

संधि-विच्छेद—इत्युक्त्वातीव-इति+उक्त्वा-इ को य—यण् सन्धि, उक्त्वा+अतीव=दीर्घ सन्धि। रजकस्तेन—रजकः+तेन—विसर्ग को स्, विसर्ग संधि।

समास—निद्राभंग-कोपात्—निद्रायाः भंगः इति निद्राभंग—तस्य कोपात्—षष्ठी तत्पुरुष।

रूप—कृतवान्—कृ-धातु से तवत् प्रत्यय होकर—कृतवत्-शब्द, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-कृतवान्, कृतवन्तौ, कृतवन्तः। ताडयामास—तड्—ताड् —पीटना—क्रिया, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन—ताडयामास, ताडयामासतुः, ताडयामासुः। भवान्—भवत्—आप-शब्द, पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन-भवान्, भवन्तौ, भवन्तः।

शब्दार्थ—चीत्कारशब्दं कृतवान्=चिल्लाया, रेंका। प्रबुद्ध=जागा हुआ। निद्राभंग-कोपात्=निद्रा नाश के कारण अति क्रोध से। उत्थाय=उठ कर। लगुडेन=लाठी से। ताडयामास=पीटा। पंचत्वम् अगात्=मर गया। अन्वेषणम्= खोज। आवयो.नियोगः=हम दोनों का कार्य है। प्रचुरः=अधिक। आहारार्थी= भोजनार्थी।

व्याख्या—यह कह कर गधे ने जोर से चीत्कार शब्द किया अर्थात् गधा जोर से रेंका। उसके रेंकने से धोबी जागा और नींद के भंग हो जाने से अत्यन्त कुपित हुआ। उसने उठकर गधे को लाठी से पीट डाला, जिससे गधा मर गया। इसलिए मैं कहता हूँ कि दूसरे के कार्य की-अधिकार की-चर्चा न करनी चाहिए अर्थात् दूसरे सेवक के काम को अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए। देखिए, पशुओं की खोज में हम दोनों को नियुक्त किया है। अतः अपनी नियुक्ति की बात कीजिए। किन्तु आज वह चर्चा भी बेकार है, क्योंकि हमारे भोजन के लिए अधिक सामग्री मौजूद है। दमनक क्रोध में भर कर कहता है—क्या आप केवल खाने के लिए-भोजन प्राप्त करने के लिए-ही राजा की सेवा करते हैं!

एतत् तव अयुक्तम्=यह तुम्हारे लिए अनुचित है।

सुहृदामुपकारकारणात्······जठरं को न बिभर्ति केवलम् ॥२८॥

सन्धि-विच्छेद—द्विषतामप्यपकार-कारणात् – द्विषताम्+अपि+अपकार – कारणात्= इ को य्=यण संधि।

फलम् (अस्ति)=उसका जीना ही सार्थक-सफल-है। आत्मार्थे कः न जीवति=अपने लिए कौन नहीं जीता अर्थात् स्वार्थसाधन में तो प्रायः अनेक जन सिद्धहस्त होते हैं।

व्याख्या—वास्तव में नश्वर संसार में उसी पुरुष का जीवित रहना सार्थक है, जो ब्राह्मणों, मित्रों तथा भाई-बन्धुओं की समय समय पर सहायता करता है। अपने स्वार्थ के लिए तो सब ही जीवित रहते हैं अर्थात् ऐसा कौन-सा मनुष्य है, जो स्वार्थसाधन में सिद्धहस्त-चतुर-नहीं होता अर्थात् सब ही होते हैं।

यस्मिन् जीवति जीवन्ति ·········चंच्वा स्वोदर-पूरणम् ।।२४।।

संधि-विच्छेद—यस्मिञ्जीवति-यस्मिन्+जीवति-न् को ञ्-हुआ है। स्वोदर-पूरणम्-स्व+उदर-पूरणम्-अ+उ=ओ=गुणसन्धि।

समास—स्वोदर-पूरणम्-स्वस्य उदर इति स्वोदरः, स्वोदरस्य पूरणम् इति स्वोदर-पूरणम्-षष्ठी तत्पुरुष।

रूप—यस्मिन्-यत्-जो-सर्वनाम नाम शब्द, सप्तमी विभक्ति, एकवचन-यस्मिन्, ययोः, येषु। जीवति-जीवत्-जिन्दा रहता हुआ-शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्द, सप्तमी विभक्ति, एकवचन-जीवति, जीवतोः, जीवत्सु। जीवतु-जीव्-जीवित रहना-क्रिया, आज्ञा लोट्, परस्मैपद, अन्य पुरुष, एकवचन-जीवतु-जीवतात्, जीवताम्, जीवन्तु। कुरुते-कृ=करना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-कुरुते, कुर्वाते, कुर्वते।

अन्वय—यस्मिन् जीवति (सति) बहवः जीवन्ति सः (पुरुषः) जीवतु, किं काकः अपि चंच्वा स्व-उदर-पूरणं न कुरुते (अवश्यं कुरुते)।

शब्दार्थ—यस्मिन् जीवति सति=जिसके जीवित रहने पर। बहवः जीवन्ति=बहुत से जीते हैं अर्थात् जो अनेक पुरुषों का पालन पोषण करता तथा सहायक होता है। सः जीवतु=वह पुरुष संसार में जीवित रहे। काकः अपि=कौआ भी। स्वोदरः-पूरणं न कुरुते=अपने पेट को नहीं भरता अर्थात् भरता ही है।

व्याख्या—वास्तव में वही पुरुष संसार में जिन्दा है, जिसके द्वारा अनेक पुरुषों का लालन पालन होता है। वैसे तो कौआ भी क्या अपना पेट नहीं भरता अर्थात् भर ही लेता है। परन्तु जो दूसरों का पेट भरता है, उसे ही संसार में जीवित समझना चाहिये।

अन्वय—श्वा स्वल्प-स्नायु-वसावशेष-मलिनं निर्मांसम् अपि अस्थिकं प्वा परितोषम् एति (तत्) तस्य क्षुधः शान्तये न तु (भवेत्) सिंहः तु अंकम् गतम् अपि जम्बुकं त्यक्त्वा द्विपं निहन्ति। कृच्छ्रगतोऽपि सर्वः जनः सत्वानुरूपं म् (एव) वाञ्छति।

शब्दार्थ—स्वल्प-स्नायु-वसावशेष-मलिनम्=थोड़ी सी नस और चर्बी से ली हड्डी को अर्थात् जिस हड्डी में जरा सी नस और चर्बी लगी हुई है। र्मांसम्=और जिस हड्डी में मांस का नाम-निशान भी नहीं है। अस्थिकम्= ड्डी के टुकड़े को। सन्तोषम् एति=सन्तुष्ट हो जाता है। क्षुधः शान्तये=भूख न्त करने के लिए। न भवेत्=नहीं हो सकती है अर्थात् उस सूखी हुई हड्डी टुकड़े को कुत्ता चाटता है पर उससे उसकी भूख दूर नहीं होती। अंकम् गतम् अपि=गोद में आये हुए अर्थात् अनायास प्राप्त होने वाले। द्विपं निहन्ति= थी का वध करता है। कृच्छ्रगतः अपि=दुर्दशा-ग्रस्त होने-कठिनाई में फँसने- (भी। सत्वानुरूपम्=अपनी शक्ति के अनुसार ही। फल वाञ्छति=फल की च्छा करता है।

व्याख्या—कुत्ता नस और थोड़ी सी चर्बी से भरे, मांस रहित हड्डी के कड़े को पाकर प्रसन्न हो जाता और उसे बार बार चूसता है परन्तु उससे उसकी ख शान्त नहीं होती है। यदि सिंह की गोद में गीदड़ आ जाय तो भी वह सका वध नहीं करता और अपने अतुल बल एवं पराक्रम से उन्मत्त हाथी को ी मार कर खाता है। यह सर्वथा सत्य है कि आपद्-ग्रस्त-आपत्तियों में फँसे हुए ाणी भी अपने बल-पौरुष का फल चाहते हैं अर्थात् महान् यदि विपत्ति में भी ँस जाय तो भी वह अपनी-शान-बान के विरुद्ध कार्य को घृणा की दृष्टि से खता है।

भावार्थ—शेर भूखा मर जाय पर घास नहीं खाता।

,, महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम्।

,, महान् महान् पर ही पराक्रम दिखलाता है, निर्बल पर नहीं।

यश्चौऽप्यते ... वलिं च भुंक्ते ॥२७॥

। यदि ज आता है तो

अन्वय—यः न आत्मजे, न च गुरौ, न च भृत्यवर्गे, न च दीने बन्धु-वर्गे
[illegible] करोति। मनुष्यलोके तस्य जीवितफलेन किम्? काकः अपि चिराय जीवति
[illegible] च भुङ्क्ते।

शब्दार्थ—यः=जो पुरुष। न आत्मजे=न पुत्र पर। न च गुरौ=न गुरु-बड़ों
। न च भृत्य-वर्गे=न नौकरों पर। न च दीने बन्धु=वर्गे=न दीन-गरीब-भाइयों
। दयां कुरुते=दया करता है। तस्य जीवितफलेन किम्=उसके जीवित-जिन्दा-
ने से क्या लाभ।

व्याख्या—जो मनुष्य न पुत्र पर, न बड़ों पर, न नौकर-चाकरों पर और न
न भाई-बन्धुओं पर ही दया करता है, संसार में उसके जीवित रहने का क्या
[illegible] है अर्थात् कुछ भी नहीं। उसका जीवन व्यर्थ है। वैसे कौआ भी दीर्घजीवी
ता है—बहुत समय तक जिन्दा रहता है—और बलि खाता है।

अपरं च=और भी—

अहित-हित-विचार-शून्य-बुद्धेः······पशोश्च कः विशेषः ॥२६॥

समास—अहित-हित विचार-शून्य बुद्धेः—अहितं च हितं च=अहित–हितम्=
न्द्वः अहित-हितयोः विचारः इति अहित-हित विचारः—षष्ठी तत्पुरुष, अहित-
[illegible]योः विचारे शून्या बुद्धिः यस्य सः=बहुव्रीहि। उदर भरण मात्र केवलेच्छोः—
उदरस्य भरणम् इति उदर-भरणम् तत्पुरुष; उदरभरणमात्रम् एव केवला इच्छा
स्य सः=बहुव्रीहि-तस्य।

अन्वय—अहित हित विचार शून्य बुद्धेः श्रुति-समयैः बहुभिः तिरस्कृतस्य
उदरभरण-मात्र-केवलेच्छोः पुरुषपशोः च पशोः कः विशेषः (अस्ति)।

शब्दार्थ—अहित–हित–विचार–शून्य–बुद्धेः=भलाई-बुराई के ज्ञान से शून्य।
श्रुतिसमयैः=शास्त्र-चर्चा के समय। बहुभिः तिरस्कृतस्य=अनेक मनुष्यों से
अनादृत-अर्थात् अल्पज्ञानी। उदरभरणमात्रकेवलेच्छोः=केवल उदर-पूर्ति की
इच्छा रखने वाला। पुरुष पशोः=मनुष्यरूपी पशु। पशोश्च=और सींग पूंछ
वाले पशु में। कः विशेषः=क्या अन्तर है।

व्याख्या—भलाई-बुराई का ज्ञान न रखने वाला, शास्त्र चर्चा के समय
अनेक मनुष्यों द्वारा अनादर प्राप्त करने वाला अर्थात् अल्पज्ञानी, केवल उदर-
पूर्ति–पेट भरना ही जिसका एकमात्र काम है, ऐसे मनुष्यरूपी पशु में और
सींग पूंछ धारण करने वाले पशु में क्या अन्तर है अर्थात् कुछ भी अन्तर नहीं।

कराते हैं अर्थात् सुकार्य करने से उसका गौरव बढ़ जाता है और बुरे कार्यों
रने से वह समाज की दृष्टि में हेय-तिरस्कृत समझा जाता है।

भावार्थ—मानव अपने सुकार्यों से उन्नत तथा दुष्कार्यों से अवनत होता है।

यात्यधोऽधो······प्राकारस्येव कारकः ॥३१॥

संधि-विच्छेद—यात्यधः=याति+अधः, व्रजत्युच्चैः व्रजति+उच्चैः—दोनों
ों पर इ को य हुआ है—यण् सन्धि। प्राकारस्य+इव=गुणसन्धि।

रूप—याति-या-जाना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एक-
—याति, यातः, यान्ति। कर्मभिः—कर्मन्-काम शब्द, नपुंसकलिंग, तृतीया
क्ति, बहुवचन-कर्मणा, कर्मभ्याम्, कर्मभिः। खनिता—खनितृ-खोदने वाला—
, पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन—खनिता, खनितारौ, खनितारः।

अन्वय—नरः स्वैः स्वैः कर्मभिः अधः अधः याति। स्वैः एव कर्मभिः उच्चैः
त। यद्वत् कूपस्य खनिता अधः अधः याति, प्राकारस्य कारकः उच्चैः व्रजति।

शब्दार्थ—स्वैः एव कर्मभिः—अपने ही कार्यों से। अधः अधः याति=नीचे-
जाता है—अवनत होता है। कूपस्य खनिता=कुंए का खोदने वाला।
रस्य कारकः=परकोटा बनाने वाला।

व्याख्या—मनुष्य अपने दुष्कार्यों—बुरे कामों—से अवनति और सुकार्यों-उत्तम
—से उन्नति प्राप्त करता है, जैसे कि कूप खोदने वाला नीचे की तरफ और
टा बनाने वाला ऊपर की ओर जाता है।

भावार्थ—जस नर करहिं सो तस फल चाखा।

तद्भद्र=हे महाशय! स्वयत्नायत्तः=अपने प्रयास के आधीन। सर्वस्य आत्मा=
की आत्मा अपने उद्योग का फल पाती है। करटको ब्रूते=करटक कहता है।
: भवान् किं ब्रवीति=आप क्या कहते हैं! अयं तावत् अस्माकं स्वामी
लकः=यह हमारा स्वामी 'पिंगलक'। कुतः अपि कारणात् सचकितं परिवृत्य
विष्टः=किसी कारण से चकित हो—घबरा कर—और लौटकर यहां बैठ गया है।
को ब्रूते=करटक कहता है। अत्र किं तत्त्वं भवान् जानाति=क्या तुम इसका
—असली भेद—जानते हो! दमनको ब्रूते=दमनक कहता है। अत्र किम् अवि-
म् अस्ति=इसमें न जानने योग्य बात क्या है?" अर्थात् स्वामी के जल पान—
के भेद को मैं भली भांति जानता हूँ।

रूप—गत्या-गति-गमन-शब्द, स्त्रीलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन—
या, गतिभ्यां, गतिभिः। लक्ष्यते-लक्ष्-लक्षित करना-जानना-क्रिया, कर्म-
च्य, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-लक्ष्यते, लक्ष्येते, लक्ष्यन्ते।

अन्वय—आकारैः इंगितैः गत्या, चेष्टया, भाषणेन, नेत्र=वक्त्र-विकारैः
र्तर्गतं मनः लक्ष्यते।

शब्दार्थ—आकारैः=आकार-शक्ल-से। इंगितैः-संकेतों-इशारों-से।
या=गमन-चाल-से। चेष्टया=कार्य से। भाषणेन=बोलने से। नेत्र-वक्त्र-
कारैः=आंख और मुंह की भंगिमा-बनावट-से। अन्तर्गतं मनः लक्ष्यते=
दय की बात समझ ली जाती है।

व्याख्या—दमनक कहता है कि हृदय की बात जानने के लिए सात साधन
—शक्ल, संकेत, गति, कार्य, भाषण तथा आंख और मुख की मुद्रा-बनावट।

शब्दार्थ—तत् अत्र=सो यहां। भय-प्रस्तावे=इस भय के प्रस्ताव पर।
ज्ञबलेन=अपनी बुद्धि के बल से। एवं स्वामिनम्=इस पिंगलक स्वामी को।
ात्मीयं करिष्यामि=अपना कर लूंगा अर्थात् यही समय है कि बहुत समय से
पेक्षा दृष्टि से देखने वाला स्वामी मेरा मान-आदर-करेगा।

शब्दार्थ—करटकी ब्रूते=करटक कहता है सखे=मित्र! त्वं सेवा-अनभिज्ञः=
म सेवा कार्य नहीं जानते।

पद्य=दोनों—

अनाहूतो विशेद् यस्तु······भूपालस्य स दुर्मतिः ॥३४॥

रूप—विशेत्-विश्-प्रवेश करना-क्रिया, विध्यर्थ, परस्मैपद, अन्य पुरुष,
एकवचन-विशेत्, विशेताम्, विशेयुः। आत्मानम्-आत्मन्-अपना या आत्मा-
शब्द, पुल्लिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन-आत्मानम्, आत्मानौ, आत्मनः।
मन्यते-मन्-जानना-मानना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष,
एकवचन-मन्यते, मन्येते, मन्यन्ते।

अन्वय—यः (पुरुषः) अनाहूतः विशेत्, यः तु अपृष्टः बहु भाषते।
(च) आत्मानं भूपालस्य प्रीतं मन्यते स दुर्मतिः (अस्ति)।

बुलाये। अपृष्टः=बिना पूछे। बहु भाषते=बहुत
। आत्मानं भूपालस्य प्रीतं मन्येते=स्वयं को राजा का प्रिय पात्र समझता
ः=निश्चय ही वह मूर्ख है।

व्याख्या—जो पुरुष राजा के दरबार में अथवा राजा के सम्मुख बिना बुलाए जाता है और राजा के बिना पूछे ही बहुत बोलता है तथा फिर भी अपने आपको राजा का प्रिय पात्र समझता है, निश्चय ही उस मनुष्य की अक्ल चली गई है अर्थात् वह मूर्ख है।

शब्दार्थ—दमनको ब्रूते=दमनक कहता है। कथम् अहम् सेवा–अनभि मैं किस प्रकार सेवाकार्य से अपरिचित हूँ।

पश्य=देखो—

किमप्यस्ति स्वभावेन······तत् तस्य सुन्दरम् ॥३४॥

सन्धि-विच्छेद—किमप्यस्ति–किम्+अपि+अस्ति)=इ को य्=यण् सन्धि।

रूप—रोचते-रुच्–रोच्–अच्छा लगना–भला मालूम होना–क्रिया–आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन। रोचते, रोचेते, रोचन्ते।

अन्वय—स्वभावेन सुन्दरं वा अपि असुन्दरं किम् अपि अस्ति? यत् (वस्तु) यस्मै रोचते तत् तस्य सुन्दरं भवेत्।

शब्दार्थ—सुन्दरं वा अपि असुन्दरम्=अच्छी और बुरी। यस्मै रो· जिसको अच्छी लगती है।

व्याख्या—क्या कोई वस्तु स्वभाव से ही अच्छी और बुरी मालूम हु करती है? (कदापि नहीं) वास्तव में जिसको जो वस्तु रुचती है। वह सुन्दर औ जो अच्छी नहीं लगती, वह असुन्दर मालूम होने लगती है। मन की रुचि ही किस चीज को सुन्दर या असुन्दर बना देती है अर्थात् मन की रुचि ही सुन्दरता का निर्णय करती है।

भावार्थ—दधि मधुरं, मधु मधुरं, द्राक्षा मधुरा, सुधापि मधुरैव।
तस्य तदेव मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम् ॥

,, जिसे जो अच्छा लगता है उसी से उसका नाता है।
सुगन्धि फूल को लेने भ्रमर कोसों से आता है।

यतः=क्योंकि—

यस्य यस्य हि यो भावः············क्षिप्रमात्मवशं नयेत् ॥३६॥

रूप—अनुप्रविश्य–अनु और प्र उपसर्ग, विश्–प्रवेश करना–क्रिया में त्वा य परन्तु उपसर्ग पहले होने से त्वा को य हो गया है।

अन्वय—हि यस्य यस्य यः भावः (अस्ति) तेन तेन तं नरं अनुप्रविश्य च मेधावी क्षिप्रं आत्म वशं नयेत्।

शब्दार्थ—तेन तेन=उस उस अभिप्राय द्वारा। तं नरं अनुप्रविश्य=उस मनुष्य के पेट में घुसकर। मेधावी=बुद्धिमान्। क्षिप्रं आत्मवशं नयेत्=शीघ्र अपने वश में कर ले।

व्याख्या—बुद्धिमान मनुष्यका यह कर्त्तव्य है कि जिस पुरुष का जैसा विचार हो, उसी विचार को जानकर उसके पेट में घुसकर उसे अपने वश में कर ले।

शब्दार्थ—करटको ब्रूते=करटक कहता है। कदाचित्=कभी-शायद। त्वाम्, अनवसर-प्रवेशात् अवमन्यते स्वामी=कुसमय-बेमौके-जाने पर स्वामी तुम्हारा अनादर कर दे।

सः अब्रवीत्=दमनक बोला। अस्तु एवं=भले ही ऐसा हो जाय। तथापि अनुजीविना=तो भी सेवक को। स्वामि-सांनिध्यम् अवश्यम् करणीयम्=स्वामी के पास अवश्य जाना चाहिए।

यतः=क्योंकि—

दोषभीतेरनारम्भः··················भोजनं परिहीयते ॥२७॥

समास—दोषभीतेः-दोषस्य वा दोषाणां भीतिः इति दोषभीतिः-षष्ठी तत्पुरुष-तस्या दोषभीतेः।

रूप-भ्रातः-भ्रातृ-भाई-शब्द, पुल्लिंग, सम्बोधनकारक, एकवचन-हे भ्रातः, हे भ्रातारौ, हे भ्रातर.।

अन्वय—दोषभीतेः (कस्यचित् कार्यस्य) अनारम्भः (एव) कापुरुषलक्षणम् (अस्ति)। हे भ्रातः! अजीर्णभयात् कैः भोजनं परिहीयते।

शब्दार्थ—दोषभीतेः=बुराई के भय से। अनारम्भः= किसी कार्य का आरम्भ न करना ही। कापुरुष-लक्षणम्=कायर-मनुष्यों का चिन्ह है। अजीर्णभयात्= अजीर्ण-बदहजमी-के डर से। कैः भोजनं परिहीयते=कौन भोजन छोड़ देता है!

व्याख्या—दोष के डर से किसी काम का आरम्भ न करना ही कायरता का चिह्न है अर्थात् पहले से ही किसी कार्य के अनुचित परिणाम या विफलता का ध्यान कर काम का आरम्भ ही न करना कायरता का सबसे बड़ा चिन्ह है। हे भाई! ऐसा कौन है जो अजीर्ण के डर से भोजन करना छोड़ देता है।

पश्य=देखिए—

करटक पूछता है—प्रसन्नता या उदासीनता जानने का क्या चिन्ह है ? अर्थात् आप यह किस प्रकार ज्ञात कर सकेंगे कि स्वामी प्रसन्न है या अप्रसन्न ?

दमनक कहता है—सुनिये—

दूरादेव क्षणं हासः·········स्मरणं प्रियवस्तुषु ॥३६॥

संधि-विच्छेद—संप्रश्नेष्वादरः—संप्रश्नेषु+आदरः—उ को व्=यण् संधि।

समास—गुण-श्लाघा—गुणस्य गुणानां वा श्लाघा—षष्ठी तत्पुरुष। प्रिय-वस्तुषु—प्रियाणि च तानि वस्तूनि—इति प्रिय-वस्तूनि—कर्मधारय—तेषु। परोक्षे—अक्ष्णः परः इति परोक्षः—तत्पुरुष—तस्मिन्।

अन्वय—दूरात् अवेक्षणं हासः, सम्प्रश्नेषु भृशम् आदरः, परोक्षे अपि गुण-श्लाघा, प्रियवस्तुषु स्मरणम्।

शब्दार्थ—अवेक्षणम्=प्रसन्नतापूर्वक देखना। हास=मुसकराना। सम्प्रश्नेषु=अनेक प्रकार के समाचार आदि पूछने में। परोक्षे अपि=अनुपस्थिति में भी। गुणश्लाघा=गुणों की प्रशंसा। प्रियवस्तुषु स्मरणम्=प्रिय पदार्थों का स्मरण करना।

व्याख्या—दमनक कहता है—सुनिये, स्वामी की प्रसन्नता के ये चिन्ह हैं कि दूर से ही सेवक को अभिलाषा-पूर्वक देखना, मुसकराना, उससे अनेक समाचार पूछना, सेवक की पीठ-पीछे भी उसके गुणों की प्रशंसा करना और प्रिय वस्तुओं का स्मरण करना।

तत्सेवके चानुरक्तिः·············दोषेऽपि गुण-संग्रहः ॥४०॥

समास—सप्रिय-भाषणम्—प्रियेण सहितं सप्रियम्—अव्ययीभाव समास, सप्रियं च तत् भाषणम् इति सप्रियभाषणम्= कर्मधारय।

अन्वय—तत्सेवके अनुरक्तिः, सप्रियभाषणं दानम्,=दोषेऽपि गुणसंग्रहः (एतानि) अनुरक्तस्य चिन्हानि (सन्ति)

शब्दार्थ—तत्सेवके अनुरक्तिः=उस सेवक के प्रति अनुराग। सप्रियभाषणं दानम्=प्रिय वचन कहकर धन आदि वस्तुएं प्रदान करना। दोषेऽपि गुण-संग्रहः=दोष-युक्त होने पर भी गुणों को देखना-ग्रहण करना। अनुरक्तस्य चिन्हानि=ये समस्त अनुरक्त-प्रसन्न होने वाले स्वामी के चिन्ह हैं।

व्याख्या—दमन [illegible] के लक्षण बता रहा-

रहा ? [illegible] तथा [illegible] प्रसन्न

करना, दोष होने पर भी गुणों का वर्णन करना, दोषों को छोड़ देना—ये अन लक्षण अनुरक्त स्वामी के हैं।

शब्दार्थ—एतत् ज्ञात्वा=यह जानकर। यथा च अयं मम आयत्तो भविष्यति इस प्रकार यह मेरे वश में हो सकेगा। तथा वदयामि=वैसा ही कहूँगा।

यतः=क्योंकि—

उपायमन्दर्शनजां विपत्तिम्······पुरः स्फुरन्तीमिव दर्शयन्ति ॥३१

समास—अपायमन्दर्शनजाम्—अपायस्य स्न्दर्शनम् इति अपायमन्दर्शन षष्ठी तत्पुरुष, अपायमन्दर्शनेन जाता इति अपायस्न्दर्शनजा—तृतीया तत्पुरुष म्। नीति विधि—प्रयुक्ताम्—नीतेः विधिः इति नीति–विधिः—षष्ठी तत्पुरुष, नीति यौ प्रयुक्ता इति तत्पुरुष=सप्तमी तत्पुरुष–ताम्।

रूप—मेधाविनः—मेधाविन–बुद्धिमान–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति बहुवचन–मेधावी, मेधाविनौ, मेधाविनः।

अन्वय—मेधाविनः नीति–विधि–प्रयुक्ताम्, अपायसन्दर्शनजां विपत्तिम् उपायमन्दर्शनजां च सिद्धिं पुरःस्फुरन्तीम् इव दर्शयन्ति।

शब्दार्थ—मेधाविनः=चतुर मनुष्य। नीति विधि प्रयुक्ताम्=नीतिशास्त्र में युक्त होने वाली अर्थात् नीतिशास्त्र में वर्णन की हुई। अपायमन्दर्शनजाम्= दुर्गुण से उत्पन्न। उपायमन्दर्शनजाम्=उपाय से उत्पन्न होने वाली। सिद्धिम्= सफलता को। पुरःस्फुरन्तीम् इव दर्शयन्ति=मानुष्य नाचती हुई सी देखते हैं।

व्याख्या—नीतिशास्त्र के केवल अवगुण से उत्पन्न विपत्ति तथा उपाय से उत्पन्न सफलता को अपने नेत्रों के सामने नाचती हुई देखते हैं।

शब्दार्थ—करटको ब्रूते=करटक कहता है। तथापि=तो भी। अप्राप्ते प्रस्तावे प्रस्ताव के प्राप्त न होने पर—अवसर के प्रतिकूल। वक्तुं न अर्हसि=तुम नहीं सकते अर्थात् बिना अवसर के कोई बात करना उचित नहीं, प्रसङ्ग ठीक पर ही कहना चाहिए।

दमनको ब्रूते=दमनक कहता है। मित्र! मा भैषीः=हे मित्र! तुम मत। अहम् अप्राप्त–अवसरं वचनं न वदिष्यामि=मैं प्रसङ्ग के प्रतिकूल कोई भी नहीं कहूँगा।

यतः=क्योंकि—

आपद्युन्मार्ग-गमने ··············· भृत्येन हितमिच्छता ॥४२॥

सन्धि-विच्छेद—आपद्युन्मार्ग-गमने—आपदि+उन्मार्ग-गमने—इ को य् यण् संधि।

समास—उन्मार्ग-गमने—उन्मार्गे गमनम् इति उन्मार्गगमनम्-सप्तमी तत्पुरुष—तस्मिन्। कार्य-कालात्ययेषु—कार्यस्य काल इति कार्यकालः—षष्ठी तत्पुरुष, कार्यकालस्य अत्यय इति—षष्ठी तत्पुरुष—तस्मिन्।

रूप—आपदि आपत्—आपत्ति-शब्द, स्त्रीलिंग, सप्तमी विभक्ति एकवचन—आपदि, आपदोः, आपत्सु।

अन्वय—हितम् इच्छता अपृष्टेन अपि भृत्येन आपदि, उन्मार्ग-गमने, कार्य-काल-अत्ययेषु च वक्तव्यम्।

शब्दार्थ—हितम् इच्छता=स्वामी का हित चाहने वाले सेवक को। अपृष्टेन अपि=स्वामी के न पूछने पर भी। आपदि=आपत्ति में। उन्मार्ग-गमने= कुमार्ग में चलने पर। कार्य-काल-अत्ययेषु च—कार्य की अवधि-समय बीतने पर। वक्तव्यम्=अवश्य कहना चाहिये अर्थात् यदि स्वामी सेवक से न पूछे तो भी सेवक का कर्तव्य है कि वह उचित बात कहना न भूल जाय।

व्याख्या—स्वामी का हित चाहने वाले सेवक को उचित है कि आपत्ति में कुमार्ग में चलने पर तथा काम का समय बीत जाने पर स्वामी के न पूछने पर भी हित की बात कहना न भूल जाय अर्थात् स्वामि भक्त सेवक स्वामी के हित की कामना में ही व्यस्त रहता है।

शब्दार्थ—यदि च प्राप्त-अवसरेण अपि=अवसर प्राप्त करके भी। मन्त्रो मया न वक्तव्यः=मैंने उचित सम्मति-परामर्श न दिया। तदा मन्त्रित्वम् एव मम अनुपपन्नम्=तो मेरा मन्त्री होना ही व्यर्थ है।

यतः=क्योंकि—

कल्पयति येन वृत्तिं ··················· रक्ष्यः संवर्धनीयश्च ॥४३॥

रूप—प्रशस्यते-प्र उपसर्ग, शंस्-प्रशंसा करना-क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-प्रशस्यते, प्रशस्येते, प्रशस्यन्ते। कर्मवाच्य में शस् के नकार अनुस्वार का लोप हो जाता है। गुणिना-गुणिन्—गुणवान्-शब्द पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन-गुणिना, गुणिभ्यां, गुणिभिः।

अन्वय—येन गुणेन वृत्तिं कल्पयति, येन च लोके सद्भिः प्रशस्यते। स गुणः तेन गुणिना रक्षणः, संवर्धनीयः च।

शब्दार्थ—वृत्तिम्=व्यापार, आजीविका। कल्पयति=प्राप्त करता है। सद्भिः प्रशस्यते=सज्जनों से प्रशंसा किया जाता है। रक्षणः=रक्षा करनी चाहिये। संवर्धनीयः च=और यत्न-पूर्वक बढ़ाना चाहिये।

व्याख्या—जिस गुण से मनुष्य धनोपार्जन—आजीविका—करता है तथा जिस गुण के कारण वह सज्जनों की प्रशंसा का पात्र बन जाता है, गुणवान् पुरुष को उस गुण की भली भाँति रक्षा करनी चाहिये और उस गुण को यत्नपूर्वक बढ़ाना चाहिये अर्थात् उस गुण को नष्ट न होने देना चाहिये।

त (भद्र, अनुजानीहि माम्……………पिंगलकसमीपं गतः ॥

रूप—अनुजानीहि–ज्ञा–जानना–अनु उपसर्ग, अनुज्ञा=आज्ञा देना क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन–अनुजानीहि–अनुजानीतम्, अनुजानीतम्, अनुजानीत। अनुष्ठीयताम्–स्था–ठहरना–क्रिया, अनु उपसर्ग अनुस्था अनुष्ठान करना–पूर्ण करना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट् अन्य पुरुष, एकवचन–अनुष्ठीयताम्, अनुष्ठीयेताम्, अनुष्ठीयन्ताम्।

शब्दार्थ—अनुजानीहि=आज्ञा प्रदान कीजिये। शुभम् अस्तु=कल्याण हो। ते पन्थानः शिवाः सन्तु=तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी हों–विघ्नरहित हों। यथाभिलषितम् अनुष्ठीयताम्=अपनी अभिलाषा पूर्ण करो–तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो। विस्मित इव=चकित-सा। पिंगलकसमीपं गतः=पिंगलक के पास गया।

व्याख्या—दमनक ने कहा–हे भद्र! मुझे आज्ञा दीजिये। मैं जाता हूँ। करटक कहता है–तुम्हारा कल्याण हो और तुम निर्विघ्न वहाँ पहुँच जाओ। तब दमनक चकित-सा–घबराया हुआ-सा पिंगलक शेर के समीप गया।

अथ दूरादेव सादरं राज्ञा……………कर्त्तव्यमित्यागतोऽस्मि ॥

समास—साष्टांग-पातम्–अष्टानाम् अङ्गानां समाहार इति अष्टांगम्–द्विगु, अष्टांगेन सह–साष्टांगम्–अव्ययीभाव, साष्टांगानां पात इति–साष्टांगपातः तत्पुरुष।

शब्दार्थ—सादरं प्रवेशितः=आदरपूर्वक अन्दर आने दिया। साष्टांगपातं=आठों अङ्गों को झुकाकर प्रणाम करके अर्थात् दण्डवत् प्रणाम करके।

उपविष्ट बैठ गया। चिराद् दृष्टोऽसि=बहुत समय बाद दिखाई दिये। प्राप्त-कालम्=समयानुसार। अनुजीविना=नौकर को। सानिध्यं कर्तव्यम्=स्वामी के पास आना चाहिये।

व्याख्या—राजा पिंगलक ने दूर से ही दमनक को देखकर आदरपूर्वक अन्दर आने की आज्ञा दी। दमनक दण्डवत् प्रणाम करके वहां बैठ गया। राजा कहता है—बहुत दिनों बाद दिखाई दिए। दमनक कहता है—यद्यपि मुझसे-सेवक से स्वामी का कोई भी प्रयोजन नहीं है तो भी सेवक को समयानुसार स्वामी की सेवा में उपस्थित होना चाहिये—यही सोचकर आया हूं।

किं च=और क्या—

दन्तस्य निर्घर्षणकेन राजन्……………वाक्पाणिमता नरेण ॥४४॥

अन्वय—हे राजन् ! दन्तस्य निर्घर्षणकेन, कर्णस्य कण्डूयकेन वा ईश्वराणां कार्यं तृणेन अपि भवति अङ्ग-वाक्पाणिमता नरेण किम।

शब्दार्थ—दन्तस्य निर्घर्षणकेन=दांतों को साफ करने के लिए अर्थात् दातुन द्वारा दांत स्वच्छ करने को। कर्णस्य कण्डूयनकेन=कान को साफ करने के लिये। ईश्वराणां तृणेन कार्यं भवति=राजाओं को तिनके से काम पड़ जाता है। अङ्ग-वाक्-पाणिमता नरेण किम=वाणी-हाथ तथा अन्य अङ्ग वाले मनुष्य से क्या अर्थात् जब निर्जीव तृण की आवश्यकता होती है, तब मनुष्य की तो बात ही क्या। उससे तो काम पड़ता ही है।

व्याख्या—हे राजन् दांत को कुरेदने के लिये-साफ करने के लिये दातून और कान को खुजाने के लिये-साफ करने के लिये राजाओं को तिनके की भी आवश्यकता होती है। हाथ-पांव तथा अन्य अङ्गधारी मनुष्य की तो बात ही क्या अर्थात् उसकी आवश्यकता होना तो स्वाभाविक ही है।

शब्दार्थ—यद्यपि चिरेण अवधीरितस्य=यद्यपि बहुत समय से तिरस्कृत-अनादृत। देवपादैः मे बुद्धि-नाशः शङ्क्यते=श्रीमान् द्वारा राजनीति के कार्यों में मेरी बुद्धि के विनाश की शंका की जा सकती है। न शंकनीयम्=शंका न करनी चाहिये।

व्याख्या—दमनक कहता है—मैं स्वामी से तिरस्कृत होकर बहुत दिनों के [illegible] स्वामी की सेवा में उपस्थित हुआ हूं। यदि स्वामी अपने मन में यह

अवज्ञानाद्राज्ञो भवति............सकलमवशं सीदति जगत् ॥५०॥

समास—मति-हीनः=मत्या हीन इति-तत्पुरुष । बुधजनः=बुधः चासौ जन इति=कर्मधारय। प्रामाण्यात्-प्रमाणस्य भावः प्रामाण्यम्-तस्मात्=प्रामाण्यात् ।

रूप—राज्ञः-राजन्-राजा-शब्द, षष्ठी विभक्ति-राज्ञः, राज्ञोः, राज्ञाम् । सीदति-सद्-सीद्-दुःख पाना-क्रिया-परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-सीदति । जगत्-संसार-शब्द, नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-जगत्, जगती:, जगन्ति ।

अन्वय—राज्ञः अवज्ञानात् परिजनः मतिहीनः भवति, ततः तत्प्रामाण्यात् बुध-जनः समीपे न वसति । बुधैः राज्ये त्यक्ते गुणवती नीतिः न भवति, नीतौ विपन्नायां (सत्याम) अवशं सकलं जगत् सीदति ।

शब्दार्थ—राज्ञः अवज्ञानात=राजा के अनादर करने से । परिजनः=नौकर-चाकर । तत् प्रामाण्यात=उसी को प्रमाण मानकर । बुधैः राज्ये त्यक्ते=विद्वानों-राजनीतिज्ञों-के राज्य छोड़ देने पर । नीतिः गुणवती न भवति=नीति, साम-दाम, दण्ड, भेद आदि उपायों से रहित हो जाती है । नीतौ विपन्नायाम्=नीति के नष्ट होने पर । अवशं सकल जगत्=उच्छृंखल होने वाला सम्पूर्ण संसार-समस्त प्रजा । सीदति=कष्ट भोगती है ।

व्याख्या—यदि राजा सेवकों का अपमान करता है तो सेवक लोग मतिहीन निर्बुद्धि हो जाते हैं । फिर उसी को प्रमाण मान कर अन्य विद्वान्-राजनीतिज्ञ-राजा के दरबार में नहीं आते, उन्हें यह ख्याल रहता है कि एक दिन राजा हमारा भी इसी प्रकार अनादर करेगा । जब राजनीतिज्ञ राज्य छोड़कर चले जाते हैं, तब नीति गुणवती-साम, दाम आदि से पूर्ण नहीं रहती अर्थात् राज्य में अनीति का बोलबाला हो जाता है । इस प्रकार नीति के विनाश होने पर समस्त प्रजा उच्छृंखल स्वतन्त्र कार्य करने वाली-हो जाती है और तत्पश्चात् प्रजा दुःख की दलदल में फंस कर दुःख पाती है ।

बालादपि ग्रहीतव्यम्......प्रदीपस्य प्रकाशनम् ॥५१॥

रूप—मनीषिभिः-मनीषिन-बुद्धिमान्-इन्नन्त-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन-मनीषिणा, मनीषिभ्या, मनीषिभिः ।

अन्वय—भृत्याः आभरणानि च स्थाने एव नियोज्यन्ते। हि चूडामणिः पादे न (नियोज्यते) न च नूपुर मूर्ध्नि धार्यते।

शब्दार्थ—आभरणानि=आभूषण–गहने। स्थाने एव=अपने अपने स्थान पर ही। नियोज्यन्ते=नियुक्त किए जाते हैं। चूडामणिः=मस्तक का आभरण–शिरोरत्न। पादे न धार्यते=पैर में नहीं पहना जाता है। नूपुरम् मूर्ध्नि धार्यते=और पायजेब सिर पर नहीं पहनी जाती है।

व्याख्या—सेवक और आभूषण अपने अपने योग्य स्थानों पर ही नियुक्त करने पर सुन्दर मालूम होते हैं। चूडामणि–शिर का आभूषण–चोर–पैरों में और पायजेब–पैर का आभूषण–सिर पर धारण नहीं किया जा सकता है।

कनक-भूषण-संग्रहणोचितो यदि···योजयितु र्वचनीयता ॥७६॥

समास—कनक–भूषण–संग्रहणोचित–कनकस्य भूषणम् इति–षष्ठी तत्पुरुष, कनक–भूषणे संग्रहणाय उचितः इति चतुर्थी तत्पुरुष।

रूप - प्रणिधीयते–धा–धारण करना–प्र और नि उपसर्ग–प्रणिधा–जोड़ना–जड़ना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, अन्य पुरुष, एकवचन–प्रणिधीयते, प्रणिधीयेते, प्रणिधीयन्ते। योजयितु–योजयितृ=मिलाने वाला–जड़ने वाला–पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन–योजयितुः, योजयित्रोः, योजयितॄणाम्।

अन्वय—कनक–भूषण–संग्रहणोचित. मणिः यदि त्रपुणि प्रणिधीयते तदा स न विरौति न चापि शोभते (किन्तु) योजयितुः वचनीयता (भवति)

शब्दार्थ—कनक–भूषण–संग्रहण–उचितः मणिः=सुवर्ण के आभूषणों में जड़ने योग्य मणि। यदि त्रपुणि प्रणिधीयते=अगर रांगा–धातु–के गहनों में जड़ दिया जाता–लगा दिया जाता है। तदा स न विरौति=तब वह मणि चिल्लाता–चीखता नहीं। योजयितुः वचनीयता=किन्तु जड़िया–जड़ने वाले की निन्दा होती है।

व्याख्या—यदि कोई सुवर्ण के गहने में जड़ने योग्य मणि को रांग के आभूषणों में जड़ देता है तो वह मणि चीखता–चिल्लाता नहीं है, किन्तु सुन्दर ...न नहीं होता। इससे जड़िये–रांग के आभूषण में उस मणि को जड़ने वाले ...। निन्दा होती है–उसकी अज्ञानता का परिचय मिलता है, मणि का महत्त्व किसी ...भी कम नहीं हो जाता है।

अन्यत् च=और भी—

अवज्ञानाद्राज्ञो भवति············सकलमवशं सीदति जगत् ॥५०॥

समास—मति-हीनः-मत्या हीन इति-तत्पुरुष । बुधजनः=बुधः चासौ जन इति=कर्मधारय। प्रामाण्यात्-प्रमाणस्य भावः प्रामाण्यम्-तस्मात्=प्रामाण्यात्।

रूप—राज्ञः-राजन्-राजा-शब्द, षष्ठी विभक्ति-राज्ञः, राज्ञोः, राज्ञाम्। सीदति-सद्-सीद्-दुःख पाना-क्रिया-परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-सीदति। जगत्-संसार-शब्द, नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-जगत्, जगती, जगन्ति।

अन्वय—राज्ञः अवज्ञानात् परिजनः मतिहीनः भवति, ततः तत्प्रामाण्यात् बुध-जनः समीपे न वसति। बुधैः राज्ये त्यक्ते गुणवती नीतिः न भवति, नीतौ विपन्नायां (सत्याम्) अवश सकल जगत् सीदति।

शब्दार्थ—राज्ञः अवज्ञानात=राजा के अनादर करने से। परिजनः=नौकर-चाकर। तत् प्रामाण्यात=उसी को प्रमाण मानकर। बुधैः राज्ये त्यक्ते=विद्वानों-राजनीतिज्ञों-के राज्य छोड़ देने पर। नीतिः गुणवती न भवति=नीति, साम-दाम, दण्ड, भेद आदि उपायों से रहित हो जाती है। नीतौ विपन्नायाम्=नीति के नष्ट होने पर। अवशं सकल जगत्=उच्छृंखल होने वाला सम्पूर्ण संसार-समस्त प्रजा। सीदति=कष्ट भोगती है।

व्याख्या—यदि राजा सेवकों का अपमान करता है तो सेवक लोग मतिहीन निर्बुद्धि हो जाते हैं। फिर उसी को प्रमाण मान कर अन्य विद्वान्-राजनीतिज्ञ-राजा के दरबार में नहीं आते, उन्हें यह ख्याल रहता है कि एक दिन राजा हमारा भी इसी प्रकार अनादर करेगा। जब राजनीतिज्ञ राज्य छोड़कर चले जाते हैं, तब नीति गुणवती-साम, दाम आदि से पूर्ण नहीं रहती अर्थात् राज्य में अनीति का बोलबाला हो जाता है। इस प्रकार नीति के विनाश होने पर समस्त प्रजा उच्छृंखल स्वतन्त्र कार्य करने वाली-हो जाती है और तत्पश्चात् प्रजा दुःख की दलदल में फंस कर दुःख पाती है।

बालादपि ग्रहीतव्यम्······प्रदीपस्य प्रकाशनम् ॥५१॥

रूप—मनीषिभिः-मनीषिन-बुद्धिमान्-इन्नन्त-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन-मनीषिणा, मनीषिभ्यां, मनीषिभिः।

जाकर तू हमारे पास नहीं आया। इस समय जो कुछ कहना चाहता है, कह! दमनक कहता है—देव! मैं कुछ पूछना चाहता हूँ। जल पीने की इच्छा करने वाले आप जल-पान त्याग कर घबराये से क्यों बैठे हैं! पिंगलक बोला—तुमने ठीक कहा। किन्तु इस रहस्य को कहने के लिये कोई विश्वासपात्र सेवक नहीं है। तब भी अत्यन्त गोपनीय इस बात का रहस्य तुमसे कहता हूँ, सुन। इस समय यह जंगल किसी अद्भुत प्राणी से अधिकार में कर लिया गया है अर्थात् इस वन में कोई विचित्र प्राणी आकर रहने लगा है, अतएव हमको यह स्थान छोड़ देना चाहिये। इसी कारण से मैं चकित हूँ। मैंने वह विचित्र शब्द सुना है। शब्द के अनुसार यह प्राणी अधिक बलवान होना चाहिये अर्थात् उसकी आवाज से पता चलता है कि वह बड़ा बलवान है। दमनक कहता है—देव! वास्तव में यह महान भय का कारण है। वह शब्द हम लोगों ने भी सुना है। किन्तु वह मन्त्री कायर और दुष्ट है, जो पहले इस भूमि प्रदेश त्याग की सलाह देता है और बाद में युद्ध करने की। इस सन्देह के कार्य में सेवकों का उपयोग करना चाहिये अर्थात् स्वामिभक्त सेवकों द्वारा इस रहस्य को जानने का प्रयत्न करना चाहिये।

यत क्योंकि—

बन्धुस्त्रीभृत्यवर्गस्य ………… नरो जानाति सारताम् ॥४२॥

समास—आपदेव निकष पाषाणे—आपद् एव निकष-पाषाण—कर्मधारय—तस्मिन्—आपन्निकषपाषाणे।

रूप—जानाति—ज्ञा अवबोधने—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—जानाति, जानीतः, जानन्ति।

अन्वय—नरः बन्धु-स्त्री-भृत्य-वर्गस्य, बुद्धेः सत्त्वस्य च आत्मनः सारताम् आपन्निकष-पाषाणे जानाति।

शब्दार्थ—बन्धु-स्त्री-भृत्य-वर्गस्य=भाई, स्त्री और स्वामिभक्त सेवक की। आत्मनः=अपनी बुद्धि और अपने बल की। सारताम्=सामर्थ्य-शक्ति को। आपन्निकष-पाषाणे=आपत्ति-रूपी कसौटी पर कसने से ही। जानाति=जान सकता है अर्थात् भाई, पत्नी और सेवक की परीक्षा आपत्ति-काल में ही होती है।

व्याख्या—यह सत्य है कि भाई-बन्धु और सेवक की बुद्धि तथा की असलियत को मनुष्य आपत्तिरूपी कसौटी पर कसने से ही जान अन्यथा नहीं।

भावार्थ—धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी

सिंहो ब्रूते...............दुर्लभः पुरुषसमवायः।

समास—आपत्प्रतीकार-काले-आपदः आपदां वा प्रतीकार इति प्र कारः आपत्प्रतीकारस्य कालः-षष्ठी तत्पुरुष, तस्मिन्।

रूप—महति-महत्-बड़ा शब्द, स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति, एक महती महत्यौ, महत्यः।

शब्दार्थ—मा बाधते=मुझे कष्ट पहुँचाता है। स्वगतम्=मन में। परित्य त्याग कर। स्थानान्तरं गन्तुम्=दूसरे स्थान में जाने को। मां कथं संभा मुझसे क्यों कहते। प्रकाशं ब्रूते=सम्मुख कहता है। तावत् भयं न कर्तव्यं= तक भय न करना चाहिये। आश्वस्यन्ताम्= सान्त्वना देनी चाहिये। आपत्प्र कारकाले=आपत्ति में बचने के लिये। पुरुष-समवायः दुर्लभः=मनुष्यों का स अत्यन्त दुर्लभ है अर्थात् आपत्ति से छुटकारा दिलाने वाले मनुष्य कम मिलते हैं।

व्याख्या—पिंगलक कहता है कि—सज्जन! यह महान् सन्देह मुझे ब कष्ट पहुँचाता है। दमनक अपने मन में सोचता है कि यदि ऐसा न होता राज्य का सुख त्याग कर अन्यत्र जाने की अभिलाषा मेरे सामने क्यों प्रकट करते। सिंह के सम्मुख कहता है—स्वामिन्! जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक आप किसी प्रकार का भय न कीजिये। परन्तु करटक आदि को भी सान्त्वना देना परम आव श्यक है। कारण यह है कि आपत्ति को दूर करने के समय मनुष्यों का समवाय-समूह-आवश्यक है।

ततः दमनक-करटकौ...........विशेषणो राज्ञः॥

संधि-विच्छेद—भयोपशमम्-भय+उपशमम्=गुण सन्धि। यद्येवम्-यदि+ एवम्=यण् सन्धि। तत्रैव=तत्र+एवं, वृद्धि सन्धि।

समास—स्वामि-त्रासः-स्वामिनः त्रासः इति-तत्पुरुष। महाप्रसाद-लाभः-महान् च असौ प्रसादः-कर्मधारय, महाप्रसादस्य लाभः-तत्पुरुष।

रूप—पथि-पथिन्–मार्ग–शब्द, पुल्लिग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन–पथि,
ोः, पथिषु । गृह्णीयात् ग्रह–ग्रहण करना–धातु, परस्मैपद, विधि लिङ्, अन्य
ष, एकवचन–गृह्णीयात्, गृह्णीयाताम्, गृह्णीयुः ।

शब्दार्थ—राजा सर्वस्वेन पूजितौ=राजा द्वारा पूजे गये–राजा ने धन देकर
नका सत्कार किया । भयप्रतीकार प्रतिज्ञाय=भय के प्रतीकार–इलाज–को जानने
प्रतिज्ञा कर । भय–हेतुः=पिंगलक के भय का कारण । शक्य–प्रतीकारः=सुग–
ता से दूर किया जा सकता है । भयोपशमं प्रतिज्ञाय=भय के विनाश की प्रतिज्ञा
र । अयं महाप्रसादः=यह भेंट-पूजा । अनुपकुर्वाणः=उपकार न करते हुए ।
स्य अपि उपायनम्=किसी की भी भेंट । विशेषतः राज्ञः=विशेष रूप से राजा
। न गृह्णीयात्=ग्रहण नहीं करनी चाहिये ।

व्याख्या—इनके बाद राजा पिंगलक ने दमनक और करटक की धन द्वारा
ट-पूजा की और वे दोनों ही यह प्रतिज्ञा कर वहां से चल दिये कि भय को दूर
रने का उपाय अवश्य करेंगे । मार्ग में चलते हुए करटक ने दमनक से पूछा—
त्र ! पिंगलक के भय का कारण सुगमता से दूर किया जा सकता है या नहीं—
यह बात बिना समझे–जाने–ही हमने राजा के सामने भय दूर करने की प्रतिज्ञा
कर भेंट–पूजा ग्रहण कर ली है । यदि मनुष्य किसी का उपकार न कर सके तो
उसकी भेंट लेनी उचित नहीं और विशेष रूप से राजा की अर्थात् उपायन–भेंट
उसकी ही ग्रहण करनी चाहिये, जिसका काम किया जा सके अन्यथा ग्रहण करना
उचित नहीं । राजाओं की दी हुई सम्पत्ति लेना तो और भी खतरनाक है ।

पश्य=देखो—

यस्य प्रसादे पद्मास्ते··········सर्व–तेजोमयो हि सः ॥ ५३ ॥

अन्वय—यस्य प्रसादे पद्मा आस्ते पराक्रमे च विजय. (आस्ते) क्रोधे
मृत्युः वसति हि सः सर्वतेजो–मयः नृपः (भवति) ।

शब्दार्थ—यस्य प्रसादे=जिसकी कृपा में । पद्मा आस्ते=लक्ष्मी का निवास
है । पराक्रमे विजयः=पराक्रम में जीत । क्रोधे मृत्युः=जिसके क्रोध में मौत है ।
सर्व–तेजोमयः=समस्त तेज से परिपूर्ण ।

व्याख्या—राजा के प्रसन्न होने पर सेवक धन पाता है, राजा के पराक्रम में
विजय स्थित है अर्थात् राजा के पराक्रमी होने पर ही विजय प्राप्त होती है । राजा

के कोष में मृत्यु रहती है अर्थात् अप्रसन्न होने पर राजा मृत्यु-दण्ड सकता है। इस प्रकार राजा सब प्रकार के तेज-प्रताप से युक्त होता है।

भावार्थ—अष्टाभिश्च सुरेन्द्राणां मात्राभिः निर्मितो नृपः।

अर्थात् आठों लोकपालों के तेज का अंश राजा में विद्यमान होता है तथा हि=तो भी—

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्यः·········नररूपेण तिष्ठति ॥

अन्वय—बाल अपि भूमिपः मनुष्य इति न अवमन्तव्यः। हि एष देवता नररूपेण तिष्ठति।

शब्दार्थ—बाल अपि भूमिपः=छोटी अवस्था के राजा को भी। मनु न अवमन्तव्यः=यह मनुष्य है—ऐसा समझ कर अपमान नहीं करना च एषा महती देवता=यह राजा बड़ा देवता है। नररूपेण तिष्ठति=जो रूप से विद्यमान है।

व्याख्या—यदि राजा छोटी-कम-अवस्था का हो तो भी मनुष्य उसका अपमान नहीं करना चाहिये। वास्तव में राजा एक बड़ा देवता है, मनुष्यरूप में हमारे सम्मुख विद्यमान-मौजूद-है।

दमनको विहस्याह-मित्र !·········तदा कथमयं प्रसाद-लाभः

समास—भय-कारणम्-भयस्य कारणम् इति-तत्पुरुष। स्वामि-भय स्वामिनः भयः इति तत्पुरुष। महाप्रसाद-लाभः-महान् चासौ प्रसाद इति प्रसादः—कर्मधारय; महाप्रसादस्य लाभ इति-तत्पुरुष।

रूप—आस्यताम्-आस=बैठना-क्रिया, आत्मनेपद, आज्ञा लोट्, अन्य एकवचन-आस्यताम् आस्येताम्, आस्यन्ताम्। स्यात्-अस्-होना-क्रिया, पर पद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-स्यात्, स्याताम्, स्युः।

शब्दार्थ—विहस्य=हंसकर। तूष्णीम् आस्यताम्=चुप बैठिये। बलीवर्द-न ह्म्=बैल का नाद-रम्भाना। स्वामि-भयम्=स्वामी का भय। ज्ञापनीयम्=दूर किया। तत एव उच्यते=(यदि स्वामी के भय-निवारण की बात) कही जाती। अयं प्रसाद-लाभः कथं स्यात्=तो यह प्रसाद-भेंट-सुन्दर आभूषण कैसे प्राप्त होते।

व्याख्या—दमनक हंस कर कहता है—चुप रहिये। मुझे भय का कारण मालूम है। वास्तव में वह बैल के रम्भाने का शब्द है। बैल हमारा भोजन है, फिर सिंह की तो बात ही क्या अर्थात् शेर का भी आहार है। क कहता है—यदि ऐसा है तो फिर यहीं पर स्वामी का भय दूर क्यों नहीं कर ? दमनक कहता है—यदि यहीं पर स्वामी का भय दूर कर दिया जाता तो र में वस्त्र-आभूषण आदि कैसे प्राप्त होते अर्थात् यह गौरव किसी दशा में में नहीं मिल सकता था।

अपरं च=और दूसरी बात यह है—

निरपेक्षो न कर्त्तव्यः·········भृत्यः स्याद्दधिकर्णवत् ॥ ५५ ॥

समासः—निरपेक्षः–निर्गता अपेक्षा यस्य सः–निरपेक्षः–बहुव्रीहि।

रूप—कर्त्तव्यः–कृ=धातु से तव्य प्रत्यय। स्वामी–स्वामिन्–मालिक–न्त शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–स्वामी, स्वामिनौ, स्वामिनः। ्–अस्–होना–क्रिया, परस्मैपद, विधि लिंङ् अन्य पुरुष, एकवचन–स्यात्, ताम्, स्युः।

शब्दार्थ—निरपेक्षः न कर्त्तव्यः=अपेक्षारहित–आवश्यकताहीन–न ना चाहिए। प्रभुम् निरपेक्षम् कृत्वा=स्वामी को आवश्यकतारहित करके। यः=नौकर। दधिकर्णवत् स्यात्=दधिकर्ण बिलाव के समान होता है।

व्याख्या—सेवकों द्वारा कभी भी स्वामी निरपेक्ष–आवश्यकता रहित–नहीं ना चाहिये अर्थात् जब स्वामी को सेवकों की अपेक्षा नहीं रहती, तब वह सेवकों बात नहीं पूछता। स्वामी को निरपेक्ष कर देने से सेवक दधिकर्ण बिलाव के न दुर्गति को प्राप्त करता है।

करटकः पृच्छति=करटक पूछता है। एतत् कथम्=यह कैसे ? दमनकः यामि=दमनक कहता है।

दधिकर्ण–विडालस्य कथा=दधिकर्ण बिलाव की कथा।

युत्तरापथे·····················अलभमानोऽचिंतयन्।

संधि-विच्छेद—अस्त्युत्तरापथे–अस्ति+उत्तरापथे–इ को य्–यण् संधि। रेचन्मूषकः–कश्चित्+मूषकः–त् को न्–व्यंजन सन्धि।

समास—विवरान्तर्गतम्–विवरस्य अन्तर्गत इति विवरान्तर्गतः–तत्पुरुष, ।

रूप— छिनत्ति–छिद्–काटना–क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पु० एकवचन–छिनत्ति, छिन्तः छिन्दन्ति ।

शब्दार्थ—उत्तरापथे=उत्तर दिशा में । अर्बुद–शिखर–नाम्नि पर्वते=अ० शिखर नामक पहाड़ पर । पर्वतकन्दराम् अधिशयानस्य=पहाड़ की गुफा में ० करते–सोते हुए । केसराग्रम=केशों के अग्र भाग को । प्रत्यहं छिनत्ति=रो० काट देता है । लूनं दृष्ट्वा=कटा हुआ देखकर । विवरान्तर्गतम्=बिल के अन्दर अलभमानः=नहीं पाता हुआ ।

व्याख्या—उत्तर दिशा में अर्बुद शिखर नामक पहाड़ पर दुर्दान्त नाम महापराक्रमी सिंह रहता था । पहाड़ की गुफा में सोने वाले उस शेर के गर्दन के केशों के अग्रभाग को कोई चूहा प्रतिदिन काट जाता । केशों के अग्रभाग को क० हुआ देखकर अत्यन्त कुपित शेर बिल में प्रविष्ट चूहे को न पाकर सोचने लगा

क्षुद्रशत्रुः·················सदृशास्तस्य सैनिकः ॥२६॥

सन्धि-विच्छेद—विक्रमान्नैव-विक्रमात् + न + एव-त् को न्-व्यंज० संधि, अ+ए=ऐ–वृद्धिसंधि ।

समास—क्षुद्रशत्रुः–क्षुद्रः च असौ शत्रुः–इति क्षुद्रशत्रुः–कर्मधारय ।

रूप—लभ्यते–लभ्–पाना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमानकाल, अन्य पुरुष, एकवचन–लभ्यते, लभ्येते, लभ्यन्ते । आहन्तुम्–आ उपसर्ग, हन्–जान से मार डालना–क्रिया, तुम प्रत्यय ।

अन्वय—क्षुद्रशत्रुः भवेत् (सः) विक्रमात् एव न लभ्यते । तम् आहन्तुम् तस्य सदृशः सैनिकःपुरस्कार्यः ।

शब्दार्थ—विक्रमात् एव न लभ्यते=पराक्रम से नहीं पाया जाता । तम् आहन्तुम्=उसको मारने के लिये । सैनिकः पुरस्कार्यः=मारने वाला सिपाही आगे करना चाहिये ।

व्याख्या—यदि शत्रु क्षुद्र–छोटा है और पराक्रम करने पर भी नहीं मिलता तो उसके वध के लिये उसी के सदृश सैनिक–घातक–को आगे बढ़ाना चाहिये, तब ही वह हाथ लग सकता है और मारा जा सकता है ।

इत्यालोच्य तेन मासं गत्वा··············तं बिडालं संवर्धयति ॥

सन्धि-विच्छेद—इत्यालोच्य–इति+आलोच्य–इ को य–यण्संधि ।

समास—अक्षत–केसरः–अक्षताः केसराः यस्य सः अक्षतकेसरः–बहुव्रीहि ।

रूप—स्वपिति=स्वप्–सोना=शयन करना क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, प्र पुरुष, एकवचन–स्वपिति, स्वपितः, स्वपन्ति ।

शब्दार्थ—इति आलोच्य=यह विचार कर । यत्नेन आनीय=यत्न से कर । मांसाहारं दत्त्वा=मांस का भोजन देकर । स्वकन्दरे स्थापित= अपनी गुफा में रखा । न निस्सरति=नहीं निकलता । अक्षतकेशरः=जिसके केश नहीं कटे । स्वपिति=सोता है । तं बिडालं संवर्धयति=उस बिलाव को सन्तुष्ट करता है ।

व्याख्या—दुर्दान्त नामक सिंह यह सोचकर एक दिन गांव में जाकर यत्न से देकर दधिकर्ण नामक बिलाव को ले आया और उसे मांस का उत्तम भोजन देकर वहीं गुफा में रख लिया । इसके पश्चात् बिलाव के डर से वह चूहा बिल से नहीं निकलता था । इससे अक्षत–बिना कटे–केशों वाला सिंह सुखपूर्वक सोता था अर्थात् अब उसकी नींद में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती थी । सिंह जब–जब चूहे का शब्द सुनता, तब–तब बिलाव को मांस खाने को देकर तृप्त करता ।

अथ एकदा मूषकः क्षुधापीडितः'''निरपेक्षो न कर्त्तव्यः" इत्यादि ।

समास—क्षुधा-पीडितः–क्षुधया पीडितः–तृतीया तत्पुरुष । अनेक-कालम्–न एकः इति अनेकः–नञ्–निषेधवाचक तत्पुरुष, अनेकः चासौ कालः इति अनेककालः– कर्मधारय–तम् । तत्कृतरावम्–तेन कृत इति तत्कृतः–तृतीया तत्पुरुष, तत्कृतः चासौ रावः इति तत्कृतरावः–कर्मधारय–तम् ।

रूप—बभूव-भू–होना–क्रिया, परस्मैपद, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन–बभूव, बभूवतुः, बभूवुः ।

शब्दार्थ—क्षुधा–पीडितः=भूख से व्याकुल । बहिः संचरन्=बाहर घूमता हुआ । तत्कृतरावम्=चूहे द्वारा किए हुए शब्द को । अनुपयोगात्=उपयोग न होने से । आहार-दाने=भोजन देने में । ... आदर वाला–उपेक्षाभाव दिखाने वाला । ... अभाव से । अवसन्नो

इसीलिये सियार को कल्याणेच्छी समझ कर उसे भोजन देने में भी मान दिखाने लगा । भोजन न मिलने से वह सियार दुर्बल हो गया बहुत व्याकुल हुआ । इसीलिए मैं कहता हूँ कि स्वामी को श्रेयस्कर करना चाहिए ।

ततो दमनक करटकौ ... साष्टांगपातं करटकं प्रणतवान् ।

सन्धि-विच्छेद—तत्+ना-तत्+मृत्या—शकार या तवर्ग से पहले या पीछे शकार या तवर्ग हो तो स् को श और तवर्ग को चवर्ग हो जाता है। व्यञ्जन सन्धि यहाँ त् को न् और श् को छ् हुआ है ।

समास—अरण्य-रक्षार्थम्–अरण्यस्य रक्षा इति अरण्य-रक्षा–षष्ठी तत्पुरुष, अरण्यरक्षायाः अर्थम् इति–तत्पुरुष ।

रूप—समाज्ञापयति–सम् और आ दोनों उपसर्ग, ज्ञप् सूचना देना-ज्ञप् हुक्म देना–क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्यपुरुष, एकवचन है प्रयोग–समाज्ञापयति, समाज्ञापयतः, समाज्ञापयन्ति । विधास्यति वि उपसर्ग धा करना–वि धा–कार्य करना–क्रिया, परस्मैपद, भविष्यत्काल, अन्य पुरुष, एकवचन विधास्यति, विधास्यतः विधास्यन्ति । आयात्–या–जाना, आ उपसर्ग–आ आना–क्रिया, अनद्यतन भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन–आयात्, आयातां आयुः आयान् ।

शब्दार्थ—साटोपम्=घमण्ड से–तन–टन कर । उपविष्ट=बैठा । नियुक्त= नियुक्त किया । समाज्ञापयति=आज्ञा देता है । अपसर=चला जा । न जाने=नहीं जानता हूँ । विधास्यति=करेगा । आयात्=आया । देश–व्यवहार–अनभिज्ञ= देश के अनुसार व्यवहार–रीति कौन जानने वाला । उपसृत्य=समीप जाकर=साष्टांग पातम्=आठों अङ्गों को झुका कर । प्रणतवान्=नमस्कार किया ।

व्याख्या—तत्पश्चात् दमनक और करटक संजीवक बैल की ओर चल दिए करटक एक वृक्ष के नीचे गर्वपूर्वक बैठ गया । दमनक संजीवक के पास जाकर बोला । रे बैल ! राजा पिंगलक ने मुझे इस वन की रक्षा के लिए नियुक्त किया है । सेनापति करटक हुक्म देता है—शीघ्र आ, नहीं तो इस वन से दूर भाग जा। वरना विरुद्ध फल होगा । न मालूम क्रुद्ध होकर स्वामी क्या करेगा । यह सुनकर संजीवक उसके साथ आ गया । देश के व्यवहार को न जानने वाले संजीवक भयपूर्वक आठों अङ्गों को झुकाकर करटक को प्रणाम किया ।

प्रतिवाचमदत्त केशवः··········न हि गोमायुरुतानि केसरी ॥४६॥

समास—गोमायु—रुतानि—गोमायूनां रुतानि—षष्ठी तत्पुरुष।

अन्वय—केशवः शपमानाय चेदिभूभुजे प्रतिवाचं न अदत्त। केसरी घनध्वनिं श्रुत्वा अनुहुङ्कुरुते हि गोमायु—रुतानि (श्रुत्वा) न (कुरुते)।

शब्दार्थ—केशवः=भगवान् श्रीकृष्ण ने। शपमानाय=गालियां देने वाले। चेदिभूभुजे=चंदेरी के राजा शिशुपाल को। प्रतिवाचम् न अदत्त=प्रत्युत्तर नहीं दिया। घनध्वनिं श्रुत्वा=मेघों का गंभीर घोष—गर्जना—सुनकर। अनुहुंकुरुते=हुंकार कर गर्जना है। गोमायु—रुतानि=गीदड़ों की आवाज सुनकर। न=नहीं।

व्याख्या—भगवान् श्रीकृष्ण ने अपशब्द गाली देने वाले चंदेरी के राजा शिशुपाल को लौटकर उत्तर नहीं दिया। यह सत्य है कि सिंह मेघों के गम्भीर गर्जन को सुनकर दहाड़ता है, पर गीदड़ों के शब्द को सुनकर नहीं।

गाथार्थ—महान् महत्येव करोति विक्रमम्।

शब्दार्थ—ततः=इसके बाद अर्थात् संजीवक को अभयदान देकर। दमनक-करटकौ=दमनक और करटक। संजीवकं किंचिद्दूरे संस्थाप्य=संजीवक को कुछ दूरी पर बैठाकर। पिंगलक समीपं गतौ=राजा पिंगलक के पास गये।

ततो राजा सादरमवलोकितौ··········शब्दमात्रान्न भेतव्यम् ॥

सन्धि-विच्छेद—प्रणम्योपविष्टौ—प्रणम्य+उपविष्टौ—अ+उ=ओ गुण-सन्धि।

समास—महाबलः—महत् बलं यस्य सः=बहुब्रीहि।

रूप—प्रणम्य—नम्=नमस्कार करना, प्र उपसर्ग—प्रनम्—प्र में रेफ पहले होने से न को ण हो गया—प्रणम्—ल्यप् प्रत्यय हुआ, परन्तु उपसर्ग पूर्व में होने से त्वा को य हो गया है। उपविष्टौ—विश्—प्रवेश करना—उप उपसर्ग—उपविश्—बैठना—क्रिया से क्त (त) प्रत्यय। श् को ष् और त को ट—उपविष्टः, उपविष्टौ, उपविष्टाः। द्रष्टुम्—दृश्—देखना क्रिया से तुम् प्रत्यय। दृश्यताम्—दृश्—देखना—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन,—दृश्यताम्, दृश्येताम्, दृश्यन्ताम्।

राजा सादरम् अवलोकितौ=राजा ने उन दोनों—करटक और दमनक को आदर की दृष्टि से देखा। प्रणम्य उपविष्टौ=वे दोनों प्रणाम करके बैठ गये।

देव-पादारविन्दम्=हमारे राजा के चरण कमल में। प्रणम=प्रणाम कर। ...
शब्दा प्रलम्=ऐसी शंका व्यर्थ है।

व्याख्या—मंत्रीक (कैन) राजा से कहता है—हे सेनानी ! मुझे क्या करना चाहिए ! इसका यह कहिए। करटक कहता है—हे राम ! यदि वन में रहना चाहता है तो हमारे स्वामी के चरणों में प्रणाम कर। मंत्रीक कहता है— ... अपमान हो। मैं चलता हूँ। करटक कहता है—रे कैन ! तू सन्देह न। यतः=क्योंकि—

तृणानि नोन्मूलयते प्रभञ्जनः···महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम् ॥१॥

सन्धि-विच्छेद—नोन्मूलयते—न+उन्मूलयते—अ+उ=ओ—गुणसंधि। म... स्वेव=महति+एव—इ को य्=यण् संधि।

रूप—मृदूनि—मृदु-कोमल—शब्द, नपुं सकलिंग, द्वितीया विभक्ति, बहुवचन मृदु, मृदुनी, मृदूनि। प्रबाधते—बाध्—बाधा पहुँचाना। प्र उपसर्ग—प्रबाध—क्रिया देना—क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—प्रबाधते, प्रबाधेते, प्रबाधन्ते। महति—महत्—बड़ा—शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकव महति, महतो, महत्सु। करोति—कृ=करना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, ... पुरुष, एकवचन—करोति, कुरुतः कुर्वन्ति।

अन्वय—प्रभंजनः सर्वतः नीचैः प्रणतानि मृदूनि तृणानि न उन्मूल (किन्तु) समुच्छ्रितान् तरून् एव प्रबाधते। महान् महति एव विक्रमं करोति।

शब्दार्थ—प्रभंजनः=झंझावात—आंधी। सर्वतः नीचैः प्रणतानि=चारों ओर से नीचे झुके हुए। मृदूनि तृणानि=कोमल तिनकों—छोटे-छोटे पौधों को। न उन्मूलयते=नहीं उखाड़ती है। समुच्छ्रितान् तरून्=बड़े-बड़े ऊंचे वृक्षों को। प्रबाधते=कष्ट पहुँचाती है अर्थात् जड़ से उखाड़ फेंकती है। महान्=बड़ा और पुरुष। महति एव=बड़े बलवान् पर। विक्रमं करोति=पराक्रम दिखाता है, नि... पर नहीं।

व्याख्या—यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि आंधी चारों ओर से नीचे झुकने वाले पौधों को नहीं उखाड़ती, परन्तु ऊंचे-ऊंचे विशाल वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंकती है, क्योंकि वीर वीर पर ही पराक्रम दिखाता है, निर्बल पर नहीं। मात्र यह है कि बलवान् निर्बल के पर हाथ नहीं उठाता।

भावार्थ—वीर वीर का ही सामना करता है।

समास—तत्-पाणि-पतिता—तस्य पाणिः इति तत्पाणिः, तत्पाणेः पतिता इति—तत्पुरुष ।

रूप—श्रूयते—श्रु—सुनना—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—श्रूयते, श्रूयेते, श्रूयन्ते ।

शब्दार्थ—श्रीपर्वतमध्ये=श्रीपर्वत के बीच में। ब्रह्मपुराख्यम्=ब्रह्मपुर नाम वाला। तत्शिखर-प्रदेशे=उसकी चोटी पर। जनप्रवादः श्रूयते=किंवदन्ती—अफवाह—उड़ती हुई खबर—सुनी जाती है। आदाय पलायमान=लेकर भागता हुआ। व्याघ्रेण व्यापादितः=बाघ द्वारा मारा गया। तत्पाणिपतिता=उसके हाथ से गिरा हुआ। अनुक्षणं वादयन्ति=प्रतिक्षण बजाते हैं। घंटारवः च श्रूयते= घण्टे का शब्द सुना जाता है। कुपितः=क्रुद्ध। नगरात् पलायिताः=नगर से भाग गये।

व्याख्या—श्रीपर्वत के बीच में ब्रह्मपुर नामक एक नगर था। उसके शिखर के एक भाग में घंटाकर्ण नामक राक्षस निवास करता है—यह अफवाह सुनी जाती है। एक बार घण्टा लेकर भागते हुए किसी चोर को व्याघ्र ने मार दिया। उसके हाथ से गिरा घण्टा वानरों को मिल गया। वानर उस घण्टे को क्षण क्षण में बजाते हैं। इस के पश्चात् नागरिकों ने देखा कि उस मनुष्य को किसी ने खा लिया है, परन्तु घन्टे का शब्द फिर प्रत्येक क्षण सुनाई देता है। इसके पश्चात् मनुष्यों ने सोचा कि इस वन में वास करने वाला घण्टाकर्ण नामक राक्षस अत्यन्त कुपित हो मनुष्य को खाता और घण्टा बजाता रहता है—ऐसा कहकर सब लोग नगर से भागने लगे।

ततः करालया नाम ······ अतोऽहं ब्रवीमि शब्दमात्रान्न भेतव्यम् ॥

समास—परमचतुरया—परमा चासौ चतुरा इति परम-चतुरा-कर्मधारय-तया। कियद्-धनोपक्षयः—कियतः धनस्य उपक्षयः इति तत्पुरुष। वानर-प्रिय-फलानि—वानरेभ्यः प्रियाणि इति—चतुर्थी तत्पुरुष। फलासक्ताः—फलेषु आसक्ता इति—सप्तमी तत्पुरुष। सर्व-जन-पूज्या—सर्वे च ते जना इति सर्वजनाः, सर्व-जनैः पूज्या इति सर्वजनपूज्या—तृतीया तत्पुरुष।

शब्दार्थ—विमृश्य=सोच कर। विज्ञाय=जान कर। राजा विज्ञापितः= राजा से निवेदन किया। कियत्-धनोपक्षयः क्रियतें=कुछ धन व्यय किया जाय।

त्वया दृष्टः=तुमने देखा। देवेन ज्ञातम्=देव ने-स्वामी ने-जैसा समझा। त
तथा=वह वैसा ही है। देव द्रष्टुम् इच्छति=वह महाराज के दर्शन करना चाहता
है। सज्जीभूय उपविश्य दृश्यताम्=सावधान हो बैठकर देखियेगा। शब्दमात्र
एव न भेतव्यम्=केवल शब्द सुनकर ही नहीं डर जाना चाहिये।

व्याख्या—दमनक-करटक राजा पिंगलक के पास गए। राजा ने
आदर की दृष्टि से देखा। वे राजा को प्रणाम कर बैठ गए। राजा ने
क्या तुमने उसे देखा? दमनक उत्तर देता है—स्वामिन्! देखा।
आपने समझा है, वह वैसा ही महान् है। किन्तु महाबली वह आपके दर्शन क
चाहता है। आप सज-धज कर बैठिए और उसे देखियेगा। केवल शब्दमात्र
सुनकर मत डरियेगा।

तथा च उक्तम्=जैसाकि कहा है—

शब्दमात्रान्न भेतव्यम् .... कराला गौरवं गता॥९॥

सन्धि-विच्छेद—शब्दमात्रान्न=शब्दमात्रात्+न=त् को न्-व्यंजन सन्धि।

समास—शब्द-हेतुम्-शब्दस्य शब्दानां वा हेतुः=षष्ठी तत्पुरुष-तम्।

रूप—परिज्ञाय परि उपसर्ग, ज्ञा-जानना क्रिया से ल्वा प्रत्यय हुआ —
उपसर्ग पूर्व में होने से ल्वा को य हो गया है।

अन्वय—शब्द कारणम् अज्ञात्वा शब्दमात्रात् न भेतव्यम्। शब्दहेतुं प
ज्ञाय कराला गौरव गता।

शब्दार्थ—अज्ञात्वा=न जानकर। न भेतव्यम्=नहीं डरना चाहिए
परिज्ञाय=समझ कर—जानकर। गौरवं गता=आदर को प्राप्त हुई।

व्याख्या— शब्द का कारण न जानकर केवल शब्दमात्र से डर जाना उचि
है। शब्द का कारण समझ कर कराला ने आदर प्राप्त किया।

राजाह=राजा कहता है। एतत् कथम्=यह कैसे? दमनक कथाति
ह कहता है।

वानर-घंटाकथा=वानरों के घंटे की कथा।

अस्ति श्रीपर्वतमध्ये ....मर्वे जनाः नगरात् पलायिताः।

सन्धि-विच्छेद—श्रीपर्वत-मध्ये—द्[+]श्रिमध्ये—न् को म् और द
को ध्-व्यंजन सन्धि।

घंटाकर्णं प्रसादयामि=घंटाकर्ण को प्रसन्न कर सकती—अपने वश में कर सकती हूँ। मंडलं कृत्वा=मंडल बनाकर। गणेशादि-पूजा-गौरवं दर्शयित्वा=गणेश आदि देवों की पूजा का महत्व दिखाकर। वानर-प्रिय फलानि आदाय=वानरों को प्रिय लगने वाले फल लाकर। आकीर्णानि=बिखेर दिए। घण्टां परित्यज्य=घंटा को त्यागकर। फलासक्ता बभूवुः=फल खाने में लग गये। सर्वजन-पूज्या अभवत्=सब मनुष्यों से पूजनीय हो गई—सब उसका आदर करने लगे।

व्याख्या—तदनन्तर कराला नामक एक एक परम चतुर स्त्री ने सोच कर यह निश्चय किया कि "कुसमय में घंटे की आवाज होती है तो क्या बन्दर घंटा बजाते हैं"—यह स्वयं विचारकर राजा से निवेदन किया—देव! यदि आप कुछ धन व्यय करें तो मैं घंटाकर्ण को प्रसन्न कर सकती हूँ—अपने वश में कर सकती हूँ। तब राजा ने उसे धन दिया। उस बुद्धिमती कराला ने गणेश आदि देवों का मंडल बनाकर पूजा का महत्व दिखाकर और बन्दरों को अच्छे लगने वाले फल लेकर वन में प्रविष्ट हो फल बिखेर दिए। वानर घंटा छोड़कर फल खाने में लग गये। ढोंग रचना में चतुर वह घंटा लेकर नगर में आ गई और सब से पूजित हुई—सबने उसका आदर किया। इसलिए मैं कहता हूँ कि केवल शब्द सुनकर ही नहीं डरना चाहिए—इत्यादि।

ततः संजीवकः आनीय दर्शनं कारितः=तब संजीवक को यहाँ लाकर दर्शन कराया। पश्चात् तत एव परमप्रीत्या निवसति=उसके बाद वह प्रीति बढ़ने से वहीं रहने लगता है।

अथ कदाचित् तस्य सिंहस्य भ्राता······नैतद् उचितम्॥

समास—तदाहाराय—तस्य आहारः इति तदाहारः तस्मै—तत्पुरुष। हतमृगाणाम्—हताः च ते मृगा इति हतमृगाः—कर्मधारय—तेषाम्।

रूप—जानीतः—ज्ञा—जानना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष द्विवचन—जानाति, जानीतः, जानन्ति।

शब्दार्थ—स्तब्धकर्णनामा=स्तब्धकर्ण नामक। आतिथ्यं कृत्वा=अतिथि सत्कार करके। समुपविश्य=अच्छी तरह से बैठा कर। तदाहाराय=उसके खाने के लिए स्तब्धकर्ण के—भोजन के लिए। हन्तुम्=मारने को। हतमृगाणाम्=मारे हुए पशुओं का। विमृश्य आह—सोचकर कहता है। [illegible]

धिक मांस। ताभ्या खादितम्=उन दोनों ने खा लिया। व्ययितम्=खर्च कर या। श्रवधारितुम्=लुटा दिया-फेंक दिया। श्रगोचरेण=अनुपस्थिति में। भर्तुः निवेद्य=स्वामी को निवेदन न करके। एतत् राज्ञः प्रधानम् दूषणम्=राजा का ह प्रधान दोष है।

व्याख्या—एक समय पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण आया। उसका आतिथ्य , भली प्रकार बैठाकर पिंगलक उसके भोजन के लिए शिकार करने चला। सी बीच में संजीवक कहता है—देव! आज मारे हुए पशुओं का मांस कहां है। जा कहता है—वह तो दमनक-करटक ही जानते हैं। संजीवक कहता है—ज्ञात रना आवश्यक है कि है अथवा नहीं। सिंह सोच विचार कर कहता है—वहां नहीं है। संजीवक फिर कहता है—क्या इतना अधिक मांस वे खा गए। पिंगलक कहता है—खाया, लुटाया और फेंक दिया। प्रतिदिन का यही क्रम है। संजीवक कहता है—क्या आपको सूचित किए बगैर ही ऐसा किया जाता है। राजा उत्तर देता है—मुझे सूचित न करके ही ऐसा किया जाता है। संजीवक कहता है—यह तो उचित नहीं है।

तथा चोक्तम्=जैसाकि कहा है—

नानिवेद्य प्रकुर्वीत भर्तुः·················अन्यत्र जगतीपतेः ॥६१॥

समास—आपत्प्रतीकारात्–आपदः आपदा वा प्रतीकारः–षष्ठी तत्पुरुष-समात्।

रूप—प्रकुर्वीत–प्र उपसर्ग, कृ=करना-क्रिया, आत्मनेपद, विधिलिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन-प्रकुर्वीत, प्रकुर्वीयाताम्, प्रकुर्वीरन्। भर्तुः–भर्तृ–स्वामी-शब्द, पुल्लिग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन-भर्तुः, भर्त्रोः, भर्तृणाम्।

अन्वय—हे जगतीपते! भर्तुः अनिवेद्य किंचित् अपि कार्यम् आपत्प्रतीकारात् अन्यत्र न प्रकुर्वीत।

शब्दार्थ—हे जगतीपते! हे राजन्! भर्तुः अनिवेद्य=स्वामी को बिना कहे। किंचित् अपि कार्यम्=कोई भी कार्य। आपत्प्रतीकारात्=आपत्ति के उपाय के अतिरिक्त। स्वयं न प्रकुर्वीत=स्वयं नहीं करना चाहिये।

व्याख्या—हे राजन्! सेवक को केवल आपत्ति के उपाय के अतिरिक्त। अर्थात् आपत्ति को दूर करने वाले उपाय के अतिरिक्त अन्य कोई भी कार्य स्वामी से निवेदन किए बिना नहीं करना चाहिये।

किं च=और क्या—

स ह्यमात्यः सदा श्रेयान ....प्राणाः प्राणा न भूपते

रूप—श्रेयान–श्रेयस्–बढ़िया–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, ए
श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांस. । कोषवतः–कोषवत्–कोषवत्–कोष खजाना–
शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन–कोषवन्, कोषवतोः, कोषवताम् ।

अन्वय—हि स अमात्य सदा श्रेयान् यः काकिनीं प्रवर्धयेत् । को
भूपतेः कोषः एव प्राणाः (सन्ति) भूपतेः प्राणाः प्राणाः न ।

शब्दार्थ—यः काकिनीं प्रवर्धयेत्=जो पैसे को बढ़ावे । कोषवतः भूपतेः
एव प्राणाः=खजाने वाला राजा का प्राण खजाना है । प्राणाः न=केवल प्राण
जीवन–ही प्राण नहीं हैं ।

व्याख्या—राजा का वही मन्त्री श्रेष्ठ है जो पैसे की वृद्धि करे अर्थात्
खजाना भरपूर करे । वस्तुतः कोष खजाना वाले राजा के प्राण खजाना है
न कि प्राण राजा के प्राण हैं अर्थात् कोष की वृद्धि प्राणों से भी बढ़कर है ।

किं चान्यैः न कुलाचारैः ....त्यज्यते किं पुनः परैः ॥६३॥

समास— धन-हीनः–धनेन हीन इति–तृतीया तत्पुरुष ।

रूप—त्यज्यते–त्यज्–त्यागना–क्रिया, आत्मनेपद, कर्मवाच्य, वर्तमान
अन्य पुरुष, एकवचन– त्यज्यते, त्यज्येते, त्यज्यन्ते ।

अन्वय—किं च अन्यैः कुलाचारैः पुरुषः सेव्यतां न एति । धन-हीन
(जनः) स्वपत्न्या अपि त्यज्यते किं पुनः परैः ।

शब्दार्थ—अन्यैः कुलाचारैः कुल के दूसरे आचारों से अर्थात् सद्-वंश
और श्रेष्ठ आचार-विचारों से । पुरुषः सेव्यतां न एति=पुरुष आदर प्राप्त नहीं
करता । धन–हीनः=निर्धन । स्वपत्न्या अपि त्यज्यते=अपनी पत्नी से भी त्या
दिया जाता है । किं पुनः परैः=फिर दूसरों से क्या–अर्थात् दूसरे त्याग दें त
आश्चर्य न करो ।

व्याख्या—अधिक क्या यदि निर्धन मनुष्य कुलीन और सदाचारी भी है
तो उसका उतना आदर नहीं होता, जितना कि धनवान् का । यह देखा जाता है
कि निर्धन पुरुष अपनी पत्नी द्वारा त्याग दिया जाता है, दूसरों की तो बा
क्या है । भाव यह है कि धन अकुलीन और असदाचारी का भी आदर क
है, इसलिए वह सर्वश्रेष्ठ है ।

शब्दार्थ—एतत् च राज्ये प्रधानं दूषणम्=और यह राज्य में मुख्य दोष है।

अतिव्ययोऽनवेक्षा च············कोष-व्यसनमुच्यते ॥६४॥

समास—अनवेक्षा-न अपेक्षा इति-नञ्-निषेधवाचक तत्पुरुष। दूर-स्थानम्=दूरे संस्थानम् इति-सप्तमी तत्पुरुष।

अन्वय—अतिव्ययः अनवेक्षा तथा अधर्मतः अर्जनं मोषण दूर-संस्थानं कोष-व्यसनम् उच्यते।

शब्दार्थ—अनवेक्षा=जागरूक न रहना-लापरवाही। अधर्मतः अर्जनम्=अन्याय से धन-संग्रह करना। मोषणम्=किसी का जबरदस्ती धन छीन लेना। दूर-संस्थानम्=धन को कहीं दूर स्थान में रखना। कोष-व्यसनम् उच्यते=ये सब कोष की बुराइयां कहलाती हैं।

व्याख्या—राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह यह कार्य न करे-आमदनी से ज्यादा खर्चा, लापरवाही, अधर्म से धन संग्रह, अन्याय से किसी के धन का अपहरण, धन को दूर ले जाकर रखना—ये कोष की बुराइयां हैं।

स्तब्धकर्णो ब्रूते············अर्थाधिकारिणौ न नियोक्तव्यौ।

सन्धि-विच्छेद-चिराश्रितावेतौ-चिर+आश्रितौ+एतौ-दीर्घ और अयादि संधि-यदि ए, ऐ ओ या औ के बाद कोई स्वर आते हैं तो ए को अय्, ऐ को आय, ओ को अव् और औ को आव् हो जाता है- अयादि संधि।

समास—संधि-विग्रह-कार्याधिकारिणौ-सन्धिः च विग्रहः च-सन्धि-विग्रहौ-द्वन्द्व, सन्धि-विग्रहयोः कार्यम्-इतिसंधि-विग्रह कार्यम्-संधि-विग्रह-कार्ये अधिकारिणौ इति-तत्पुरुष।

रूप-शृणु-श्रु-सुनना-क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, एक-वचन-शृणु-शृणुतात्, शृणुतम्, शृणुत।

शब्दार्थ—स्तब्धकर्णो ब्रूते-राजा पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण कहता है। भ्रात शृणु=हे भाई! सुन। चिराश्रितौ एतौ=बहुत काल से आश्रय में रहने वालों को। सन्धि-विग्रह-कार्याधिकारिणौ=सन्धि-मेल, विग्रह-युद्ध कराने के अधिकारी। अर्थाधिकारे=धन के अधिकार में। न नियोक्तव्यौ=इन्हें कभी नियुक्त नहीं करना

का... -स्तब्धकर्ण कहता है-हे भाई, सुन, बहुत समय करटक संधि-मेल, विग्रह-युद्ध कराने

के अधिकारी हैं अर्थात् सन्धि और विग्रह के नियमों का कार्य करने वाले। इन्हें धन के अधिकार पर कभी नियुक्त न करना चाहिए। इन्हें अर्थमन्त्री का पद देना उचित नहीं।

शब्दार्थ—अपरं च=और भी। नियोग-प्रस्तावे=कार्य के विषय में। यत् मया श्रुतम्=जो कुछ मैंने सुना है। तत् कथ्यते=वह कहा जाता है।

व्याख्या—और दूसरी बात यह है कि किस काम में किस को नियुक्त करना चाहिए—इस विषय में मेरा जो अनुभव-ज्ञान-है—उसे मैं कहता हूँ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो बन्धुः·········कृच्छ्रेणापि न यच्छति ॥६४॥

रूप—प्रशस्यते—शंस्-क्रिया, प्र उपसर्ग—प्रशंस्—प्रशंसा—करना, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—प्रशस्यते, प्रशस्येते, प्रशस्यन्ते।

अन्वय—ब्राह्मणः क्षत्रियः बन्धुः च अधिकारे न प्रशस्यते। ब्राह्मणः सिद्धम् अपि अर्थं कृच्छ्रेण अपि न यच्छति।

शब्दार्थ—अधिकारे न प्रशस्यते=अधिकार में लगाना—अधिकारी बनाना अच्छा नहीं। सिद्धम् अपि अर्थम्=सिद्ध होने वाले प्रयोजन को भी। कृच्छ्रेण अपि=राजा के आग्रह करने पर भी।

व्याख्या—ब्राह्मण, क्षत्रिय और भाई-बन्धु को अधिकार पर नियुक्त न करना चाहिए, क्योंकि ब्राह्मण सिद्ध होने वाले कार्य को राजा के आग्रह करने पर भी नहीं करता है।

नियुक्तः क्षत्रियो द्रव्ये·············आक्रम्य ज्ञातिभावतः ॥६५॥

अन्वय—द्रव्ये नियुक्तः क्षत्रियः ध्रुवं खड्गं दर्शयते। बन्धुः ज्ञातिभावतः आक्रम्य सर्वस्वं ग्रसते।

शब्दार्थ—द्रव्ये नियुक्तः=धन के अधिकार पर नियुक्त। ध्रुवं खड्गं दर्शयते=निश्चय ही तलवार दिखाता है अर्थात् राज्य छीनने का प्रयत्न करता है। ज्ञातिभावतः=भाई के नाते से। आक्रम्य=घेरकर। सर्वस्वं ग्रसते=सब कुछ हर लेता है।

व्याख्या—द्रव्य के अधिकार पर यदि क्षत्रिय को नियुक्त कर दिया जाय तो वह राज्य छीनने की इच्छा से तलवार दिखाता है। भाई-बन्धु तो घर के

शब्दार्थ—*आज्ञा-भंग-करान्=आज्ञा न* मानने वालों को। चि
चित्र में चित्रित। को विशेषः=क्या विशेषता है।

व्याख्या—राजा का कर्त्तव्य है कि आज्ञा न मानने वाले अपने
को क्षमा न करे, अन्यथा चित्र में लिखे हुए और शासन करने वाले
अन्तर ही क्या है अर्थात् ऐसा राजा निकम्मा है।

स्तब्धस्य नश्यति यशः·········प्रमत्त-सचिवस्य नराधिपस्य

समास—*नष्टेन्द्रियस्य=नष्टानि इन्द्रियाणि यस्य सः-बहुव्रीहि-तस्य*
परः=अर्थे परः इति-सप्तमी तत्पुरुष। प्रमत्त-सचिवस्य-प्रमत्तः सचिवः यस्य
बहुव्रीहि तस्य।

रूप—व्यसनिनः-व्यसनिन्-शौकीन-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति,
वचन-व्यसनिनः, व्यसनिनोः, व्यसनिनाम्।

अन्वय—स्तब्धस्य यशः, विषमस्य मैत्री, नष्टेन्द्रियस्य कुलम्, अर्थ
धर्मः, व्यसनिनः विद्याफलम्, कृपणस्य सौख्यम्, प्रमत्त-सचिवस्य नरा
राज्यं नश्यति।

शब्दार्थ—*स्तब्धस्य=जड़-आलसी-का। विषमस्य मैत्री=असमान*
मित्रता। नष्टेन्द्रियस्य कुलम्=विलासी का कुल। अर्थपरस्य धर्मः=धन के
का धर्म। व्यसनिनः=जुए आदि व्यसनों में लीन का। सौख्यम्=सुख। प्र
सचिवस्य नराधिपस्य=असावधान-अविवेकी-मन्त्री रखने वाले-राजा का।

व्याख्या—जड़-आलसी-मनुष्य का यश, असमान की मित्रता, इन्द्रि
लोलुप का कुल, धन के लोभी का धर्म-कर्म, जुए आदि के शौकीन की वि
कंजूस का सुख और उन्मत्त-असावधान-अविवेकी-मन्त्री रखने वाले राज
राज्य नष्ट हो जाता है।

भ्रातः सर्वथा···············महता स्नेहेन कालोऽतिवर्त्तते॥

सन्धि-विच्छेद—तावदेवम्-तावत्+एवम्-त् को द्-व्यञ्जन सन्धि
किन्त्वेतौ=किन्तु+एतौ-उ को व्-यण् सन्धि।

समास—*पिंगल-सञ्जीवकयोः-पिंगलकः च संजीवकः च तौ पिंगल-*
संजीवकौ-द्वन्द्व समास-तयोः। सर्वबन्धु-परित्यागेन-सर्वेषां बन्धूनां परित्या
सर्व-बन्धु-परित्यागः-तत्पुरुष तेन।

रूप—नियुज्यताम्-नि उपसर्ग-युज्-जोड़ना-मिलना, नियुज्-नियुक्त करना-क्रिया, आत्मनेपद, कर्मवाच्य, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन-नियुज्यताम्, नियुज्येताम्, नियुज्यन्ताम्।

शब्दार्थ—सस्यभक्षकः=घास खाने वाले-अन्नभक्षी। अर्थाधिकारे नियुज्यताम्=धन का अधिकारी-अर्थमन्त्री-बनाओ। तथानुष्ठिते इति=ऐसा करने पर। तदारभ्य=उस दिन से लेकर। सर्व-बन्धु-परित्यागेन=सब भाई-बन्धुओं को छोड़ देने से। कालः अतिवर्तते=समय व्यतीत होता है।

व्याख्या—भाई! मेरा कहना मानो और सब कार्य तो हमने किया ही है। अनाज-घास-खाने वाले-इस सञ्जीवक को अर्थमन्त्री-धन का अधिकारी-नियुक्त कर दो। भाई के कहने से उसे धन का अधिकारी-नियुक्त करने पर पिंगलक और संजीवक अन्य सब भाई-बन्धुओं को छोड़ कर स्नेहपूर्वक समय बिताने लगे।

ततोऽनुजीविनामपि······················उपायः क्रियताम्॥

सन्धि-विच्छेद—दमनक-करटकावन्योन्यम्—दमनक-करटकौ+अन्योन्यम् औ को आव्—अयादि सन्धि। अस्त्वेवम्—अस्तु+एवम्-उ को व्—यण् सन्धि।

समास—आत्म-कृतः—आत्मना कृत इति आत्म-कृतः—तृतीया तत्पुरुष।

शब्दार्थ—अनुजीविनाम् अपि आहार-दाने=नौकरों को भी भोजन देने में। शैथिल्य-दर्शनात्=शिथिलता-उपेक्षा-दिखाने से। अन्योऽन्य चिन्तयतः=आपस में चिन्ता करने लगे। अयं दोषः आत्म-कृतः=यह दोष तो स्वयं किया गया है। क्षणं विमृश्य=क्षण भर सोच कर। सौहार्दम्=मित्रता। अन्योन्यबद्ध-स्नेहः=एक दूसरे पर स्नेह-शील। कथं भेदयितुं शक्यः=किस प्रकार भिन्नता कराई जा सकती है। उपायः क्रियताम्=उपाय करना चाहिए।

व्याख्या—अर्थाधिकारी होने पर संजीवक ने सेवकों को भोजन देने में शिथिलता-उपेक्षा-दिखाई अर्थात् नियमित और परिमित भोजन देना प्रारम्भ किया, तब दमनक और करटक सोचने लगे। दमनक ने करटक से कहा-मित्र क्या करना चाहिए? इस समय भोजन के भी लाले पड़ गये हैं। यह बुराई हमने स्वयं की, अतएव अपने-आप किये दोष पर पश्चात्ताप करना उचित नहीं है। (क्षण भर विचार) मित्र! जैसे इन दोनों की मित्रता मैंने कराई है,

वैसे ही मित्र-भेद भी मुझे कराना पड़ेगा। करटक कहता है—ऐसा चाहिए। किन्तु आपस में इनका एक दूसरे पर अधिक स्नेह है—वह नष्ट कराया जा सकता है? दमनक कहता है—उपाय करना चाहिए।

तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा है—

उपायेन हि यच्छक्यं ·············· कृष्णसर्पो निपातितः

संधि-विच्छेद—यच्छक्यं-यत्+शक्यम्, तच्छक्यं-तत्+शक्यम्-व्यंजन-सन्धि।

समास—कृष्णसर्पः-कृष्णः चासौ सर्पः-कर्मधारय।

अन्वय—हि यद् उपायेन शक्यं तद् पराक्रमैः न शक्यम् (अस्ति), कनक-सूत्रेण कृष्णसर्पः निपातितः।

शब्दार्थ—यत् शक्यम्=जो शक्य है—जो हो सकता है। काक्या=ने। कनक-सूत्रेण=सोने की माला द्वारा। निपातितः=मरवा दिया।

व्याख्या—उपाय द्वारा जो कार्य सरलता से हो सकता है, वह केवल से साध्य नहीं। कागली ने सुवर्ण की माला द्वारा भयंकर काले साँप का करा' दिया।

करटकः पृच्छति=करटक पूछता है। एतत् कथम्=यह कैसे? दमनकः यति=दमनक कहता है।

वायस-दम्पत्योः-कथा=वायस दम्पती की कथा।

कस्मिंश्चित्तरौ वायसदम्पती ········· कदाचित् अपि न भविष्य

संधि-विच्छेद—कस्मिंश्चित्-कस्मिन्+चित्-यदि न् के बाद च, छ, ठ, त अथवा थ हो तो न् को अनुस्वार हो जाता है और मध्य में क्रमशः श, या स् आ जाता है—व्यंजन सन्धि।

समास—तत्कोटरावस्थितेन-तस्मिन् कोटरे अवस्थितः इति तत्कोटरावस्थि सप्तमी तत्पुरुष-तेन।

शब्दार्थ—कस्मिंश्चित् तरौ=किसी वृक्ष पर। वायसदम्पती=कौए का जो अपत्यानि=सन्तान। तत्कोटरावस्थितेन=उस खोखल में रहने वाले से। ग्र तानि=खा ली गई। त्यज्यताम्=छोड़ देना चाहिए। अवस्थित-कृष्णसर्पे यहां रहने वाले काले सांप द्वारा। सन्ततिः=सन्तान।

! यदि आप प्रसन्न हों तो हम आपके भोजनार्थ प्रतिदिन निश्चित एक पशु भेज सकते हैं। तब सिंह ने कहा—यदि आप सब का यही सम्मति है अर्थात् आपको ऐसा करना अभीष्ट है तो ऐसा ही कीजिए। उस दिन से वह प्रतिदिन निश्चित एक पशु को खाता है। तत्पश्चात् एक दिन किसी एक बूढे खरगोश की बारी आई।

स. अचिन्तयत्=वह सोचने लगा।

ग्राम-हेतोः·········किं सिंहानुनयेन मे ॥७३॥

समास—जीविताशया—जीवितस्य आशा जीविताशा—षष्ठी तत्पुरुष, तया। सिंहानुनयेन—सिंहस्य अनुनयः इति सिंहानुनयः—तत्पुरुष—तेन

रूप—गमिष्यामि—गम—जाना—क्रिया, परस्मैपद, भविष्यत्काल, उत्तम-पुरुष, एकवचन—गमिष्यामि, गमिष्यावः, गमिष्यामः।

अन्वय—(जनैः) जीविताशया ग्राम-हेतोः विनतिः क्रियते। चेत् पंचत्वं गमिष्यामि (तर्हि) मे सिंहानुनयेन किम्।

शब्दार्थ—जीविताशया=जीवन की आशा से। ग्राम-हेतोः=ग्राम के कारण की अर्थात् मारने वाले की। विनतिः क्रियते=विनय की जाती है। पंचत्वं गमिष्यामि=मर जाऊँगा। सिंहानुनयेन किम्=सिंह की अनुनय-प्रार्थना—खुशामद—से क्या लाभ।

व्याख्या—जीवन की आशा से प्रत्येक प्राणी मारने वाले की विनय करता है। यदि मरना ही है तो शेर की खुशामद से मुझे क्या लाभ अर्थात् कुछ भी नहीं, अतएव मैं सिंह की चाटुकारिता क्यों करूँ।

दर्शितवान्—दर्शितवत्—दिखाता हुआ—शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति,
वचन—दर्शितवान्, दर्शितवन्तौ, दर्शितवन्तः ।

शब्दार्थ—क्षुधा-पीड़ित=भूख से व्याकुल । विलम्ब्य=देर करके
समागतोऽसि=तू आया है । पथि आगच्छन्=मार्ग में आते हुए । सिंहेन
गेया धृतः=दूसरे शेर ने पकड़ लिया । पुनरागमनाय=लौटकर आने के लिए
सत्वर गत्वा=शीघ्र चल कर । दुरात्मनं दर्शय=उस दुष्ट को दिखा । गभीरकूप
गहरे कुए को । दर्शयितुं गत =दिखाने गया । दर्शितवान्=दिखा दी । क्रोधाध्मात
क्रोध से दहाड़ने वाला । आत्मानं निक्षिप्य=अपने आपको फेंक कर—कूद कर
पंचत्व गतः=मर गया ।

व्याख्या—तो मैं धीरे धीरे चलूं । भूख से व्याकुल शेर देर से आने
खरगोश से बोला—तू इतनी देर से क्यों आया ? खरगोश ने उत्तर दिया—
स्वामिन् ! मैं अपराधी नहीं हूँ । मार्ग में आते हुए मुझे जबर्दस्ती एक दूसरे
ने पकड़ लिया । फिर लौट कर आने की शपथ खाकर आपको सूचित करने
हूँ । सिंह ने क्रोध में कहा—शीघ्र चल कर दिखा, वह दुष्ट आत्मा कहाँ
खरगोश उस सिंह को लेकर गहरा कुआ दिखाने चल दिया । यहाँ आकर
स्वयं देख लें—यह कह कर खरगोश ने कुए के जल में उस सिंह की पर
दिखा दी । तब शेर क्रोध से दहाड़ कर घमंड से अपनी परछाई को दूसरा
समझ उस पर कूद पड़ा और मर गया ।

अतोऽहं ब्रवीमि=कौआ कहता है कि इसीलिए मैं कहता हूँ । बुद्धिर्
जिसको बुद्धि है—इत्यादि ।

यायस्याह·····················दृष्टो व्यापादितश्च ॥

समास—तीर्थ-शिला-निहितम्—तीर्थस्य शिला इति तीर्थ-शिला
तत्पुरुषः तीर्थ-शिलायां निहितम् इति—सप्तमी तत्पुरुष । कनक-सूत्रानु
प्रवृत्तैः—कनकसूत्रस्य अनुसरणे प्रवृत्ताः इति—तत्पुरुष—तैः ।

रूप—सरसि—सरस—सरोवर—शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एक
सरसि, सरसोः, सरस्सु । स्नाति—स्ना—स्नान करना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान
अन्य पुरुष, एकवचन—स्नाति, स्नातः, स्नान्ति ।

शब्दार्थ—आसन्ने सरसि=समीप के सरोवर में । स्नाति=नहा
। तदंगात्=उसके अंग से । अवतारितम्=उतारा हुआ । कनकसूत्र=सुन

तीर्थ शिला निहितम्=तीर्थघाट की शिला पर रक्खा हुआ। चञ्चा विधृत्य=चोंच से उठा कर। तदनुष्ठितम्=वैसा ही किया। कनकसूत्रानुसरण प्रवृत्तैः=सोने का हार लेकर उड़ने वाली कागली का पीछा करने वालों ने। व्यापादितः=मार दिया।

व्याख्या—कागली कहती है—यह सब कुछ मैंने सुन लिया। इस समय करने योग्य कार्य बताइये। कौआ बोला—यहां पास के सरोवर में राजकुमार प्रतिदिन आकर स्नान करता है। स्नान करते समय वह सुवर्ण का हार अपने गले से उतार कर घाट की शिला पर रख देता है। तुम उसे चोंच में उठा यहां लाकर इस खोखल में रख देना। एक समय राजकुमार स्नान करने को जल में घुसा, तब कागली ने कौए का बताया हुआ उपाय किया अर्थात् सोने का हार लेकर उडंच हो गई। इसके बाद राजकुमार के नौकरों ने कागली का पीछा किया और उस वृक्ष के खोखल में ज्यों ही काला साप देखा, त्यों ही उसे मार डाला।

अतोऽहं ब्रवीमि=इसीलिए मैं कहता हूँ (यह दमनक कह रहा है), उपायेन यच्छक्यम्=उपाय से जो हो सकता है, वह केवल पराक्रम से नहीं।

करटको न ते ...... किमपि महाभयकारि मन्यमानः समागतोऽस्मि।

सन्धि-विच्छेद—प्रणम्योवाच—प्रणम्य+उवाच—अ+उ=ओ—गुण सन्धि। तवोपर्यसदृशः—तव+उपरि+असदृशः—गुण और यणसन्धि।

शब्दार्थ—यदि एवं तर्हि गच्छ=यदि ऐसा है तो जाओ। ते पन्थान. शिवाः सन्तु=तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी हों। ततः दमनकः=तब दमनक। पिंगलक-समीपं गत्वा=राजा पिंगलक के पास जाकर। प्रणम्य उवाच=प्रणाम करके बोला। हे देव आत्ययिकं=हे राजन्! आवश्यक। किमपि भयकारि मन्यमानः=अति भयप्रद कार्य समझ कर। समागतः अस्मि=मैं आया हूँ। यतः=क्योंकि—

आपत्सु न्मार्गगमने .... अपृष्टोऽपि हितो नरः॥ ७४॥

संधि-विच्छेद—आपत्सुन्मार्ग गमने—आपदि+उन्मार्गगमने—इ को य्= यणसंधि।

समास—कार्य-कालात्ययेषु—कार्यस्य काल इति कार्य-कालः—षष्ठी तत्पुरुष, अत्यय इति=षष्ठी तत्पुरुष—तेषु।

[illegible]—आपत्—आपत्ति—शब्द, स्त्रीलिंग, सप्तमी विभक्ति, एक— [illegible], आपत्सु। न्ब्रूयात्—ब्र—बोलना—कहना—क्रिया, परस्मैपद,

अन्वय—आपदि, उन्मार्गगमने, कार्य-कालात्ययेषु च अपृष्टः अपि नरः कल्याण वचनं ब्रूयात्।

शब्दार्थ—आपदि=आपत्ति में। उन्मार्गगमने=कुमार्ग में जाने पर। कार्य-कालात्ययेषु च=कार्य का समय बीतने पर। अपृष्टः अपि=बिना पूछे भी। हितो नरः=हितकारी मनुष्य। कल्याण-वचनं ब्रूयात्=कल्याण वचन कहे।

व्याख्या—आपत्ति में, कुमार्ग की ओर जाने पर, कार्य की अवधि के होने पर अर्थात् किसी उत्तम काम का समय बीतने देख कर बिना पूछे जो कल्याणकारी वाक्य कहता है, वास्तव में वही सच्चा हितकारी है।

अमात्यानां एष क्रमः=मन्त्रियों की यह रीति है।

वर प्राण-परित्याग ···········पातकेच्छोरुपेक्षणम् ॥ ७५ ॥

सन्धि-विच्छेद—स्वामि-पदावाप्तिपातकेच्छोरुपेक्षणम्-स्वामि-पद-अवाप्ति पातक+इच्छो+उपेक्षणम्—गुण और विसर्गसंधि।

समास—प्राण-परित्यागः=प्राणानां परित्यागः=षष्ठी तत्पुरुष। स्वामि-पदावाप्ति-पातकेच्छोः-स्वामिनः पदम् इति स्वामिपदम्-तत्पुरुष, स्वामि-पद-अवाप्तिः इति स्वामिपदावाप्तिः, स्वामिपदावाप्तिः एव पातकम्-तस्य इच्छा तत्पुरुष।

रूप—शिरसः=शिरस्-सिर-शब्द, नपुंसकलिंग, षष्ठी विभक्ति। विभक्ति, एकवचन-शिरसः, शिरसाम्।

अन्वय—प्राण-परित्यागः वा शिरसः कर्तनम् अपि वरम् (किन्तु) स्वामि-पदावाप्ति-पातकेच्छोः उपेक्षणं न वरम्।

शब्दार्थ—शिरसः कर्तनम्=सिर का कटना। स्वामि-पद-अवाप्ति-पातकेच्छोः=स्वामी के पद की इच्छा करने वाले पापी की अर्थात् राज्य हड़पने वाले दुष्ट जन की। उपेक्षणं न वरम्=उपेक्षा करना अच्छा नहीं।

व्याख्या—प्राणों को त्याग देना अच्छा है, पर राज्य हड़पने की इच्छा करने वाले पापी को दण्ड न देना अच्छा नहीं है अर्थात् यदि कोई राज्य अपहरण रूपी पाप करने का अभिलाषी है तो उसको दण्ड न देना अनुचित ही है।

शब्दार्थ—पिंगलक : सादरम् आह=पिंगलक आदर-पूर्वक कहता है। अथ वान् किं वक्तुम् इच्छति—आप क्या कहना चाहते हैं।

दमनको ब्रूते—देव !......यन् त्वया सर्वाधिकारी कृतः स एव दोषः।

शब्दार्थ—असदृशा-व्यवहारी इव=अनुचित कार्यकर्त्ता के समान। स्मत्संनिधाने=हमारे सामने। शक्ति-त्रय-निन्दा कृत्वा=तीनों शक्तियों अर्थात् भुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति की निन्दा करके। राज्यम् एव अभिलषति= ज्य की अभिलाषा करता-राज्य ही छीनना चाहता है। साश्चर्यं मत्वा=आश्चर्यमग्न कर। तूष्णीं स्थितः=चुप रहा। सर्व-अमात्य-परित्याग कृत्वा=अन्य सब मन्त्रियों ा त्याग कर। सर्वाधिकारी कृतः=समस्त कार्यों का अधिकारी बना दिया है।

व्याख्या—राजा पिंगलक आदर-पूर्वक कहता है—आप क्या कहना चाहते हैं? दमनक कहता है—हे देव ! सञ्जीवक आपके प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला सा प्रतीत होता है। यह सदा हमारे सम्मुख आपकी प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति—इन तीनों शक्तियों की निन्दा कर आपको अयोग्य शासक समझ कर राज्य हड़पना चाहता है। यह सुन कर राजा पिंगलक भय और आश्चर्य से मौन रहा। दमनक ने फिर कहा—स्वामिन ! समस्त मंत्रियों को त्यागकर केवल इसी एक को समस्त कार्यों का अधिकारी बनाकर आपने बड़ी भूल की है।

अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि पार्थिवे च......तयो र्द्वयोरेकतरं जहाति ॥७६॥

सन्धि-विच्छेद—पादावुपतिष्ठते=पादौ उपतिष्ठते=औ का आव्=अयादि संधि।

समास—मन्त्रिणि-मन्त्रिन-मन्त्री इन्नन्त शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन-मन्त्रिणि, मन्त्रिणोः, मन्त्रिषु। उपतिष्ठते-स्था-तिष्ठ्-ठहरना, उप-उपसर्ग-उपतिष्ठ्-उपस्थित होना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-उपतिष्ठते, उपतिष्ठेते, उपतिष्ठन्ते। जहाति-हा-त्याग देना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-जहाति, जहीतः-जहितः, जहति।

अन्वय—श्रीः पार्थिवे अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि च पादौ विष्टभ्य उपतिष्ठते, सा स्त्री स्वभावात् भरस्य असहा (ततः) तयोः द्वयोः एकतरं जहाति।

=लक्ष्मी। पार्थिवे=राजा के। अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि=और ...त होने पर। पादौ विष्टभ्य उपतिष्ठते=चरणों में गिर कर

सेवा करती है। स्त्रीस्वभावात्=स्त्रियों के समान कोमल स्वभाव होने से। राजा और मंत्री के भार को। असहा=सहन करने में असमर्थ हो का तयो: द्वयो: एकतरं जहाति=फिर दोनों में से एक को छोड़ देती है।

व्याख्या—राज्यलक्ष्मी अति उन्नतिशील राजा और अति उन्नति वाले मन्त्री—इन दोनों के चरणों में उपस्थित होकर सेवा करती है। स्त्री स्वभाव होने से लक्ष्मी राजा और मन्त्री—दोनों की उन्नति के भार को वहन करने में असमर्थ हो जाती है, क्योंकि स्त्रियां स्वभाव से ही कोमल प्रवृत्ति की हैं। तब राजा और मन्त्री इन दोनों में से वह एक को छोड़ देती है।

अपर च=और भी—

एकः भूमिपतिः करोति सचिवम्...मः नृपते प्राणान्तकं द्रुह्यति

सन्धि-विच्छेद—मोहाच्छ्रयते-मोहात्+श्रयते-त् को च् और श् को छ्
व्यंजन संधि।

रूप—निर्भिद्यते-निर् उपसर्ग, भिद्—विदीर्ण करना-क्रिया, आत्मने०
वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-निर्भिद्यते, निर्भिद्येते, निर्भिद्यन्ते।

अन्वय—यदा भूमिपतिः राज्ये एकं सचिवं प्रमाणं करोति (तदा)
मोहात् तं श्रयते स च मदालस्येन निर्भिद्यते। तस्य निर्भिन्नस्य हृदये स्पृहा पदं करोति, ततः स्वातन्त्र्य-स्पृहया नृपतेः प्राणान्तकं द्रुह्यति।

शब्दार्थ—राज्ये=राज्य में। एकं सचिवं प्रमाणं करोति=एक मन्त्री को प्रमाण-मुख्य-कर देता है अर्थात् एक मन्त्री पर समस्त राज्य का भार डाल उसे प्रधान बना देता है। मदः=अभिमान। श्रयते=आश्रय लेता है अर्थात् समय मन्त्री को घमण्ड हो जाता है। मदालस्येन=मद-घमंड-के आलस्य से निर्भिद्यते=वह फूट जाता है अर्थात् राजा और मन्त्री में फूट उत्पन्न हो जाती है। निर्भिन्नस्य तस्य हृदये=फूट होने से उसके-मन्त्री के-हृदय में। स्वातन्त्र्य पदं करोति=स्वाधीनता की अभिलाषा अपना स्थान बना लेती है अर्थात् स्वतन्त्र होने के भाव जाग्रत होते हैं। स्वातन्त्र्य-स्पृहया=स्वाधीनता की इच्छा से। नृपतेः प्राणान्तकं द्रुह्यति=राजा के प्राण लेने की शत्रुता करता है, राजा के प्राण लेने पर उतारू हो जाता है।

व्याख्या—जब राजा राज्य में एक मन्त्री को ही राज्य का समस्त भार सौंप देता है अर्थात् एक ही मन्त्री रखता है, तब उस मन्त्री को घमंड हो जाता है।

और घमंड के आलस से मन्त्री और राजा में फूट पड़ जाती है। फूट उत्पन्न होने से मन्त्री के हृदय में स्वाधीन होने के भाव जाग्रत होते हैं और स्वाधीन होने की इच्छा से वह (मन्त्री) राजा के प्राण लेने को तत्पर हो जाता है, अत एव एक मंत्री रखना कदापि श्रेयस्कर नहीं है।

अन्यत् च = और भी—

विषदिग्धस्य भक्तस्य······मूलादुद्धरणं सुखम् ॥ ७८ ॥

समास—विषदिग्धस्य–विषेण दिग्ध इति विषदिग्ध –तृतीया तत्पुरुष तस्य। अमात्यः–अमा सह समीपे वा भवः–अमात्यः।

अन्वय—विषदिग्धस्य भक्तस्य, चलितस्य दन्तस्य च दुष्टस्य अमात्यस्य च मूलात् उद्धरणम् एव सुखम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—विषदिग्धस्य=विष से युक्त। भक्तस्य=अन्न का। चलितस्य दन्तस्य=हिलने वाले दांत का। दुष्टस्य अमात्यस्य च = दुष्ट मन्त्री का। मूलात् उद्धरण सुखम्=जड़ से उखाड़ फेंकना ही श्रेयस्कर है।

व्याख्या—विष-युक्त अन्न, हिलने वाला दांत और दुष्ट मन्त्री का समूल नाश करना ही श्रेयस्कर है।

किंच = और क्या

यः कुर्यात् सचिवायत्तां ······सीदेत् सचारकैः विना ॥ ७६ ॥

संधि विच्छेद—अन्धवज्जगतीपाल.–अन्धवत् + जगतीपालः–त् के बाद ज आता है तो त् को भी ज हो जाता है–व्यंजन संधि।

रूप—कुर्यात्–कृ = करना–क्रिया – परस्मैपद, विधि लिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन–कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्युः। सीदेत्, सीदेताम्, सीदेयुः।

अन्वय—यः जगतीपाल. श्रियं सचिवायत्तां कुरुते, सः तद्व्यसने सति संचारकैः विना अन्धवत् सीदेत्।

शब्दार्थ—यः जगतीपालः=जो राजा। श्रियं सचिवायत्तां कुरुते=लक्ष्मी को मन्त्री के आधीन कर देता है। सः=वह राजा। तद्व्यसने सति=मन्त्री की मृत्यु तथा आपत्ति के समय। सचारकैः विना=संचालक के न रहने पर अन्धवत् सीदेत्=अन्धे पुरुष के समान दुःख भोगता है।

व्याख्या—जो राजा लक्ष्मी को मन्त्री के आधीन कर देता है, वह स्व की मृत्यु तथा मन्त्री पर अन्य विपत्ति आने पर सञ्चालकों के अभाव में क पुरुष के समान दुःख भोगता है। इसीलिए लक्ष्मी को मन्त्री के आधीन न करना चाहिए।

शब्दार्थ—स नत्=वह मन्त्री। स्वकार्येषु=अपने कार्यों में। स्वेच्छ प्रवर्तते=अपनी इच्छा से प्रवृत्त होता अर्थात् अपनी इच्छानुसार काम करता है तत् अत्र स्वामी प्रमाणम्=अब यहां स्वामी—आपको अधिकार है अर्थात् अ जैसा चाहें, करें। शिरो विमृश्य आह=सिर (पिंगलक) सोच कर कहता है भद्र—यद्यपि एवं=सज्जन, यदि ऐसा ही है। तथापि सजीवकेन सह=सी भी सं वक के साथ। मम महान् स्नेहः=मेरा अत्यधिक स्नेह है।

पश्य = देखो—

कुर्वन्नपि व्यलीकानि·········· ··कायः कस्य न वल्लभः ॥८०॥

सन्धि-विच्छेद—कुर्वन्नपि—कुर्वन्+अपि—न् को डबल हो गया है—व्यं सन्धि।

समास—अशेष-दोष-दुष्टः=न शेषः इति अशेषः—नञ् तत्पुरुष; अशे चासौ दोषः इति अशेष—दोषः—कर्मधारय, अशेषदोषेण दुष्ट इति—तृतीं तत्पुरुष।

अन्वय—व्यलीकानि कुर्वन् अपि यः प्रियः स प्रिय एव। अशेष-दो दुष्टः अपि कायः कस्य वल्लभः न भवति (अपि तु सर्वस्य भवति एव)।

शब्दार्थ—व्यलीकानि कुर्वन् अपि=दोषों—बुराइयों—को करता हुआ भी यः प्रियः स प्रिय एव=जो प्रिय है वह प्रिय ही है। अशेष-दोष-दुष्टः=सभ दोषों से दूषित। कायः=शरीर। कस्य वल्लभः न=किस को प्रिय नहीं होता अ सबको प्यारा लगता ही है।

व्याख्या—अनेक बुराइयां करता हुआ भी जो प्रिय है, वह तो प्रिय ही जिस प्रकार अनेक दोषों से दूषित शरीर किस को प्यारा नहीं लगता अर्थात् दो युक्त शरीर भी प्रिय मालूम होता है।

भावार्थ—टूटी बांह गले को ही लगती है।

शब्दार्थ—दमनको वदति=दमनक कहता है देव! स एव दोषः=है या

यही तो दोष है कि आप अप्रिय कार्य-कर्त्ता को भी प्रिय मानते हैं—समझते हैं। त्वया च मूल-भृत्यान् अपास्य=और आपने मुख्य सेवकों को हटाकर। आगन्तुकः पुरस्कृतः=अपरिचित—नये आदमी—का सत्कार किया है। एतत् च अनुचितं कृतम्=यह उचित नहीं किया।

यतः=क्यों कि—

मूलभृत्यान् परित्यज्य··············राज्यभेदकरो हि सः ॥८१॥

समास—मूलः च असौ भृत्य इति मूल-भृत्यः—कर्मधारय—तान्। राज्य-भेद-करः=राज्ये भेद करोति इति राज्यभेद—करः तत्पुरुष।

अन्वय—(राजा) मूलभृत्यान् परित्यज्य आगन्तून् प्रति न मानयेत्। यतः राज्यभेद करः अतः परतरः दोषः न।

शब्दार्थ—मूल-भृत्यान्=पुराने सेवकों को। आगन्तू=अपरिचितों—नवीनों—को। न मानयेत्=सत्कार न करना चाहिए। राज्य-भेद-करः=राज्य में फूट करने वाला। अतः परतरः=इससे बढ़कर। दोषः न=अन्य कोई दोष नहीं है।

व्याख्या—राजा को चाहिए कि पुराने सेवकों को छोड़कर नवीन सेवकों का सत्कार न करे अर्थात् उन्हें राज्य में उच्चपद प्रदान न करे, क्योंकि राज्य में फूट डालने वाला इससे बढ़ कर अन्य कोई दोष नहीं है अर्थात् सबसे बड़ी बुराई यही है कि राजा नये सेवकों को विश्वस्त समझकर उन्हें राज्य में ऊंचा पद दे देता है।

शब्दार्थ—सिंहो ब्रूते—महत् आश्चर्यम्=सिंह कहता है—यह तो बड़ा अचरज है। मया अभयवाचं दत्वा=मैंने अभयदान देकर। यः आनीतः च सवर्धितः=जो यहां लाया गया और जिसे उन्नत बनाया। स मह्यं कथं द्रुह्यति=वह मुझ से द्रोह क्यों करता है?

व्याख्या—राजा पिंगलक कहता है—यह तो बड़े ही अचरज की बात है कि जिसे मैं अभयदान देकर यहां लाया और जिसे मैंने उन्नति पर पहुँचाया, वही मुझ से द्रोह करता है।

दमनको ब्रूते=दमनक कहता है। देव=राजन्—

दुर्जनः प्रकृतिं यान्ति··············श्वपुच्छमिव नामितम् ॥८२॥

संधि-विच्छेद—स्वेदनाभ्यञ्जनोपायैः=स्वेदन+अभ्यंजन+उपायैः=दीर्घ और गुणसंधि।

समास - श्व-पुच्छम्-शुनः-पुच्छम्-षष्ठी तत्पुरुष ।

रूप - याति-या धातु परस्मै-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-कर्ता, यात याति ।

अन्वय - नित्यम् सेव्यमानः अपि दुर्जनः प्रकृतिं याति । स्वेदन-अभ्यञ्जन उपायैः नामितम् श्वपुच्छम् इव ।

शब्दार्थ - नित्यम् सेव्यमानः=हर रोज सेवा-आदर-किया करते रहने प्रकृति याति-अपने स्वभाव को ही प्राप्त करता है अर्थात् अपना स्वभाव नहीं छोड़ता । स्वेदन-अभ्यञ्जन-उपायैः=तपाने तथा मालिश करने आदि उपायों द्वारा । नामितम् श्वपुच्छम् इव=सीधी की हुई कुत्ते की पूंछ के समान ।

व्याख्या—जिस प्रकार कुत्ते की पूंछ तपाने तथा मालिश करने आदि उपायों द्वारा सीधी नहीं हो सकती, उसी प्रकार यदि दुष्ट पुरुष का भी कितना ही आदर-सत्कार किया जाय तो भी वह अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता है।

भावार्थ—दुष्ट न छोड़े दुष्टता कैसे हू सुख देत ।
धोये हू सौ वेर के काजर होय न सेत ॥
,, कुत्ते की पूंछ बारह वर्ष नली में रक्खी, पर जब निकाली तब टेढ़ी

अपरं च = और भी—

वर्धनं वाथ सम्मानम्.........न पथ्यानि विषद्रुमाः ॥८३॥

सन्धि-विच्छेद—फलन्त्यमृतसेकेऽपि–फलन्ति + अमृतसेके+अपि=पूर्व रूप सन्धि ।

समास—अमृत-सेकः–अमृतेन सेक इति=तृतीय तत्पुरुष तस्मिन् । विषद्रुमाः–विषस्य द्रुमा इति–षष्ठी तत्पुरुष ।

अन्वय—वर्धनं वा सम्मानं खलानां प्रीतये कुतः (भवति) अमृतसेके ऽपि विषद्रुमाः पथ्यानि न फलन्ति ।

शब्दार्थ—वर्धनम्=बढ़ाना–उन्नति पर पहुँचाना । सम्मानम्= आदर सत्कार करना । प्रीतये कुतः=प्रीति के लिये कहां अर्थात् दुष्ट इनसे प्रसन्न नहीं होता है । अमृत-सेकेऽपि=अमृत से सिंचन करने पर भी । विष-द्रुमाः=विष वृक्ष पथ्यानि न फलन्ति=मीठे फल नहीं देते हैं ।

व्याख्या—यदि दुष्टों को धन आदि देकर उन्नत किया जाय तथा उन

आदर-सत्कार किया जाय तो भी वे प्रसन्न नहीं होते अर्थात् अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते। जिस प्रकार कि विष-वृक्षों-विषैले पेड़ों को अमृत से सींचा जाय तो भी वे सुस्वादु-मिष्ट-फल नहीं देते हैं। तात्पर्य यह है कि दुर्जनों के स्वभाव में अन्तर नहीं होता है।

अतः अहं ब्रवीमि = इसलिए मैं कहता हूँ—

अपृष्टोऽपि हितं ब्रूयात् ·········विपरीतमतोऽन्यथा ।।८४।।

रूप—सताम्-सत्-श्रेष्ठ-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन-सतः, सतोः, सताम्।

अन्वय—(जनः) यस्य पराभवं न इच्छेत् अपृष्टः अपि (तस्य) हितं ब्रूयात्। एषः सतां धर्म एव विपरीतम् अन्यथा।

शब्दार्थ—पराभवम्=अनादर को। अपृष्टः=बिना पूछे हुए। हितं ब्रूयात्= हितकारी वाक्य कहना चाहिए। अतः विपरीतम्=इसके विपरीत अर्थात् बिना पूछे हितकारी वाक्य न कहना। अन्यथा=अधर्म है।

व्याख्या—यदि कोई अपने इष्ट-मित्र का अनादर नहीं चाहता है तो उसे यही उचित है कि बिना पूछे भी अपने मित्र की हित की बात कह दे अर्थात् सदा उसकी भलाई की कामना करे। वास्तव में यही सज्जनों का धर्म है। इसके विपरीत आचरण करना अधम है।

तथा च उक्तम् = ऐसा कहा है

स स्निग्धोऽकुशलान्निवारयति ······यः खिद्यते नेन्द्रियैः।।८५।।

सन्धि-विच्छेद—अकुशलान्निवारयति—अकुशलात्+निवारयति=त को न—अनुनासिक—यदि त के बाद न आता है तो त का न हो जाता है। नेन्द्रियैः—न+ इन्द्रियैः=अ + इ=ए=गुणसंधि।

रूप—निवारयति-नि उपसर्ग वार—वारण करना—रोकना—क्रिया परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-निवारयति, निवारयतः, निवारयन्ति। मतिमान् मतिमत्—बुद्धिमान्—शब्द, पुंल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन—मतिमान्, मतिमन्तौ, मतिमन्तः। [illegible] [illegible]—दीनता—दुःख—करना—क्रिया, [illegible], आत्मनेपद, अन्य पुरुष, एकवचन—[illegible] [illegible], [illegible]। [illegible]—क्रिया, [illegible], [illegible], [illegible], अन्य पुरुष, एकवचन—[illegible], [illegible], [illegible]।

का मारा हुआ। यदा स शोक-गहने पतति=जब वह भारी आपत्ति में फंस जाता है। तदा भृत्ये दोषान् क्षिपति=तब सेवक को दोषी ठहराता है। निजम् अविनयं न वेत्ति=अपनी दुर्विनीतता—बुरे व्यवहार—को नहीं समझता है।

व्याख्या—भोग-विलास में फंसा हुआ राजा प्रमुख कार्य को नहीं देखता और हितकारी वचन नहीं सुनता है। वह अपनी इच्छानुसार उन्मत्त हाथी के समान जो चाहता है, वही करता है। गर्व का मारा हुआ वह राजा जब किसी गहरी विपत्ति में फंस जाता है, तब सब दोष सेवक के सिर पर मढ़ देता है अर्थात् सेवक को ही दोषी ठहराता है। अपने दुर्विनय-बुरे आचरण पर गौर नहीं करता अर्थात् वह यह जानने का प्रयास भी नहीं करता कि किस दुराचरण का क्या परिणाम है।

पिंगलक. (स्वगतम्)=पिंगलक दमनक की बात सुनकर अपने मन में सोचता है

न परस्यापवादेन ···················· बध्नीयान् पूजयेच्च वा ॥८७॥

रूप—परस्य-पर-पराया-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन-परस्य, परयोः, परेषाम्। आचरेत्-चर्-चलना-घूमना, आ उपसर्ग-आ चर्-आचरण करना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-आचरेत्, आचरेताम्, आचरेयुः। आत्मना-आत्मन्-आत्मा या अपना-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन-आत्मना, आत्मभ्यां, आत्मभिः। कृत्वा-कृ-क्रिया से क्त्वा प्रत्यय। बध्नीयात्-बध्-बाधना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-बध्नीयात्, बध्नीयाताम्, बध्नीयुः। पूजयेत्-पूज-पूजा-करना-क्रिया, विध्यर्थ, परस्मैपद, अन्य पुरुष, एकवचन-पूजयेत् पूजयेताम्, पूजयेयुः।

अन्वय—परस्य अपवादेन परे दण्डं न आचरेत्। आत्मना अवगम्य कृत्वा बध्नीयात् वा पूजयेत्।

शब्दार्थ—परस्य अपवादेन=दूसरे के अपवाद-बुराई-करने से। परे दण्डं न आचरेत्-दूसरों को दण्ड नहीं देना चाहिए। आत्मना अवगम्य=अपने आप जान कर अर्थात् अपने आप [illegible] करके। बध्नीयात्=बांधना चाहिए। पूजयेत् वा [illegible] करना चाहिए।

व्याख्या—[illegible] के [illegible] किसी को दण्ड नहीं देना चाहिए, किन्तु [illegible] से [illegible] करने के पश्चात् ही दण्ड देना अथवा [illegible] करना चाहिए।

भावार्थ—सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
गुणदोषावनिश्चित्य..........दर्पात् सर्पमुखे करः ॥८८॥

सन्धि-विच्छेद—गुणदोषावनिश्चित्य—गुण—दोषौ+अनिश्चित्य— यदि ए, ऐ, ओ या औ के बाद स्वर आता है तो ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् हो जाता है—अयादि संधि ।

समास—गुणदोषौ—गुणः च दोषश्च—गुण—दोषौ—द्वन्द्व । मह—निग्रहे—महः च निग्रहश्च—द्वन्द्व—तस्मिन् ।

रूप—निश्चित्य—चि—इकट्ठा करना—क्रिया, निस्, उपसर्ग, निस्-चि—निश्चय करना—क्रिया से त्वा प्रत्यय हुआ है किन्तु त्वा को य हो गया है । न्यस्तः— अस्—फेंकना—क्रिया, नि उपसर्ग—नि+अस्—न्यस् रखना—क्रिया से क्त (त) प्रत्यय हुआ है।

अन्वय—यथा दर्पात् सर्पमुखे—न्यस्तः करः स्वनाशाय (भवति) (तथा) गुण-दोषौ अनिश्चित्य मह—निग्रहे विधिः न ।

शब्दार्थ—यथा=जैसे । दर्पात्=घमंड से । सर्प-मुखे न्यस्तः करः = सांप के मुंह में रक्खा हुआ—दिया हुआ—हाथ । स्वनाशाय भवति=अपने नाश के लिये ही होता है । तथा=उसी प्रकार । गुणदोषौ अनिश्चित्य=गुण-दोषों का निश्चय न करके । मह—निग्रहे=आदर करने और दण्ड देने का । न विधिः=विधान नहीं है ।

व्याख्या—जिस प्रकार घमण्ड से सांप के मुंह में रक्खा हुआ—दिया हुआ—हाथ अपने वाले के विनाश का कारण होता है अर्थात् सांप के फन को पकड़ने के लिए बढ़ाया हाथ पकड़ने वाले के विनाश का हेतु हो जाता है, उसी प्रकार गुण और दोष का निश्चय किये बिना किसी का आदर करने और दण्ड देने का विधान—नियम नहीं है अर्थात् किसी को सम्मानित करने से पहले उसके गुण तथा दण्ड देने से पहले उसके दोष की छान बीन करना आवश्यक है ।

(प्रयाति) भजते-सदा संजीवकः..........एतावता कश्चभेदो जायते ॥

सन्धि-विच्छेद—नैवम्—न+एवम् —आ+ए=ऐ=वृद्धि संधि ।

रूप—भजते—भज्—सेवना—क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—भजते, भजेते, भजन्ते । दर्शयिष्यन्—दिश्—दिखाना—दर्श को आ उपसर्ग—आदिश्—आदेश देना क्रिया आत्मनेपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन

प्रत्यादिश्यताम्, प्रत्यादिश्येताम्, प्रत्यादिश्यन्ताम्। ...
पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन-एतावता, एतावद्भ्याम्, ...
जन्-जा-उत्पन्न होना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, जायते, जायेते, जायन्ते।

शब्दार्थ—प्रकाशं ब्रूते=सम्मुख कहता है। संजीवकः किं प्रत्यादिश्यताम् संजीवक को क्या आदेश देना चाहिए। दमनकः ससंभ्रमम् आह=दमनक घबरा कर कहता है। देव, मा मा एवम्=महाराज, नहीं, ऐसा न कीजियेगा। एतावता मन्त्र-भेदः जायते=ऐसा करने से मन्त्र-भेद—रहस्य प्रकट—हो सकता है।

व्याख्या—पिंगलक दमनक से प्रकट पूछता है कि संजीवक को क्या आदेश देना चाहिए, जिससे वह दुष्कार्य न करे। दमनक घबरा कर कहता है—महाराज ऐसा मत कीजियेगा। यदि आप संजीवक के सम्मुख कुछ कहेंगे तो गुप्त बात रहस्य—छिप न सकेगा—अर्थात् प्रकट हो जायगा।

तथा च उक्तम् = वैसा ही कहा भी है—

मन्त्र-बीजमिदं गुप्तम्………तद्भिन्नं न प्ररोहति ॥ ८८ ॥

रूप—रक्षणीयम्-रक्ष्-रक्षा करना—क्रिया से कर्मवाच्य में अनीय प्रत्यय हुआ है। भिद्येत=भिद्-तोड़ना-क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, विधि लिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन- भिद्येत, भिद्येयाताम्, भिद्येरन्।

अन्वय—इदं गुप्तं मन्त्र-बीजं तथा रक्षणीयं यथा मनाक् अपि न भिद्येत, तद्भिन्नं न प्ररोहति।

शब्दार्थ—इदं गुप्तं मन्त्र-बीजम्=अत्यन्त गुप्त इस मन्त्ररूपी बीज की। तथा रक्षणीयम्=उसी प्रकार रक्षा करनी चाहिए। यथा मनाक् अपि न भिद्येत जिससे कि यह जरा भी न फूटने पाये। तद्भिन्नं न प्ररोहति=फूटने पर वह नहीं उगता है।

व्याख्या—राजाओं का कर्त्तव्य है कि अत्यन्त गोपनीय-छिपाने योग्य-मन्त्र रूप बीज की सदा रक्षा करते रहें। यदि यह (मन्त्र-रूपी बीज) फूट जाता है अर्थात् राजा की मन्त्रणा का पता दूसरों को चल जाता है तो राजा को सफलता नहीं मिलती है। जिस प्रकार टूटा फूटा बीज जमीन में बोने पर नहीं उग सकता, उसी प्रकार मन्त्रणा के प्रकट हो जाने पर वह फलदायक नहीं होती है।

भावार्थ—राजा की मन्त्रणा प्रकट हो जाने से अनर्थ हो जाता है।

आदेयस्य प्रदेयस्य·········कालः पिबति तद्रसम् ॥ ६० ॥

रूप—कर्मणः—कर्मन्-शब्द, नपुंसकलिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन—कर्मणः, कर्मणोः, कर्मणाम्। पिबति—पा—पिब्—पीना—क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—पिबति, पिबतः, पिबन्ति।

अन्वय—कालः आदेयस्य, प्रदेयस्य, क्षिप्रम् अक्रियमाणस्य कर्त्तव्यस्य कर्मणः तत् रसं पिबति।

शब्दार्थ—आदेयस्य=लेने योग्य। प्रदेयस्य=देने योग्य। क्षिप्रम् अक्रियमाणस्य=शीघ्र न किये जाने वाले। कर्त्तव्यस्य कर्मणः=करने योग्य कार्य का। रसम्=सार—तत्व। पिबति=पी जाता है। तात्पर्य यह है कि यदि समय पर कार्य नहीं किया जाता तो उसका महत्व नष्ट हो जाता है—उसका परिणाम नहीं मिलता है।

व्याख्या—यदि लेन-देन और शीघ्र करने के योग्य कार्य समय पर नहीं किया जाता तो उसका रस समय पी लेता है अर्थात् समय पर चूक जाने से फिर उसका परिणाम नहीं मिलता है।

भावार्थ—१— का बरसा जब कृषि सुखाने।
समय चूकि पुनि का पछिताने॥
,, २— जब गई खेती अभर बरसा तो फिर किस काम का।
,, ०— निकल जाता है सांप अब पीटा करो लकीर।

वाच्यपरिवर्त्तन—कालः तत्-रसं पिबति। (कर्तृवाच्य)
कालेन तत्-रसः पीयते। (कर्मवाच्य)

शब्दार्थ—तत् अवश्यं समारब्धम्=तो अवश्य प्रारम्भ किये हुए कार्य को। महता यत्नेन सम्पादनीयम्=बड़े प्रयत्न से पूर्ण करना चाहिए।

किंच = क्योंकि—

मन्त्रो योध इवाधीरः·········परेभ्यो भेद-शंकया ॥ ६१ ॥

समास—अधीरः—न धीरः इति अधीरः—नञ्-निषेधवाचक-तत्पुरुष। सर्वांगैः = सर्वाणि च तानि अंगानि—कर्मधारय—तैः।

रूप—सहते—सह्—सहन करना—क्रिया, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—सहते, सहेते, सहन्ते। स्थातुम्—स्था—ठहरना—क्रिया, तुम् प्रत्यय।

अन्यय—सर्वांगैः संवृत्तैः अपि अधीरः योधः इव मन्त्रः (अरि) भेदशंकया चिरं स्थातुं न सहते।

शब्दार्थ—इस श्लोक के दो अर्थ हैं—एक मन्त्र के पक्ष में ... से सुसज्जित कायर सैनिकों के पक्ष में। मन्त्र के पक्ष में सर्वांगैः संवृतैः साम, दाम, दण्ड आदि उपायों से युक्त। मन्त्रः=मन्त्रणा। परेभ्यो भेद-शं[का] शत्रुओं द्वारा भेद की शंका से। चिरं स्थातुं न सहते=बहुत [समय] स्थिर नहीं रहता अर्थात् मन्त्र प्रकट हो जाता है। अधीर योध इव=कायर [योद्धा] के समान। दूसरा कायर योद्धा के पक्ष में—सर्वांगैः संवृत्तैः अपि=कवच [आदि] विविध प्रकार के साधनों से युक्त भी। अधीरः योधः=कायर सैनिक। परेभ्यो [भेद] शंकया=शत्रुओं द्वारा पराजित होने की शंका से। चिरं स्थातुं न सहते=[बहुत] अधिक समय तक नहीं ठहर सकता।

व्याख्या—जिस प्रकार कायर सैनिक कवच आदि विविध प्रकार के [शस्त्रों] और अस्त्रों से सुसज्जित होकर भी शत्रुओं द्वारा पराजय की शंका से [अधिक] समय तक युद्ध-स्थल में नहीं ठहरता उसी प्रकार 'मन्त्र रहस्य'- के प्रकट हो [जाने] पर कार्य में अनेक बाधायें उपस्थित हो जाती हैं। यही कारण है कि [सफलता] पाना असंभव हो जाता है।

भावार्थ—इस पद्य में मन्त्र को गुप्त रखने की ओर संकेत किया है।

यद्यपि दृष्ट दोषोऽपि.........तद्तीवानुचितम् ॥

संधि विच्छेद—यद्यसौ—यदि+असौ—इ को य्—यण् संधि।

समासः—दृष्ट-दोषः—दृष्टः दोषः यस्य सः—बहुव्रीहि।

रूप—संधातव्यः—धाः—धारण करना, सम् उपसर्ग—[सम्-धा] मिलाना—क्रिया, तव्य प्रत्यय कर्मवाच्य में हुआ है।

शब्दार्थ—यदि असौ दृष्ट-दोषः अपि=यद्यपि हमने उसके दोष देख लिए हैं तो भी। दोषाभिवर्ज्य=दोषों से भीरु कर—दोषों को दूर करके। [अपराधी] अपराधी के साथ फिर संधि-मेल-करना चाहिए। तदतीव अनुचितम्=[वह] अत्यन्त ही अनुचित है।

व्याख्या—यदि आप का यह विचार है कि अपराधी—दोषी—के दोषों को जानने के बाद भी उसके दोष—बुराइयाँ—किसी प्रकार दूर करदी जावें तो फिर उससे मेल कर लिया जावे तो ऐसा करना और भी अनुचित है।

शब्दार्थ—सिंहो ब्रूते=पिंगलक कहता है। तावत् ज्ञायताम्=तो पहले यह जानना चाहिए। असौ अस्माकं किं कर्तुं समर्थः=वह हमारा क्या कर सकता है। दमनक आह=दमनक कहता है।

व्याख्या—सिंह कहता है—तो पहले यह जानना आवश्यक है कि वह हमें किस प्रकार हानि पहुँचा सकता है!

देव=राजन्—

अंगांगिभावमज्ञात्वा······समुद्रो व्याकुलीकृतः ॥६२॥

समास—अंगः च अंगी च अंगांगिनौ—द्वन्द्व, तयोः भावः—अंगांगिभावः—तत्पुरुष, तम्। सामर्थ्यनिर्णयः—समर्थस्य भावः सामर्थ्यम्—सामर्थ्यस्य निर्णय इति—षष्ठी तत्पुरुष।

रूप—पश्य—दृश्—पश्य्—देखना—क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष एकवचन—पश्य- पश्यतात्, पश्यतम्, पश्यत।

अन्वय—अंगांगिभावम् अज्ञात्वा सामर्थ्य-निर्णयः कथं (भवेत्) पश्य टिट्टिभ—मात्रेण समुद्रः व्याकुलीकृतः।

शब्दार्थ—अंगांगिभावम् अज्ञात्वा=उसके और उसके सहायक के बल को न समझ कर। कथं सामर्थ्य-निर्णयः=किस प्रकार शक्ति का निर्णय हो सकता है। टिट्टिभ—मात्रेण=साधारण से टटीरी पक्षी ने। समुद्रः व्याकुलीकृतः=समुद्र को व्याकुल कर दिया।

व्याख्या—दमनक कहता है—महाराज! जब तक यह ज्ञात न हो जाय कि उसका सहायक और कौन है (कोई है भी या नहीं) तब तक शक्ति का निर्णय कैसे किया जा सकता है! देखिये, राजन्! टटीरी जैसे क्षुद्र पक्षी ने सहायता पाकर समुद्र को नीचा दिखा दिया।

सिंहः पृच्छति=शेर पूछता है। कथमेतत्=यह किस प्रकार। दमनकः कथयति=दमनक कहता है।

टिट्टिभ—समुद्रयोः कथा=टिट्टिभ और समुद्र की कथा।

दक्षिणसमुद्रतीरे·········त्वयि समुद्रे च महदन्तरम् ॥

समास—आसन्न-प्रसवः—आसन्नः प्रसवः यस्याः सा—बहुव्रीहि। प्रसव-योग्यम्—प्रसवाय योग्यम् इति प्रसवयोग्यम्—चतुर्थी तत्पुरुष।

रूप—अनुसन्धीयताम्—धा—धारण करना, अनु और सम्
ढूंढना—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट, अन्य पुरुष,
अनुसन्धीयताम्, अनुसन्धीयेताम्, अनुसन्धीयन्ताम् । भर्तारम्—भर्तृ—
शब्द, पुल्लिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन—भर्तारम् भर्तारौ, भर्तॄन् ।

शब्दार्थ—दक्षिण-समुद्र-तीरे=दक्षिणी समुद्र के तट पर । टिट्टिभदम्पती=
पक्षी का जोड़ा । आसन्न—प्रसवा=समीप है प्रसवकाल जिसका—पूर्ण
गर्भवती । प्रसव योग्यं=प्रसव—अण्डे—रखने के लायक । निभृतस्थानं=
जगह । अनुसन्धीयताम्=ढूंढना चाहिये । टिट्टिभोऽवदत्=टटीरा बोला ।
निश्चय ही । समुद्र-वेलया=समुद्र की तरंग से । व्याप्यते=व्याप्त है
निग्रहीतव्यः=दण्डनीय-दण्ड देने योग्य । विहस्य=हँस कर । महद् अन्त

बड़ा फर्क ।

व्याख्या—दक्षिणी समुद्र के तट पर टटीरी पक्षी का जोड़ा रहता है ।
जब पूर्ण गर्भवती हुई, तब अपने स्वामी से बोली=नाथ ! अण्डे रखने के
कोई एकान्त स्थान ढूंढना चाहिए । टटीरा बोला—प्रिये ! यही जगह अण्डे
के योग्य है । वह कहती है—इस स्थान पर समुद्र की तरंगें आ जाती हैं ।
बोला—क्या मैं निर्बल हूँ जो कि समुद्र हमें हटा देगा । टटीरी हँस कर बोली
स्वामिन् ! तुम में और समुद्र में बड़ा अन्तर है ।

पराभवं परिच्छेत्तुं योग्यायोग्यं च……कृच्छ्रेणापि न सीदति ॥

समास—योग्यायोग्यम्—योग्यं च अयोग्यं च—योग्यायोग्यम्=द्वन्द्व ।

रूप—परिच्छेत्तुम्—छिद्—काटना—टुकड़े करना, परि उपसर्ग—
निर्णय करना—क्रिया से तुमुन् प्रत्यय । वेत्ति—विद्—जानना—क्रिया,
वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—वेत्ति, वित्तः, विदन्ति । सीदति—सद्—
दुःख पाना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एक वचन—सीदति
सीदतः, सीदन्ति ।

अन्वय—यः पराभवं परिच्छेत्तुं योग्यायोग्यं वेत्ति, यस्य इह विज्ञानम्
स कृच्छ्रेण अपि न सीदति ।

शब्दार्थ—पराभवं परिच्छेत्तुम्=अनादर का निर्णय करने को । योग्यं
वेत्ति=उचित और अनुचित को भली भांति समझता है । यस्य इह वि

अस्ति=जिसको अपने बलाबल का पूर्ण ज्ञान है। सः कृच्छ्रे ण अपि न सीदति= वह आपत्ति में भी कभी दुःखी नहीं होता है।

व्याख्या—जो मनुष्य पराभव-अनादर—का निर्णय करने में समर्थ है अर्थात् वह कब पराजित हो सकता है—यह भली भांति जानता है—तथा उचित और अनुचित को समझता है जिसको अपने बलाबल—शक्ति का पूर्ण ज्ञान है, वह आपत्ति के जाल में फंस आने पर भी दुःख नहीं भोगता है।

अपि च=और भी—

अनुचित-कार्यारम्भः·········मृत्योर्द्वाराणि चत्वारि ॥९४॥

समास—अनुचित-कार्यारम्भः—न उचितम् इति अनुचितम्—नञ् तत्पुरुष, अनुचितं च तत्कार्यम् इति अनुचितकार्यम्—कर्मधारय, अनुचित कार्यस्य आरम्भः—षष्ठी तत्पुरुष। स्वजन—विरोधः— स्वजनेभ्यः विरोधः इति तत्पुरुष। प्रमदा-जन-विश्वासः— प्रमदाजनेषु विश्वास इति—तत्पुरुष।

रूप—बलीयसि—बलीयस्—बलवान् शब्द—पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन—बलीयसि, बलीयसोः, बलीयस्सु। चत्वारि—चतुर्—चार—संख्यावाचक शब्द, नपुंसकलिंग, सदा बहुवचनान्त—प्रथमा विभक्ति, बहुवचन—चत्वारि, चत्वारि, चतुर्भिः, चतुर्भ्यः, चतुर्भ्यः, चतुर्णाम्, चतुर्षु।

अन्वय—अनुचित-कार्यारम्भः, स्वजन—विरोधः, बलीयसि स्पर्धा, प्रमदा-जन-विश्वासः एतानि चत्वारि मृत्योः द्वाराणि सन्ति।

शब्दार्थ—अनुचित-कार्यारम्भः=अयोग्य कार्य आरम्भ करना। स्व-जन-विरोधः=अपने आदमियों-भाई-बन्धुओं से बैर। बलीयसि स्पर्धा=बलवान् की बराबरी करना। प्रमदा-जन-विश्वासः=स्त्रियों पर पूर्ण विश्वास। चत्वारि मृत्योः द्वाराणि=ये चार मृत्यु के द्वार हैं।

व्याख्या—अनुचित कार्य का प्रारम्भ, अपने भाई—बन्धुओं—इष्ट—मित्रों से बैर करना, अपने से अधिक शक्तिशाली की बराबरी करना तथा स्त्रियों के प्रति पूर्ण विश्वास रहना—ये सब मृत्यु के द्वार—मार्ग—हैं।

ततः कृच्छ्रेण स्वामि-वचनात् तत्रैव सः·····गरुडस्य समीपं गतः॥

सन्धि-विच्छेद—तत्रैव — तत्र + एव—वृद्धिसंधि। तच्छक्ति—शान्त्यर्थम्—तत्+शक्तिशान्त्यर्थम्—त् को च् और श् को छ—व्यंजन संधि। अंडान्यपहृतानि अंडानि+अपहृतानि—इ को य्—यण्संधि। इत्युक्त्वा—इति+उक्त्वा—इ को य्—यण् संधि।

एकवचन–मौळी, मौल्योः, मौलिषु, निधाय–नि उपसर्ग, धा–धारण करना–क्रिया से क्त्वा प्रत्यय किन्तु उपसर्ग पूर्व में होने से त्वा को य हो गया है।

शब्दार्थ—पक्षिणां मेलकं कृत्वा=पक्षियों का सम्मेलन करके। गरुडस्य पुरतः निवेदितम्=गरुड़ जी से निवेदन किया। स्व–गृहावस्थितः=अपने घर में बैठा हुआ। निगृहीतः–दण्ड दिया–सताया। सृष्टि–स्थिति–प्रलय–हेतुः=उत्पत्ति, पालन और प्रलय–विनाश–के कर्त्ता। विज्ञप्तः=सूचित किया। आदि देश=आदेश दिया। भगवदाज्ञाम्=भगवान् विष्णु की आज्ञा को। मौलौ विधाय=मस्तक पर रख कर–मान कर। टिट्टिभाय समर्पितानि=टटीरे को सौंप दिये।

व्याख्या—वहाँ आकर टटीरे ने गरुड़ जी को आमूल–चूल–आदि से अन्त–तक सब वृत्तान्त कह दिया। देव! समुद्र ने अपने घर में बैठे हुए मुझ जैसे निर्दोष प्राणी को सताया है। टटीरे के वचन सुन कर गरुड़जी ने उत्पत्ति, पालन और प्रलय के कर्त्ता भगवान् विष्णु को सूचना दी। भगवान् ने समुद्र को टटीरी के अण्डे लौटाने की आज्ञा दी। भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर समुद्र ने टटीरी के अण्डे उसे समर्पित कर दिये।

अतोऽहं ब्रवीमि=दमनक कहता है–इसीलिए मैं कहता हूँ। अंगांगिभावम् अज्ञात्वा=अंग–शरीर और अंगी–शरीरधारी के कार्य को बिना जाने अर्थात् शत्रु और उसके पक्षपाती की शक्ति का निर्णय किये बिना किसी के बल का ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं।

कथमसौ ज्ञातव्यो द्रोहबुद्धिरिति······विस्मितमिवात्मानमदर्शयत्।

सन्धि-विच्छेद—द्रोह–बुद्धिरिति–द्रोह–बुद्धिः+इति–विसर्ग को रेफ (र्) विसर्गसंधि।

समास—द्रोह–बुद्धिःयस्य सः–बहुव्रीहि। सदर्पः–दर्पेण सह–सदर्पः–अव्ययीभाव। शृंगाग्र–प्रहरणः–शृंगयोः अग्रम् इति शृंगाग्रम्–तत्पुरुष, शृंगाग्रे एव प्रहरणं यस्य सः–बहुव्रीहि।

रूप—आह–ब्रू–बोलना–क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–आह, आहतुः, आहुः। ब्रू को पांच वचनों में 'आह' हो जाता है। ज्ञातव्यः–ज्ञा–जानना–क्रिया से तव्य प्रत्यय कर्मवाच्य में हुआ है। ज्ञास्यति–ज्ञा–जानना–क्रिया, परस्मैपद, भविष्यत्काल, अन्य पुरुष, एकवचन–ज्ञास्यति, ज्ञास्यतः, ज्ञास्यन्ति।

शब्दार्थ—दमनक–राजा पिंगलक कहता है। कथं ज्ञातव्यः=कैसे ज्ञात हो। असौ द्रोह–बुद्धिः=वंचक द्रोही–वैरी–है सदर्पः=घमंड से। शृंगाग्रप्रहरणः=

सींगों की नोक से प्रहार करने को तत्पर। अभिमुख=सम्मुख।
आगच्छति=चवराया हुआ सा आवेगा। तदा स्वामी स्वयमेव=स्वयं
समझ जायेंगे। एवम् उक्त्वा=ऐसा कह कर। संजीवक-समीपं गतः=संजीवक के
पास गया। मन्दं मन्दम् उपसर्पन्=धीरे धीरे समीप आता हुआ। विस्मय...
चकित सा। आत्मानम्=प्रदर्शयत्=अपने आप को दिखाया।

व्याख्या—राजा पिंगलक कहता है कि यह कैसे ज्ञात हो कि यह (संजीवक)
वैरी है। दमनक उत्तर देता है कि जब वह गर्वपूर्वक सींगों की नोक से प्रहार
करने को सम्मुख आवे और चकित-सा मालूम हो तो स्वामी स्वयं ही समझ
जायेंगे। यह कह कर वह संजीवक के पास चल दिया। वहां पहुँच कर धीरे धीरे
समीप जाते हुए दमनक ने स्वयं को आश्चर्य-युक्त कुछ उदास प्रदर्शित किया।

शब्दार्थ—संजीवकेन सादरम् उक्तम्=संजीवक ने आदरपूर्वक पूछा।
भद्र, कुशलं ते=महाशय कुशलपूर्वक हो? दमनको ब्रूते=दमनक कहता है।
अनुजीविनां कुतः कुशलम्=सेवकों की कुशल कहां अर्थात् सेवक तो सदा दुःख
ही भोगते हैं।

यतः = क्यों कि—

संपत्तयः पराधीनाः सदा············तेषां ये राजसेवकाः॥ ६१॥

सन्धि-विच्छेद—स्वजीवितेऽप्यविश्वासः–स्वजीविते + अपि–यदि ए या ओ
के बाद ह्रस्व अ आता है तो उसका लोप कर देते हैं और उनके स्थान पर ऽ
ऐसा चिन्ह बना देते हैं–पूर्वरूप संधि। अपि +अविश्वासः–इ को य्–यण संधि।

रूप—संपत्तयः–संपत्ति–धन–दौलत–शब्द, स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति,
बहुवचन–सम्पत्तिः, सम्पत्ती, सम्पत्तयः।

अन्वय—ये राज–संश्रयाः सन्ति तेषां सम्पत्तयः पराधीनाः, चित्तं सदा अनि-
र्वृत्तम्, स्वजीविते अपि अविश्वासः।

शब्दार्थ—राज–संश्रयाः=राजा के सेवक। सम्पत्तयः पराधीनाः=सम्पत्तियां
परतन्त्र हैं–राजा के अधिकार में हैं। चित्तं सदा अनिर्वृत्तम्=चित्त सदा अशान्त
दुःखी–रहता है। स्वजीविते अपि= अपने जीवन पर भी। अविश्वासः=युद्ध
आदि की शंका से विश्वास नहीं।

व्याख्या—राजा के सेवकों की सम्पत्तियां पराधीन होती हैं और उनका चित्त
सदा अशान्त–दुःखी–रहता है। किसी समय भी युद्ध छिड़ जाने की शंका रहने

की अप्रसन्नता की आशंका से उनका जीवन सदा संशय में रहता है अर्थात् वे अपने जीवन पर भी भरोसा नहीं करते। इस प्रकार राज-सेवक सदा कष्ट ही पाते हैं।

अन्यत् च= और दूसरी बात यह है—

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिणः……क्षेमेण यातः पुमान् ॥६४॥

सन्धि-विच्छेद—कोऽर्थान्–कः+अर्थान्–विसर्ग को उ–विसर्ग संधि, अ+उ=ओ–गुणसंधि, तत्पश्चात् पूर्वरूप संधि।

समास—भुजान्तरम्–भुजयोः अन्तरम्–षष्ठी तत्पुरुष। दुर्जन–वागुरासु–दुर्जनस्य वागुरा इति दुर्जन–वागुरा–तासु–तत्पुरुष।

रूप—विषयिणः—विषयिन्–कामी–शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन–विषयिणः, विषयिणोः, विषयिणाम्। आपदः–आपत्–आपत्ति–शब्द, स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन–आपत्, आपदौ, आपदः। भुवि-भू पृथ्वी-शब्द स्त्रीलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन–भुवि, भुवोः, भूषु। राज्ञाम्–राजन्–राजा शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति बहुवचन–राज्ञः, राज्ञोः, राज्ञाम्। अर्थी–अर्थिन् याचक–शब्द–पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–अर्थी, अर्थिनौ, अर्थिनः। पुमान्–पुंस्–मनुष्य–शब्द पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–पुमान्, पुमांसौ, पुमांसः। यातः–या–जाना–क्रिया से क्त (त) प्रत्यय हुआ है।

अन्वय—कः (पुरुषः) अर्थान् प्राप्य न गर्वितः, कस्य विषयिणः आपदः अस्तं गताः ? भुवि स्त्रीभिः कस्य मनः न खंडितं, राज्ञां प्रियः कः अस्ति ? कः कालस्य भुजान्तरं न गतः, कः, अर्थी गौरवं गतः, दुर्जनवागुरासु पतितः कः पुमान् क्षेमेण यातः ?

गतः=कौन पुरुष काल का ग्रास नहीं बना अर्थात् सब ही मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हुए। तात्पर्य यह है कि बड़े बड़े शूर-वीरों के नाम काल ने पानी की लकीर के समान मिटा दिये। कः अर्थी गौरवं गतः=किस याचक ने गौरव पाया है—भिखारी कभी आदर का पात्र नहीं होता। दुर्जन-वागुरासु पतितः=दुष्टों के जाल में फंस कर कः पुमान् क्षेमेण यातः=कौन पुरुष अपना जीवन आनन्द-पूर्वक बिता सका अर्थात् कोई नहीं।

व्याख्या—धन प्राप्त कर किसको गर्व नहीं हुआ अर्थात् धनी हो ··· सभी अहंकारी हो जाते हैं। महात्मा तुलसीदासजी के शब्दों में—ऐसा को जनमा जग माहीं। दौलत पाई काहि मद नाहिं। ऐसा कौन विलासी पुरुष है, जिसकी आपत्तियां नष्ट हुईं अर्थात् कोई नहीं। आपत्तियां सदा विषयी पुरुष को घेरे ही रहती हैं। संसार में ऐसा कौन-सा पुरुष है, जिसका मन स्त्रियों ने विचलित नहीं किया—नहीं डिगाया अर्थात् बड़े बड़े पुरुष प्रमदाओं के लोचनशरों के शिकार हो गये हैं। राजाओं का प्यारा कौन है अर्थात् कोई नहीं। काल की भुजाओं के बीच में कौन नहीं गया अर्थात् किसकी मृत्यु नहीं हुई। जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। योगिराज भगवान कृष्ण के शब्दों में—जातस्य हि ध्रुवं मृत्यु उत्पन्न होने वाले की मृत्यु अटल है। किस याचक ने सम्मान प्राप्त किया अर्थात् भिखारी बन कर किसी ने भी आदर प्राप्त नहीं किया। कविवर रहीम के शब्दों में—मांगत घटत 'रहीम' पद जग प्रसिद्ध यह बात। नारायण हू को भयो बावन अंगुर गात॥ अर्थात् भिखारी छोटा हो जाता है। ऐसा कौन है, जो दुर्जनों के कपट-जाल में फंस कर सकुशल बच आया अर्थात् कोई नहीं। बहुत कम मनुष्य ऐसे होंगे जो दुर्जनों के चंगुल में फंस कर सही-सलामत निकल भागे हैं।

शब्दार्थ—संजीवकेन उक्तम्=संजीवक ने कहा। सखे, ब्रूहि किम् एतत्=मित्र, बताओ तो क्या बात है? दमनक आह=दमनक कहता है। किं ब्रवीमि मन्दभाग्यः=मैं मन्दभागी हूँ, अतः क्या कहूँ।

पश्य = देखो—

यथा समुद्रे निर्मग्नः··········तथा मुग्धोऽस्मि संप्रति ॥ ६७॥

समास—शर्वावलम्बनम्—शर्वस्य अवलम्बनम्—षष्ठी तत्पुरुष।

रूप—लब्ध्वा-लभ्-पाना-क्रिया, क्त्वा प्रत्यय। मुंचति-मुच्-मुंच-छोड़ना-क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-मुंचति, मुंचतः, मुंचन्ति। आदत्ते-दा-देना, आ उपसर्ग, आ दा-लेना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-आदत्ते, आददाते, आददते। अस्मि-अस्-होना, क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन-अस्मि, स्वः, स्मः।

अन्वय—यथा (कश्चित् मानवः) समुद्रे निर्मग्नः सर्पावलम्बन लब्ध्वा अपि न मुंचति न च आदत्ते तथा सम्प्रति (अहं) मुग्धोऽस्मि।

शब्दार्थ—समुद्रे निर्मग्नः=समुद्र में डूबा हुआ। सर्पावलम्बन लब्ध्वा=सांप का अवलम्बन-सहारा-पाकर। न मुंचति=न तो छोड़ सकता है। न च आदत्ते=और न ग्रहण ही कर सकता है। मुग्धोऽस्मि=मैं भी इस समय किं कर्त्तव्य विमूढ़ हूँ, क्या करूं।

व्याख्या—जिस प्रकार समुद्र में डूबता हुआ कोई मनुष्य सांप का सहारा पाकर न तो उसे डसे जाने के भय से पकड़ ही सकता है और न डूबने के भय से उसे छोड़ ही सकता है, उसी प्रकार मैं भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हूँ अर्थात् क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता। "भई गति सांप छछूंदर केरी" वाली कहावत मुझ पर पूर्णतया चरितार्थ हो रही है।

इत्युक्त्वा दीर्घं निःश्वस्य ······प्राप्त-काल-कार्यम् अनुष्ठीयताम्॥

सन्धि-विच्छेद—इत्युक्त्वा-इति+उक्त्वा-इ को य्-यण् संधि। तवोपरि—*तव+उपरि-अ+उ=ओ-गुण संधि। एतच्छ्रुत्वा-एतत्+श्रुत्वा-त् को च् और* श को छ् व्यंजन संधि।

समास—मनोगतम्-मनसि गतम् इति मनोगतम्-सप्तमी तत्पुरुष। राज-विश्वासः-राज्ञः विश्वास इति-षष्ठी तत्पुरुष। परलोकार्थिना-परलोकस्य अर्थी इति परलोकार्थी—तत्पुरुष-तेन। विकृत-बुद्धिः—विकृता बुद्धिः यस्य सः—विकृत बुद्धिः-बहुव्रीहि।

रूप—उपविष्टः-विश्-बैठ करना—उप-उपसर्ग – उपविश्-बैठना-क्रिया से क्त प्रत्यय हुआ है। उच्यताम्-ब्रू-बोलना-क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन-उच्यताम्, उच्येताम्, उच्यन्ताम्। वधनीयः-वध्-वध करना-क्रिया से अनीय प्रत्यय हुआ है। उक्तवान्, उक्तवद्-

कहता हुआ–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–उक्तवान्, उक्त उक्तवन्तः। अगमत्–गम्–जाना–क्रिया, परस्मैपद, भूतार्थ लुङ्, अन्य पु एकवचन–अगमत्, अगमताम्, अगमन्। अनुष्ठीयताम् स्था–ठहरना–ह होना–क्रिया, अनु उपसर्ग–अनुस्था–करना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, ल लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन–अनुष्ठीयताम्, अनुष्ठीयेताम्, अनुष्ठीयन्ताम्।

शब्दार्थ—इत्युक्त्वा=ऐसा कह कर। दीर्घं निःश्वस्य=लम्बी सांस लेकर। उपविष्टः=बैठ गया। मनोगतम् उच्यताम्=मनोरथ कहिये। सुनिभृतम्=अ गुप्त भाव से। अस्मदीय-प्रत्ययात् आगत=हमारे विश्वास पर आए हैं। परलोकार्थिना=परलोक को चाहने वाले से। हितम् आवेद्यम्=आपके हित की बात कहनी चाहिए। विकृत बुद्धिः=क्रोध करने वाला। रहसि उक्तवान्=एकान्त कहा। हत्वा=मार कर। तर्पयामि=तृप्त करूंगा। परं विषादम् अगमत्=अ ति खिन्न हुआ। प्राप्त-काल कार्यम्=अवसर के अनुकूल कार्य। अनुष्ठीयताम्= ना चाहिए।

व्याख्या—यह कह कर दमनक एक लम्बी सांस लेकर बैठ गया। संजीवक ा है—मित्र! तब भी अपना मनोरथ विस्तार-पूर्वक कहियेगा। दमनक ने भाव से कहा—यद्यपि राजा का गुप्त विचार प्रकट नहीं करना चाहिए, आप हम पर विश्वास कर यहां पधारे हैं। इसलिए परलोक की इच्छा वाले मुझे तुम्हारे हित की बात कहनी चाहिए। सुनिये—स्वामी पिंगलक ने र क्रुद्ध होकर मुझसे एकान्त में कहा है कि मैं संजीवक को ही मार कर परिवार को तृप्त करूंगा। यह सुन कर संजीवक अति दुःखी हुआ। ने फिर कहा—विषाद न करो। अवसर देखकर समय के अनुकूल कार्य चाहिए।

शब्दार्थ—संजीवकः स्वगतम्=संजीवक मन में विचार करता है। तद् किम् विचेष्टितम्=क्या ऐसा हुआ। न वा=या नहीं। एतद् व्यवहारात् निर्णेतुं ते=यह व्यवहार द्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता। ततः स्पष्ट कहता है। इदं कष्टम् आपतितम्=यह तो एक बड़ी विपत्ति आ

=क्योंकि—

आराध्यमानो नृपतिःप्रयत्नात्'''यः सेव्यमानो रिपुतामुपैति ॥८८॥

सन्धि-विच्छेद—आराध्यमानो नृपतिः-आराध्यमानः+नृपतिः-यदि विसर्ग के पूर्व ह्रस्व अ हो और आगे अ अथवा मृदु व्यंजन हो तो विसर्ग को उ हो जाता है—विसर्ग संधि, फिर अ+उ=ओ गुण संधि। प्रयत्नान्न-प्रयत्नात्+न-यदि त् के बाद न आता है तो त् को न् हो जाता है—व्यंजन संधि।

समास—अपूर्व-प्रतिमा-विशेषः—न पूर्वा इति अपूर्वा-नञ्-निषेधवाचक-तत्पुरुष। अपूर्वा च असौ प्रतिमा इति अपूर्व-प्रतिमा-कर्मधारय, अपूर्व-प्रतिमासु विशेष इति-तत्पुरुष।

रूप—आयाति-या-जाना-क्रिया, आ उपसर्ग. आ या-आना-परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-आयाति, आयातः, आयान्ति। उपैति-इ-जाना, उप उपसर्ग, उप इ-प्राप्त होना-क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष,-एति; उप+एति=उपैति, उपेतः, उपयन्ति।

अन्वय—प्रयत्नात्=प्रयास-पूर्वक। आराध्यमानः=सेवित-सेवा किया हुआ। नृपतिः तोषं न आयाति=राजा संतोष को प्राप्त नहीं होता-प्रसन्न नहीं होता। अत्र किं चित्रम्=इसमें आश्चर्य ही क्या है। अयं तु=यह राजा तो। अपूर्व-प्रतिमा-विशेषः=विचित्र मूर्त्तियों में से एक है-एक विचित्र मूर्ति है। यः सेव्यमानः=जो सेवा किये जाने पर भी। रिपुताम् उपैति=शत्रुता करता है।

व्याख्या—सेवक बड़े यत्न से राजा की सेवा करता है, परन्तु वह (राजा) सेवा-शुश्रूषा करने पर भी प्रसन्न नहीं होता है तो इसमें आश्चर्य क्या-अर्थात् आश्चर्य कुछ नहीं। परन्तु सबसे बढ़ कर अचरज की बात तो यह है कि सेवकों द्वारा निरन्तर सेवा करने पर भी राजा उनसे (सेवकों से) शत्रुता करता है, इसलिए राजा एक विचित्र मूर्त्ति है। तात्पर्य यह है कि देवमूर्त्ति की सेवा-पूजा से उत्तम फल प्राप्त होता है—सेवक का मनोरथ सफल हो जाता है। परन्तु इस सजीव मूर्त्ति की सेवा का विपरीत फल मिलता है कि वह सेवकों से शत्रुता रखता है। इसीलिए राजा को विचित्र मूर्त्ति कहा गया है।

शब्दार्थ—तद् अयं प्रमेयः अगाधगम्भीर्य=इस बात का रहस्य-भेद-नहीं जाना जा सकता।

क्योंकि—

निमित्तमुद्दिश्य हि यः·········तं परितोषयिष्यति ॥ ११ ॥

रूप—प्रकुप्यति–कुप्–क्रोध करना, प्र उपसर्ग, प्र कुप्–क्रोध करना–क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–प्रकुप्यतः, प्रकुप्यन्ति। प्रसीदति–सद् (सीद) दुःखी होना, प्र उपसर्ग, प्रसन्न होना–क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–प्रसीदतः, प्रसीदन्ति।

अन्वय—यः हि निमित्तम् उद्दिश्य प्रकुप्यति सः ध्रुवं तस्य अपगमे प्रसीदति। यस्य मनः अकारणद्वेषि (अस्ति) जनः तं कथं परितोषयिष्यति।

शब्दार्थ—निमित्तम् उद्दिश्य=किसी कारण को लक्ष्य करके। प्रकुप्यति=नाराज होता है। ध्रुवम्=अवश्य। तस्य अपगमे=उस कारण के नष्ट होने पर। प्रसीदति=प्रसन्न हो जाता है। अकारणद्वेषि=बिना कारण के ही द्वेष करने वाला। परितोषयिष्यति=सन्तुष्ट कर सकेगा।

व्याख्या—जो निश्चय ही किसी कारण विशेष से अप्रसन्न है, वह उस कारण के नष्ट हो जाने पर अवश्य ही प्रसन्न हो जाता है। परन्तु जिसका मन अकारण ही शत्रुता रखता है, उसको कोई भी मनुष्य कैसे प्रसन्न कर सकता अर्थात् व्यर्थ में ही शत्रुता करने वाले को प्रसन्न करने की शक्ति किसी में नहीं है।

किं मया अपकृतं राज्ञः······निर्निमित्तापकारिणः भवन्ति राजानः

रूप—अपकृतम्–कृ–करना, अप उपसर्ग–अप कृ–अपकार–बुराई करना क्रिया से त प्रत्यय।

शब्दार्थ—राज्ञः अपकृतम्=राजा का अपकार किया है। निर्निमित्त–अपकारिणः=बिना कारण–अकारण–ही बुराई करने वाले।

व्याख्या—संजीवक दमनक से कह रहा है—मैंने राजा पिंगलक का क्या अपकार किया है? अथवा यह समझना चाहिये कि राजा लोग अकारण ही अपकारी हो जाते हैं। दमनको ब्रूते=दमनक कहता है। एवम् एतत्=यह ठीक है। शृणु=सुनिये :—

विज्ञैः स्निग्धैरुपकृतमपि······योगिनामप्यगम्यः ॥१०८॥

संधि-विच्छेद—स्निग्धैरुपकृतमपि–स्निग्धैः+उपकृतम्+अपि–यदि विसर्ग के पूर्व अ या आ के अतिरिक्त कोई स्वर हो और आगे कोई स्वर या मृदु व्यंजन हो तो र् या विसर्ग को रेफ (र्) हो जाता है–विसर्ग सन्धि। अकारण–

रुपकृतमपि—साक्षात्+अन्यैः+अपकृतम्+अपि—त् को द्—व्यंजन संधि, विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग संधि। नैकभावाश्रयाणाम्—न+एक—भावाश्रयाणाम्—अ+ए=ऐ—वृद्धिसंधि। योगिनामप्यगम्यः—योगिनाम+अपि+अगम्यः—इ को य्—यण्सन्धि।

समास—विज्ञः—वि—विशेषं जानाति इति—विज्ञ—उपपद तत्पुरुष समास। नैकभावाश्रयाणाम्—न एकः भावः एव आश्रयः येषां ते—नैकभावाश्रय—बहुव्रीहि—तेषाम। परमगहनः—परमः च असौ गहन इति—कर्मधारय।

रूप—उपकृतम्—कृ—करना, उप उपसर्ग, उप कृ—उपकार करना—क्रिया से क्त (त) प्रत्यय—उपकृतः। उपयाति—या—जाना—क्रिया, उप उपसर्ग, उप या—प्राप्त होना—समीप पहुंचना—क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—उपयाति, उपयातः, उपयान्ति। योगिनाम—योगिन—इन्नत शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन—योगिनः, योगिनोः, योगिनाम्। एति—इ—जाना—वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—एति, इतः, यन्ति।

अन्वय—स्निग्धैः विज्ञैः उपकृतम् अपि (कश्चित्) द्वेष्यताम् एति। कश्चित् अन्यैः साक्षात् अपकृतम् अपि प्रीतिम् एव उपयाति। अथ नैकभावाश्रयाणां (पुरुषाणां) चरितं किम् अपि चित्रं विषमम् अस्ति। (अतः) सेवाधर्मः परम—गहनः योगिनाम् अपि अगम्य अस्ति।

शब्दार्थ—कश्चित्=कोई पुरुष। स्निग्धैः=स्नेही पुरुषों—मित्रों से। विज्ञैः=विद्वानों से। उपकृतम् अपि=उपकार किये जाने पर भी। द्वेष्यताम् एति=द्वेष रखना—शत्रुता रखता है। अन्यैः=दूसरों से। अपकृतम् अपि=अपकार—बुराई—किये जाने पर भी। प्रीतिम् एव उपयाति=प्रीति—प्रसन्नता—प्रकट करता है। नैकभावाश्रयाणाम्=अव्यवस्थित भाव रखने वाले—भिन्न—भिन्न विचार वाले पुरुषों का। चरितम्=चरित्र। किम् अपि चित्र विषमम् अस्ति=विचित्र प्रकार का ही होता है अर्थात् अव्यवस्थित मन वाले मनुष्य क्षण में कुछ और पल में कुछ करने और कहने लग जाते हैं। सेवाधर्म—सेवा का कार्य। परमगहनः=अति गम्भीर—बड़ा कठिन है। योगिनाम् अपि अगम्यः—जो योगियों से भी नहीं हो सकता अर्थात् जिसके करने में योगियों को भी बड़ी बड़ी कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ता है। म.भ.स्म. जन भी जो रात ही कहा है।

व्याख्या—कोई पुरुष तो विद्वानों और मित्रों द्वारा उपकार किये मी उनसे शत्रुता करता है, पर प्रत्यक्ष में बुराई करने वाले से प्रसन्न। वास्तव में अव्यवस्थित चित्त-ढिलमिल-विचार-वाले पुरुषों का व अजीब ही होता है। अस्थायी विचार वाले मनुष्य दृढ़-निश्चयी इसीलिए प्रत्येक क्षण उनके हृदय सरोवर में उत्ताल-तरंगों की भाँ विचारधाराएं उठतीं और विलीन हो जाती हैं। इसीलिए कहा गया है का कार्य अति दुष्कर है, जिसे योगी भी बड़ी ही कठिनाई से करने में स सकते हैं; अन्य पुरुषों के संबंध में तो कहा ही क्या जाय।

भावार्थ—क्षणे रुष्टाः क्षणे तुष्टाः रुष्टाः तुष्टाः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थित-चित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः ॥

अव्यवस्थित चित्त वालों की प्रसन्नता भी भयंकर ही होती है, क्षण में रुष्ट और क्षण में ही प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य बड़े होते हैं।

मूलं भुजंगैः कुसुमानि भृंगैः·········दुष्टतरैश्च हिंस्रैः॥

सन्धि-विच्छेद—नास्त्येव-न+अस्ति+एव-दीर्घ और यण् सं। चन्दनपादपस्य-तत्+चन्दनपादपस्य-त् को द् व्यंजन संधि। सन्नाभितम्-सत्+आभितम्-त् को न्-व्यंजन संधि, फिर दीर्घसंधि।

समास—भुजंगैः-भुजेन कौटिल्येन गच्छति इति भुजंगः-उपपद। प्लवगः-प्लवेन गच्छति इति प्लवगः-तत्पुरुष। चन्दन-पादपस्य-चन्दनस्य पादपः चन्दनपादपः-तत्पुरुष-तस्य।

रूप—अस्ति-अस्-होना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, एक पुरुष एकवचन-अस्ति, स्तः, सन्ति।

अन्वय—भुजंगैः मूलम, भृंगैः कुसुमानि, प्लवगैः शाखाः, [illegible] [illegible], चन्दनपादपस्य तत् नास्ति यत् दुष्टतरैः; आश्रितं न अस्ति।

शब्दार्थ—भुजंगैः-सर्पों से। मूलम्-जड़। भृंगैः-भौंरों से। [illegible] [illegible]। प्लवगैः-बन्दरों से। शाखाः-डालियां। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। चन्दनपादपस्य तत् न आश्रितम् [illegible] के वृक्ष का [illegible]

भाग ऐसा नहीं। यत् दुष्टतरैः हिस्रैः आश्रितम् न=जो अत्यन्त दुष्ट हिंसक जीवों से व्याप्त नही है।

व्याख्या—चन्दन के वृक्ष की जड़ सांपों से, पुष्प भौरों से, शाखाएं वानरों से, चोटियां भाले के समान तीक्ष्ण पत्तों से व्याप्त रहती हैं। चन्दन का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो दुष्ट हिंसक जन्तुओं से घिरा न हो। तात्पर्य यह है कि यद्यपि चन्दन का वृक्ष बाहर से भयकर-सा प्रतीत होता है, परन्तु उसमें शीतलता सुगन्ध आदि गुण विद्यमान हैं।

शब्दार्थ—तावत् अयं स्वामी=तो यह राजा। वाङ्-मधुरः=वाणी में मधुर है। विष-हृदयो ज्ञातः=पर इसके हृदय में विष है अर्थात् यह हृदय का शुद्ध नहीं है।

व्याख्या—हमारा यह स्वामी वैसे मिष्ट-भाषी-मिठबोला-है, पर पेट का पापी है।

दूरादुच्छ्रित-पाणिरार्द्र नयनः······यः शिक्षितो दुर्जनैः ॥१०२॥

सन्धि-विच्छेद—दूरादुच्छ्रितपाणि-आर्द्र-नयनः-दूरात्+उच्छ्रितपाणिः + आर्द्र-नयनः-त् को द्-व्यंजन संधि, विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग संधि। मधुमय-श्चातीव-मधुमयः+च+अतीव-विसर्ग को श्, फिर दीर्घ संधि।

समास—उच्छ्रित-पाणिः-उच्छ्रितौ पाणी येन सः=बहुव्रीहि। आर्द्र-नयनः-आर्द्रे नयने यस्य सः=आर्द्र-नयनः-बहुव्रीहि। प्रोत्सारितार्धासनः-प्रोत्सारितम् अर्धम् आसनम् येन स.-बहुव्रीहि। गाढालिंगनतत्परः-गाढं च तत् आलिंगनम् इति गाढालिंगनम्-कर्मधारय, गाढालिंगने तत्पर इति-तत्पुरुष। प्रिय-कथा-प्रश्नेषु-प्रियाः च ताः कथा इति-प्रिय कथाः-कर्मधारय, प्रियकथानां कथासु वा प्रश्नाः-तत्पुरुष-तेषु। दत्तादरः-दत्तः आदरः येन सः-बहुव्रीहि। मायापटु-मायायां पटु इति-सप्तमी तत्पुरुष। अपूर्व-नाटक विधिः-नाटकस्य विधिः इति नाटकविधि, अपूर्वः च असौ नाटकविधिः इति अपूर्व-नाटकविधिः-कर्मधारय।

अन्वय—दूरात् उच्छ्रित-पाणिः आर्द्रनयनः प्रोत्सारित-अर्धासनः गाढा-लिंगन-तत्परः, प्रियकथा प्रश्नेषु दत्तादरः, अन्तर्भूतविषः, बहिर्मधुमयः अतीव मायापटुः अयं कः अपूर्वनाटकविधिः यः दुर्जनैः शिक्षितः।

शब्दार्थ—दूरात्=दूर से। उच्छ्रितपाणिः=हाथ ऊंचा उठाने वाला। आर्द्र-नयनः-गीले नेत्र अर्थात् प्रेमभाव प्रकट करने के लिए साश्रु-नयन।

प्रोत्साहित–अर्ध मन=बैठने को आधा आसन देना । गाढालिंगन-हार्दिक प्रेम प्रकट करने को गले मिलना । प्रियकथा–प्रश्नेषु दत्तादरः–बार बार प्रिय एवं कुशल समाचार पूछने वाला । अन्तर्भूतविषः=हृदय में विष रखने वाला कपटी-पेट का पापी । मधुमय=मधुर सलाप–मीठी मीठी बातें करना । मायापटु=अति कपटी । अपूर्वनाटकविधिः=अनोखा नाटक का व्यवहार दुर्जन शिक्षितः=जो दुर्जनों ने सीखा है ।

व्याख्या—दमनक कह रहा है कि दुर्जन पुरुष बड़े मायावी–कपटी–होते हैं। वे दूर से ही हाथ ऊंचा उठा कर प्रेम प्रकट करते हैं, सम्मुख आने पर आंखों में प्रेमाश्रु भर लाते हैं, बैठने के लिए अपना आधा आसन खाली कर देते हैं अर्थात् आदरभाव प्रकट करते हैं और गले मिलने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते । इतना ही नहीं, प्रियकथा–कुशल–समाचार भी बार बार पूछते हैं। यद्यपि उनका हृदय विष से भरा रहता है अर्थात् हृदय में कपट रखते हैं, पर बाहर से मधुर भाषा में सलाप करते हैं । वे मायावी–कपटी होते हैं । यह कैसा अपूर्व नाटक का व्यवहार है जो कि दुर्जनों ने भली भांति सीखा है ।

सजीवकः पुनः निःश्वस्य .... राज्ञः सदा भेतव्यम् ॥

संधि विच्छेद—ममोपरि–मम+उपरि–अ+उ=ओ–गुण संधि ।

रूप—जाने–ज्ञा–जानना–क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन–जाने, जानीवहे, जानीमहे । भेतव्यम्–भी–भय क्रिया से तव्य प्रत्यय हुआ है ।

शब्दार्थ—पुनः निःश्वस्य=फिर सास भर कर । सस्य–भक्षकः=घास को खाने वाले । निपातयितव्यः=मारा जाने योग्य । मम उपरि=मेरे ऊपर विकारितः=क्रुद्ध कर दिया–नाराज कर दिया है । भेदम् उपगतः=भेद को प्राप्त होने वाले–स्नेहत्याग करने वाले–से । भेतव्यम्–डरना चाहिए ।

व्याख्या—संजीवक ने आह भर कर कहा—अरे यह तो बड़े दुःख की बात है कि मुझ जैसे घास खाने वाले को सिंह युद्ध में किस प्रकार मारेगा अर्थात् समान बल वालों का विरोध हो सकता है—युद्ध हो सकता है—सबल और निर्बल का युद्ध कैसा । फिर सोचकर संजीवक बोला—न मालूम किसने राजा पिंगलक का मन मेरी ओर से फेर दिया है अर्थात् मुझ पर क्रुद्ध

कर दिया है। भेद को प्राप्त होने वाले अर्थात् स्नेहत्याग करने वाले राजा से सदैव डरना चाहिए।

यतः–क्योंकि—

मन्त्रिणा पृथिवीपाल–चित्तम्......कोऽस्ति सधातुमीश्वरः ॥१०३॥

सन्धि–विच्छेद—स्फटिकस्येव– स्फटिकस्य+इव–अ+इ=ए–गुणसंधि।

समास—पृथिवीपाल–चित्तम्–पृथिवीं पालयति इति पृथिवीपालः–पृथिवी–पालस्य चित्तम्–तत्पुरुष।

रूप—मन्त्रिणा–मन्त्रिन्–मन्त्री–शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन–मन्त्रिणा, मन्त्रिभ्याम्, मन्त्रिभिः। सधातुम्–धा–धारण करना, सम उपसर्ग–सम् धा–मिलन–संधि करना–क्रिया से तुम् प्रत्यय।

अन्वय–मन्त्रिणा विघटितं क्वचित् पृथिवीपाल'चित्त स्फटिकस्य वलयम् इव हि कः संधातुम् ईश्वरः (अस्ति)

शब्दार्थ—मन्त्रिणा विघटितम्=मन्त्री द्वारा अलग किये हुए। क्वचित्=किसी कार्य में। स्फटिकस्य वलयम् इव=काच की चूड़ी के समान। संधातुम् ईश्वरः= संधान करने–जोड़ने में–समर्थ हो सकता है।

व्याख्या—किसी सेवक पर राजा का अतिस्नेह देखकर मन्त्री ने राजा के कान भर दिये, अतः राजा का मन उस सेवक की ओर से फिर गया अर्थात् उस सेवक से राजा का मन फट गया। जिस प्रकार काच की चूड़ी नहीं जोड़ी जा सकती, उसी प्रकार राजा का विरक्त मन फिर सेवक से स्नेह नहीं करता।

भावार्थ—टूटा मन और फूटी चूड़ी नहीं जोड़े जा सकते।

शब्दार्थ—ततः संग्रामे =तो फिर युद्ध में। मृत्युः एव वरम्=मरना ही अच्छा है। इदानीं तद्–आज्ञानुवर्तनम् अयुक्तम्= इस समय उसकी आज्ञानुसार काम करना उचित नहीं है।

अयं च युद्धकालः= और यह युद्ध का समय है।

यत्रायुद्धे ध्रुवं मृत्युः......युद्धस्य प्रवदन्ति मनीषिणः॥१०४॥

सन्धि विच्छेद—यत्रायुद्धे–यत्र+अयुद्धे–दीर्घसंधि। मृत्युर्युद्धे–विसर्ग को रेफ (र्)।

समास—अयुद्धे न युद्धम् इति अयुद्धम्–नञ्–निषेधवाचक तत्पुरुष–सप्तमी। जीवितसंशयः–जीवितस्य संशय इति–जीवित–संशयः–षष्ठी तत्पुरुष।

है। म्रियेत-मृ=मरना-क्रिया, आत्मनेपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-म्रियेत, म्रियेयाताम्, म्रियेरन्।

अन्वय—प्राज्ञः हि यदा अयुद्धे आत्मनः किंचित् हितं न पश्येत्, तदा रिपुणा सह युध्यमानः म्रियेत।

शब्दार्थ—प्राज्ञः=चतुर। अयुद्धे=युद्ध न करने पर। हितं न पश्येत्=भलाई न देखे। युध्यमानः म्रियेत=युद्ध करता हुआ मर जाय।

व्याख्या—चतुर मनुष्य को जब युद्ध करने पर भी भलाई दिखाई न दे, तब शत्रु के साथ लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हो जाय अर्थात् संग्राम में लड़ कर प्राण त्याग दे।

एतच्चिन्तयित्वा संजीवक आह ··· तदा त्वमपि स्वविक्रमं दर्शयिष्यसि।

सन्धि-विच्छेद—एतच्चिन्तयित्वा—एतत्+चिन्तयित्वा—यदि स या तवर्ग के आगे श या च वर्ग आते हैं तो स को श और तवर्ग को चवर्ग हो जाता है—व्यंजन संधि।

समास—समुन्नत-लांगूल:=समुन्नतं लांगूलं यस्य स—बहुव्रीहि। उन्नत-चरणः-उन्नतौ चरणौ वा उन्नतः चरणः यस्य सः—बहुव्रीहि।

रूप—चिन्तयित्वा—चिन्त्—चिन्ता करना—क्रिया से क्त्वा प्रत्यय। आह—ब्रू—बोलना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—आह, आहतुः, आहुः। ब्रू क्रिया को वर्तमान काल में अन्य पुरुष के तीनों वचनों और मध्यम पुरुष के दो वचनों में "आह" आदेश हो जाता है। दर्शयिष्यति—दृश्—देखना, णिजन्त दर्श—दिखाना, परस्मैपद, सामान्य भविष्यत्काल, अन्य पुरुष, एकवचन—दर्शयिष्यति, दर्शयिष्यतः, दर्शयिष्यन्ति।

शब्दार्थ—एतत् चिन्तयित्वा=यह सोचकर। कथम्=किस प्रकार। जिघांसुः इति ज्ञातव्य=मारने को इच्छुक है—ऐसा जानना चाहिए। समुन्नत-लांगूल:=ऊपर पूंछ उठाकर। उन्नत-चरणः=चरण—पैर—ऊपर उठाकर। विवृतास्य=मुख फाड़ कर। तदा पश्यति=तुझे देखेगा। स्वविक्रमं दर्शयिष्यसि=अपना पराक्रम दिखाओगे।

व्याख्या—यह सोचकर संजीवक कहता है—हे मित्र! मुझे किस प्रकार विदित होगा कि मुझे वह मारना चाहता है। दमनक कहता है—जब पिंगलक पूंछ उठा

कर तथा पत्रों को ऊपर ले जाकर तुम्हें मुँह फाड़कर देखेगा, तब तुम कौन
पराक्रम दिखलाना अर्थात् युद्ध करना।

यतः=क्योंकि—

बलवानपि निस्तेजा.........पश्य भस्म-चये पदम् ॥१८॥

समास—अभिभवास्पदम्–अभिभवस्य आस्पदम् इति–षष्ठी तत्पुरुष।
चये–भस्मनः चय इति भस्म–चयः तस्मिन्–तत्पुरुष।

रूप—बलवान–बलवत्–बली–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन
बलवान, बलवन्तौ, बलवन्त.। दीयते–दा–देना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मने
वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–दीयते, दीयेते, दीयन्ते। पश्य–दृश्–देख
क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन–पश्य–पश्यतात्,
पश्यत।

अन्वय—निस्तेजाः बलवान अपि कस्य अभिभवास्पदं न भवति। पश्य,
शंकं भस्म–चये पदं दीयते।

शब्दार्थ—निस्तेजा–तेज से हीन। बलवान् अपि=शक्तिशाली भी। क
अभिभवास्पद न=किसके अनादर का पात्र नहीं होता–किससे तिरस्कृत नहीं है
अर्थात् सभी उसका अनादर करते हैं। भस्म-चये=राख के ढेर में। नि
दीयते=निर्भय होकर पैर रखते हैं।

व्याख्या—तेज से हीन बलवान् को कौन पराजित नहीं करता अर्थात्
उसका अनादर करने लग जाते हैं। देखिए, संसार अग्नि के शान्त हो
पर राख के ढेर में निडर होकर पैर रखता है।

किन्तु सर्वम् एतत् सुगुप्तम.........कोऽत्र संदेहः।

सन्धि विच्छेद—इत्युक्त्वा–इति+उक्त्वा=इ को य्=यण् सन्धि। बलोत्
तम्=बलोत्+उत्तम्–अ+उ=ओ गुणसन्धि। निष्पन्नोऽमात्यर्तेनयोः–निष्पन्न
अओ–विसर्ग को उ–विसर्गसन्धि, अ+उ=ओ–गुणसन्धि, तत्पश्चात् पूर्वरूप सन्धि।
अओ+अन्योन्यभेद –ओ को आव्–यदि ए, ऐ, ओ या औ के बाद कोई स्वर
आता है तो ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् हो जाता
यहाँ औ को आव् हुआ है=अयादि सन्धि।

—अन्योन्यभेदः: अन्यः च अन्यः च इति तयोः भेदः—द्वन्द्व।

रूप—अनुष्ठातव्यम्–स्था–ठहरना–खड़ा होना–क्रिया, अनु उपसर्ग–अनु–स्था–करना–क्रिया से कर्मवाच्य में तव्य प्रत्यय हुआ है। गत.–गम्–जाना–क्रिया से क्त (त) प्रत्यय।

शब्दार्थ—एतत् सर्वम्=यह सब। सुगुप्तम् अनुष्ठातव्यम्=अत्यन्त गुप्त रखना चाहिए अर्थात् अत्यन्त गुप्त रूप से करना चाहिए। नो चेत् न त्वम् न अहम्=नहीं तो न तुम होंगे और न मैं। इत्युक्त्वा=इतना कह कर। करटकेन उक्तम्=करटक ने कहा—कि निष्पन्नम्=क्या तत्व निकला–क्या हुआ। अन्योऽन्य-भेदः=एक दूसरे में भेद–आपसी फूट। कोऽत्र सन्देहः=इसमें क्या सन्देह है।

यतः—क्योंकि—

बन्धुः को नाम दुष्टानाम्······कुकृत्ये को न पंडितः ॥१८७॥

रूप—कुप्यते–कुप्–क्रोध करना–क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन=कुप्यते, कुप्येते, कुप्यन्ते। याचितः—याच्–माँगना–क्रिया–क्त (त) प्रत्यय।

अन्वय—दुष्टानां को बन्धुः ? याचितः कः न कुप्यते ? वित्तेन कः न दृप्यति ? कुकृत्ये कः पण्डितः न ?

शब्दार्थ—दुष्टानाम्=दुर्जनों का। को बन्धुः=कौन भाई है अर्थात् कोई नहीं। याचितः=याचना करने–माँगने पर। कः न कुप्यते=कौन क्रोध नहीं करता। वित्तेन=धन प्राप्त करने पर। कः न दृप्यति=कौन घमण्ड नहीं करता। कुकृत्ये कः पण्डितः न=कुकार्य करने में कौन चतुर नहीं है अर्थात् सभी होते हैं।

व्याख्या—दुर्जनों का बन्धु कौन है अर्थात् कोई नहीं। दुर्जन अपने बन्धुओं-मित्रों से भी दुष्टता करने में नहीं चूकते। याचना करने पर कौन क्रुद्ध नहीं होता। धन पाकर कौन घमण्ड नहीं करता अर्थात् धन से घमण्ड हो ही जाता है। गोस्वामी जी ने कहा है—ऐसा को जनमा जग माहिं, प्रभुता पाइ जाहि मद नाहिं॥ कुकार्य करने में कौन चतुर नहीं है अर्थात् कुकार्य करने में तो मनुष्य स्वभाव से ही कुशल होता है, पर शुभ काम करने में नहीं।

अतो दमनक······सञ्जीवकः सिंहेन व्यापादितः ॥

संधि-विच्छेद—अत एव+अतो—अतः विसर्ग से पूर्व ह्रस्व अ और आगे भी ह्रस्व अ या मृदु व्यञ्जन हो तो विसर्ग को उ हो जाता है—विसर्ग सन्धि, पूर्व उ और

से नहीं मिल सकते। तात्पर्य यह है कि राजभक्त सेवक अति कठिनाई से मि

व्याख्या—राज्य का कुछ भाग और बुद्धिमान् तथा अनेक गुणों सेवक इन दोनों में सेवक का विनाश राजाओं के लिए मृत्यु के समान है, भूमि नष्ट हो जाने पर फिर भी प्राप्त की जा सकती है अर्थात् खोया हु फिर जीता जा सकता है, अत एव सुलभ है। पर स्वामिभक्त सेवक दुर्ल क्योंकि वह आसानी से नहीं मिल पाता।

भावार्थ—स्वामिभक्त सेवक मिलना दुर्लभ है।

शब्दार्थ—दमनको ब्रूते=दमनक कहता है। स्वामिन्! कः अयं दूषण= यह कौन सा नया न्याय है। यत् अरातिं हत्वा=कि शत्रु को मारकर। क्रियते=आप दुःख मानते हैं।

तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा गया है—

पिता वा यदि वा भ्राता.........हन्तव्या भूतिमिच्छता ॥११॥

समास—प्राणच्छेदकर.—प्राणानां छेदं कुर्वन्ति इति–तत्पुरुष।

रूप—भ्राता–भ्रातृ–भाई–ऋकारान्त पुल्लिंग शब्द, प्रथमा विभक्ति, ए वचन–भ्राता, भ्रातरौ, भ्रातरः। राज्ञा–राजन्–राजा–शब्द, पुल्लिंग, तृ विभक्ति, एकवचन–राज्ञा, राजभ्याम्, राजभिः। हन्तव्याः–हन्–जान से डालना–क्रिया से तव्य प्रत्यय हुआ है। इच्छता–इच्छत्–इच्छा करता हु शतृ–अत्–प्रत्ययान्त शब्द–पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन–इच्छ इच्छद्भ्याम्, इच्छद्भिः।

अन्वय—भूतिम् इच्छता राज्ञा प्राणच्छेदकराः पिता वा भ्राता, पु वा सुहृत् हन्तव्याः।

शब्दार्थ—भूतिम् इच्छता=कल्याण–ऐश्वर्य–के अभिलाषी। राज्ञा प्राणच्छेदकराः=प्राणों का विनाश करने वाले। हन्तव्याः=मार डालना चाहि

व्याख्या—पिता, भाई, पुत्र या मित्र में यदि कोई भी प्राणों का वै । चाहता हो अर्थात् प्राण लेने पर उतारू हो जाय तो कल्याण–ऐश्वर्य अभिलाषी राजा को उनका वध अवश्य ही कर देना चाहिए।

भावार्थ—राजद्रोही का वध आवश्यक है।

क्षमा शत्रौ च मित्रे च·········सैव दूषणम् ॥ १११ ॥

सन्धि-विच्छेद—सैव-सा+एव-वृद्धि संधि ।

रूप—शत्रौ-शत्रु-वैरी-शब्द, पुल्लिग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन-शत्रौ, शत्रोः शत्रुषु । अपराधिषु-अपराधिन्-अपराधी-इन्नन्त शब्द, पुल्लिग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन-अपराधिनि, अपराधिनोः, अपराधिषु ।

अन्वय—क्षमा, शत्रौ, मित्रे च यतीनाम् एव भूषणम् भवति, सा (क्षमा) च अपराधिषु सत्वेषु एव दूषणम् (भवति) ।

शब्दार्थ—यतीनाम्=तपस्वियों का । भूषणम्=आभूषण-गहना । सा एव= ही क्षमा । अपराधिषु सत्वेषु=अपराध करने वाले प्राणियों पर । दूषणम्= दोष है ।

व्याख्या—वैरी और मित्र के प्रति क्षमा प्रदर्शित करना केवल तपस्वियों का ही भूषण है । यदि राजा लोग अपराधियों को क्षमा करते हैं, तो वह (क्षमा) उनके लिए एक प्रकार का दोष है । अतः राजा का कर्तव्य है कि वह अपराधी को क्षमा प्रदान न कर उसको उचित दण्ड दे ।

भावार्थ—राजनीति में अपराधी को क्षमा कहाँ ।

राज्य-लोभादहंकारात्········जीवोत्सर्गो न चापरम् ॥ ११२ ॥

सन्धि-विच्छेद — राज्य – लोभादहंकारादिच्छतः-राज्य-लोभात्+अहंकारात्+इच्छतः-यदि पद के अन्त में वर्ग पहले, दूसरे और चौथे अक्षर होते हैं तो उन्हें वर्ग का तीसरा अक्षर हो जाता है । यहां दोनों स्थानों पर वर्ग के प्रथम अक्षर को तीसरा अक्षर द् हुआ है-व्यंजन संधि । तस्यैकम्-तस्य+एकं-अ+ए =वृद्धि संधि ।

समास—राज्य-लोभात्—राज्यस्य लोभः इति राज्य-लोभ—षष्ठी तत्पुरुष—तस्मात् । जीवोत्सर्गः—जीवस्य उत्सर्गं इति-षष्ठी तत्पुरुष ।

रूप—इच्छेत्-इष्-इच्छ्-इच्छा करना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ अन्य पुरुष, एकवचन-इच्छेत्, इच्छेताम्, इच्छेयुः।स्वामिन्-मालिक-शब्द, पुल्लिग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन-स्वामिनः, स्वामिनोः, स्वामिनाम् ।

अन्वय—राज्य-लोभात्, अहंकारात् यः स्वामिनः पदम् इच्छेत् तस्य तु एक प्रायश्चित्तम् जीवोत्सर्ग एव (अस्ति) अपरं च (नास्ति) ।

राजकुमार बोले। भवत्-प्रसादात्=आपकी कृपा से। श्रुतः=हमने सुहृद्भेद सुना। वयं सुखिनः भूताः=हम सुखी हुए।

व्याख्या—समस्त नीतिशास्त्र के ज्ञाता पं० विष्णु शर्मा ने राजकुमारों से कहा—आपने सुहृद्भेद सुना। राजकुमारों ने कहा—भगवन्, आपकी कृपा से हमने सब सुना। हम बहुत सुखी हुए।

इति बाल-हितोपदेशे सुहृद्भेदो नाम द्वितीयः
कथा-संग्रहः समाप्तः।

विग्रहः=युद्ध ।

अथ पुनः कथारम्भकाले राजपुत्रैः उक्तम्······यस्य अयम् आद्यः श्लोक

रूप—रोचते रुच् (रोच्) अच्छा लगना-माना-क्रिया, आत्मनेपद, व मान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-रोचते, रोचेते, रोचन्ते । श्रूयताम्-श्रु-सुनन क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन-श्रूयताम्, श्रूयेताम्, श्रूयन्ताम् ।

शब्दार्थ—आर्य=सज्जन । विग्रहम्=युद्ध को । नः=हमको । भवद्भ्यः रोचते= आप लोगों को अच्छा लगता है । श्रूयताम्=सुनिये ।

व्याख्या—राजकुमार फिर बोले—हे आर्य ! विग्रह-युद्ध नामक तीसरा प्रबन्ध सुनने की हमको बड़ी लालसा है । पं० विष्णुशर्मा बोले—यदि यही आप लोगों को प्रिय है तो मैं कहता हूँ । अब विग्रह सुनिए, जिसका यह पहला श्लोक है—

हंसैः सह मयूराणां············स्थित्वारि-मन्दिरे ॥१॥

समास—तुल्य-विक्रमे-तुल्यः विक्रमः यस्मिन् सः तुल्यविक्रमः—सप्तमी तत्पुरुष-तस्मिन् ।

रूप—स्थित्वा-स्था-ठहरना-क्रिया से 'क्त्वा' प्रत्यय हुआ है ।

अन्वय—मयूराणां हंसैः सह तुल्यविक्रमे विग्रहे (सति) काकैः विश्वास्य अरि-मन्दिरे स्थित्वा हंसा वंचिताः ।

शब्दार्थ—तुल्य-विक्रमे=समान बलवाले । विग्रहे=युद्ध होने पर । विश्वास्य= विश्वास दिलाकर । अरि-मन्दिरे स्थित्वा=शत्रु के मन्दिर-मकान में रह कर हंसा वंचिताः=हंस ठग लिए गए अर्थात् उन्हें धोखा दिया गया ।

व्याख्या—मोरों का हंसों के साथ युद्ध हुआ, जिसमें उनका बल समान था अर्थात् सेना आदि युद्ध के साधन समान ही थे, परन्तु अपनी कूटनीति से मोरों ने शत्रु के घर में अपने एक भेदिये कौए को रख दिया, इसी कारण मोरों की जीत हुई और हंस हार गये ।

राजपुत्रा ऊचुः=राजकुमार बोले । एतत् कथम्=यह कैसे ? विष्णुशर्मा कथ- पं० विष्णुशर्मा कहते हैं—

अस्ति कर्पूरद्वीपे............पक्षिराज्येऽभिषिक्तः ।

समास—जलचर-पक्षिभिः—जले चरन्तीति जलचराः, जलचराः च ते क्षिणः इति जलचर-पक्षिणः—कर्मधारय तैः । पक्षिराज्ये—पक्षिणां राज्यम् इति क्षिराज्यम्—तस्मिन् पक्षिराज्ये—षष्ठी तत्पुरुष ।

रूप—पक्षिभिः=पक्षिन्—पक्षि—इन्नन्त शब्द पुल्लिङ्ग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन—पक्षिणा, पक्षिभ्या, पक्षिभिः ।

शब्दार्थ—पद्मकेलिनामधेय सरः=पद्मकेलि नामक सरोवर । जलचर-क्षिभिः=जल में घूमने वाले पक्षियों से । अभिषिक्तः=राज्य पर बैठाया—राज्य-तलक किया ।

व्याख्या—कर्पूरद्वीप में पद्मकेलि नामक एक सरोवर है । वहां हिरण्यगर्भ नामक राजहंस रहता है । समस्त जलचर पक्षियों ने मिलकर उसको पक्षियों का राजा बनाया—उसका राज्याभिषेक किया ।

यतः=क्योंकि—

यदि न स्यान्नरपतिः......विप्लवेतेह नौरिव ॥२॥

संधि-विच्छेद—स्यान्नरपतिः—स्यात्+नरपतिः—त् को न्—व्यंजन संधि । विप्लवेतेह=विप्लवेत+इह—अ+इ=ए—गुणसन्धि । नौरिव=नौ+इव—विसर्ग को र (र्) विसर्ग सन्धि ।

समास—नरपतिः—नराणां पतिः इति षष्ठी तत्पुरुष । अकर्णधारा—न कर्णधारः यस्याः सा—अकर्णधारा=बहुव्रीहि । जलधी—जलानि धीयन्ते यस्मिन् सः जलधिः—बहुव्रीहि—तस्मिन् ।

रूप—नेता—नेतृ—नायक—Leader—शब्द, पुल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन—नेता, नेतारौ, नेतारः । विप्लवेत—प्लव्—तैरना—उतारना वि उपसर्ग विप्लव्—डूबना—नष्ट होना क्रिया आत्मनेपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन—विप्लवेत, विप्लवेयाताम्, विप्लवेरन् ।

अन्वय—यदि नरपतिः सम्यक् नेता न स्यात् ततः प्रजा अकर्णधारा नौः इव जलधौ विप्लवेत ।

शब्दार्थ—सम्यक् नेता=ठीक नायक । न स्यात्=न हो । अकर्णधारा=बिना नाविक-मल्लाह—वाली । नौः इव=नाव के समान । जलधौ विप्लवे... डूब जाय ।

व्याख्या—यदि राजा ठीक नेता न हो तो प्रजा मल्लाहरहित नाव के समान समुद्र में बह जाय–डूब जाय अर्थात् राजा योग्य शासक नहीं है तो प्रजा का जीवन संकटमय हो जाता है।

प्रजां संरक्षति नृपः··············श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् ॥३॥

संधि-विच्छेद—सत्+अपि+असत्–त् को द्–व्यंजन संधि। इ को य् यण् संधि।

समास—नृपः–नॄन् पाति–रक्षति इति नृपः–तत्पुरुष। पार्थिवम्–पृथिव्या ईश्वर इति पार्थिवः, तम्।

रूप—श्रेयः–श्रेयस्=कल्याण–शब्द, नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–श्रेयः, श्रेयसी, श्रेयांसि।

अन्वय—नृपः प्रजां संरक्षति, सा पार्थिवं वर्धयति। वर्धनात् रक्षणं श्रेयः (अस्ति) तद् अभावे सत् अपि असत्।

शब्दार्थ—संरक्षति=भली प्रकार रक्षा करता है। वर्धयति=बढ़ाती है। रक्षणम्=रक्षा। श्रेयः=कल्याणकारी। तद् अभावे=रक्षा के न होने पर। सत् अपि असत्=वृद्धि होती हुए भी व्यर्थ है।

व्याख्या—राजा प्रजा की भली प्रकार रक्षा करता है। प्रजा राजा को कर आदि देकर बढ़ाती है। बढ़ाने की अपेक्षा रक्षा कल्याणकारी है। यदि प्रजा का रक्षण न हो तो वृद्धि-वर्धन व्यर्थ है अर्थात् राज्य में यदि अनाचार, [illegible], लूट-पाट होने लग जाय तो वर्धन का कोई महत्व नहीं, जब तक कि रक्षा न हो–सुव्यवस्था न हो।

[illegible] राजहंस··················[illegible] चारु अवलोकित ॥

संधि-विच्छेद—[illegible]

समास—सुखासीनः—सुखेन आसीनः—तृतीया तत्पुरुष। दीर्घमुखः—द
मुखं यस्य सः—बहुव्रीहि। पक्षिराजः—पक्षिणां राजा—षष्ठी तत्पुरुष। सुविस्तीर्ण
कमल-पर्यंके—सुविस्तीर्णस्य कमलस्य पर्यंके—षष्ठी तत्पुरुष। दग्धारण्य—म
दग्धं च यत् अरण्यम्—इति—कर्मधारय, दग्धारण्यस्य मध्ये—षष्ठी तत्पुरुष।

रूप—उपविष्टः—विश्—प्रवेश करना—क्रिया, उप उपसर्ग—उपवि
बैठना-क्रिया, से क्त (त) प्रत्यय। चरद्भिः—चरत-घूमता हुआ-श
पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन—चरता, चरद्भ्याम्, चरद्भिः। अवलोकि
अव उपसर्ग, लोक्-क्रिया में क्त (त) प्रत्यय।

शब्दार्थ—सुविस्तीर्ण-कमल-पर्यंके=लम्बे चौड़े कमल रूपी पलंग
सपरिवार-परिवार सहित। कुतश्चित् देशात्=किसी देश से। आगत्य=आ
प्रणम्य=प्रणाम कर। उपविष्टः=बैठ गया। देशान्तरात्=दूसरे देश
आगतः असि=आये हो। वार्ता कथय=समाचार कहो। महती वार्ता=म
समाचार। वक्तुम्=कहने को। अनुचरैः=सेवकों द्वारा। चरद्भिः=घूमने व
से। दग्धारण्यमध्ये=दग्ध नामक जंगल के बीच। चरन् अवलोकितः=घूमते
देखा गया।

व्याख्या—एक समय राजहंस परिवार सहित विस्तीर्ण कमल-रूपी प
पर बैठा होता है। उसी समय दीर्घमुख नामक बगुला किसी देश से आ
प्रणाम कर बैठ गया। राजा ने कहा—दीर्घमुख! तुम दूसरे देश से आये हो
समाचार सुनाओ। वह कहता है—हे देव! एक महान् समाचार है। उसे क
को शीघ्र ही आता है, सुनिये। जम्बूद्वीप में विन्ध्य नामक पर्वत है। वहाँ प
का राजा चित्रवर्ण नामक मयूर रहता है। इधर-उधर घूमते हुए उसके अनु
चरों ने दग्ध नामक वन के मध्य में मुझे घूमते हुए देखा।

पुष्टाश्च [illegible] ···· ·············· ···सर्वे सकोपा बभूवुः॥

संधि-विच्छेद—[illegible]
[illegible]

रूप—[illegible]
[illegible]

शब्दार्थ—शाल्मली-तरु:=सेमल का वृक्ष। निर्मित-नीडे=बनाये हुए घोंसले। नील-घन-पटलैः=नीले मेघ समूह से। नभस्तले आवृते=आकाश के ढक जाने पर। धारासारैः=मूसलाधार वर्षा से। महती वृष्टिः बभूव=अधिक वर्षा हुई। तरुतले अवस्थितान्=वृक्ष के नीचे स्थित। शीताकुलान्=सर्दी से व्याकुल। कम्पमानान्=कांपते हुए। अवलोक्य=देखकर। पक्षिभिः उक्तम्=पक्षियों ने कहा। भो भो वानराः शृणुत=रे रे वानरो! सुनो।

अस्माभिर्निर्मिताः············यूयं किमवसीदथ ॥६॥

अन्वय—अस्माभिः चंचु-मात्राहृतैः तृणैः नीडा निर्मिताः। हस्तपादादि-संयुक्ता यूयं किमवसीदथ?

शब्दार्थ—चंचुमात्राहृतैः=केवल चोंच द्वारा लाये हुए। तृणैः नीडा निर्मिताः=तिनकों से घोंसले बनाये। हस्तपादादिसंयुक्ता=हाथ-पैर आदि रखने वाले। किम् अवसीदथ=क्यों दुखी होते हो?

व्याख्या—पक्षी बोले—केवल चोंच द्वारा लाए हुए तिनकों से हमने अपने घोंसले बनाये हैं। तुम्हारे हाथ-पैर हैं, फिर भी तुम दुःख क्यों भोगते हो अर्थात् तुम्हें अपना घर बना लेना चाहिये।

तच्छ्रुत्वा वानरैः··········चाधः पातितानि।

सन्धि विच्छेद—जातामर्षैरालोचितम्—जातामर्षैः+आलोचितम् विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग सन्धि।

समास—जातामर्षैः—जातः अमर्षः यान् (येभ्यः) ते जातामर्षाः—बहुव्रीहि तैः। निर्वात-नीड़-गर्भावस्थिताः—निर्वातं च तत् नीडम् इति निर्वात-नीडम्—कर्मधारय—निर्वातनीडस्य गर्भे अवस्थिता इति—तत्पुरुष।

शब्दार्थ—जातामर्षैः=क्रुद्ध होने वालों ने। आलोचितम्=विचारा। निर्वात-नीड-गर्भावस्थिताः=वायुरहित घोंसलों में बैठे हुए। अस्माकं निन्दन्ति=हमारी [illegible] करते हैं। वृष्टेः उपशमः=वर्षा का रुकना। आरुह्य=चढ़कर। नीडा [illegible]=घोंसले तोड़ दिए। अधः पातितानि=नीचे गिरा दिये।

व्याख्या—पक्षियों के वाक्य सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध होने वाले वानरों ने सोचा-ओह, वायु-रहित घोंसलों के अन्दर बैठे हुए सुखी पक्षी हमारी निन्दा करते हैं। वर्षा शांत होने दो। तत्पश्चात् वर्षा के रुक जाने पर उन वानरों

वृक्ष पर चढ़कर (पक्षियों के) सब घोंसले तोड़ डाले और उनके अण्डे
वे गिरा दिये।

अतोऽहं ब्रवीमि=इसलिए मैं कहता हूँ। विद्वानेवोपदेष्टव्यः इत्यादि=विद्वा
ही उपदेश देना चाहिए।

राजोवाच-ततः तैः··········स्वविक्रमो दर्शितः। राजा विहस्याह।

संधि-विच्छेद—मयोपजात-कोपेनोक्तम्-मया + उपजात— कोपेन+उक्तम
गुणसंधि। एतच्छ्रुत्वा-एतत् + श्रुत्वा-त् को च् और श् को छ्-व्यंजन
संधि।

समास—उपजात-कोपेन-उपजातः कोपः यं सः-उपजात-कोपः-बहुव्रीहिः
तेन।

शब्दार्थ—किं कृतम्=क्या किया? कोपात् उक्तम्=क्रोध से कहा। उपजात
कोपेन मया उक्तम्=क्रुद्ध होने वाले मैंने कहा। युष्मदीय-मयूर=तुम्हारे मोर
हन्तुम् उद्यता=मार डालने को तैयार हो गये। स्वविक्रमो दर्शितः= अपन
पराक्रम दिखाया। विहस्य आह=हंसकर कहता है।

व्याख्या—राजा बोला-फिर उन्होंने क्या किया? बगुला कहता है-तब उ
पक्षियों ने क्रोध में भर कर कहा—राजहंस को राजा किसने बनाया है? तब मुझे
भी क्रोध आ गया और मैंने कहा—तुम्हारे मोर को राजा किसने बनाया? य
सुनकर वे मुझे मार डालने को तत्पर हो गए। तब मैंने भी अपना पराक्र
दिखाया। राजा हंसकर कहता है।

आत्मनश्च परेषां च··········सः तिरस्क्रियतेऽरिभिः॥ ७॥

सन्धि विच्छेद—नैव-न+एव-अ+ए=ऐ-वृद्धि सन्धि। तिरस्क्रियतेऽरिभि
तिरस्क्रियते+अरिभिः-यदि पद के अन्त में ए या ओ के बाद लघु आता है
उसका पूर्व रूप हो जाता है और उसके स्थान पर (ऽ) ऐसा चिन्ह बना देते हैं-
पूर्वरूपसन्धि।

समास—बलाबलम्-बलम् च अबलं च-बलाबलम्=द्वन्द्व।

रूप—आत्मनः-आत्मन् आत्मा या अपना शब्द, पुंलिङ्ग, षष्ठी विभ
एकवचन-आत्मनः, आत्मनोः, आत्मनाम्। समीक्ष्य-ईक्ष्-देखना-क्रिया, स
उपसर्ग, समीक्ष्-क्रिया से त्वा प्रत्यय, किन्तु उपसर्ग पूर्व में होने से त्वा को य

बकः पृच्छति=बगुला पूछता है। एतत् कथम्=यह कथा किस प्रकार है!
राजा कथयति=राजा कहता है।

रजक-गर्दभयोः कथा=धोबी और गधे की कथा।

अस्ति हस्तिनापुरे·············गर्दभोऽयमिति लीलयैव व्यापादितः।

सन्धि-विच्छेद—मुमूर्षुरिवाभवत्=मुमूर्षुः+इव+अभवत्—विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग और दीर्घ संधि। लीलयैव=लीलया+एव-वृद्धि सन्धि।

समास—धूसर-कम्बल-कृत-तनु-त्राणेन-धूसरः च असौ कम्बलः इति धूसरकम्बलः—कर्मधारय, धूसरकम्बलेन कृतं तनुत्राणं येन सः—बहुव्रीहि—तेन। आनतः कायः येन सः—आनतकायः—बहुव्रीहि—तेन। पुष्टाङ्गः—पुष्टानि अङ्गानि यस्य सः पुष्टाङ्गः—बहुव्रीहि। सस्यभक्षण—जातबलः—सस्यानां भक्षणेन जातं बलं यं—सः बहुव्रीहि।

रूप—मुक्तः—मुच्—छोड़ना—क्रिया से त प्रत्यय। पलायन्ते—अय्—जाना-क्रिया परा उपसर्ग रेफ को ल्—पलाय्=भागना—क्रिया आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—पलायते, पलायेते, पलायन्ते। स्थितम्—स्था—ठहरना क्रिया से क्त (त) प्रत्यय।

शब्दार्थ—रजकः=धोबी। गर्दभः=गधा। अतिवाहनात्=अधिक बोझ ढोने से। मुमुर्षुः इव=मरणासन्न—मरने वाला-सा। व्याघ्रचर्मणा प्रच्छाद्य=बाघ की खाल से ढक कर। सस्य-क्षेत्रे मुक्तः=अनाज के खेत में छोड़ दिया। अवलोक्य देखकर। पलायन्ते=भागते हैं। सस्य-रक्षकेण=अनाज के रक्षक ने—खेत की रक्षा करने वाले ने। धूसर-कम्बल—कृततनुत्राणेन=धूमिल कम्बल ओढ़ने वाले। धनुः-काण्डं सज्जीकृत्य=धनुष पर बाण चढ़ाकर। आनत-कायेन=शरीर झुकाने वाले ने। एकान्ते स्थितम्=एकान्त में बैठा। पुष्टाङ्गः=मोटा-ताज़ा। सस्य-भक्षण-जात-बलः=अनाज खाने से बलवान्। मत्वा=मानकर। कुर्वाणः=करता हुआ। तदभिमुखं धावितः=उसकी ओर दौड़ा। चीत्कार-शब्देन=रेंकने से। व्यापादितः=मार दिया गया।

व्याख्या—हस्तिनापुर में विलास नामक एक धोबी था। अधिक भार ढोने से उसका गधा मरणासन्न—मरनेवाला-सा हो गया। तब उस धोबी ने उसको

बाघ के चमड़े-खाल से ढक कर जंगल में अनाज के खेत में छोड़ दिया। दूर से खेत के मालिक उसे व्याघ्र समझकर दूर भाग जाते। एक बार खेत रक्षक धूसर कम्बल से अपना शरीर ढक धनुष बाण लेकर शरीर को झुका एकान्त में बैठ गया। उसको दूर से देखकर गधे ने सोचा कि हृष्ट-पुष्ट त अनाज खाने से बलवान् यह दूसरा गधा है—यह विचार कर चीत्कार कर रेंकता हुआ वह उसकी ओर भागा। खेत रखाने वाले ने उसके रेंकने से सम लिया कि यह गधा है, अतएव उसने उस (बनावटी बाघ) गधे को आसानी से मार दिया।

अतोऽहं ब्रवीमि=इसीलिए मैं कहता हूँ। सुचिरं हि चरन् नित्यम्=बहुत काल तक प्रतिदिन चरने वाला गधा वाग्दोष से मारा गया।

तदनन्तरः=तत्पश्चात्।

दीर्घमुखो ब्रूते·· ·········तेन तदाश्रयमुपदिशसि।

सन्धि विच्छेद—इत्युक्त्वा इति+उक्त्वा इ को य्-यण् सन्धि।

समास—राज्याधिकारः—राज्ये अधिकार इति राज्याधिकारः—तत्पुरुष। करतलस्थम्—करस्य तलम् इति करतलम्—तत्पुरुष—करतले तिष्ठति इ करतलस्थः तम्।

शब्दार्थ—अधिक्षिपसि=निन्दा करते हो। न क्षन्तव्यम्=क्षमा के योग्य नहीं। चंचुभिः हत्वा=चोंचों से मार कर। सकोपा=क्रुद्ध। राज्याधिकारः=राज्य में अधि कार। एकान्तमृदुः=अतिशय कोमल स्वभाव वाला। करतलस्थम्=हथेली पर रखे हुए। अर्थम्=धन को। रक्षितुम् असमर्थः=रक्षा करने में असमर्थ है। शास्ति=शासन करता है। कूपमण्डूक=अज्ञानी। तदाश्रयम् उपदिशसि=उसके आश्रय का उपदेश देता है।

व्याख्या—दीर्घमुख बगुला कहता है, तब पक्षियों ने कहा—रे पापी दुष्ट बक! हमारे देश में भ्रमण करता हुआ हमारे स्वामी की निन्दा करता है। अतएव अब क्षमा के योग्य नहीं है। यह कहकर सब चोंचों से मार कर क्रुद्ध हो कहने लगे—रे मूर्ख! वह तेरा राजहंस सब प्रकार से कोमल है। उसको तो राज्य पर अधिकार ही नहीं है। इसका कारण यह है कि वह केवल कोमल स्वभाव का है अतएव हथेली पर रखे हुए अर्थात् अधिकार में प्राप्त हुए धन की रक्षा भी वह नहीं कर

सकता। वह किस प्रकार पृथ्वी का शासन कर सकता है और उसका राज्य ही क्या! और तू भी कुएँ का मेंढक अर्थात् अल्पज्ञानी है, इसी लिए उसके आश्रय में रहने की बात करता है।

शृणु=सुन।

सेवितव्यो महावृक्षः फल-च्छाया⋯⋯छाया केन निवार्यते ॥६॥

समास—महावृक्षः—महान् च असौ वृक्ष इति—महावृक्षः—कर्मधारय। फल-च्छाया-समन्वितः—फलैः छायया च समन्वितः—इति फल-च्छाया-समन्वितः—तृतीय तत्पुरुष।

रूप—सेवितव्यः—सेव्—सेवा करना—क्रिया तव्य प्रत्यय। निवार्यते—वार्—वारण करना—रोकना, नि उपसर्ग, निवार्—दूर करना—हटाना क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मने पद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन, निवार्यते, निवार्येते—निवार्यन्ते।

अन्वय—फल-च्छाया समन्वितः महावृक्षः सेवितव्यः, यदि दैवात् फलं न अस्ति (तदा) छाया केन निवार्यते।

शब्दार्थ—फल-च्छाया-समन्वितः=फलों और छाया से युक्त। महावृक्षः=विशाल वृक्ष। सेवितव्यः=सेवा करने योग्य होता है। दैवात्=दैवयोग से। फलं नास्ति=फल नहीं है। छाया केन निवार्यते=छाया किससे दूर की जा सकती है।

व्याख्या—फलों और छाया से युक्त बड़े वृक्ष की सेवा करनी चाहिए। यदि दैवयोग से उस वृक्ष पर फल नहीं है तो छाया को कौन दूर कर सकता है—वह तो अवश्य मिलेगी।

अन्यत् च=और भी—

महानप्यल्पतां याति⋯⋯⋯गजेन्द्र इव दर्पणे ॥१०॥

सन्धि विच्छेद—महानप्यल्पताम्—महान्+अपि+अल्पताम्—इ को य्=यण् सन्धि।

समास—गुण-विस्तरः—गुणस्य गुणानां वा विस्तरः—षष्ठी तत्पुरुष। आधाराधेय-भावेन—आधारः च आधेयश्च=आधाराधेयौ द्वन्द्वः तयोः भावेन—तत्पुरुष। अल्पताम्—अल्पस्य भावः अल्पता—ताम्।

रूप—महान्—महत्—बड़ा—शब्द, पुल्लिङ्ग, एकवचन—महान्—महान्तौ—महान्तः। याति—या—जाना—पहुँचना क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष एकवचन—याति, यातः यान्ति।

अन्वय—दर्पणे आधार-आधेयभावेन गजेन्द्र इव महान् अपि गु विस्तरः-निर्गुणे अल्पतां याति।

शब्दार्थ—आधार-आधेय-भावेन=बिम्ब-प्रतिबिम्ब संबंध से। गजेन्द्र इ विशालकाय-डीलडौल वाले हाथी के सामान। गुण-विस्तरः-गुण का विस्त अर्थात् गुण-समूह। अल्पता याति=लघुता को प्राप्त हो जाता है-छोटा जाता है।

व्याख्या—हाथी विशालकाय-डीलडौल वाला पशु होता है, परन्तु दर्पण में वह अति लघु मालूम होने लगता है अर्थात् दर्पण में जब उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है तो जितना बड़ा दर्पण का आकार होता है उतना बड़ा ही हाथी का शरीर भी मालूम होता है। इसी प्रकार गुण भी निर्गुण के पास पहुँचकर अपना मा खो देते हैं। तात्पर्य यह है कि महत्व का पद यदि किसी निर्गुण को दे दिया व तो उसका गौरव वैसा नहीं रह जाता।

विशेषतः=विशेष रूप से—

व्यपदेशेऽपि सिद्धिः स्यात्.........शशकाः सुखमासते ॥११॥

व्याख्या—यदि राजा शक्तिशाली है तो उसका नाम लेने मात्र से ही सफलता मिल जाती है। चन्द्रमा का नाम लेने मात्र से ही खरगोश आनन्द पूर्वक रहते हैं।

मया उक्तम्=मैंने कहा। एतत् कथम्=यह कैसे। पक्षिणः कथयन्ति=पक्षी कहते हैं।

शशक-गजयूथयोः=कथा=शशक और गजयूथ की कथा।

कदाचित् वर्षासु.........गजयूथ समीपे स्थित्वा वक्तव्यम् ॥

सन्धि-विच्छेद—वृष्टेरभावात्-वृष्टेः+अभावात्-विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग सन्धि। विनश्यत्यस्मत्कुलं-विनश्यति+अस्मत्कुलं-इ को य्-यण्सन्धि।

समास—क्षुद्र जन्तूनां-क्षुद्राः च अमी जन्तवः इति-कर्मधारय-तेषाम्। गजपादाहतिभिः-गजानां पादाः इति गजपादाः-तत्पुरुष, गजपादानाम् आहतिभिः-तत्पुरुष। पिपासाकुलितेन-पिपासया आकुलित इति पिपासाकुलितः-तेन-तत्पुरुष।

रूप—कुर्मः-कृ-करना-क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, उत्तम पुरुष, बहुवचन-करोमि, कुर्वः, कुर्मः। आगन्तव्यम्-गम्-जाना-क्रिया, आ उपसर्ग, आगम्-आना-क्रिया से तव्य प्रत्यय।

शब्दार्थ—वृष्टेः अभावात्=वर्षा न होने से। अस्माकं जीवनाय=हमारे जीवन के लिए। अभ्युपायः=उपाय। निमज्जनस्थानं=स्नान करने का स्थान। निमज्जन-अभावात्=स्नान के स्थान न होने से। मृत-अहा इव=मरे हुए से। गजपादाहतिभिः=हाथियों के पैरों के आघातों से। चूर्णिताः=पिस गये-नष्ट हो गये। पिपासाकुलितेन=प्यास से व्याकुल होने वाले से। प्रत्यहम् आगन्तव्यम्=प्रतिदिन आना चाहिए अर्थात हर रोज आयेगा। मा विषीदत=दुःख न मानो। प्रतीकारः *कर्त्तव्य=उपाय-इलाज-करना चाहिए। प्रतिज्ञाय चलितः=प्रतिज्ञा करके चल दिया। गच्छता आलोचितम=जाते हुए विचार किया। वक्तव्यम्=कहना चाहिए।

व्याख्या—किसी समय वर्षा ऋतु में वर्षा न होने से प्यास से व्याकुल हाथी के झुण्ड ने अपने सरदार से कहा—हमारे जीवन का क्या उपाय है! छोटे जीवों को स्नान करने के लिए कोई जल पूर्ण स्थान नहीं है, हम स्नान न करने से मुर्दे से हो गये हैं। क्या करें! कहाँ जायँ! हाथियों के सरदार ने कुछ दूर जाकर उन्हें एक स्वच्छ तालाब दिखाया। समय बीतने पर हाथियो के पैरों की चोट से छोटे खरगोश पिस गए-नष्ट हो गये। तत्पश्चात् शिलीमुख नामक खरगोश ने सोचा—प्यास से व्याकुल यह गज-यूथ प्रतिदिन यहा आयेगा। अतएव हमारा कुल नष्ट हो जायगा। विजय नामक खरगोश ने कहा—दुःखी मत हो। मैं इसका उपाय करूंगा। यह प्रतिज्ञा कर वह चल दिया। चलते हुए उसने सोचा कि हाथी के झुण्ड के समीप खड़ा होकर मुझे किस प्रकार बातचीत करनी चाहिए।

यतः=क्योंकि—

स्पृशन्नपि गजो हन्ति······प्रहसन्नपि दुर्जनः ॥ १२ ॥

रूप—स्पृशन्-स्पृशत्-शतृ (अ त) प्रत्ययान्त स्पर्श करता हुआ-शब्द, पुल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-स्पृशन्, स्पृशन्तौ, स्पृशन्तः। इसी प्रकार जिघ्रन्-जिघ्रत्, पालयन्-पालयत्, प्रहसन्-प्रहसत् के रूप होते हैं। हन्ति-हन् मार डालना-क्रिया परस्मैपद, वर्तमान काल, हन्ति, हतः, घ्नन्ति।

अन्वय—गजः स्पृशन् अपि हन्ति, भुजंगमः जिघ्रन् अपि, भूपालः पा[illegible] अपि दुर्जनः प्रहसन् अपि हन्ति ।

शब्दार्थ—स्पृशन्=स्पर्श करता हुआ। जिघ्रन्=सूंघता हुआ। प्रह[illegible] हंसता हुआ। हन्ति=मार देता है।

व्याख्या—हाथी स्पर्श करते हुए भी, सांप सूंघते हुए भी, राजा पा[illegible] करते हुए भी और दुष्ट पुरुष हंसते हुए भी मार डालता है।

अतोऽहं पर्वत-शिखरम्``````````कार्यमुच्यताम् ॥

समास—भवदन्तिकं-भवतः अन्तिकम् इति-षष्ठी तत्पुरुष।

रूप—भगवता-भगवत्-भगवान्, ऐश्वर्यवान-शब्द, पुल्लिङ्ग, तृतीया विभक्ति एकवचन-भगवता, भगवद्भ्याम्, भगवद्भिः।

शब्दार्थ—पर्वत-शिखरम् आरुह्य=पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर। समागतः आया है। भवदन्तिकं प्रेषितः=आपके पास भेजा है। कार्यम् उच्यताम्=का[illegible] बताइये।

व्याख्या—इसलिए मैं पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर झुण्ड के सरदार से बातचीत करूंगा। ऐसा करने पर हाथियों के सरदार ने कहा—तू कौन है और कहां से आया है! वह कहता है—मैं शशक हूँ। मुझे भगवान् चन्द्रमा ने आपके पास भेजा है। यूथपति बोला—क्या काम है, कहो।

विजयः ब्रूते=विजय खरगोश कहता है—

उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु``````यथार्थस्य हि वाचकः ॥१२॥

सन्धि-विच्छेद—उद्यतेष्वपि-उद्यतेषु+अपि उ को य्-यण् सन्धि। सदै-वावध्यभावेन-सदा+एव+अवध्य-भावेन-वृद्धि, दीर्घ सन्धि।

अन्वय—दूतः शस्त्रेषु उद्यतेषु अपि अन्यथा न वदति। हि सदा एव अवध्यभावेन (दूतः) यथार्थस्य वाचकः।

शब्दार्थ—शस्त्रेषु उद्यतेषु अपि=शस्त्रों के तान लेने पर भी। अन्यथा=विपरीत। अवध्यभावेन=न मारे जाने से। वाचकः=कहने वाला।

व्याख्या—शस्त्रों के तान लेने पर अर्थात् दूत को मारने को उतारू हो जाने पर भी वह विपरीत नहीं कहता अर्थात् स्वामी का यथार्थ सन्देश सुना देता है। इसका कारण यह है कि दूत सदा ही अवध्य–न मारने योग्य–होता है, अतएव वह सर्वदा यथार्थवादी होता है।

तदहं तदाज्ञया··············इत्युक्त्वा प्रस्थापितः ।

रूप—ब्रवीमि-ब्र्—कहना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन-ब्रवीमि, ब्रूवः ब्रूमः । उक्तवति-उक्तवत्=कहता हुआ-शब्द, पुल्लिंग सप्तमी विभक्ति, एकवचन-उक्तवति, उक्तवतोः, उक्तवत्सु ।

शब्दार्थ—तदाज्ञया=उनकी-चन्द्रदेव की-आज्ञा से । ब्रवीमि=कहता हूँ । चन्द्रसरोरक्षकाः=चन्द्रसर के रक्षक । निःसारिताः=निकाल दिये । उक्तवति दूते= दूत के ऐसा कहने पर । अज्ञानतः=बिना समझे । सरसि=सरोवर में । कम्पमानम्= कांपते हुए को । प्रणम्य=प्रणाम कर । प्रसाद्य=प्रसन्न कर । नीत्वा=ले जाकर । दर्शयित्वा=दिखाकर । कारितः=कराया । वारान्तरं=दूसरी बार । प्रस्थापितः= भेज दिया ।

व्याख्या—विजय नामक खरगोश बोला—मैं अपने स्वामी चन्द्रदेव की आज्ञा से कहता हूँ—सुनिये—उन्होंने सन्देश भेजा है कि चन्द्रसर के रक्षक इन खरगोशों को तुमने यहां से निकाल दिया है—यह अनुचित कार्य किया है । उन खरगोशों की रक्षा हमने चिरकाल से की है । यही कारण है कि मेरा नाम शशांक-चन्द्र—है । विजय नामक दूत के ऐसा कहने पर यूथपति डर कर बोला—यह जो कुछ किया वह अज्ञानवश हुआ है, फिर ऐसा न होगा । दूत बोला—यदि ऐसा है तो इस सरोवर में क्रोध से कम्पायमान भगवान् चन्द्रदेव को प्रणाम कर उन्हें प्रसन्न करो और चले जाओ । तत्पश्चात् रात्रि में सरदार को वहां ले जाकर जल में चलायमान चन्द्र के बिंब को दिखा कर सरदार को प्रणाम कराया । विजय ने कहा—हे देव ! इसने [illegible] ध किया है, अतएव क्षमा कीजिए । दूसरी बार ऐसा न [illegible] वापिस भेज दिया ।

अतो वयं ब्रूमः=इसीलिये [illegible] सिद्धिः स्यात्=बड़ों का नाम लेने मात्र [illegible]

कुलाचारः=तम्। मन्त्रज्ञम्=मन्त्रं जानाति इति मन्त्रज्ञः=तम्। व्यभिचार-विवर्जितम्=व्यभिचारेण विवर्जित इति=व्यभिचार=विवर्जितः=तम्।

अन्वय—सरल है।

शब्दार्थ—स्वदेशजम्=अपने देश में उत्पन्न। कुलाचारम्=कुल और आचार की मर्यादा का पालन करने वाला अर्थात् कुलीन। विशुद्धम्=राजा के प्रति शुद्ध भाव रखने वाला। मन्त्रज्ञम्=मन्त्र-गुप्त-भाषण का ज्ञाता। अव्यसनिनम्=दुष्टता, ईर्ष्या, प्रतारणा, कटु भाषण आदि दोषों से रहित। व्यभिचार-विवर्जितम्=सन्मार्ग पर चलने वाला।

व्याख्या—मन्त्री एक उत्तम मन्त्री के लक्षण बता रहा है कि कैसा मन्त्री होना चाहिए—जो अपने देश में उत्पन्न हुआ हो, विदेशी न हो, कुल और आचार की मर्यादा का पालन करने वाला अर्थात् अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतया निभाने वाला, अपने राजा के प्रति शुद्ध भाव रखने वाला, गुप्त भाषण का ज्ञाता-गोपनीय रहस्य को प्रकट न करने वाला, दुष्टता, दुरात्मता, क्षति-हानि, ईर्ष्या-द्वेष, छल, कटु भाषण, निष्ठुर आचरण आदि दोषों से रहित और सन्मार्ग पर चलने वाला मन्त्री होना चाहिये।

अधीत-व्यवहारांगम्……………विदध्यात् मन्त्रिणं नृपः ॥१४॥

सन्धि-विच्छेद—अर्थस्योत्पादकम्-अर्थस्य+उत्पादकम् -अ + उ = ओ = गुणसंधि।

समास—अधीत …………… अंगं येन सः-अधीत-

व्याख्या—राजा, बालक, पागल, घमंडी धनवान् न-प्राप्त होने वाले पदार्थ को भी प्राप्त करने की चेष्टा-प्रयास-करते ही हैं और जो वस्तु प्राप्य-पाने योग्य है उसकी तो बात ही क्या अर्थात् उसे पाने के लिए तो प्रयत्न करना ही चाहिए।

भावार्थ—सन्तुष्टः नृपो नष्टः।

ततो मयोक्तम्-यदि वचन-मात्रेण······स्वदूतोऽपि प्रस्थाप्यताम्।

सन्धि-विच्छेद—मयोक्तम्-मया+उक्तम्-अ+उ=गुणसंधि। वचन मात्रेणैवाधिपत्यम्-वचनमात्रेण+एव-यदि लघु या दीर्घ अ के बाद ए, ऐ, ओ या औ आते हैं तो अ+ए या ऐ=ऐ; आ+ओ या औ=औ हो जाते हैं—वृद्धि संधि। जम्बूद्वीपेऽप्यस्मत्प्रभोः—जम्बूद्वीपे+अपि-अ का पूर्वरूप सधि, अपि+अस्मत्-प्रभोः-त् को म्=परसंधि।

समास—अस्मत्-प्रभोः = अस्माकं प्रभुः इति अस्मत्-प्रभुः-षष्ठी तत्पुरुष-तस्य।

रूप—उवाच-ब्रू-कहना-बोलना-क्रिया, परस्मैपद, परोक्षभूतकाल, अन्य-पुरुष, एकवचन-उवाच, ऊचतु ऊचुः। विहस्य हस्-हँसना क्रिया, वि उपसर्ग विहस्-क्रिया से त्वा प्रत्यय हुआ, परन्तु वि उपसर्ग होने से त्वा को य हो गया है। प्रस्थाप्यताम्-स्था-ठहरना-खड़ा होना-क्रिया, णिजन्त प्रयोग, प्र उपसर्ग-प्रस्था-भेजना-णिजन्त प्रयोग-भिजवाना-क्रिया, आज्ञार्थ लोट्, कर्मवाच्य, अन्य पुरुष, एक वचन-प्रस्थाप्यताम्, प्रस्थाप्येताम्, प्रस्थाप्यन्ताम्।

शब्दार्थ—वचन-मात्रेण एव=कहने मात्र से ही। आधिपत्यं सिध्यति=अधिकार सिद्ध होता है। स्वाम्यम् अस्ति=स्वामित्व-आधिपत्य-है। सज्जीकुरु=प्रजाओं-संग्राम के लिए तैयार करो। प्रस्थाप्यताम्=भिजवाइये।

व्याख्या—बगुला कहता है तत्पश्चात् मैंने कहा—यदि केवल कह देने से ही अधिकार सिद्ध हो जाता है तो जम्बूद्वीप पर भी हमारे स्वामी हिरण्यगर्भ का आधिपत्य है।

शुक ने कहा—इसका निर्णय कैसे हो?

मैंने कहा—संग्राम में ही।

राजा ने हँस कर कहा—जाकर अपने स्वामी को युद्ध के लिए तैयार करो।

तब मैंने कहा—अपना दूत भी भेज दीजिए।

लोट, मध्यम पुरुष, एकवचन—ब्रूहि—ब्रूतात्, ब्रूतम्, ब्रूत। अनेन—इदम्—यह—शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन—अनेन, आभ्याम्, एभिः।

शब्दार्थ—शुक एव व्रजतु=तोता ही जाय। अनेन सह गत्वा=इसके साथ जाकर। अस्मद् अभिलषितं ब्रूहि=हमारी अभिलाषा कह दो। यथा आज्ञापयति=जैसी आज्ञा देते हैं।

व्याख्या—मन्त्री गृध्र कहता है—दूत तो अनेक हैं। किन्तु ब्राह्मण पवित्र विचार वाले को ही दूत बना कर भेजना चाहिए।

राजा कहता है—तो शुक ही यहां दूत होकर जाय। हे शुक! तुम इस बक के साथ जाकर हमारी अभिलाषा कह दो।

तोता कहता है—देव जैसी आज्ञा देते हैं अर्थात् जो हुकुम। किन्तु यह बक दुष्ट है, इसके साथ मैं नहीं जाना चाहता हूँ।

तथा च उक्तम्=वैसा ही कहा भी है—

खलः करोति दुर्वृत्तम्..........बन्धनं स्यान्महोदधेः ॥१८॥

सन्धि-विच्छेद—स्यान्महोदधेः—स्यात्+महोदधेः—त् को न्—व्यंजन संधि।

समास—दशाननः—दश आननानि यस्य सः—दशाननः—बहुव्रीहि। महोदधेः—महान् चासौ उदधिः इति महोदधिः—कर्मधारय—तस्य।

रूप—करोति—कृ—करना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति। हरेत्—हृ—हरण करना—क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, एकवचन—हरेत्, हरेताम्, हरेयुः।

अन्वय—खलः दुर्वृत्तं करोति नूनं साधुषु फलति। दशाननः सीतां हरेत्, महोदधेः बन्धनं स्यात्।

शब्दार्थ—दुर्वृत्तं करोति=दुष्कार्य करता है। साधुषु फलति=उसका दुष्परिणाम सज्जनों को कष्ट देता है। दशाननः सीतां हरेत्=दशानन ने सीता का अपहरण किया। महोदधेः बन्धनं स्यात्=समुद्र का बन्धन हुआ।

व्याख्या—दुष्ट जन दुष्कार्य करता है, किन्तु उसका फल सज्जन को भोगना पड़ता है। रावण ने सीता का अपहरण किया, किन्तु कष्ट समुद्र को भोगना पड़ा; क्योंकि समुद्र का पुल बांधा गया। तात्पर्य यह है कि दुर्जनों के पड़ोस में रहने वाला सत्पुरुष दुष्ट के बुरे कामों का परिणाम भोगता है।

काल, अन्य पुरुष, एकवचन निरीक्षते, निरीक्षेते निरीक्षन्ते। उत्थाय-स्था-ठहरना-क्रिया, उत् उपसर्ग। उत्स्था-उठना-क्रिया से त्वा प्रत्यय परन्तु उत् उपसर्ग पूर्व में होने से "त्वा" को य हो गया है।

शब्दार्थ—प्रान्तरे=जन शून्य स्थान-जंगल-में। पत्रतरुः=पिलखन का पेड़। परिश्रान्तः=थका हुआ। धनुःकाण्डं=धनुष-बाण। सन्निधाय=रखकर। सुप्तः=सो गया। क्षणान्तरे=क्षण भर के पश्चात्। छाया-अपगता=छाया हट गई। आस्यम्=मुख। अवलोक्य=देखकर। तद्-वृक्ष-स्थितेन=उस वृक्ष पर रहने वाले। पक्षौ प्रसार्य=पंखों को फैलाकर। छाया कृता=छाया कर दी। असहिष्णुः=असहनशील। पुरीष-उत्सर्गं कृत्वा=विष्ठा-बींट-को त्यागकर-बींट करके। पलायितः=भाग गया। पन्थः=यात्री। उत्थाय=जाग कर उठ कर। ऊर्ध्वं निरीक्षते=ऊपर की ओर ध्यान से देखता है। हंसः अवलोकितः=हंस को देखा। काण्डेन=बाण से। व्यापादितः=मार दिया।

व्याख्या—उज्जैन के मार्ग के बन-शून्य स्थान में पिलखन का पेड़ है। वहां हंस और काक निवास करते हैं। कभी ग्रीष्मकाल में थका-माँदा कोई बटोही वहां वृक्ष के नीचे धनुष-बाण रख सो गया। क्षण भर में उसके मुख पर से वृक्ष की छाया दूर हो गई-हट गई। सूरज की धूप पथिक के मुख पर पड़ी देखकर उस वृक्ष पर रहने वाले हंस ने अपने पंखों को फैला कर उसके मुंह पर फिर छाया कर दी। दूसरों के सुख को न देख सकने वाले काक ने गहरी नींद में सोये हुए उस पथिक के मुंह पर बींट कर दी और उड़ंच हो गया। ज्यों ही वह पथिक जाग कर ऊपर की ओर देखता है, त्योंही उसे हंस दिखाई दिया। पथिक ने धनुष पर बाण चढ़ा कर उस पर छोड़ दिया, जिससे कि हंस मारा गया।

भावार्थ—दुष्टों के साथ से सज्जनों की हानि होती है।

वर्तक-कथान् अपि=बटेर की कथा भी। कथयामि=कहता हूँ।

वर्त्तक-मरण—कथा—बत्तख के मरण की कथा

एकदा भगवतो गरुडस्य············तेन प्राप्तो व्यापादितः।

समास—दधि-भाण्डात्-दध्नः भाण्डम्—इति दधिभाण्डम्-षष्ठी तत्पुरुष-तस्मात्। मन्दगतिः-मन्दा गतिः यस्य सः=मन्दगतिः-बहुव्रीहि।

रूप—भगवतः–भगवत्–भगवान्–ऐश्वर्यशाली–शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन–भगवतः, भगवतोः, भगवताम्। दधि–दधि–दही–शब्द नपुंसक लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–दधि, दधिनी, दधीनि।

शब्दार्थ—यात्रा·प्रसंगेन=मेले के समय। वर्तकः चलितः–बटेर चल दिया। गच्छतः=जाते हुए के। दधि–भाण्डात्=दही के बर्तन से। दधि भक्ष्यते=दही खाया जाता है। भूमौ निधाय=जमीन पर रख कर। ऊर्ध्वम् अवलोकते=ऊपर देखता है। खेदितः=खदेड़ा हुआ। स्वभाव-निरपराधः=स्वभाव से निर्दोष। मन्दगतिः=धीमी चाल वाला। व्यापादितः=मार दिया।

व्याख्या—एक बार भगवान् गरुड़ के मेले में समस्त पक्षी समुद्र के तट पर जाने लगे। उस समय काक के साथ वर्तक–बटेर भी चल दिया। वह कौआ मार्ग में जाते हुए किसी ग्वाले के सिर पर रखे दही के बर्तन से बार बार दही खा जाता। वह ज्यों ही दही के पात्र को भूमि पर रखकर ऊपर की ओर देखता है त्योंही उसे (ग्वाले) को काक और बटेर दिखाई पड़े। उससे खदेड़ा–भगाया–हुआ–काक उड़न्त हो गया। बटेर स्वभाव से निर्दोष और मन्दगति था, ग्वाले ने उसे मार दिया।

अतोऽहं ब्रवीमि=इसीलिये मैं कहता हूँ। न स्थातव्यम्, न गन्तव्यम्=दुष्ट के साथ न रहना चाहिए और न जाना ही चाहिए इत्यादि।

ततो मयोक्तम्·····················स्वभाव एव· मूर्खाणाम्॥

संधि-विच्छेद—अस्त्वेवम्–अस्तु+एवम्–उ को व–यणसंधि। दुर्जनोक्तम् दुर्जन+उक्तम्–अ+उ=ओ–गुण संधि। पश्चादागच्छन्नास्ते–पश्चात्+आगच्छन्= त् को द्–व्यंजन सन्धि। आगच्छन्+आस्ते–न् को द्वित्व–आगच्छन्नास्ते।

समास—दुर्जनोक्तम्–दुर्जनेन. दुर्जनैर्वा उक्तम्—तृतीया तत्पुरुष। यथाशक्ति- शक्तिम् अनतिक्रम्य यथाशक्ति—अव्ययीभाव।

रूप—ब्रवीमि–ब्रू—बोलना—क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, मध्यम पुरुष–ब्रवीषि, ब्रूथः, ब्रूथ। भ्रातः–भ्रातृ–भाई–शब्द, पुल्लिंग, एकवचन, संबोधन–हे भ्रातः, हे भ्रातरौ, हे भ्रातरः। अस्तु–अस्–होना–क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन–अस्तु–स्तात्, स्ताम्, सन्तु। शतम्–शा– –क्रिया, त (क्त) प्रत्यय। पूज्–पूजा करना–क्रिया, त्वा प्रत्यय, सम्

उपसर्ग पूर्व में होने से "त्वा" को य हो गया है। आगच्छन्-गम्-गच्छ्-आना-क्रिया, -आ उपसर्ग-आगच्छ्-आना (अत्) शतृ प्रत्यय आगच्छत्=आता हुआ-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-आगच्छन् आगच्छन्तौ, आगच्छन्तः।

शब्दार्थ—दुर्जनोक्तम्=दुष्ट से कहे हुए। जनयति=उत्पन्न करता है। भवतः वाक्यात्=आपके वाक्य से। भूपालयोः विग्रहे=दोनों राजाओं-हिरण्यगर्भ राजहंस और मयूरराज चित्रवर्ण के युद्ध कराने में। भवद्-वचनम् एवं निदानम्= तुम्हारा कहनामात्र ही कारण है। यथा-व्यवहारं संपूज्य=व्यवहार के अनुकूल सत्कार करके। विसर्जितः=छोड़ दिया। आगतः=आया। आगच्छन् आस्ते= आ रहा है। परिज्ञाय=जान कर। यथाकर्तव्यम्=अनुकूल कर्तव्य को। अनुसन्धी-यताम्=ढूंढिये। विहस्य=हंस कर। देशान्तरं गत्वा अपि=दूसरे देश में पहुँच कर भी। यथाशक्ति राज्य-कार्यम् अनुष्ठितम्=अपनी शक्ति के अनुसार राज्य का काम किया।

व्याख्या—दीर्घमुख बक कहता है कि तब मैंने कहा—भाई शुक! ऐसा क्यों कहते हो? मेरे लिए जिस प्रकार श्रीमान् देवपाद हैं, उसी प्रकार आप भी। मैं आपकी भी उतनी ही इज्जत करता हूँ, जितनी कि आपके स्वामी की। शुक ने कहा—शायद ऐसा हो। किन्तु दुर्जन के प्रिय वचन भी भय ही पैदा करते हैं और दुर्जनता आपके वचन से टपकती है। जो कि दो राजाओं हिरण्यगर्भ राजहंस और मयूरराज चित्रवर्ण का युद्ध ठनवाने में तुम्हारे वचन ही मुख्य कारण हैं। तब उस राजा ने व्यवहार के अनुकूल मेरा उचित सत्कार कर विदा किया, मैं यहां आ गया। उनका दूत शुक भी पीछे आ ही रहा है। अब करने योग्य कार्य को सोचना चाहिए कि हमारा क्या कर्तव्य है। मन्त्री चकवा हंस कर कहने लगा—देव! बक ने विदेश में जाकर भी राज्य का यथाशक्ति कार्य किया है। किन्तु मूर्खों का स्वभाव ऐसा ही होता है।

शतं दद्यान्न विवदेत्..............एतन्मूर्खस्य संमदतम् ॥२०॥

सन्धि-विच्छेद—दद्यान्न-दद्यात्+न-त् को न्-व्यंजन संधि।

समास—विज्ञस्य-वि-विशेषं जानाति इति-विज्ञः-उपपद तत्पुरुष-तस्य।

रूप—दद्यात्-दा-देना-क्रिया-परस्मैपद, विध्यर्थ-दद्यात्, दद्याताम्, दद्युः।

–विवदेत्–वद्=बोलना–क्रिया, वि उपसर्ग, विवद्–विवाद करना–झगड़ना–क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन–विवदेत्, विवदेताम्, विवदेयुः ।

अन्वय—शतं दद्यात् (किन्तु) न विवदेत् इति विज्ञस्य संमतम् (अस्ति) हेतुं विना अपि द्वन्द्वम् एतत् मूर्खस्य संमतम् (अस्ति)

शब्दार्थ—शतं दद्यात्=सौ दे देना चाहिए । न विवदेत्=कलह नहीं करना चाहिए । विज्ञस्य=बुद्धिमान् का । संमतम्=सम्मति है । हेतुं विना अपि=अकारण ही । द्वन्द्वम्=झगड़ा–लड़ाई ।

व्याख्या—बुद्धिमान् पुरुष का मत है कि सौ रुपये देने पड़े तो दे दे, किन्तु झगड़ा न करे । अकारण ही कलह उत्पन्न करना–मूर्खों का मत है अर्थात् निष्प्रयोजन झगड़ना मूर्खता का चिन्ह है ।

शब्दार्थ—राजा कहता है किम् अतीत–उपालम्भेन=बीती हुई घटना पर ओलंमा–उलाहना–देने से क्या लाभ अर्थात् जो बात हो चुकी, उसका जिक्र करना युक्ति-युक्त नहीं । तात्पर्य यह है—बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय । प्रस्तुत् अनुसन्धीयताम्=वर्त्तमान पर विचार करना चाहिए–अब क्या करना है–यह सोचना चाहिए ।

चक्रवाको ब्रूते=मंत्री चकवा कहता है । देव, विजने ब्रवीमि=एकान्त–जन-शून्य-स्थान में कहना चाहता हूँ ।

यतः=क्योंकि—

वर्णाकार प्रतिध्वान-नेत्र वक्त्रविकारतः……तस्मात् रहसि मन्त्रयेत् ॥२१॥

सन्धि-विच्छेद—अप्यूहन्ति=अपि+ऊहन्ति–इ को य्=यणसंधि ।

समास—वर्णाकार–प्रतिध्वान–नेत्र–वक्त्रविकारतः–वर्णः च आकारः च प्रतिध्वानं च नेत्रं च वक्त्रं च–इति वर्णाकार–प्रतिध्वान–नेत्र–वक्त्राणि–द्वन्द्व–तेषां विकारः इति–तत्पुरुष ।

रूप—रहसि–रहस्–सकारान्त शब्द–नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन–मे, रहसोः, रहःसु । मन्त्रयेत्–मन्त्र्=मन्त्रणा–सलाह–करना–क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन–मन्त्रयेत्, मन्त्रयेताम्, मन्त्रयेयुः ।

अन्वय—धीराः वर्ण–आकार–प्रतिध्वान–नेत्र–वक्त्रविकारतः अपि गतं ऊहन्ति … रहसि मन्त्रयेत् ।

विवदेत—वद=बोलना—क्रिया, वि उपसर्ग, विवद्—विवाद करना—झगड़ना—में परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन—विवदेत, विवदेताम्, विवदेयुः।

अन्वय शतं दद्यात् (किन्तु) न विवदेत् इति विज्ञस्य संमतम् (अस्ति) विना अपि कलहम् पतनं मन्दस्य मतम् (अस्ति)

शब्दार्थ - शतं दद्यात्=सौ दे देना चाहिए। न विवदेत्=झगड़ नहीं करना चाहिए। विज्ञस्य=बुद्धिमान का। संमतम्=सम्मति है। हेतुं विना अर्थात् कारण ही। कलहम्=झगड़ा—लड़ाई।

व्याख्या—बुद्धिमान पुरुष का मत है कि सौ रुपये देने पड़े तो दे दे, किन्तु झगड़ा न करे। अकारण ही कलह उत्पन्न करना—मूर्खों का मत है अर्थात् निष्प्रयोजन झगड़ना मूर्खता का चिन्ह है।

शब्दार्थ—राजा कहता है किम् अतीत—उपालम्भेन=बीती हुई बात का ओलभा—उलाहना—देने से क्या लाभ अर्थात् जो बात हो चुकी, उसका जिक्र करना युक्ति-युक्त नहीं। तात्पर्य यह है—बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय। प्रस्तुत अनुसन्धीयताम्=वर्तमान पर विचार करना चाहिए—अब क्या करना है—यह सोचना चाहिए।

चक्रवाको ब्रूते=मंत्री चकवा कहता है। देव, विजने ब्रवीमि=एकान्त—अर्थात् शून्य स्थान में कहना चाहता हूँ।

यत =क्योंकि—

वर्णाकार प्रतिध्वान नेत्र वक्त्रविकारतः·····तस्मात् रहसि मन्त्रयेत् ॥

सन्धि-विच्छेद—अप्यूहन्ति=अपि+ऊहन्ति—इ को य्—यण्संधि।

समास—वर्णाकार-प्रतिध्वान-नेत्र-वक्त्रविकारतः—वर्णः च प्रतिध्वानं च नेत्रं च वक्त्रं च—इति वर्णाकार ... तेषां विकारतः इति—तत्पुरुष।

रूप—रहसि—रहस्—एकान्त शब्द—नपुं ... रहसि, रहसोः, रहःसु। मन्त्रयेत्—मन्त्र ... पद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवच ...

अन्वय—धीराः वर्ण ...

ऊहन्ति तस्मात् रहसि मन्त्रये ...

भावार्थ—गावः पश्यन्ति गन्धेन, वेदैः पश्यन्ति वै द्विजाः ।
चारैः पश्यन्ति राजानः चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥

गायें गन्ध द्वारा, ब्राह्मण वेदों द्वारा, राजा गुप्तचरों द्वारा और दूसरे जन आँखों द्वारा देखते हैं ।

स च द्वितीयं विश्वास-पात्रम्…………निगद्य प्रस्थापयतु ।

समास—विश्वास-पात्रम्-विश्वासस्य पात्रम् इति-तत्पुरुष । तत्रत्य-मन्त्र-कार्यम्-तत्रत्य-मन्त्रस्य कार्यम् इति-तत्पुरुष ।

रूप—गृहीत्वा-ग्रह-ग्रहण करना-क्रिया से त्वा प्रत्यय हुआ है । यातु-या-जाना-क्रिया, परस्मैपद, आज्ञार्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-यातु, याताम्, यान्तु । अवस्थाय-अव उपसर्ग, स्था-क्रिया, त्वा प्रत्यय, उपसर्ग पूर्व में होने से त्वा को य हो गया है । निगद्य-गद्-कहना-बोलना-क्रिया, नि उपसर्ग, त्वा को य हो गया है ।

शब्दार्थ—द्वितीयं विश्वास-पात्रं गृहीत्वा=दूसरे विश्वास-पात्र-विश्वस्त-भरोसे वाले-को लेकर । यातु=जाय । तत्र अवस्थाय=वहाँ ठहर कर । द्वितीयम्=दूसरे को । तत्रत्य-मन्त्र-कार्यम्=वहाँ के गुप्त कार्य को । सु-निभृतम्=गुप्त रूप से । निश्चित्य=निश्चय करके । निगद्य=उस दूसरे गुप्तचर से कह कर । प्रस्थापयतु=भेज दे ।

व्याख्या—वह गुप्तचर दूसरे विश्वास पात्र गुप्तचर को लेकर उस राष्ट्र में जाय और वह स्वयं वहाँ ठहर कर वहाँ की गति विधियों का भली भाँति गुप्त रूप से निरीक्षण कर दूसरे गुप्तचर द्वारा यहाँ समाचार भेज दे ।

तथा च उक्तम्=वैसा ही कहा है—

तीर्थाश्रम-सुर-स्थाने………चरैः सह संवदेत् ॥२३॥

समास—तीर्थ-आश्रम-सुर-स्थाने-तीर्थं च आश्रमः च सुर-स्थानं च-तीर्थाश्रम-सुर-स्थानम्-द्वन्द्व-तस्मिन् । शास्त्र-विज्ञान-हेतुना-शास्त्राणां विज्ञानम् इति-शास्त्र-विज्ञानम्-तत्पुरुष-तस्य हेतुना-तत्पुरुष । तपस्वि-व्यंजनोपेतैः-तपस्विनां व्यञ्जनम् इति-तपस्वि-व्यंजनम्-तत्पुरुष, तपस्वि-व्यंजनेन उपेतैः-तृतीया तत्पुरुष ।

रूप—संवदेत्-वद्-बोलना, सम् उपसर्ग, संवद्-संवाद-मन्त्रणा-करना-

यतः=क्योंकि—

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः·············मन्त्रः कार्यो महीभृता ॥

सन्धि-विच्छेद—इत्यात्मनः=इति+आत्मनः—इ को य्—यण सन्धि।

समास—महीभृत्—महीं बिभर्ति इति महीभृत्—तत्पुरुष—तेन।

रूप—भिद्यते-भिद् विदीर्ण होना—टूटना—क्रिया, आत्मनेपद, कर्मवाच्य, न काल, अन्य पुरुष, एकवचन—भिद्यते, भिद्यते, भिद्यन्ते।

अन्वय—षट्कर्णः मन्त्रः भिद्यते तथा वार्तया प्राप्तः च (मन्त्रः भिद्यते) द्वितीयेन महीभृता मन्त्रः कार्यः।

शब्दार्थ—षट्कर्णः=छः कानों में जाने वाला अर्थात् तीन प्राणियों को होने वाला। आत्मना द्वितीयेन महीभृता=एक स्वयं और दूसरे मन्त्री के जा को। मन्त्रः कार्यः=मन्त्रणा—सलाह करनी चाहिए।

व्याख्या—कोई भी गुप्त बात-मन्त्रणा—छः कानों में पहुँचने पर अर्थात् ज्ञात होने पर प्रकट हो जाती है। इसी प्रकार बात-चीत के प्रसंग द्वारा मन्त्रणा प्रकट हो सकती है, अतएव राजा को उचित है कि वह स्वयं मन्त्रणा करे।

य—देखिये—

न्त्रभेदे हि ये दोषाः··········इति नीतिविदां मतम् ॥२४॥

ास—मन्त्र-भेदे—मन्त्रस्य भेदे—तत्पुरुष। नीति-विदाम्—नीतिं वेत्ति इति विद्—तत्पुरुष—तेषाम्।

—भवन्ति-भू (भव्) होना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य वचन—भवति, भवतः, भवन्ति।

य—हि पृथिवी पतेः मन्त्रभेदे ये दोषाः भवन्ति ते समाधातुं न शक्याः विदां मतम् (अस्ति)।

र्थ—पृथिवीपतेः मन्त्रभेदे=राजा के मन्त्र के भेद हो जाने पर—रहस्य मालूम हो जाने पर। ये दोषाः भवन्ति=जो अनर्थ होते हैं। ते समाधातुं शक्याः=उनका समाधान नहीं किया जा सकता अर्थात् उन अनर्थों का र किया जा सकता। इति नीतिविदां मतम्=यह नीतिज्ञ पुरुषों का

व्याख्या—राजा के मन्त्र के भेद हो जाने पर अर्थात् राज्य की मन्त्रणा सर्व साधारण को ज्ञात हो जाने से जो जो अनर्थ-अनिष्ट-हो जाते हैं, उनका प्रतिकार किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता अर्थात् वे अनर्थ दूर नहीं किये जा सकते-ऐसा नीतिज्ञ पुरुषों का मत है।

राजा विमृश्योवाच······देव, तथापि सहसा विग्रहो न विधिः।

सन्धि-विच्छेद—विमृश्योवाच-विमृश्य+उवाच-अ+उ=ओ-गुणसंधि। मयोत्तमः-मया+उत्तमः-गुणसंधि।

समास—संग्राम-विजयः-संग्रामे विजय इति-संग्राम विजयः-सप्तमी तत्पुरुष।

रूप—प्रविश्य-प्र उपसर्ग, विश्-प्रवेश करना-क्रिया से क्त्वा प्रत्यय किन्तु उपसर्ग पूर्व में होने से क्त्वा को य हो गया है। द्रष्टव्यः-दृश्-देखना-क्रिया से, तव्य प्रत्यय। ब्रूते ब्रू-बोलना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष एक वचन-ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते।

शब्दार्थ—विमृश्य उवाच=सोच कर बोला। मया उत्तमः प्रणिधिः प्राप्तः=मैंने उत्तम गुप्तचर पा लिया। संग्राम-विजयः अपि प्राप्तः=संग्राम में विजय भी प्राप्त कर ली। अत्रान्तरे=इसी बीच में। प्रविश्य=अन्दर आकर। प्रणम्य उवाच=प्रणाम करके बोला। आगतः शुकः द्वारि तिष्ठति=आया हुआ तोता द्वार पर खड़ा है। चक्रवाकम् आलोकयन्=मन्त्री चकवाक के मुख की ओर देखता है। कृतस्थाने=कृतस्थान में तोती के ठहरने के लिये बनाये घर में। पश्चात् द्रष्टव्य=बाद में उपस्थित करना। आवास-स्थानं नीतः=उसको आवास-स्थान-ठहरने के स्थान-में लेकर चला गया। विग्रहः उपस्थितः=अब युद्ध काल उपस्थित है। सहसा विग्रहः न विधिः=एकाएक विग्रह-युद्ध-का विधान नहीं है अर्थात् सहसा युद्ध करना अनुचित है।

व्याख्या—राजा चित्रवर्ण इस प्रकार सोच कर बोला—मैंने उत्तम गुप्तचर पा लिया। मन्त्री चकवाक कहता है—अब संग्राम में विजय भी पा ली अर्थात् उत्तम गुप्तचर की प्राप्ति ही संग्राम विजय का कारण है।

राजा और मन्त्री के वार्तालाप के मध्य ही प्रतिहार ने प्रवेश किया और प्रणाम करके निवेदन किया—महाराज, जम्बूद्वीप से शुक आया है और द्वार पर है।

राजा हिरण्यगर्भ हंस मन्त्री चक्रवाक की ओर इस आशय से देखता है कि क्या आदेश दिया जाय। चक्रवाक ने कहा—वह दूतावास में जाकर ठहर जाय, तत्पश्चात् उपस्थित हो। प्रतीहारी उसे विश्राम-स्थान में ले गया। राजा ने कहा—तो विग्रह-युद्ध-उपस्थित है। चक्रवाक कहता है—देव, सहसा युद्ध का विधान नहीं है अर्थात् एकाएक युद्ध करना नीति-संगत नहीं होता है।

यतः=क्योंकि—

सः किंभृत्यः स किं मन्त्री············निर्दिशत्यविचारिताम् ॥२६॥

संधि-विच्छेद—आदावेव-आदौ + एव-औ को आव्-अयादि संधि। निर्दिशत्यविचारितम्-निर्दिशति+अविचारितम्-इ को य-यण् संधि।

समास—युद्धोद्योगम्-युद्धाय उद्योगः-तत्पुरुष-तम्। स्व-भू त्यागम्-स्वभुवः त्यागः-षष्ठी तत्पुरुष-तम्।

रूप—निर्दिशति-दिश्-दिखाना, निर् उपसर्ग, निर् दिश्-उपदेश देना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-निर्दिशति, निर्दिशतः, निर्दिशन्ति।

अन्वय—यः आदौ एव अविचारितं भूपतिं युद्धोद्योगं, स्वभू-त्यागं निर्दिशति स किं भृत्यः सः किं मन्त्री (अस्ति)।

शब्दार्थ—यः=जो। आदौ एव=पहले ही। अविचारितम्=बिना विचारे। युद्धोद्योगम्=युद्ध के लिए प्रयत्न। स्व-भू-त्यागम्=अपनी भूमि का त्याग। निर्दिशति-निर्देश देता-उपदेश देता है। सकि भृत्यः=वह नीच नौकर। किंमन्त्री=तुच्छ मन्त्री।

व्याख्या—जो विचार न करके पहले ही राजा को युद्ध के लिये प्रयास और अपनी भूमि के त्याग का उपदेश देता है, वह नीच नौकर और तुच्छ मंत्री है।

अपरं च=और भी—

विजेतुं प्रयतेतारीन्············दृश्यते युद्धमानयोः ॥२७॥

रूप—प्रयतेत-प्र उपसर्ग, यत्-यत्न करना-क्रिया, आत्मनेपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-प्रयतेत, प्रयतेयाताम्, प्रयतेरन्।

अन्वय-कदाचन युद्धेन अरीन् विजेतुं न प्रयतेत। यस्मात् युध्यमानयोः विजयः अनित्यः दृश्यते।

शब्दार्थ—कदाचन=कभी। अपीन् विजेतुम्=शत्रुओं के जीतने को प्रयतेत=प्रयत्न नहीं करना चाहिए। युध्यमानयोः=युद्ध करने वालों की। वि अनित्य दृश्यते=विजय स्थायी नहीं होती है।

व्याख्या—कभी भी युद्ध के द्वारा शत्रुओं को जीतने का प्रयत्न नहीं चाहिए। दोनों पक्षों के युद्ध करने वालों की विजय अनित्य होती है अर्थात् नहीं होती, इसलिए जहाँ तक हो सके शत्रु को युद्ध के अतिरिक्त अन्य उपा वशीभूत करना चाहिए।

अन्यत् च=और भी—

सामा दानेन भेदेन............न युद्धेन कदाचन ॥२८॥

रूप—साम्ना—सामन्—शब्द, नपुंसकलिंग, तृतीया विभक्ति, एकव साम्ना, सामभ्यां, सामभिः।

अन्वय—साम्ना, दानेन, भेदेन, समस्तैः अथवा पृथक् अरीन् ज प्रयतेत, युद्धेन कदाचन न।

शब्दार्थ—साम्ना=साम-प्रिय-वचन द्वारा। दानेन=दान द्वारा। भे आपस में मनमुटाव करा कर।

व्याख्या—साम-प्रियवचन से, दान-कुछ देकर, भेद-आपस में करा कर इन समस्त अथवा किसी एक उपाय द्वारा शत्रु को वश में करना च युद्ध द्वारा नहीं

किं च=और क्या—

न तथोत्थाप्यते ग्रावा............एतन्मन्त्र फलंमहत् ॥२९॥

सन्धि-विच्छेद—तथोत्थाप्यते-तथा + उत्थाप्यते-अ+उ=ओ-गुण अल्पोपायान्महासिद्धिरेतन्मन्त्रफलम्—अल्प+उपायात्+महासिद्धिः+एतत्+मन्त्र अ+उ=ओ-गुणसंधि, त् को न् व्यंजन संधि, विसर्ग को रेफ—विसर्गसंधि, को न्-व्यंजन संधि।

समास—अल्पोपायात्—अल्पः चासौ उपाय इति अल्पोपायः—कर्मध समास। महासिद्धिः—महती चासौ सिद्धिः इति महासिद्धिः—कर्मधारय।

रूप—ग्रावा—ग्रावन्—पत्थर—शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकव

ग्रावा, ग्रावाणौ, ग्रावाणः। प्राणिभिः—प्राणिन्—प्राणी—इन्नन्त शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन=प्राणिना, प्राणिभ्याम्, प्राणिभिः।

अन्वय—यथा ग्रावा दारुणा उत्थाप्यते तथा प्राणिभिः न (उत्थाप्यते) अल्पोपायात् महासिद्धिः (भवति) एतत् महत् मन्त्र-फलम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—ग्रावा=पत्थर। दारुणा=उत्तोलन–दण्ड से–क्रेन द्वारा। यथा उत्थाप्यते=जैसे सरलता से उठा लिया जाता है। तथा प्राणिभिः न=उस प्रकार मनुष्यों द्वारा केवल शक्ति से नहीं उठाया जा सकता। अल्प–उपायात्=साधारण से उपाय से। महासिद्धिः=बहुत बड़ी सफलता मिल जाती है। एतत् मन्त्र-फलम्= यह मन्त्र—गुप्त बात का ही परिणाम है।

व्याख्या—जिस प्रकार उत्तोलन–दण्ड, क्रेन आदि के द्वारा सरलता से उठाया जा सकता है, उस प्रकार मानव अपनी शक्ति द्वारा बड़े पत्थर को नहीं उठा सकते। साधारण से उपाय से यह सफलता मिल जाती है। इसी प्रकार अल्प उपाय द्वारा मन्त्र–गुप्त बात–फलीभूत हो जाता है। तात्पर्य यह है कि पत्थर साधारण उपाय द्वारा–दण्ड से, क्रेन आदि से आसानी से उठा लिया जाता है उसी प्रकार मन्त्र द्वारा–साम, दान आदि द्वारा–शत्रु सरलता से वशीभूत हो जाता है।

शब्दार्थ—किन्तु उपस्थितं विग्रहं विलोक्य=विग्रह को सम्मुख देखकर। व्यवह्रियताम्=व्यवहार करना चाहिए। देव–महाराज। विशेषतः=विशेष रूप से। असौ चित्र वर्णः राजा महाबलः=वह चित्रवर्ण राजा अति बल–शाली है।

अतः=इसलिए—

बलिना सह योद्धव्यम् ·········नराणां मृत्यु मावहेत् ॥३०॥

रूप—बलिना–बलिन्=बलवान्–शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन– बलिना, बलिभ्याम्, बलिभिः। योद्धव्यम्–युध्–लड़ना–क्रिया से तव्य प्रत्यय।

अन्वय—बलिना सह योद्धव्यम् इति निदर्शनं न अस्ति। हस्तिना सार्धं तत् युद्धं नराणा मृत्युम् आवहेत्।

शब्दार्थ—बलिना सह योद्धव्यम्=बलवान् के साथ युद्ध करना चाहिए। इति निदर्शनं नास्ति=ऐसी नीति-शास्त्र की आज्ञा नहीं है। हस्तिना सार्धं युद्धम्= हाथी से युद्ध करना। नराणां मृत्युम् आवहेत्=मनुष्यों की मृत्यु का कारण हो जाता है।

व्याख्या—नीति शास्त्र की ऐसी आज्ञा नहीं है कि बलवान् के र
किया जाय—अर्थात् बड़ों के साथ लड़ना नीति-शास्त्र में वर्जित
निःशस्त्र मानव हाथी के साथ युद्ध करने लगे तो वह उसकी मृत्यु का
हो जाता है ।

भावार्थ—बलवान् के सामने उस समय झुक जाना ही नीति
मत है ।

अन्यत् च=और भी—

कौर्मं संकोचमास्थाय.........उत्तिष्ठेत् क्रूर-सर्पवत् ॥

रूप—उत्तिष्ठेत्—स्था-तिष्ठ्—ठहरना, उद् उपसर्ग, उद् विध
क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ अन्य पुरुष, एकवचन-उत्तिष्ठेत्, उ
उत्तिष्ठेयुः ।

अन्वय—नीतिज्ञः कौर्मं संकोचम् आस्थाय (शत्रोः) प्रहारम् अ
काले प्राप्ते क्रूर-सर्पवत् उत्तिष्ठेत् ।

शब्दार्थ—कौर्मं संकोचम् आस्थाय=कछुए के समान संकुचि
प्रहारम् अपि मर्षयेत्=शत्रु का प्रहार सहन कर ले अर्थात् जिस प्र
प्रहार करने पर अपना अंग सिकोड़ कर अन्दर कर लेता और प्रहार
है, इसी प्रकार सहन कर लेना चाहिए । काले प्राप्ते=अपने अनुकूल
होने पर । क्रूर-सर्पवत् उत्तिष्ठेत्=निर्दय साँप के समान उठ खड़ा हो

व्याख्या—जब स्वयं घिर जाय या अपना पक्ष निर्बल हो तो
समान संकुचित होकर शत्रु का प्रहार सहन कर लेना चाहिए, पर
अपने अनुकूल हो तो निर्दय, भयंकर साँप के समान उठ खड़ा है
अर्थात् शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए ।

भावार्थ—समयानुसार काम करना चाहिए ।

शब्दार्थ—अयं तद्दूतः=उसके इस दूत को । अथ आश्वास
आश्वासन देकर नज़रबन्द कर लो । सज्जीक्रियते=सजाया जाता है ।

व्याख्या—इसलिए इस दूत शुक को उस समय तक यहाँ रोक
अपनी देख-रेख में रखना चाहिए, जब तक किला सजाया जाता है ।
अपने दुर्ग को युद्ध के साधनों से परिपूर्ण कर लें ।

यत:=क्योंकि—

एक: शतं योधयति··············तस्माद् दुर्गं विशिष्यते ॥३२॥

समास—प्राकारस्थ:-प्राकारे तिष्ठति इति-प्राकारस्थ:-तत्पुरुष। धनुर्धर:-धरति इति धर:, धनुष: धर: इति-धनुर्धर:-तत्पुरुष।

अन्वय—प्राकारस्थ: एक: धनुर्धर: शतं योधयति, शत शत-सहस्राणि (योधयति) तस्मात् दुर्गं विशिष्यते।

शब्दार्थ—प्राकारस्थ:=प्राकार-परकोटा-किले-की-दीवार पर खड़ा हुआ। एक: धनुर्धर:=एक धनुषधारी-योद्धा। शतं योधयति=सौ से युद्ध कर सकता है। शतम्=सौ योद्धा। शत सहस्राणि=लाख से लड़ सकते हैं। तस्मात् दुर्गं विशिष्यते=इसलिए किले का महत्व है।

व्याख्या—किले में स्थित एक योद्धा सौ वीरों से और सौ योद्धा लाखों से लड़ सकते हैं, इसलिए किले की विशेषता-किले का महत्त्व है।

दुर्गं कुर्यात्······························मरु-वनाश्रयम् ॥३३॥

समास—महाखातम्-महत् खातं यस्य तत्-महाखातम्-बहुव्रीहि। उच्च-प्राकार-संयुतम्-उच्चप्राकारेण संयुतम् इति-तत्पुरुष। शैल-सरित्, मरुवनाश्रयम्-शैल: सरित्, मरुस्थलं वनम् च आश्रय: यस्य तत्=बहुव्रीहि।

रूप—कुर्यात्-कृ-करना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एक-वचन-कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्यु:।

अन्वय—धनधान्यार्थवत्, शैल-सरित् मरु-वनाश्रयं, उच्च प्राकार-संयुतम्, महाखातं दुर्गं कुर्यात्।

शब्दार्थ—धनधान्यार्थवत्=शत्रुओं से मोर्चा लेने के लिए यन्त्रों से पूर्ण अर्थात् शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित तथा धन और अन्न से पूर्ण। शैल-सरित्-मरु-वनाश्रयम्=पर्वत, नदी, मरुस्थल-वनादिहीन प्रदेश में। उच्च-प्राकार-संयुतम्=ऊँचे परकोटे से युक्त। महाखातम्=जिसके चारों ओर गहरी परिखा-खाई हो। दुर्गं कुर्यात्=ऐसा दुर्ग बनाना चाहिए।

व्याख्या—किला कैसा होना चाहिए-इस श्लोक में यही वर्णन किया गया है। शत्रुओं का सामना करने के लिए किला शस्त्रास्त्रों से पूर्णतया सुसज्जित हो, वहाँ धन, अन्न का संग्रह हो। पर्वत, नदी के मध्य अथवा जलहीन प्रदेश

...ना होना चाहिए जिसमें शत्रु को भागने में ... परकोटा ऊँचा हो तथा उसके चारों ओर गहरी खाई होनी

विस्तीर्णताऽतिवैषम्यम्... ....सप्तैता दुर्ग-

संधि-विच्छेद—प्रवेशश्चापसा रश्च—प्रवेशः+च+अप... स-विसर्ग संधि, स् को श्—व्यंजन संधि। सप्तैताः—सप्त... वृद्धि संधि।

समास—रस-धान्य-इन्धन-संग्रहः—रसः च धान्यं च ... संग्रहः। दुर्ग-संपदः—दुर्गस्य संपदः इति—तत्पुरुष।

रूप—सप्त—सप्तन्—शब्द—बहुवचनान्त—सप्त, सप्त, ... सप्तभ्यः, सप्तानाम्, सप्तसु। एताः—एतद्—पद स्त्रीलिंग—शब्द, बहुवचन—एषा, एते, एताः।

अन्वय—विस्तीर्णता, अतिवैषम्यम्, रसधान्य-इन्धन-सं... अपसारः एताः सप्त दुर्गसम्पदः (सन्ति)

शब्दार्थ—अतिवैषम्यम्=ऊँची-नीची भूमि। रस-धान्य-इ... अनाज, ईंधन का संचय। प्रवेशः अपसारः च=प्रवेश मार्ग और ... का मार्ग। दुर्ग-सम्पदः=किले की सम्पत्तियाँ।

व्याख्या—किले की सात सम्पत्तियाँ मानी गई हैं—किला खूब ... संकुचित न हो, ऊँची नीची भूमि हो—जिससे शत्रु सरलता से आ... सकें, जिसमें जल, अनाज और ईंधन का संचय तथा प्रवेश और ... हों—वह किला उत्तम माना गया है।

दुर्गानुसन्धाने = किले की सजावट के लिए—किले में आवश्य... का संचय करने के लिए। कः नियुज्यताम्=किस को नियुक्त करना चाहि...

चक्रो ब्रूते=मन्त्री चक्रवाक कहता है—

यो यत्र कुशलः कार्ये·········शास्त्रज्ञोऽपि विमुह्यति ॥३५

सन्धि-विच्छेद—कर्मस्वदृष्टकर्मा—कर्मसु+अदृष्टकर्मा—उ को व-यण्...

समास—अदृष्ट-कर्मा—न दृष्टं इति अदृष्टम्, अदृष्टं कर्म येन सः अदृष्ट... दि। शास्त्रज्ञः—शास्त्रं जानाति—इति शास्त्रज्ञः।

रूप—विमुह्यति-वि उपसर्ग, मुह्-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-विमुह्यति, विमुह्यतः, विमुह्यन्ति ।

अन्वय—यः यत्र कार्ये कुशलः (अस्ति) तं तत्र विनियोजयेत् । यः कर्मसु अदृष्टकर्मा (सः) शास्त्रज्ञः अपि विमुह्यति ।

शब्दार्थ—कुशलः=चतुर । विनियोजयेत्=काम में लगाना चाहिए । अदृष्ट-कर्मा=अनुभवहीन । शास्त्रज्ञः अपि=विद्वान् भी । विमुह्यति=मोह को प्राप्त हो जाता-गलत काम कर जाता है ।

व्याख्या—जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में लगाना चाहिए, दूसरे को नहीं । विद्वान् होने पर भी यदि कोई पुरुष अनुभवहीन है-विधि-विधान का अज्ञाता है तो वह भी गलती कर जाता है । भाव यह है कि उस कार्य में कुशलता प्राप्त करने वाला ही वह काम भली प्रकार कर सकता है, अन्य-अनाड़ी नहीं ।

तदाहूयतां सारस.................द्रव्य-संग्रहः क्रियताम् ॥

सन्धि-विच्छेद—सत्यागतम्-सति+आगतम्-इ को य-यण्संधि । प्रणम्यो-वाच-प्रणम्य+उवाच-अ+उ=ओ-गुणसंधि ।

समास—द्रव्य-संग्रह-द्रव्यस्य द्रव्याणां वा संग्रहः-तत्पुरुष ।

रूप—आहूयताम्-ह्वे-पुकारना-बुलाना-क्रिया-आ उपसर्ग, कर्मवाच्य, आज्ञा लोट्, आत्मनेपद, अन्य पुरुष, एकवचन-आहूयताम्, आहूयेताम्, आहूयन्ताम् । उवाच-ब्रू-बोलना-क्रिया-(ब्रू को वच् हो जाता है) परोक्षभूत-काल, परस्मैपद, अन्य पुरुष, एकवचन-उवाच, ऊचतुः, ऊचुः । अनुसंधेहि-धा-धारण करना-अनु और सम् उपसर्ग-अनु सं धा-अनुसंधान करना-खोज करना-क्रिया, परस्मैपद, आज्ञार्थ, मध्यम पुरुष, एकवचन-अनुसंधेहि, अनुसंधत्तम्, अनुसंधत्त ।

शब्दार्थ—आहूयताम्=बुलाया जाय । तथा अनुष्ठिते सति=ऐसा करने पर । आगतं सारसम् अवलोक्य=सारस को उपस्थित देख कर । सत्वरं दुर्गम् अनुसंधेहि=शीघ्र ही किले का अनुसंधान कीजिये-किले की खोज कीजिए । चिरात् सुनिरूपितं महत्-सरः=अधिक समय से निश्चित किया हुआ बड़ा तालाब । अत्र मध्यवर्ति-

द्वीपे=यहाँ द्वीप के मध्य भाग में। द्रव्य-संग्रहःकार्यताम्=आवश्यक पदार्थ आदि का संग्रह आवश्यक है।

व्याख्या—चकवा कह रहा है कि सारस को बुलाया जाय। ऐसा करने सारस के वहाँ आने पर—राजा ने सारस को कहा—सारस! शीघ्र ही कि खोज करो अर्थात् किले के योग्य स्थान ढूंढो। सारस बोला—देव! बहुत से भली प्रकार देखा—निश्चित किया—महान् सरोवर ही दुर्ग के लिए उ स्थान है। किन्तु इस समय द्वीप के मध्य भाग में धन का संग्रह करना चाहि

धान्यानां संग्रहो राजन् ······· न कुर्यात् प्राणधारणम् ॥३६॥

समास—प्राणधारणम्–प्राणानां धारणम् इति प्राणधारणम्–तत्पुरुष।

रूप—राजन्–राजन्–राजा शब्द, पुल्लिंग संबोधनकारक, एकवचन–हे रा हे राजानौ, हे राजानः। निक्षिप्तम्–क्षिप्=फैंकना, नि उपसर्ग, निक्षिप्–रखना क्रिया से क्त (त) प्रत्यय।

अन्वय—हे राजन्! सर्व-संग्रहात् धान्यानां संग्रहः उत्तमः (अस्ति) मुखे निक्षिप्तं रत्नं प्राणधारणम् न हि कुर्यात्।

शब्दार्थ—धान्यानां=अनाजों का। सर्व संग्रहात्=सब प्रकार के संग्रह से। निक्षिप्तम्=रखा हुआ।

व्याख्या—हे राजन्! सब प्रकार के संग्रह से अन्न-संग्रह उत्तम माना गया है। मुख में रक्खा हुआ रत्न प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता, परन्तु अन्न प्राण-रक्षा करता है।

राजा आह=राजा कहता है। सत्वरं गत्वा=शीघ्र जाकर। सर्वम् अनुष्ठीय-सब प्रबन्ध करो।

अथ पुनः प्रविश्य प्रतीहारो ब्रूते········कार्य संप्राप्तः ॥

सन्धि विच्छेद—अत्रेयम्—अत्र+इयम्–इ को य–यण्सन्धि।

समास—सपरिवारः—परिवारेण सह इति सपरिवारः—अव्ययीभाव समास। स्थलचरः—स्थले चरतीति स्थलचरः—सप्तमी तत्पुरुष।

शब्दार्थ—प्रविश्य=प्रवेश कर। काकः=कौआ। सर्वज्ञः=सब कुछ जानने वाला। बहुदृश्वा=बहुत देखने वाला अर्थात् मर्मज्ञ। स्थलचरः=स्थल पर चलने वाला। विपक्षे=शत्रु के पक्ष में।

व्याख्या—प्रतीहारी फिर प्रवेश कर कहता है—हे स्वामिन् ! सिंहलद्वी
आने वाला मेघवर्ण नामक काक परिवार सहित द्वार पर खड़ा है और
के दर्शन करना चाहता है । राजा हिरण्यगर्भ कहता है—काक सर्वज्ञ और
होता है, अतएव उसे ग्रहण करना—अपने यहाँ रखना—चाहिए । मन्त्री
कहता है—यह ठीक है, परन्तु कौआ भूमि पर चलने-फिरने वाला होता है,
एव हमारा विपक्षी–शत्रु पक्ष का ही माना जाता है । अतएव किस प्रकार
यहाँ रखा जा सकता है ।

तथा च उक्तम्—वैसा ही कहा है—

आत्म पक्षं परित्यज्य·········नीलवर्णशृगालवत् ॥२७॥

समास—आत्म-पक्षं—आत्मनः पक्षम् इति आत्मपक्षम्—तत्पुरुष ।

अन्वय—यः आत्म पक्षं परित्यज्य पर-पक्षेषु रतः स मूढः परैः नी
शृगालवत् हन्यते ॥

शब्दार्थ—आत्म-पक्षम्=अपने पक्ष को–अपने साथियों को । परि
त्याग कर । पर-पक्षेषु=दूसरों पर । रतः=स्नेहशील होता है । परैः=दूसरे
हन्यते=मार डाला जाता है ।

व्याख्या—जो मूढ अपने पक्ष-परिवार वालों, जाति वालों को
दूसरों के प्रति स्नेह रखता है अर्थात् अपनों को छोड़ दूसरों से मेल-जोल
लेता है, वह नील वर्ण वाले गीदड़ के समान-शत्रुओं द्वारा मार दिया जाता
राजा उवाच=राजा बोला । एतत् कथम्=यह कैसे ! मन्त्री कथयति
कहता है ।

नील-वर्ण-शृगालस्य कथा-नील वर्ण गीदड़ की कथा

अस्त्यरण्ये कश्चित् शृगालः·········स्यज्ञानय. सर्वे दूरीकृता

सन्धि-विच्छेद—स्वकीयोत्कर्षम्=स्वकीय+उत्कर्षम्–अ+उ=ओ–गुण
तदप्यारभ्यारण्ये–तद्+अपि का साधारण नियम, अप+आरभ्य+
दीर्घ संधि । कर्णेष्वरण्यवासिषु=कर्णे

समास—नील-वर्णम्—

उपमा: वर्णः यस्य

[illegible]

की आज्ञा अर्थात् हम आप को राजा मान कर आपकी आज्ञानुसार
इस प्रकार वन में रहने वाले सभी जीवों पर उसका आधिपत्य-स्था
हो गया। जब उसने अपनी जाति वाले-गीदड़ों द्वारा अपनी श्रेष्ठत
ली, तब वे सभी उसे राजा मानकर उसकी आज्ञा का पालन करने लगे
सिंह, व्याघ्र आदि उत्तम सेवकों को पाकर और अपनी सभा में गीद
कर लज्जा का अनुभव करते हुए उसने जाति वालों का अनादर क
सभा से हटा दिया अर्थात् उन सबको अपने पास नहीं रहने दिया।

ततो विषण्णान् शृगालान् अवलोक्य"जातिस्वभावान् तेनापि श

सन्धि-विच्छेद—शृगालेनैतत्-शृगालेन+एतत्-अ+ए =ऐ-
चैवं-च+एवम्-वृद्धि संधि।

समास—वर्ण मात्र-विप्रलब्धाः-वर्णमात्रे ण विप्रलब्धा इति-तृ
महारावम्-महान् चासौ राव इति महारावः-कर्मधारय-तम्।

रूप—प्रतिज्ञातम्-ज्ञा-जाना, प्रति उपसर्ग-प्रतिज्ञा करना-कि
प्रत्यय। विषीदत-सद (सीद्) किया, वि उपसर्ग-विषीद-परस्मैद,
मध्यम पुरुष, बहुवचन-विषीद, विषीदतम् विषीदत। कुरुत-कृ=
परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, बहुवचन-कुरु-कुरुतात्, कु

शब्दार्थ—विषण्णान् शृगालान् अवलोक्य=दुःखी गीदड़ों
प्रतिज्ञातम्=प्रतिज्ञा की। मा विषीदत=तुम लोग दुःखी मत हो। अनां
से। नीतिविदः मर्मज्ञाः=नीति के जानने वाले तथा मर्म के ज्ञात
तिरस्कृत किये गये। तथा विधेयम्=वैसा ही करना चाहिए। व
लब्धाः=केवल रंग से ठगे हुए। मन्यन्ते=मानते हैं। अयं परिचित
प्रकार इसको जान सकते हैं। तथा कुरुत=वैसा ही करो। एवम्
प्रकार करना चाहिए। संनिधाने=समीप में। एकदा एव महारावं
ही महान् शब्द करो अर्थात् सब मिल कर आवाज करो।

व्याख्या—जिन शृगालों को उसने अपनी सभा से निकाल
दुःखी देख कर एक बूढ़े शृगाल ने प्रतिज्ञा की-तुम दुःखी मत हो
ने हम जैसे नीतिज्ञ और मर्म को जानने वालों का अनादर कर
निकाल दिया है। अतएव ऐसा करना चाहिए, जिससे कि यह ना

स व्याघ्रेण हन्तव्यः=वह व्याघ्र द्वारा मारा जायगा। ततः तथानुष्ठि
तत्पश्चात् वैसा ही करने पर। तद् वृत्तम्=वही हुआ।

व्याख्या—वृद्ध गीदड़ अपने दूसरे साथियों से कह रहा है कि अब
शृगाल जो कि राजा बन कर बैठा है, तुम्हारे ओर ओर से (हाउ हाउ। श
पर जातिगत स्वभाव से तुरन्त ही "हाउ हाउ" शब्द करने लग जाय
शब्द को समझ इस बनावटी राजा को बाघ मार देगा। ऐसा करने प
गीदड़ों के बोलने पर नील वर्ण शृगाल भी बोला और उसकी बोली
व्याघ्र ने उसे मार दिया।

तथा च उक्तम्=वैसा ही कहा है—

छिद्रं मर्म च वीर्यं च............शुष्कं वृक्षमिवानलः ॥

सन्धि-विच्छेद—दहत्यन्तर्गतश्चैव=दहति+अन्तर्गतः=इ को य-
अन्तर्गतः+च+एव=विसर्ग को स-विसर्ग संधि, स् को-श्-व्यंजन संधि,
अ+ए=ऐ-वृद्धि संधि।

रूप—मर्म-मर्मन्-रहस्य-शब्द, नपुंसकलिंग, द्वितीया विभक्ति,
मर्म, मर्मणी, मर्माणि। वेत्ति-विद्-जानना-क्रिया, परस्मैपद, वर्त्त
अन्य पुरुष, एकवचन-वेत्ति, वित्तः, विदन्ति।

अन्वय—निजः रिपुः छिद्रं मर्म वीर्यं सर्वं च वेत्ति। (स शत्रु
दहति यथा अनलः शुष्कं वृक्षं दहति।

शब्दार्थ—निजः रिपुः=अपनी जाति का अथवा अपने समीप
छिद्रम्=न्यूनता या बुराई। मर्म=रहस्य को। वीर्यम्=शक्ति को। वेत्ति
जानता है। अन्तर्गतः=अन्दर रहने वाला। दहति=जलाता है। अ
वृक्षम् इव=जैसे अग्नि सूखे वृक्ष को जलाती है।

व्याख्या—अपना सजातीय या अपना अन्तरंग जब शत्रु हो
वह न्यूनता बुराई, रहस्य, शक्ति आदि का पूर्ण ज्ञान रखता है, अत
होकर-मिल कर-उसी प्रकार विनाश कर देता है, जिस प्रकार अ
को भस्मीभूत कर देती है। तात्पर्य यह है कि यदि स्वजातीय अथव
साथ विरोध बढ़ जाता है तो घर का भेदी लंका ढावे-वाली कहाव
चरितार्थ होती है।

अतोऽहं ब्रवीमि=इसलिए मैं कहता हूँ। आत्म-पक्षं परित्यज्य=अपनों को त्याग कर। मन्त्री चक्रवाक कहता है कि जो अपनों को छोड़कर परायों से मेल करता है वह नीलवर्ण शृगाल के समान दुर्दशा ग्रस्त होता है।

राजाह–यद्येवम्············शुकोऽप्यालोक्य प्रस्थाप्यताम् ॥

संधि—विच्छेद—यद्येवम्–यदि+एवम्–इ को य–यण्संधि। शुकोऽप्यालोक्य–शुकः+अपि–विसर्ग को उ–विसर्ग संधि, अ+उ=ओ–गुणसंधि, तत्पश्चात् पूर्वरूप संधि। अपि+आलोक्य–इ को य–यण् संधि।

समास—तत्संग्रहे–तस्य संग्रहे–तत्पुरुष।

रूप—दृश्यताम्–दृश–देखना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन–दृश्यताम् दृश्येताम्, दृश्यन्ताम्।

शब्दार्थ—राजा आह=राजा हिरण्यगर्भ हंस कहता है। यदि एवम्=यदि ऐसा है। तथापि दृश्यताम्=तब भी देखना चाहिए। अयं दूरात् आगतः=यह दूर से आया है। तत्संग्रहे विचारः कार्यः=उसको अपने यहाँ रखने के लिए विचार करना चाहिए। प्रणधिः=गुप्तचर भेज दिया। दुर्गः च=और किला भी। सज्जीकृतः=सजा लिया। अतः शुकः अपि आलोक्य=इसलिए दूत रूप में आने वाले शुक को देखकर अर्थात् उससे बात-चीत कर उसके द्वारा लाया हुआ समाचार जानकर। प्रस्थाप्यताम्=उसे यहाँ से भेज देना चाहिए।

व्याख्या—राजा हिरण्यगर्भ हंस कहता है यद्यपि यह ठीक है जैसा कि आपने कहा है, तब भी देखना चाहिए क्योंकि वह (काक) दूर से आया है और उसको अपनी ओर करने पर विचार करना चाहिए। मन्त्री चक्रवाक कहता है–हमने चित्रवर्ण की सभा में दूत भेज दिया है और दुर्ग भी सज कर तैयार हो गया है। इसलिए चित्रवर्ण के यहाँ से दूत रूप में आने वाले तोते द्वारा लाया हुआ समाचार जानकर उसे भेज देना चाहिए।

नन्दं जघान चाणक्यः··········पश्येद् धीर–समन्वितः ॥४०॥

संधि-विच्छेद—तन्मूर्खन्तरितम्–तत्+शूरान्तरितम्–त् को च् और श् ··· –व्यंजन संधि।

समास—तीक्ष्ण–दूत–प्रयोगतः–तीक्ष्णः चासौ दूत इति तीक्ष्ण-दूतः–···, तीक्ष्ण–दूतस्य प्रयोगेन इति–तत्पुरुष।

रूप—जघान–हन्–जान से मार डालना–क्रिया, परस्मैपद, परोक्ष
अन्य पुरुष, एकवचन–जघान, जघ्नतुः, जघ्नुः। पश्येत्–दृश्–पश्य्–
क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन–पश्येत्, पश्येताम्,

अन्वय—चाणक्यः तीक्ष्ण–दूत–प्रयोगतः नन्दं जघान। तद् वीर–
शूरान्तरितं दूतं पश्येत्।

शब्दार्थ—चाणक्यः=प्रसिद्ध नीतिज्ञ, चन्द्रगुप्त का मन्त्री। तीक्ष्ण
प्रयोगतः=प्राण हरने वाले दूत के प्रयोग से। नन्दं जघान=राजा नन्द
दिया। वीर–सनाथितः=नीतिज्ञ वीरों सहित। शूरान्तरितं दूतं पश्येत्=शू
छिपे हुए दूत को देखे।

व्याख्या—प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, महाराज चन्द्रगुप्त के मन्त्री चा
प्राण हरने वाले दूत के प्रयोग द्वारा ही राजा नन्द का विनाश कर दिया,
राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह नीतिज्ञ वीरों सहित ही शूर रूप में छिपे
दूत को देखे। तात्पर्य यह है कि दूत से अत्यन्त सावधानी से बातचीत

ततः सभां कृत्वाहूतः·····················सान्त्वयन् प्र

सन्धि-विच्छेद—आगत्यास्मच्चरणौ=आगत्य+अस्मत्+चरणौ–अ
आ–दीर्घ संधि, त् को च्–व्यंजन संधि।

समास—उन्नत-शिराः–उन्नतं शिरः यस्य सः–उन्नत–शिराः–
दत्तासने–दत्तं च तद् आसनम् इति–दत्तासनं–कर्मधारय–तस्मिन्।

रूप—ब्रूते–ब्रू–कहना–क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अ
एकवचन–ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते। उपविश्य–विश्–प्रवेश करना–उ
उपविश्–बैठना–क्रिया से ल्यप् प्रत्यय, उपसर्ग पूर्व में होने से त्वा को
है। प्रणम–प्र उपसर्ग, नम्–नमस्कार करना–क्रिया, परस्मैपद, आ
मध्यम पुरुष, एकवचन–प्रणम प्रणमतम्, प्रणमत। हन्मि–हन्–मार
परस्मैपद, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन–हन्मि, हन्वः,
सान्त्वयन्–सान्त्वय्–सान्त्वना देता हुआ–शतृ–प्रत्–अन्तान्त–शब्द,
प्रथमा विभक्ति, एकवचन–सान्त्वयन्, सान्त्वयन्तौ, सान्त्वयन्तः।

शब्दार्थ—सभां कृत्वा=दरबार करके। आहूतः=बुलाया हुआ। उ
ऊँचा है सिर जिसका। दत्तासने=दिये हुए आसन पर। उपविश्य म

कहता है। शासनाज्ञां ददाति=आज्ञा देते हैं। जीवितेन=जीवन से। प्रिय=चाहते हो। सत्वरम् आगत्य=शीघ्र आकर। अस्मत्-चरणौ प्रणम=हमारे चरणों में प्रणाम करो। नो चेत्=नहीं तो। अवस्थातुं=रहने के लिए। स्थानान्तरं चिन्तय=दूसरे स्थान की चिन्ता करो अर्थात् दूसरा स्थान देखो। एनं गलहस्तयति=हाथ से गला पकड़ कर निकाल दे। आज्ञापय=आज्ञा दीजिए। हन्मि=मार डालता हूँ। सान्त्वयन् ब्रूते=सान्त्वना देता हुआ कहता है!

व्याख्या—सभा में शुक और काक-मेघवर्ण—को बुलाया गया। आसन पर बैठकर और सिर ऊँचा कर शुक कहता है—हे हिरण्यगर्भ! महाराजाधिराज श्रीमान् चित्रवर्ण तुम्हें आज्ञा देते हैं कि यदि जीवित रहना और राज्य करना चाहते हो तो शीघ्र आकर हमारे चरणों में प्रणाम करो, नहीं तो रहने के लिए अन्यत्र स्थान ढूंढ लो। राजा हिरण्यगर्भ क्रोध से कहता है कि हमारे यहाँ कोई ऐसा नहीं है जो इसका गला पकड़ बाहर निकाल दे। तुरन्त ही उठ कर मेघवर्ण काक कहता है—देव! आज्ञा दीजिये, मैं इस दुष्ट शुक को मार देता हूँ। सर्वज्ञ चक्रवाक, राजा और काक को सान्त्वना देता हुआ कहता है।

शृणु तावत्=तो पहले सुनिये—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः"""सत्यं न तत् यच्छलमभ्युपैति॥४१॥

सन्धि-विच्छेद—यच्छलम्—यत्+छलम्—त् को च्—व्यंजन संधि।

अन्वय—सा सभा न, यत्र वृद्धाः न सन्ति। ते वृद्धा न, ये धर्मं न वदन्ति। स धर्मः न, यत्र सत्यं न अस्ति। तत् सत्यं न यत् छलम् अभ्युपैति।

शब्दार्थ—छलम् अभ्युपैति=छल को प्राप्त करता है—आश्रय लेता है।

व्याख्या—वह सभा नहीं है, जहां बूढे नहीं अर्थात् विचारशील-अनुभवी नहीं हैं। वे वृद्ध भी कहलाने योग्य नहीं हैं, जो धर्म की बात नहीं कहते हैं। वह धर्म नहीं कहा जा सकता, जहां सत्य नहीं है। वह सत्य नहीं, जो छल-कपट का आश्रय लेता है।

यतः धर्मः च एषः=और धर्म तो यह है—

दूतो म्लेच्छोऽप्यवध्यः स्यात्"""""""""दूतो वदति नान्यथा॥४२॥

संधि-विच्छेद—म्लेच्छोऽप्यवध्यः—म्लेच्छः+अपि+अवध्यः—विसर्ग को उ-विसर्ग संधि: अ+उ=ओ—गुण, तत्पश्चात् पूर्वरूप संधि, इ को य—यणसंधि।
...उ+अपि—उ को व्—यणसंधि।

समास—दूतमुखः—दूत एव मुखं यस्य सः—बहुव्रीहि ।

रूप—स्यात्-अस्-होना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन—स्यात्, स्याताम्, स्युः ।

अन्वय—राजा दूतमुखः (भवति) यतः दूतः म्लेच्छः अपि अवध्यः स्यात्। दूतः शस्त्रेषु उद्यतेषु अपि अन्यथा न वदति ।

शब्दार्थ—राजा दूतमुखः=राजा दूतमुख होता है । म्लेच्छः दूतः अपि=दूत म्लेच्छ हो तो भी । अवध्यः स्यात्=वध के योग्य नहीं होता है । शस्त्रेषु उद्यतेषु अपि=मारने के लिए शस्त्रों के उठा लेने पर भी । अन्यथा न वदति=विपरीत बात नहीं कहता है ।

व्याख्या—राजा दूतमुख होता है अर्थात् दूत द्वारा ही राजा अपना समाचार कहलाता है, अत एव यदि दूत म्लेच्छ भी हो तो भी मारने योग्य नहीं होता है। यदि दूत को मारने के लिए शस्त्र उठा लिये जायें तो भी वह विपरीत बात नहीं कहता है ।

तो राजा काकश्च स्वां प्रकृतिमापन्नौ···देव, व्यसनितया विग्रहो न विधिः॥

सन्धि-विच्छेद—शुकोऽप्युत्थाय-शुको+अपि+उत्थाय-पूर्वरूप और यण् संधि।

समास—युद्धोद्योगः—युद्धाय उद्योग इति—तत्पुरुष ।

रूप—ययौ—या—जाना क्रिया, परस्मैपद, परोक्ष भूतकाल, अन्यपुरुष एकवचन—यौ, ययतुः, ययुः । प्रणतवान्—नम्—नमस्कार करना—क्रिया, से क्तवतु प्रत्यय, प्र उपसर्ग-प्रणवत्=प्रणाम करता हुआ—शब्द, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-प्रणतवान्, प्रणतवन्तौ, प्रणतवन्तः ।

शब्दार्थ—स्वां प्रकृतिम् आपन्नौ=प्रकृतिस्थ हो गए—शान्त हो गये। उत्थाय चलितः=उठ कर चल दिया । प्रबोध्य=समझा—बुझा कर । सम्प्रेषितः=भेजा—किया हुआ । ययौ=गया । प्रणतवान्=नमस्कार किया । का वार्ता=क्या वृत्तान्त—समाचार—है । युद्धोद्योगः क्रियताम्=युद्ध के लिये उद्योग कीजिए । स्वर्गैकदेशः=स्वर्ग का एक भाग है । वर्णयितुं शक्यते=वर्णन किया जा सकता है । शिष्टान् आहूय=सभासदों को बुला कर । मन्त्रयितुम् उपविष्टः=मन्त्रणा करने को बैठ गया। भवन्तः (आप लोग) कहिये । व्यसनितया विग्रहः न विधिः=शौक रूप में युद्ध करने का विधान नहीं है ।

व्याख्या—तत्पश्चात् राजा हिरण्यगर्भ और मेघवर्ण काक शान्त हो गये। शुक भी उठ कर चल दिया। बाद में मन्त्री चक्रवाक ने समझा-बुझा कर कुछ अलंकार आदि देकर उसे विदा किया और वह चला गया। शुक ने विन्ध्याच पहुँच कर अपने राजा मयूर को प्रणाम किया। मयूरराज ने पूछा—दूत शुक क्या समाचार है ? वह देश कैसा है ? शुक कहता है—स्वामिन् ! संक्षेप में य समाचार है कि युद्ध के लिए उद्योग करना चाहिए। वह देश कर्पूरद्वीप तो स्वर्ग का एक भाग ही है और राजा हिरण्यगर्भ दूसरा स्वर्गपति है, किस प्रकार वहाँ का वर्णन किया जा सकता है ? मयूरराज सभासदों को बुला कर मन्त्रणा करने बैठा। वह बोला—इस समय विग्रह उपस्थित होने पर जो कुछ कर्तव्य है, उसका वर्णन कीजिए। युद्ध तो अवश्यम्भावी है। दूरदर्शी नामक मन्त्री यह कहता है—स्वामिन् ! शौक रूप में युद्ध करना विधान के—नियम के विरुद्ध है, सोच-विचार कर युद्ध करना चाहिए।

यत =क्योंकि—

मित्रामात्य सुहृद्‌वर्गाः············कर्त्तव्यो विग्रहस्तदा ॥४३॥

समास—मित्रामात्य-सुहृद्-वर्गाः-मित्राणि, च अमात्याश्च सुहृदः च-मित्रामात्य-सुहृदः-द्वन्द्व-तेषां वर्गाः-तत्पुरुष। दृढ-भक्तयः-दृढा भक्तिर्येषां ते-दृढभक्तयः-बहुव्रीहि।

रूप—स्युः-अस्-होना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, बहुवचन-स्यात्, स्याताम्, स्युः।

अन्वय—यदा मित्रामात्य-सुहृद्-वर्गाः दृढभक्तयः शत्रूणां विपरीतश्च स्युः तदा विग्रहः कर्त्तव्यः।

शब्दार्थ—मित्रामात्य-सुहृद्-वर्गाः-मित्रों, मन्त्रियों और मित्रों का झुं दृढभक्तयः स्युः=दृढ भक्ति करने वाला हो। विग्रहः कर्त्तव्यः=युद्ध करना चाहि

व्याख्या—जिस समय मित्र, मन्त्री, भाई-बन्धु अपने प्रति दृढ भक्ति र हों और शत्रुओं के प्रति उनकी दुर्भावना हो, उस समय युद्ध करना चाहिए।

भूमिर्मित्रं हिरण्यं च······मादि कर्त्तव्यो विग्रहस्तदा ॥४४॥

सन्धि-विच्छेद—यदैतन्निरिक्षण-यदा+एतद्-आ+ईक्षते; [illegible] निरिक्षणं-र् को न्-व्यञ्जन सन्धि।

अन्वय—भूमिः मित्रं हिरण्यं च (एतत्) त्रयं विग्रहस्य फलम्। यदा एतत् निश्चितं भावि तदा विग्रहः कर्त्तव्यः।

शब्दार्थ—हिरण्यम्—सुवर्ण-धन। विग्रहस्य फलम्—युद्ध का परिणाम। निश्चितं भावि=निश्चित रूप से होने वाला।

व्याख्या—पृथ्वी, मित्र और सुवर्ण-धन-की प्राप्ति युद्ध का परिणाम है अर्थात् इन तीनों की प्राप्ति के लिए युद्ध करना चाहिए। जब यह निश्चित रूप से होगा-ऐसा मालूम हो, तब युद्ध करना चाहिए अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह है कि जब इनकी प्राप्ति न होती हो तो युद्ध करना व्यर्थ है।

राजाह-मम बलानि तावद्बलोकयतु···सहसा यात्राकरणमनुचितम्॥

समास—यात्रार्थम्-यात्रायै अर्थम्-तत्पुरुष।

रूप—ज्ञायताम्-ज्ञा-जानना-क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, अन्य पुरुष, एकवचन-ज्ञायताम्, ज्ञायेताम्, ज्ञायन्ताम्।

शब्दार्थ—मम बलानि=मेरी सेनाओं को। अवलोकयतु=देख लें-निरीक्षण कर लें। उपयोगः ज्ञायताम्=इनका उपयोग भी समझ लें। मौहूर्तिकः आहूयताम्= ज्योतिषी को बुलाया जाय। शुभ लग्नं निर्णीय=शुभ समय का निर्णय कर। सहसा यात्रा करणम् अनुचितम्=सहसा यात्रा करना ठीक नहीं है।

व्याख्या—राजा कहता है तो मन्त्री सेना का भली भांति निरीक्षण-जाँच-कर लें और उनका उपयोग भी समझ लें। ज्योतिषी को बुलाया जाय और शुभ मुहूर्त का निर्णय किया जाय [मंत्री गृध्र कहता है—सहसा यात्रा करना-चढ़ाई करना-ठीक नहीं है।

यतः=क्योंकि—

विशन्ति सहसा मूढाः·········लभन्ते ते सुनिश्चितम् ॥४४॥

समास—द्विरद्-बलम्-द्विरतः द्विरतां वा बलम्-तत्पुरुष। खड्ग-धारा-परिष्वंगम्-खड्गाना धारा इति-खड्गधारा-तत्पुरुष, खड्गधारया परिष्वंगः इति खड्ग-धारा-परिष्वंगः-तम्-तत्पुरुष।

अन्वय—ये मूढा अविचार्य सहसा द्विरद्-बलं प्रविशन्ति ते सुनिश्चितं खड्ग-धारा-परिष्वंगं लभन्ते।

व्याख्या—तत्पश्चात् राजा हिरण्यगर्भ और मेघवर्ण काक राजा
शुक भी उठ कर नमन किया। बाद में मन्त्री चक्रवाक ने मनमाकुसुम कर
अलंकार आदि देकर उसे विदा किया और वह चला गया। शुक ने विन्
पहुँच कर अपने राजा मयूर को प्रणाम किया। मयूरराज ने पूछा—तुम
क्या समाचार है? वह देश कैसा है? शुक कहता है—स्वामिन्! संक्षेप
समाचार है कि युद्ध के लिए उद्योग करना चाहिए। वह देश कर्पूरद्वीप
स्वर्ग का एक भाग ही है और राजा हिरण्यगर्भ दूसरा स्वर्गपति है, किस
वहाँ का वर्णन किया जा सकता है? मयूरराज सभासदों को बुला कर मन्त्र
करने बैठा। वह बोला—इस समय विग्रह उपस्थित होने पर जो कुछ कर्तव्य
उसका वर्णन कीजिए। युद्ध तो अवश्यम्भावी है। दूरदर्शी नामक मन्त्री
कहता है—स्वामिन्! शीघ्र रूप में युद्ध करना विधान के—नियम के विरुद्ध है
सोच-विचार कर युद्ध करना चाहिए।

यत =क्योंकि—

मित्रामात्य सुहृद्वर्गाः············कर्त्तव्यो विग्रहस्तदा ॥४३॥

समास—मित्रामात्य-सुहृद्-वर्गाः–मित्राणि, च अमात्याश्च सुहृदः च–मित्रामात्य-सुहृदः–द्वन्द्व–तेषां वर्गाः–तत्पुरुष। दृढ-मतयः–दृढा मतिर्येषां ते–दृढमतयः–बहुव्रीहि।

रूप—स्युः–अस्–होना–क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, बहुवचन स्यात्, स्याताम्, स्युः।

अन्वय—यदा मित्रामात्य-सुहृद्-वर्गाः दृढमतयः शत्रुणा विपरीताः स्युः तदा विग्रहः कर्त्तव्यः।

शब्दार्थ—मित्रामात्य-सुहृद्-वर्गाः–मित्रों, मन्त्रियों और मित्रों का झुंड दृढमतयः स्युः=दृढ भक्ति करने वाला हो। विग्रहः कर्त्तव्यः=युद्ध करना चाहिए।

व्याख्या—जिस समय मित्र, मन्त्री, भाई-बन्धु अपने प्रति दृढ भक्ति रखते हों और शत्रुओं के प्रति उनकी दुर्भावना हो, उस समय युद्ध करना चाहिए।

भूमिर्मित्रं हिरण्यं च······भाति कर्त्तव्यो विग्रहस्तदा ॥४३॥

सन्धि-विच्छेद—यदैतन्निश्चितम्–यदा+एतत्–आ+ए=ऐ; वृद्धिसन्धि; एतत्+निश्चितं–त् को न्–व्यञ्जन सन्धि।

अन्वय—भूमिः मित्रं हिरण्यं च (एतत्) त्रयं विग्रहस्य फलम्। यदा एतत् निश्चितं भावि तदा विग्रहः कर्तव्यः।

शब्दार्थ—हिरण्यम्–सुवर्ण–धन। विग्रहस्य फलम्–युद्ध का परिणाम। निश्चितं भावि=निश्चित रूप से होने वाला।

व्याख्या—पृथ्वी, मित्र और सुवर्ण–धन–की प्राप्ति युद्ध का परिणाम है अर्थात् इन तीनों की प्राप्ति के लिए युद्ध करना चाहिए। जब यह निश्चित रूप से होगा–ऐसा मालूम हो, तब युद्ध करना चाहिए अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह है कि जब इनकी प्राप्ति न होती हो तो युद्ध करना व्यर्थ है।

राजाह–मम बलानि तावदवलोकयतु···सहसा यात्राकरणमनुचितम्॥

समास—यात्रार्थम्–यात्रायै अर्थम्–तत्पुरुष।

रूप—ज्ञायताम्–ज्ञा–जानना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, अन्य पुरुष, एकवचन–ज्ञायताम्, ज्ञायेताम्, ज्ञायन्ताम्।

शब्दार्थ—मम बलानि=मेरी सेनाओं को। अवलोकयतु=देख लें–निरीक्षण कर लें। उपयोग: ज्ञायताम्=इनका उपयोग भी समझ लें। मौहूर्तिकः आहूयताम्= ज्योतिषी को बुलाया जाय। शुभ लग्नं निर्णीय=शुभ समय का निर्णय कर। सहसा यात्रा करणम् अनुचितम्=सहसा यात्रा करना ठीक नहीं है।

व्याख्या—राजा कहता है तो मन्त्री सेना का मन्त्री भाति निरीक्षण–जाँच–कर लें और उनका उपयोग भी समझ लें। ज्योतिषी को बुलाया जाय और शुभ मुहूर्त का निर्णय किया जाय। मंत्री एध्र कहता है—सहसा यात्रा करना–चढ़ाई करना–ठीक नहीं है।

यतः=क्योंकि—

विशन्ति सहसा मूढाः·········लभन्ते ते सुनिश्चितम्॥४४॥

समास—द्विरद्–बलम्–द्विरतः द्विरतां वा बलम्–तत्पुरुष। खड्ग–धारा–परिष्वङ्गम्–खड्गाना धारा इति–खड्गधारा–तत्पुरुष, खड्गधारया परिष्वंगः इति खड्ग–धारा–परिष्वंगः–तम्–तत्पुरुष।

अन्वय—ये मूढा अविचार्य सहसा द्विरद्–बलं प्रविशन्ति ते सुनिश्चितं खड्ग–धारा–परिष्वंगं लभन्ते।

शब्दार्थ—अविचार्य-बिना-सोचे समझे। द्विषद्-बलं प्रविशन्ति=शत्रु सेना में घुसते हैं—शत्रु से युद्ध करते हैं। खड्गधारा-परिष्वंगं लभन्ते=तलवार की धारा का आलिंगन प्राप्त करते हैं-तलवार के घाट उतार दिए जाते-जाते हैं।

व्याख्या—जो मूढ बिना विचारे सहसा शत्रु से युद्ध ठान देते हैं, वे निरन्तर ही तलवार की धार का आलिंगन पाते हैं अर्थात् मारे जाते हैं।

राजाह-मन्त्रिन्, ममोत्साह-भंगम्…………फलप्रदम्॥

संधि-विच्छेद—ममोत्साह-भंगम्-मम+उत्साह भंगम्-अ+उ=ओ-गुणसंधि

समास—उत्साह-भंगम्-उत्साहस्य भंगः इति उत्साह-भंगः तम्-तत्पुरुष।

रूप—मन्त्रिन्-मन्त्रिन्-मंत्री-शब्द, पुल्लिंग, संबोधन विभक्ति, एकवचन हे मन्त्रिन्, हे मन्त्रिणौ, हे मन्त्रिणः।

शब्दार्थ—मम उत्साह-भगं मा कृथाः=मेरा उत्साह नष्ट न करो। विजिगीषुः=जीतने का अभिलाषी। परभूमिम् आक्रमति=शत्रु-देश पर आक्रमण करता है।

व्याख्या—राजा कहता है—हे मन्त्रिन्-मेरा उत्साह नष्ट न करो। विजयाभिलाषी जिस प्रकार शत्रु के देश पर आक्रमण करता है, उसका निर्देश करके बताओ। मन्त्री पुनः कहता है—यह कहता हूँ किन्तु उसके करने से ही फल प्राप्त हो सकता है अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह है कि प्रयोग के बिना उसका ज्ञान व्यर्थ ही है।

तथा च उक्तम्=वैसा ही कहा है—

किं मन्त्रेणाननुष्ठाने……व्याधेः शान्तिः क्वचिद् भवेत्॥४६॥

संधि विच्छेद—औषध-परिज्ञानात्-दि+औषध-परिज्ञानात्-इ+औ=यौ यण् संधि।

समास—अननुष्ठाने-न अनुष्ठानम् इति अननुष्ठानम्-नञ् (निषेधवाचक) तत्पुरुष-तस्मिन्। पृथिवी-पतेः-पृथिव्याः पतिः इति-पृथिवी-पतिः-तत्पुरुष-तस्य। औषध-परिज्ञानात्-औषधस्य परिज्ञानम् इति औषध-परिज्ञानम्-तत्पुरुष-तस्मात्।

रूप—भवेत्-भू (भव्) होना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पु
कवचन-भवेत्, भवेताम्, भवेयुः ।

अन्वय—अननुष्ठाने पृथिवीपतेः मन्त्रेण शास्त्र-वत् किम् । हि औष
रिज्ञानात् क्वचित् व्याधेः शान्तिः न भवेत् ।

शब्दार्थ—अननुष्ठाने=न करने पर । पृथिवीपतेः मन्त्रेण=राजा के
। । किम्-क्या प्रयोजन । शास्त्रवत्=शास्त्र-ज्ञान के समान । तात्पर्य यह है
दि मन्त्री राजा को मन्त्र-सलाह-राजनीति संबंधी विशेष बातें बता भी दे
और वह शास्त्र-ज्ञान के समान उन्हें जानता भी है । औषध-परिज्ञान
औषध के ज्ञानमात्र से । व्याधेः शान्तिः क्वचित् न भवेत्=रोग शांत कभी
नहीं होता ।

व्याख्या—मन्त्री राम राजा से कह रहा है कि जिस प्रकार औषध-ज्ञ
रोग को दूर नहीं कर सकता अर्थात् औषधि के गुण आदि ज्ञात होने पर
उसका प्रयोग किए बिना रोग शान्त नहीं होता, है उसी प्रकार राजा मन्त्री
राजनीति का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी जब तक उसका प्रयोग नहीं करता,
तक वह शास्त्र-ज्ञान के समान व्यर्थ ही है—उसका कोई महत्व नहीं । तात्पर
है कि जैसे प्रयोग के बिना केवल शास्त्र-ज्ञान का कोई महत्व नहीं, इसी प्र
प्रयोग न करने पर मन्त्र का भी कोई गौरव नहीं है ।

शब्दार्थ—राजादेशः=राजा की आज्ञा । अनतिक्रमणीयः=माननी चाहि
इति यथाश्रुतम्=इस संबंध में जैसा सुना है । निवेदयामि=निवेदन करता हूँ ।

शृणु=सुनिये—

नद्यद्रि-वन-दुर्गेषु············यायाद् व्यूहीकृतैः बलैः ॥४७॥

सन्धि-विच्छेद—नद्यद्रि-वन-दुर्गेषु—नदी+अद्रि-ई की य-यण्संधि

समास—नद्यद्रि-वन-दुर्गेषु—नदी च अद्रिः च वनं च दुर्गः च—न
वन-दुर्गाः—द्वन्द्व—तेषु । सेनानीः—सेनां नयति इति सेनानीः—तत्पुरुष ।

रूप—यायात्—या—जाना-क्रिया, परस्मैपद, अन्य पुरुष, एकवचन—य
यायाताम्, यायासुः ।

अन्वय—हे नृप, नदी-अद्रि-वन-दुर्गेषु यत्र यत्र भयम् (अस्ति) से
तत्र तत्र व्यूहीकृतैः बलैः यायात् ।

शब्दार्थ—नदी-अद्रि-वन-दुर्गेषु=नदी-पर्वत-वन और किलों में। सेनानी=सेनापति। व्यूहीकृतैः बलैः=सेना का व्यूह बना कर। यायात्=चले जाना चाहिए।

व्याख्या—हे राजन्! नदी-पर्वत-वन और दुर्गों में जहाँ जहाँ भय हो, वहाँ सेनापति सेना को व्यूह रूप में लेकर चला जाय।

बलाध्यक्षः पुरो यायात्………कोषः फल्गु च यद् बलम् ॥४८॥

समास—प्रवीर-पुरुषान्वितः-प्रकर्षेण वीरा इति प्रवीराः, प्रवीराः च पुरुषा इति प्रवीर-पुरुषाः-कर्मधारय, प्रवीर-पुरुषैः अन्वितः इति-प्रवीर-पुरुषान्वितः-तत्पुरुष। बलाध्यक्षः-बलस्य अध्यक्ष इति-तत्पुरुष।

अन्वय—प्रवीर-पुरुषान्वितः बलाध्यक्षः पुरः यायात्। मध्ये कलत्रं, स्वामी च कोषः, फल्गु च बलम् (यायात्)।

शब्दार्थ—प्रवीर-पुरुष-अन्वितः=वीर सैनिकों सहित। बलाध्यक्षः=सेना विभाग के अध्यक्ष। पुरः=आगे। यायात्=चले। कलत्रं=स्त्रीवर्ग। फल्गु यायात्=निर्बल सेना चले।

व्याख्या—प्रकृष्ट वीर सैनिकों के साथ प्रत्येक सेना के विभागीय अध्यक्ष आगे आगे चले। मध्य में स्त्रीवर्ग, स्वामी कोष और निर्बल सेना-मर्त्तों की सेना दिखावटी सेना-चले।

पार्श्वयोरुभयोरश्वाः…………नागानां च पदातयः ॥४६॥

अन्वय—उभयोः पार्श्वयोः अश्वाः, अश्वानां पार्श्वतः रथाः, रथानां पार्श्वयोः नागाः, नागानां पदातयः।

शब्दार्थ—उभयोः पार्श्वयोः अश्वाः=दोनों ओर घुड़सवार। अश्वानां पार्श्वतः रथाः=घोड़ों की बगल में रथ। रथानां पार्श्वयोः=रथ-सवारों के दोनों ओर। नागाः=हाथी। पदातयः=पैदल।

व्याख्या—दोनों ओर अश्वारोही सैनिक, अश्वारोही सैनिकों की बगल में रथ-सैनिक रथ-सैनिकों के दोनों ओर गज-सैनिक, गज-सैनिकों के बाद पैदल सैनिक रहने चाहिए।

पश्चात् सेनापतिः यायात्………प्रतिगृह्य बलं नृपः ॥५०॥

सन्धि-विच्छेद—क्लिन्नानाश्वासयञ्छनैः—क्लिन्नान्+आश्वासयन्+शनैः—न् को ञ् और श को छ्–व्यंजन संधि।

रूप—मन्त्रिभिः—मन्त्रिन्–मंत्री–शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन–मन्त्रिणा, मन्त्रिभ्यां, मंत्रिभिः।

अन्वय—पश्चात् क्लिन्नान् शनैः आश्वासयन् सेनापतिः यायात्। नृप मन्त्रिभिः सुभटैः युक्तः बलं प्रतिगृह्य (यायात्)

शब्दार्थ—पश्चात्=पैदल सेना के बाद। क्लिन्नान्=श्रान्त–थके हुए–सैनिकों को। आश्वासयन्=सान्त्वना देता–उन्हें उत्साहित करता हुआ। सेनापति यायात्= सेनापति चले। मन्त्रिभिः सुभटैः युक्तः=मन्त्रियों और वीरों सहित। बलं प्रतिगृह्य= सेना का व्यूह रच कर गमन करे।

व्याख्या—पैदल सेना के बाद श्रान्त सैनिकों को प्रोत्साहित करते हुए सेनापति चले। उसके पीछे मंत्रियों वीर योद्धाओं के सहित सेना की व्यूह-रचना करके नृप चलें।

स यायात् विषमं नागैः·········सर्वत्रैव पदातिभिः॥ ५१॥

संधि-विच्छेद—सर्वत्रैव–सर्वत्र+एव–यदि लघु या गुरु अ के बाद ए, ऐ, ओ या औ आते हैं तो अ+ए या ऐ=ऐ, आ+ओ या औ=औ हो जाते हैं–वृद्धि संधि।

समास—जलाढ्यम्–जलेन आढ्यम् इति–तृतीया तत्पुरुष। पदातिभिः–पादाभ्याम् अतति–गच्छति इति–पदातिः–तत्पुरुष–तैः–पदातिभिः।

रूप—नौभिः—नौ–नौका–नाव–शब्द, स्त्रीलिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन–नावा, नौभ्यां, नौभिः।

अन्वय—स विषमं जलाढ्यं (प्रदेशं) नागैः यायात्, समहीधरं अश्वैः सर्वं, नौभिः जलं, पदातिभिः सर्वत्र एवं यायात्।

व्याख्या—जल-पूर्ण और पहाड़ी प्रदेश को हाथियों और घोड़ों की सेना द्वारा पार करना चाहिए और नावों द्वारा जल मार्ग को तय करना चाहिए। पैदल सब जगह जा सकते हैं।

नाशयेत् कर्षयेत्···············आटविकान् पुरः॥ ५२॥

समास—दुर्ग-कंटक-मर्दनैः—दुर्ग-कंटकेषु मर्दनम् इति–दुर्ग-कंटक-मर्दनं–

मनुष्य-नेः । पर-देश-प्रवेशे-पराए देशः इति परदेशः-तत्पुरुष-परदेशे प्रवे
इति पर-देश-प्रवेशः—तत्पुरुष-तस्मिन् ।

रूप—कुर्यात्-कृ-करना-क्रिया, परस्मैपद, विधिलिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन
कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्युः ।

अन्वय—दुर्ग-कण्टक-मर्दनैः शत्रून् नाशयेत् कर्षित् वा, परदेश-प्रवेशे पुर
आटविकान् कुर्यात् ।

शब्दार्थ—दुर्ग-कंटक मर्दनैः=कांटे के समान शत्रु राज्यों को मर्दन करके। परदेश-प्रवेशे=दूसरे देश में प्रवेश करने पर। आटविकान् पुरः कुर्यात्=मार्गदर्शकों को आगे करे।

व्याख्या—मार्ग में कांटे के समान दुश्मनों के राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ या वशीभूत करता हुआ आगे बढ़े। दूसरे देश में प्रवेश करने के लिए मार्ग को जानने वाले मनुष्यों को आगे करके चले।

यत्र राजा तत्र कोषः...........को हि दातुर्न युध्यते ॥ ५३ ॥

रूप—दद्यात्-दा-देना-क्रिया, परस्मैपद, विधिलिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन-दद्यात्, दद्याताम्, दद्युः । दातुः दातृ-देने वाला-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन-दातुः, दात्रोः, दातृणाम् । युध्यते-युध्-युद्ध करना-क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-युध्यते, युध्येते, युध्यन्ते ।

अन्वय—यत्र राजा तत्र कोषः, कोषात् बिना राजता न । ततः स्वभृत्येभ्य
यात् हि दातुः कः न युध्यते ।

शब्दार्थ—कोषः=खजाना । स्वभृत्येभ्यः=अपने सेवकों को । दद्यात्=देना
ाहिये । दातुः=देने वाले का । कः न युध्यते=कौन युद्ध नहीं करता ।

व्याख्या—जहां राजा है वहीं कोष-खजाना होना चाहिए । बिना खजाने के
ता-राजभक्ति अर्थात् स्वामि-भक्ति संभव नहीं । जो राजा अपने योद्धाओं को
-दान करता अर्थात् पारितोषिक देता है, उसके लिए कौन नहीं लड़ता अर्थात्
ही युद्ध करते हैं ।

भावार्थ—वीरों को द्रव्य देकर सन्तुष्ट करना चाहिए ।

न नरस्य नरो दासः....लाघवं चापि धनाघन-नियन्धनम् ॥ ५४ ॥

सन्धि-विच्छेद—दासस्त्वर्थस्य-दासः + तु + अर्थस्य-विसर्ग को स्—विसर्ग सन्धि उ को व यण् संधि।

अन्वय—हे भूपते! नरः नरस्य दासः न (अस्ति) किन्तु अर्थस्य दासः। गौरवं वा लाघवं धनाधननिबंधनम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—अर्थस्य = धन का। गौरवं वा अपि लाघवम् = महत्ता या लघुता। धनाधननिबंधनम् = धन देने और न देने पर निर्भर है।

व्याख्या—मनुष्य मनुष्य का सेवक नहीं है, किंतु हे देव! धन का सेवक है। राजा की महत्ता अथवा लघुता धन देने या न देने पर निर्भर है।

अप्रसादोऽनधिष्ठानम्............तद्वैराग्यस्य कारणम् ॥४४॥

समास—देयांश-हरणम्—दातुं योग्यः देयः, देयः चासौ अंश इति देयांशः—कर्मधारय, देयांशस्य हरणम् इति तत्पुरुष।

अन्वय—सरल है।

शब्दार्थ—अप्रसादः = पुरस्कार—पारितोषिक—न देना। अनधिष्ठानम्=सेना में उच्च पद की प्राप्ति न होना अथवा ऊँचे पद से हटा देना। देयांश-हरणम् = दान के योग्य अंश का हरण कर लेना अर्थात् दान के धन को अपने अधिकार में कर लेना। काल—यापः = सैनिकों को उच्च पद न देकर व्यर्थ समय बिताना अर्थात् सैनिक को किसी पद पर नियुक्त न करके उसे खाली रखना। अप्रतिकारः= वैर का बदला न लेना। वैराग्यस्य कारणम्=सैनिकों के वैराग्य का कारण होता है।

व्याख्या—इस श्लोक में सैनिक के वैराग्य-विरक्ति के कारण बताये गये हैं। पुरस्कार के योग्य काम करने पर सैनिक को पुरस्कार न देना, सेना में उच्च पद न मिलना अथवा ऊंचे पद से नीचे गिरा देना, दान के योग्य धन पर अधिकार कर लेना, सैनिक को खाली रखना, शत्रु से वैर का बदला न लेना सैनिक की विरक्ति का कारण होता है।

अपीडयन् बलं शत्रुम्............दीर्घ-यान-प्रपीडितम् ॥४६॥

समास—सुख-साध्यम्-सुखेन साध्यम् इति-तृतीया तत्पुरुष। दीर्घ-यान-प्रपीडितम्-दीर्घेण यानेन प्रपीडितम् इति-दीर्घ-यान-प्रपीडितम्-तत्पुरुष।

रूप—द्विषाम्-द्विष्-शत्रु-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन-द्विषः, द्विषोः, द्विषाम्।

अन्वय—जिगीषुः (स्वकं) बलम् अपीडयन् शत्रून् अभिषेणयेत्
यान-प्रपीडितं द्विषां सैन्यं सुखसाध्यं (भवति)।

शब्दार्थ—जिगीषुः=विजय का अभिलाषी। बलम् अपीडयन्=अपन
को कष्ट न देता हुआ अर्थात् दूर देशस्थ शत्रु पर आक्रमण करने वाली
मार्ग में चलने से न थकाता हुआ। शत्रुम् अभिषेणयेत्=शत्रु पर आक्रम
दे अर्थात् हमला करके शत्रु सेना को कष्ट दे। दीर्घ-यान-प्रपीडितम्=लम्बे
की तय करने के कारण थकी हुई। द्विषां सैन्यम्=शत्रु की सेना। सुख-स
भवति=अनायास-आसानी-से जीती जा सकती है।

व्याख्या—विजयाभिलाषी राजा का कर्तव्य है कि अपनी सेना को भा
न होने दे-मार्ग में चलने की थकावट से दूर रख कर शत्रु पर हमला करके
उसकी सेना को पीड़ित कर दे। अधिक मार्ग चलने के कारण थकी हुई शत्रु की
सेना आसानी से जीत ली जाती है।

दायदादपरो मन्त्रो नास्ति·········दायादं तस्य विद्विषः ॥५७॥

सन्धि-विच्छेद—दायादादपरः—दायादात्+अपरः—त् को द्—व्यंजन संधि।

अन्वय—द्विषां भेदकरः दायादात् अपरः मन्त्रः न अस्ति। तस्मात् तस्य
विद्विषः यत्नात् दायादम् उत्थापयेत्।

शब्दार्थ—द्विषां भेदकरः=शत्रुओं का भेदक। दायादात् अपरः=वंश वाले
या पुत्र के अतिरिक्त। मन्त्रः नास्ति=मंत्र-साधन-नहीं है। विद्विषः=शत्रु के।
दायादम् उत्थापयेत्=हिस्सेदार को खड़ा कर दे।

व्याख्या—पैतृक सम्पत्ति के विभाग का अधिकारी अर्थात् पिता की सम्पत्ति
में हिस्सा लेने वाला दायाद ही शत्रु के विनाश का प्रमुख साधन-कारण-होता
है, अत एव शत्रु का विध्वंस करने को दायाद को उत्तेजित करके खड़ा कर देना
चाहिए। तात्पर्य यह है कि दायाद को अपनी ओर मिला कर शत्रु की गुप्त
बातों का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

संधाय युवराजेन··················अभियोक्तुः स्थिरात्मनः ॥५८॥

समास—मुख्य-मंत्रिणा-मुख्यः च असौ मंत्री
न। स्थिरात्मनः-स्थिरः

रूप—अभियोक्तुः—अभियोक्तृ—आक्रान्ता—शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन—अभियोक्तुः, अभियोक्त्रोः, अभियोक्तॄणाम्।

अन्वय—मुख्य-मन्त्रिणा यदि वा युवराजेन संधाय स्थिरात्मनः अभियोक्तुः अन्तः प्रकोपणं कार्यम्।

शब्दार्थ—मुख्यमन्त्रिणा यदि वा युवराजेन संधाय=मुख्य मन्त्री अथवा युवराज को फोड़ कर तथा उनसे संधि करके। स्थिरात्मनः अभियोक्तुः=धैर्य-शील आक्रान्ता को। अन्तः प्रकोपणं कार्यम्=शत्रु के घर में कलह-झगड़ा-उत्पन्न कर देना चाहिए।

व्याख्या—धैर्यवान् आक्रान्ता को चाहिए कि शत्रु के मुख्य मन्त्री अथवा युवराज को अपनी ओर मिला ले अर्थात् शत्रु के मुख्य मन्त्री या युवराज को राज्य का लोभ देकर फोड़ ले और शत्रु के घर में कलह उत्पन्न कर दे अथवा [illegible]जावर्ग में असन्तोष पैदा कर उसे उत्तेजित करदे।

भावार्थ—शत्रु को जीतने के लिए विविध उपाय करने चाहिए।

शब्दार्थ—राजा विहस्य उक्तम्=राजा ने हंस कर कहा। एतत् सर्वं सत्यम्=यह सब सत्य है।

किंतु=परन्तु—

अन्यदुच्छृङ्खलं सत्त्वम्'''''''''तेजस्तिमिरयोः कुतः ॥ ५६ ॥

सन्धि-विच्छेद—अन्यच्छास्त्र-नियन्त्रितम्-अन्यत्+शास्त्र — नियन्त्रितम्—त् [illegible]ष् और श् को छ्-व्यंजन संधि।

समास—शास्त्र-नियन्त्रितम्-शास्त्रेण नियन्त्रितम् इति-शास्त्र-नियन्त्रितम्—[illegible]पुरुष। सामानाधिकरण्यम्-समानम् अधिकरणं ययोः तयोः भावः सामानाधि[illegible]रण्यम्-बहुव्रीहि। तेजस्तिमिरयोः-तेजः च तिमिरं च तेजस्तिमिरे-तयोः-तेजस्ति[illegible]रयोः-द्वन्द्व।

अन्वय—उच्छृङ्खलं सत्वम् अन्यत्, शास्त्र-नियन्त्रितं सत्वम् अन्यत्। तेज[illegible]तिमिरयोः सामानाधिकरण्यं कुतः (न कुत्रचित्)।

शब्दार्थ—उच्छृङ्खलं सत्वम्=अन्यत्=उच्छृङ्खल—अनुशासन में न रहने और के नियमों को न जानने वाला प्राणी एक ओर। शास्त्र-नियन्त्रितं सत्वम् अन्यत्=[illegible]न का पूर्णतया पालन करने वाले तथा युद्ध के नियमों के ज्ञाता दूसरी

ओर। तेजस्तिमिरयोः=प्रकाश और अन्धकार का। समानाधिकरणम्=कै कुतः=कैसे।

व्याख्या—एक ओर अनुशासनहीन और युद्ध के नियमों से अनभिज्ञ प्राणी, दूसरी ओर अनुशासन का पूर्णतया पालन करने वाले तथा युद्ध नियमों के जानने वाले सैनिक, भला इन दोनों की समानता कैसे हो सकती है जिस प्रकार कि प्रकाश और अन्धकार की समानता नहीं हो सकती।

शब्दार्थ—अथ राजा उत्थाय=राजा उठ कर। मौहूर्तिकवेदित-लग्ने=ज्योतिष द्वारा बताये हुए समय में। प्रस्थितः=चल दिया।

अथ प्रणिधि प्रहितश्चरः हिरण्यगर्भ-समीपमागत्य-आगन्तुका अपि उपकारकाः दृश्यन्ते कदाचित।

सन्धि-विच्छेद—आगत्योवाच—आगत्य+उवाच—गुणसंधि। चिरादत्रास्ते—चिरात्+अत्र+आस्ते—त् को द्—व्यंजन संधि, दीर्घ संधि। तथाप्यागन्तुकाः—तथापि+आगन्तुकाः—इ को य्—यणसंधि।

समास—मलय-पर्वताधित्यकायाम्—मलय—पर्वतस्य अधित्यका—इति मलय-पर्वताधित्यका—तत्पुरुष—तस्याम्। समावासितकटकः—समावासितः कटकः येन सः—बहुव्रीहि। उपकारकाः—उपकारं कुर्वन्ति इति उपकारकाः।

रूप—वर्तते—वृत्—होना—क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—वर्तते, वर्तेते, वर्तन्ते। नियुक्तः—युज्—जोड़ना—मिलाना, नि उपसर्ग—नियुज्—नियुक्त करना क्रिया—से त (क्त) प्रत्यय। दृश्यन्ते—दृश्—देखना—क्रिया, आत्मनेपद, कर्मवाच्य, वर्तमान काल, अन्य पुरुष—दृश्यते, दृश्येते, दृश्यन्ते।

शब्दार्थ—प्रहितः=भेजा हुआ। प्रणिधिः=गुप्तचर। आगत्य उवाच आकर बोला। समागतप्रायः=प्रायः आया हुआ। संप्रति=इस समय। मलय पर्वत-अधित्यकायाम्=मलय पर्वत के ऊपर की भूमि में—ऊपरी भाग में। समावासितकटकः=सेना को ठहरा देने वाला—छावनी डालने वाला। दुर्गशोधनम्=किले का शोधन-निरीक्षण। अनुसन्धातव्यम्=अनुसंधान करना चाहिए—खोज करना चाहिए। तत् इंगितम्=उसके संकेत को। मया अवगतम्=मैंने समझ लिया। अस्मद्-दुर्गे नियुक्तः=हमारे किले में नियुक्त कर दिया है। संभवति=हो सकता है। चिरात् अत्र आस्ते=बहुत समय से यहाँ रहता है। आगन्तुकः संभवति=

आगन्तुक–अतिथि–शंका का स्थान होता है। उपकारकाः=उपकार करने वाले। दृश्यन्ते=देखे जाते हैं।

व्याख्या—भेजे हुए गुप्तचर ने हिरण्यगर्भ से आकर कहा—स्वामिन्! राजा चित्रवर्ण आ पहुँचा है। इस समय उसने मलय पर्वत के ऊपरी भाग में अपनी सेना का पड़ाव डाला है अर्थात् वह ससैन्य यहाँ ठहरा हुआ है। प्रत्येक क्षण दुर्ग का शोधन–निरीक्षण–करना आवश्यक है, क्योंकि शत्रु का महामन्त्री कूट-नीतिज्ञ गृध्र है। वह अपने किसी मित्र के साथ विश्वस्त हो वार्त्तालाप कर रहा था, तब मैंने उसके संकेत द्वारा ज्ञात कर लिया कि उसने हमारे दुर्ग में पहले से ही किसी को नियुक्त कर दिया है अर्थात् हमारा भेद लेने को भेदिया हमारे यहाँ भेज दिया है। मन्त्री चक्रवाक कहता है—स्वामिन्! वह मेघवर्ण नामक काक ही हो सकता है। राजा उत्तर देता है—ऐसा कभी नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो वह शत्रु पक्ष के दूत शुक का अनादर करने–दंड देने को क्यों तत्पर होता? दूसरे, वह चिरकाल से यहाँ रहता है। मन्त्री कहता है—तो भी अतिथि शंका का स्थान होता है अर्थात् नवीन का सहसा विश्वास नहीं करना चाहिए। राजा हिरण्यगर्भ कहता है—आगन्तुक भी कभी-कभी उपकारी देखे जाते हैं।

शृणु=सुनिये—

परोऽपि हितवान् बन्धु··············हितमारण्यमौषधम् ॥६०॥

सन्धि-विच्छेद—बन्धुरप्यहितः=बन्धुः+अपि–विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग सन्धि। अपि+अहितः–इ को य–यण् सन्धि।

समास—देहजः=देहे जायते इति देहजः=सप्तमी तत्पुरुष।

रूप—हितवान्–हितवत् = हितकारी–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एक-वचन–हितवान्, हितवन्तौ हितवन्तः।

अन्वय—हितवान् परः अपि बन्धुः (भवति)। अहितः बन्धुः अपि परः (भवति)। देहजः व्याधिः अहितः, आरण्यम् औषधं हितम् (भवति)।

शब्दार्थ—हितवान्=हितकारी। परः=अन्य–पराया। अहितः= बुराई चाहने–करने–वाला। देहजः व्याधिः–शरीर में उत्पन्न रोग। आरण्यम् औषधम्=जंगल में उत्पन्न औषध।

व्याख्या—भलाई करने वाला अन्य पुरुष–पराया आदमी भी–बन्धु–भाई

ही होता है। अहित–बुराई–अपकार–करने वाला अपना भाई पराय
शरीर में उत्पन्न व्याधि–रोग अपकार करने वाला होता है, परन्तु व
होने वाली औषध हितकारी हो जाती है।

अपरंच पश्य=और भी देखिए—

आसीद् वीरवरो नाम ....स ददौ सुतमात्मनः ॥

समास—महीभृतः–महीं बिभर्ति इति महीभृत्–तत्पुरुष–तस्य–म
स्वल्पकालेन–स्वल्पः च असौ काल इति स्वल्प-कालः–तत्पुरुष–तेन।

रूप—आसीत्–अस्–होना–क्रिया, परस्मैपद, भूतकाल, अन्य पुरु
वचन–आसीत्, आस्ताम्, आसन्। ददौ–दा–देना–क्रिया, परोक्षभूत
परस्मैपद, अन्य पुरुष, एकवचन–ददौ, ददतुः, ददुः।

अन्वय—महीभृतः शूद्रकस्य वीरवरः नाम सेवकः आसीत्। सः स्वल्प
कालेन आत्मनः सुतं ददौ।

शब्दार्थ—महीभृतः=राजा का। स्वल्प-कालेन=बहुत थोड़े समय में ही।
पुत्रं ददौ=पुत्र का बलिदान कर दिया।

व्याख्या—राजा शूद्रक का वीरवर नामक एक सेवक था। उसने स्वल्प-
काल में ही पुत्र का बलिदान कर दिया अर्थात् अपने स्वामी की भलाई के लिए
पुत्र को देवी की भेंट चढ़ा दिया।

चकः पृच्छति=मन्त्री चक्रवा पूछता है। एतत् कथम्=यह कैसे। राजा हिर-
ण्य=राजा हिरण्यगर्भ ध्यान से कहता है।

वीरवरस्य कथा=वीरवर की कथा—

अहं पुरा शूद्रकस्य राज ....तृतीयस्य राज्ञः ॥

समास—क्रीडा-सरसि–क्रीडार्थं सरः–इति क्रीडासरः–तत्पुरुषः–तस्मिन्।
वेत्रवती–वेत्रवती इति–वरी तत्पुरुष।

रूप—देहि–दा–देना–क्रिया, परस्मैपद, आज्ञार्थक, मध्यम पुरुष, एकवचन–
देहि–दत्तात्, दत्तम्, दत्त।

शब्दार्थ—क्रीडा-सरसि—

कारय=राजा का दर्शन कराओ। अस्मद्-वर्त्तनम्=हमारा दैनिक वेतन। क्रियताम्=कर दीजिए। प्रत्यहं सुवर्ण-पंच शतानि=प्रतिदिन पांच सौ स्वर्ण-मुद्राएँ—अशर्फ़ियाँ।

व्याख्या—राज हिरण्यगर्भ राजहंस कहता है कि मैं पहले राजा शूद्रक के क्रीड़ा-सरोवर के प्रति अनुरक्त हो गया। वहाँ वीरवर नामक एक राजपूत किसी दूसरे देश से आकर राजा के द्वार पर स्थित ड्योढ़ीवान से बोला—मैं नौकरी चाहने वाला एक राजपूत हूँ, मुझे राजा का दर्शन कराइये अर्थात् मुझे राज-सभा में ले चलिये। तत्पश्चात् प्रतीहारी उसे राजा के समक्ष ले गया, तब वीरवर बोला—स्वामिन्! यदि आप मुझे नौकर रखना चाहते हैं तो मेरा वेतन नियत कर दीजिये। राजा शूद्रक ने पूछा—तुम्हारा वेतन कितना होगा? वीरवर उत्तर देता है—प्रतिदिन चार सौ अशर्फ़ियाँ। राजा पूछता है कि तुम्हारे पास क्या-क्या सामग्री है? वीरवर कहता है—दो भुजाएँ और तीसरी तलवार।

राजाह-नैतच्छक्यम्। तच्छ्रुत्वा·········तदा स्वगृहमपि याति ॥

सन्धि-विच्छेद—नैतच्छक्यम् – न+एतत्–वृद्धि संधि। नैतत्+शक्यम् – त् को च् और श् को छ्–व्यंजन संधि। तत्+श्रुत्वा–त् को च् और श् को छ्–व्यंजन संधि। गृह्णात्यनुपयुक्तः–गृह्णाति+अनुपयुक्तः–इ को य=यण् संधि।

समास—खड्ग-पाणिः–खड्गः पाणौ यस्य सः–खड्गपाणिः–बहुव्रीहि।

रूप—उपयुक्तः–युज्–मिलाना–जोड़ना–क्रिया–उप उपसर्ग–उपयुज्–क्रिया से त (क्त) प्रत्यय। गृह्णाति–ग्रह–ग्रहण करना क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–गृह्णाति, गृह्णीतः, गृह्णन्ति। राज्ञा–राजन्–राजा–शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन–राज्ञा, राजभ्याम् राजभिः। समादिशति–दिश्–दिखाना–क्रिया, सम् और आ दोनों उपसर्ग समादिश्–आदेश देना–क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–समादिशति, समादिशतः, समादिशन्ति। याति–या–जाना–क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष–याति, यातः, यान्ति।

शब्दार्थ—न एतत् शक्यम्=यह संभव नहीं। उक्तम्=कहा। दिन–चतुष्टयस्य=चार दिन का। अस्य स्वरूपं ज्ञायतां=इसके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कीजिये अर्थात् इसके क्रिया-कलाप–कार्यों को जानना चाहिये। उपयुक्तः=उचित। अनुपयुक्तः=

शुभाव=सुना। द्वारि=दरवाजे पर। क्रन्दनानुसरणं क्रियताम्=रोने की ध्वनि का अनुसर करो अर्थात् देखो कौन रो रहा है। आज्ञापयति=आज्ञा देते हैं। उक्त्वा=कह कर। चिन्तितम्=सोचा। सूचीभेद्ये तमसि=घने-गहरे अन्धेरे में। प्रेरितः=भेज दिया। अनुगत्वा=पीछे पीछे जाकर। निरूपयामि=निरूपण करूं=देखूं। आदाय=लेकर। अनुसरक्रमेण=पीछे पीछे। बहिः निर्जगाम=बाहर निकल गया।

व्याख्या—इसके बाद राजा ने रात्रि में करुणाभरी रोने की आवाज सुनी। राजा शूद्रक ने पुकारा—द्वार पर कौन है? उसने कहा—स्वामिन्! मैं वीरवर हूँ। राजा ने कहा—रोने की ध्वनि का अनुसरण करो अर्थात् यह देखो कि रोने की आवाज कहाँ से आ रही है और कौन क्यों रो रहा है? जो आज्ञा देव! यह कह कर वीरवर चल दिया। बाद में राजा ने सोचा कि मैंने यह उचित नहीं किया कि इतने गहरे गाढ़े-अँधेरे में इस अकेले राजपूत को भेज दिया। मैं भी इसके पीछे पीछे जाकर देखूं कि यह क्या मामला है? यह सोच कर राजा भी तलवार उठा-कर उसके पीछे पीछे चल दिया और नगर के बाहर निकल गया।

गत्वा च वीरवरेण सा रुदती......इत्युक्त्वा अदृश्याभवत्॥

सन्धि-विच्छेद—त्विषोक्तम्–त्विषा+उक्तम् = अ + उ = ओ=गुणसंधि। चिरादेतस्य–चिरात् + एतस्य–त् को द् = व्यंजनसन्धि।

समास—रूप-यौवन-सम्पन्ना–रूपेण यौवनेन च सम्पन्ना इति—तत्पुरुष। सर्वालंकार-भूषिता–सर्वैः अलंकारैः भूषिता इति–तत्पुरुष।

रूप—दृष्टा–दृश्–देखना–क्रिया से त (क्त) प्रत्यय। स्यात्–अस्=होना क्रिया, परस्मैपद, विधि लिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन–स्यात्, स्याताम्, स्युः।

शब्दार्थ—रुदती = रुदन करती हुई। रूप-यौवन सम्पन्ना = रूप और यौवन से युक्त अर्थात् रूपवती और युवती। सर्वालंकार-भूषिता = सब प्रकार के गहनों से भूषित–सजी हुई अर्थात् विविध प्रकार के अलकार धारण करने वाली। काचित् स्त्री दृष्टा = कोई महिला देखी।

व्याख्या—वीरवर ने वहां जाकर सब प्रकार के गहने पहनकर सजी सजाई एक रूपवती युवती को रोते देखा। वीरवर ने उससे पूछा—तुम कौन हो और क्यों रोती हो? महिला ने कहा—मैं राजा शूद्रक की राज्यलक्ष्मी हूँ। चिर-काल से इसकी भुजाओं की छाया में अर्थात् इसके आश्रय में बड़े सुख से रही,

इस समय अन्यत्र जाऊंगी। वीरवर कहता है—जहाँ विपत्ति का होना सम्भव है, वहाँ उसका कुछ उपाय भी होता है अर्थात् ऐसा कोई उपाय बताइये कि यह विपत्ति टल जाय। तो आपका यहाँ रहना कैसे हो सकता है ? अर्थात् ऐसा कोई उपाय है, जिससे आपका यहाँ से जाना न हो। लक्ष्मी ने कहा—यदि तुम अपने पुत्र शक्तिधर को भगवती सर्वमंगला को भेंट दे दो तो मैं यहाँ फिर चिरकाल तक रह सकती हूँ—यह कह कर वह अदृश्य हो गई—छिप गई।

ततो वीरवरेण स्वगृहं गत्वा·······देहस्य विनियोगः श्लाघ्यः ॥

सन्धि-विच्छेद—परित्यज्योत्थायोपविष्टौ—परित्यज्य + उत्थाय + उपविष्टौ—गुणसंधि। तच्छ्रुत्वा—तत् + श्रुत्वा—त् को च् और श् को छ्—व्यञ्जन संधि।

समास—स्वामि-राज्य-रक्षार्थम्—स्वामिनः राज्यस्य रक्षार्थम् इति—तत्पुरुष।

रूप—परित्यज्य त्यज्—छोड़ना—क्रिया, परि उपसर्ग परित्यज्—क्रिया से त्वा प्रत्यय हुआ है, परन्तु उपसर्ग पूर्व में होने से "त्वा" को य हो गया है। उत्थाय स्था—ठहरना—क्रिया, उत् उपसर्ग उत्स्था—उठना—क्रिया से, "त्वा" प्रत्यय हुआ, उपसर्ग पूर्व में होने से त्वा को य हो गया है।

शब्दार्थ—निद्रायमाणा स्ववधूः प्रबोधिता = नींद में मग्न अपनी पत्नी को जगाया। परित्यज्य = त्याग कर। उपविष्टौ = बैठ गये। उक्तवान् = कह दिया। स्वामि-राज्य-रक्षार्थम् = स्वामी—राजा—के राज्य की रक्षा के लिए।

व्याख्या—तत्पश्चात् वीरवर ने अपने घर जाकर सोती हुई अपनी पत्नी और पुत्र को जगाया। वे नींद त्याग उठ कर बैठ गये। वीरवर ने लक्ष्मी का कथन आदि से अन्त तक उनको कह सुनाया। शक्तिधर सुनकर आनन्दमग्न होकर कहता है—मैं धन्य हूँ जो कि मुझ जैसे का उपयोग स्वामी के राज्य की रक्षा के लिए होता है अर्थात् यदि मेरे जीवन के उपयोग से स्वामी का राज्य बचता है तो मेरा जीवन धन्य है।

शब्दार्थ—तथाऽत=हे पिताजी। अधुना=अब। विलम्बस्य हेतुः कः=विलम्ब का क्या कारण है अर्थात् देर करना उचित नहीं। कदापि तावत् एतादृशे एव कर्मणि=इस प्रकार के शुभ कार्य में। एतस्य देहस्य विनियोगः श्लाघ्यः=इस प्रकार शरीर का व्यय-काम में आ जाना प्रशंसनीय है। यतः=क्योंकि—

धनानि जीवितं चैव परार्थे······विनाशे नियते सति ॥ ६२ ॥

समास—परार्थे-परेषाम् अर्थे-षष्ठी तत्पुरुष। सन्निमित्ते-सत् च तत् निमित्तम् इति सन्निमित्तम्-कर्मधारय-तस्मिन्।

रूप—उत्सृजेत-सृज्-उत्पन्न होना-करना-उत् उपसर्ग, उत्सृज त्यागना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-उत्सृजेत, उत्सृजेताम्, उत्सृजेयुः।

अन्वय—प्राज्ञः धनानि जीवितं च परार्थे उत्सृजेत्। विनाशे नियते सति सन्निमित्ते त्यागः वरम्।

शब्दार्थ—प्राज्ञः=चतुर। जीवितम्=जीवन को। परार्थे=दूसरों के लिए—परोपकार के लिये। उत्सृजेत्=त्याग देना चाहिए। विनाशे नियते सति=विनाश निश्चित है। सन्निमित्ते त्यागः वरम्=श्रेष्ठ निमित्त-कारण के लिए त्याग देना ही उत्तम है।

व्याख्या—बुद्धिमान् का यह कर्तव्य है कि धन और जीवन को दूसरे के लिए त्याग दे अर्थात् परोपकार में लगा दे। धन और जीवन का विनाश अटल है, अत एव उत्तम कार्य के लिए इनका त्याग कर देना ही श्रेयस्कर है।

शक्तिधर-मातोवाच...........राजा साश्चर्यं चिन्तयामास ॥

संधि-विच्छेद—शक्तिधरमातोवाच—शक्तिधर+माता + उवाच-आ+उ=ओ गुणसंधि। यद्येतन्न-यदि+एतत्+न- इ को य्-यणसंधि, त् को न्-व्यंजन संधि-यदि त् के बाद न आता है तो त् को न् और यदि त् के बाद ल आती है तो त् को ल् हो जाता है। इत्यालोच्य-इति+आलोच्य-इ को य्-यणसंधि।

समास—महावर्त्तनस्य-महत् च तत् वर्त्तनम्-कर्मधारय-तस्य। गृहीत-राजवर्त्तनस्य-गृहीतं यत् राज्ञः वर्त्तनम्=इति गृहीत-राज-वर्त्तनम्-तत्पुरुष-तस्य। शोकार्त्ता-शोकेन आर्त्ता इति शोकार्त्ता-तृतीया तत्पुरुष-तया।

रूप—उवाच-ब्रू-बोलना-कहना-क्रिया-ब्रू को वच्-हो जाता है-परस्मैपद, परोक्षभूत काल, अन्य पुरुष, एकवचन-उवाच, ऊचतुः, ऊचुः। कर्मणा-कर्मन्-काम -शब्द, नपुंसकलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन-कर्मणा, कर्मभ्यां, कर्मभिः। छिन्देद्-छिद्-काटना-क्रिया, परस्मैपद, परोक्षभूत काल, अन्य पुरुष एकवचन-चिच्छेद, चिच्छिदतुः, चिच्छिदुः। छिन्नवान्-छिन्नवत्-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन—छिन्नवान्, छिन्नवन्तौ, छिन्नवन्तः।

शब्दार्थ—यदि एतत् न कर्त्तव्यम्=यदि ऐसा नहीं किया जाय। केन कर्मणा-किस कार्य द्वारा। ...स्य महावर्त्तनस्य=मुख्य इस बड़ी आजीविका का। निष्कयः

व्याख्या—मेरे समान छोटे जीव संसार में जीवित रहते-जन्म लेते-और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु इसके समान न कोई हुआ और न होगा। जिसने स्वामी के हितार्थ सब कुछ त्याग दिया।

तदेतेन परित्यक्तेन मम राज्येनापि·········राजापि तैरलक्षितः सत्वरं प्रासाद-गर्भं गत्वा तथैव सुप्तः॥

सन्धि-विच्छेद—यद्यहमनुकम्पनीयः=यदि+अहम्+अनुकम्पनीयः—यण् संधि तथा सन्धि का साधारण नियम। भगवत्युवाच=भगवती+उवाच—यण् सन्धि। सत्वोत्कर्षेण=सत्व+उत्कर्षेण गुण सन्धि।

समास—आयुःशेषेण=आयुषः शेषः इति आयुःशेषः—तत्पुरुष—तेन। सदार-पुत्रः=दारैःपुत्रेण च सह इति सदारपुत्रः=कर्मधारय।

शब्दार्थ—परित्यक्तेन=त्याग देने से। स्वशिरः छेत्तुम्=अपना सिर काटने को। खड्गः समुल्लसितः=तलवार उठाई। हस्ते धृतः=हाथ पकड़ लिया। एतावता साहसेन अलम्=इस प्रकार का साहस न कर। जीवनान्ते=जीवन के अन्त तक। अनुकम्पनीयः=दया करने योग्य। आयुः शेषेण=आयु के शेष भाग से। सदार-पुत्रः=पत्नी और पुत्र सहित। यथाप्राप्तां गतिम्=जो दशा इनकी हुई है, उसी दशा को। सत्वोत्कर्षेण=हृदय की उदारता से। भृत्य-वात्सल्येन=नौकरों के प्रति स्नेह से। तुष्टास्मि=सन्तुष्ट हैं—प्रसन्न हूँ। अदृश्या अभवत्=गुप्त हो गई। तैः अलक्षितः=उनसे छिपा हुआ। सत्वरम् प्रासाद-गर्भं गत्वा तथैव सुप्तः=शीघ्र ही महल में जाकर उसी प्रकार सो गया।

व्याख्या—ऐसे स्वामिभक्त सेवक के त्याग देने से मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं अर्थात् इस सेवक के त्याग के सामने राज्य निम्न कोटि का है—तुच्छ है। यह विचार कर राजा शूद्रक ने भी अपना सिर काटने को खड्ग उठाया। उसी समय भगवती सर्वमङ्गला ने राजा का हाथ पकड़ लिया और कहा-पुत्र! मैं तुमसे प्रसन्न हूं। ऐसा साहस मत कर। जीवन के अन्त तक भी तेरा राज्य नष्ट नहीं होगा। राजा ने साष्टाङ्ग प्रणाम कर कहा-देवी, मुझे राज्य और जीवन से क्या प्रयोजन अर्थात् दोनों ही मेरे लिए आनन्ददायक नहीं हैं। यदि आप मुझ पर दया करना चाहती हैं तो मेरी आयु के शेष भाग से पत्नी और पुत्र सहित वीरवर जीवित हो जायें। नहीं तो मैं भी ऐसी ही दशा को प्राप्त हो

जाऊँगा अर्थात् मैं भी अपना जीवन समाप्त कर दूँ
"पुत्र ! हृदय की ऐसी उदारता और नौकरों के प्रति स
सन्तुष्ट हूँ । जा, विजयी हो । यह राजपुत्र भी परिवार स
यह कह देवी अदृश्य हो गई–छिप गई । तत्पश्चात् वीरव
सहित जीवन प्राप्त कर घर चला गया । राजा भी उनसे
में जाकर उसी प्रकार सो गया ।

अथ प्रभाते वीरवरो द्वारस्थः······कथमयं श्लाघ

समास—महासत्व—महान् सत्वः यस्य सः बहुव्रीहि ।

शब्दार्थ—द्वारस्थः=द्वार पर स्थित=खड़ा हुआ । सा रु
अवलोक्य=देख कर । अदृश्या अभवत्=छिप गई । अन्या
अन्य कुछ समाचार नहीं है । आकर्ण्य=सुन कर । मह
श्लाघ्यः=प्रशंसनीय ।

व्याख्या—प्रभात होने पर दरवाजे पर पहरा देने वाले वी
पूछा । तब वह बोला—स्वामिन् ! रोती हुई वह स्त्री मुझे देख
अन्य कोई बात-समाचार-नहीं है । उसके वचन सुन कर राजा
इस वीर पुरुष की किस प्रकार प्रशंसा की जाय अर्थात् इसकी प्र
लिये उपयुक्त शब्द मेरे पास नहीं हैं ।

ततः स राजा प्रातः··········तत्राप्युत्तमाधम-मध्यमाः

संधि-विच्छेद—तत्राप्युत्तमाधममध्यमाः—तत्र+अपि+उत्तम+अध
दीर्घ और यण् संधि ।

समास—शिष्ट–सभाम् शिष्टानां सभा इति शिष्ट-सभा षष्ठी तत्पु
उत्तमाधममध्यमाः—उत्तमः च अधमः च मध्यमः च–उत्तमाधममध्यमा

रूप—ददौ–दा–देना–क्रिया, परस्मैपद, परोक्षभूत काल, अन्य
एकवचन–ददौ, ददतुः, ददुः । सन्ति–अस–होना–क्रिया, परस्मैपद, व
काल, अन्य पुरुष, एकवचन–अस्ति, स्तः, सन्ति ।

शब्दार्थ—शिष्ट-सभां कृत्वा=सभासदों की सभा–कान्फ्रेन्स–करके ।
वृत्तान्तं प्रस्तुत्य=समस्त समाचार वर्णन करके । प्रसादात्=प्रसन्नता से ।
[illegible] ददौ=देख वीरवर को कर्णाटक का राज्य दे [illegible]

व्याख्या—तदनन्तर राजा ने दूसरे दिन प्रातः काल सभासदों की एक कान्फ्रेन्स बुलाई। उसमें रात्रि का समस्त वृत्तान्त वर्णन कर प्रसन्नतापूर्वक वीरवर को कर्णाटक प्रदेश का राज्य दे दिया अर्थात् उसे कर्णाटक का राजा बना दिया। तो क्या आगन्तुक—अपरिचित उस जाति में उत्पन्न होने से ही दुष्ट हो जाता है ? वहां भी उत्तम, मध्यम और अधम प्रकृति के प्राणी होते हैं।

चक्रवाको ब्रूते=राजा राजहंस का मंत्री चकवा कहता है—

योऽकार्यं कार्यवच्छास्ति......तन्नाशो न त्वकार्यतः ॥ ६४ ॥

सन्धि-विच्छेद—कार्यवच्छास्ति-कार्यवत्+शास्ति—त् को च् और श को छ्—व्यंजनसंधि। त्वकार्यतः—तु+अकार्यतः—उ को व्—यण्संधि।

समास—नृपेच्छया—नृपस्य इच्छा—इति—नृपेच्छा—षष्ठी तत्पुरुष—तया। स्वामि-मनो-दुःखम्—स्वामिनः मनः—इति स्वामि-मनः—षष्ठी तत्पुरुष, स्वामि-मनसि दुःखम् इति स्वामि-मनो-दुःखम्।

अन्वय—यः नृपेच्छया अकार्यं कार्यवत् शास्ति स किंमन्त्री (अस्ति) स्वामि-मनोदुःखम् वरं, अकार्यतः तन्नाशः न तु (वरम्)

शब्दार्थ—यः=जो मन्त्री। नृपेच्छया=राजा की इच्छा से। अकार्यं कार्यवत् शास्ति=अकार्य को कार्य के समान बताता है अर्थात् बुरे कार्य को अच्छा बनाता है। सः किंमंत्री=यह कुत्सित—बुरा—अयोग्य—मंत्री है। स्वामि-मनोदुःखं वरम्=स्वामी के मन को कष्ट पहुँचाना अच्छा है। अकार्यतः=अनुचित कार्य द्वारा। तन्नाशः न तु (वरम्)=स्वामी का नष्ट हो जाना अथवा उसका अधःपतन हो जाना अच्छा नहीं है।

व्याख्या—जो मंत्री अपने स्वामी की इच्छा के अनुरोध से अनुचित कार्य को भी उचित बताने लगता है अर्थात् स्वामी के प्रभाव से बुरे कार्य को भी अच्छा ही कहता है—चापलूसी करता है, वह कुत्सित—नीच—मंत्री है। स्वामी का मन दुःखी भले ही हो, परंतु उसका अधःपतन अथवा उसके प्राणों का विनाश अच्छा नहीं।

भावार्थ—मंत्री को चापलूस नहीं होना चाहिए।

वैद्यो गुरुश्च मन्त्री च··············क्षिप्रं स परिहीयते ॥६५॥

समास—शरीर-धर्म-कोशेभ्यः—शरीरं च धर्मः च कोशः च—शरीर-धर्म-कोशाः—द्वन्द्व—तेभ्यः। प्रियंवदः—प्रियं वदति इति प्रियंवदः—तत्पुरुष।

रूप—राज्ञः—राजन्—राजा—शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन—राज्ञः, राज्ञोः, राज्ञाम्। परिहीयते—परि उपसर्ग, हि—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—परिहीयते, परिहीयेते, परिहीयन्ते।

अन्वय—यस्य राज्ञः वैद्यः च मन्त्री च गुरुः च प्रियंवदः स क्षिप्रं शरीर धर्म-कोषेभ्यः परिहीयते।

शब्दार्थ—यस्य राज्ञः = जिस राजा के। वैद्यः गुरुः च मन्त्री = वैद्य-डाक्टर गुरु-धर्मोपदेशक, मन्त्री-राजनीति-उपदेशक। प्रियंवदः = मधुरभाषी—प्रिय बोलने वाला। स राजा = वह नृप। शरीर-धर्म-कोषेभ्यः = स्वास्थ्य, धर्म और कोष से। परिहीयते = घट जाता है—नष्ट हो जाता है।

व्याख्या—जिस राजा के वैद्य, धर्मगुरु और मन्त्री राजा के सम्मुख प्रिय-वाक्य बोलते हैं अर्थात् चापलूसी करते हैं, उस राजा का स्वास्थ्य, धर्म और कोष घट जाते हैं—नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—वैद्य, गुरु और मन्त्री को स्पष्टवक्ता होना चाहिये।

शृणु देव = स्वामिन् सुनिये।

पुण्याल्लब्धम्..............लोभान्निध्यर्थी नापितो हतः ॥६६॥

सन्धि-विच्छेद—पुण्याल्लब्धम्—पुण्यात् + लब्धम्—त् को ल्—व्यञ्जन-सन्धि। तन्ममापि = तत् + मम + अपि—त् को न्—व्यञ्जन सन्धि, अ + अ = आ—दीर्घ सन्धि। निध्यर्थी—निधि + अर्थी—इ को य्—यण् सन्धि।

समास—निध्यर्थी—निधेः + अर्थी—षष्ठी तत्पुरुष।

अन्वय—यत् एकेन पुण्यात् लब्धम् तत् मम अपि भविष्यति। निध्यर्थी नापितः लोभात् भिक्षुं हत्वा (स्वयमपि) हतः।

शब्दार्थ—पुण्यात् लब्धम् = पुण्य के बल से प्राप्त। निध्यर्थी नापितः = कोष का अभिलाषी नाई। भिक्षुं हत्वा = भिक्षुक को मार कर। हतः = मारा गया।

व्याख्या—अपने पुण्य के प्रताप से जो एक ने प्राप्त कर लिया, वह मुझे भी मिलेगा—यह विचार कर कोष-खजाना चाहने वाला नाई लोभवश भिक्षुक को मार कर स्वयं भी मारा गया।

राजा पृच्छति—हिरण्यगर्भ राजहंस पूछता है। एतत् कथम्—यह कैसे? मन्त्री ... मन्त्री कहता है।

नापितस्य कथा=नाई की कहानी

अस्ति अयोध्यायां चूडामणिर्नाम क्षत्रियः......नापितोऽपि राजपुरुषैः ताडितः पंचत्वं गतः।

सन्धि-विच्छेद—यावज्जीवम्–यावत्+जीवम्–त् को ज्–व्यंजन सन्धि। भिक्षोरागमनम्–भिक्षोः+आगमनं–विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग सन्धि।

समास—चन्द्रार्ध-चूडामणिः–चन्द्रस्य अर्धः–चन्द्रार्धः, चन्द्रार्धः चूडामणिर्यस्य सः–बहुव्रीहि। क्षीण-पापः–क्षीणं पापं यस्य सः–क्षीण-पापः–बहुव्रीहि। लगुडहस्तः–लगुडः हस्ते यस्य सः–लगुडहस्तः=बहुव्रीहि। राजपुरुषैः–राज्ञः पुरुषा इति राज-पुरुषाः–तत्पुरुष–तैः।

रूप—आदिष्टः–दिश्–दिखाना, आ उपसर्ग, आदिश्–आदेश देना–क्रिया से त (क्त) प्रत्यय। स्थास्यसि–स्था–ठहरना—खड़े होना–क्रिया, भविष्यकाल, मध्यम पुरुष, एकवचन–स्थास्यसि, स्थास्यथः, स्थास्यथ। प्रतीक्षते = देखना, प्रति उपसर्ग, प्रतीक्ष्–इन्तजार करना–क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल अन्य पुरुष, एकवचन–प्रतीक्षते, प्रतीक्षेते, प्रतीक्षन्ते।

शब्दार्थ—धनार्थिना = धन के लोभी ने। चन्द्रार्ध-चूडामणिः = भगवान् शंकर। आराधितः = आराधना–पूजा–की। क्षीण–पापः = पुण्यात्मा। भगवत् आदेशात् = भगवान् शिव की आज्ञा से। यक्षेश्वरेण आदिष्टः = कुबेर ने आदेश दिया। क्षौरं कृत्वा = हजामत बनवा कर। लगुडं धृत्वा = लकड़ी लेकर। निभृतं स्थास्यसि=गुप्त रूप से ठहरना। अंगणे=आंगन में। समागतं भिक्षुम्=आने वाले भिखारी को। लगुड–प्रहारेण हनिष्यसि = लाठी के प्रहार से मार दोगे। यावत् जीवम् = जीवन तक। अनुष्ठिते सति = करने पर। तद् कृतम् = वही हुआ। क्षौरकरणाय आगतः नापितः = हजामत बनाने को आया हुआ नाई। निधि-प्राप्तेः = खजाना–धन–पाने का। सुलभः = सरल। लगुडहस्तः = लट्ठधारी। आगमनं = आने को। निभृतं प्रतीक्षते = चुपचाप प्रतीक्षा करता रहता है। लगुडेन व्यापादितः = लाठी से मार दिया। पंचत्वं गतः = मर गया।

व्याख्या—अयोध्या में चूडामणि नामक एक क्षत्रिय था। धन की इच्छा रखने वाले उसने अति कष्ट से भगवान शंकर की बहुत समय तक पूजा की।

भगवान शिव के आदेश से कुबेर ने भिखारी (चूडामणि) को स्वप्न में दर्शन देकर आदेश दिया कि आज तुम प्रातः काल हजामत बनवा कर लाठी हाथ में लेकर घर में चुपचाप खड़े रहना। उसी समय आंगन में आने वाले भिखारी को देखोगे, तब निर्दयतापूर्वक लाठी के प्रहार से उसे मार डालना। इसके पश्चात् वह सुवर्ण-कलश हो जायगा। उससे तुम जीवन तक सुखी रहोगे। तत्पश्चात् अर्थात् स्वप्न देखने के बाद उसने वैसा ही किया अर्थात् भिक्षुक को मार डाला और वह सुवर्ण-कलश हो गया। यह दृश्य हजामत बनाने के लिये आए हुए नाई ने देख कर विचार किया। अहा! धन-प्राप्ति का यह एक सरल उपाय है। मैं भी ऐसा ही क्यों न करूँ। उस दिन से नाई प्रति दिन लाठी लिए हुए भिखारी के आगमन की प्रतीक्षा करता रहा। एक बार उसने एक भिखारी को पाकर लाठी से मार दिया। उस अपराध में नाई को राजपुरुषों ने पीटा, जिससे वह मर गया।

अतोऽहं ब्रवीमि=इसलिये मैं कहता हूं (मन्त्री चकवा कह रहा है) पुण्यात् लब्धं यदेकेन=एक ने पुण्यों के प्रभाव से प्राप्त किया इत्यादि।

शब्दार्थ—राजाह=राजा कहता है। यातु=इस प्रसंग को जाने दीजिए। प्रस्तुतम् अनुसन्धीयताम्=उपस्थित विषय पर विचार करना चाहिए। मलयाधित्यकायाम्=मलयपर्वत के ऊपरी भाग पर। चेत् चित्रवर्णः=यदि मयूराज चित्रवर्ण आ गया है। तत् अधुना किं विधेयम्=तो अब क्या करना चाहिए अर्थात् अब हमारा क्या कर्तव्य है।

मंत्री वदति-देव,......अतोऽसौ मूढो जेतुं शक्यः ॥

संधि-विच्छेद—गृध्रस्योपदेशेन—गृध्रस्य+उपदेशेन—अ+उ=ओ गुण संधि।

समास—आगत-प्रणिधि-मुखात्—आगतः चासौ प्रणिधिः इति—आगत-प्रणिधिः—कर्मधारय, आगत-प्रणिधेः मुखात्—तत्पुरुष। महामन्त्रिणः—महान् चासौ मन्त्री—इति महामन्त्री—कर्मधारय—तस्य।

शब्दार्थ—आगत-प्रणिधि-मुखात्=आने वाले गुप्तचर द्वारा। मया श्रुतम्=मैंने सुना है। चित्रवर्णेन अनादरः कृतः=चित्रवर्ण ने नहीं माना। जेतुं शक्यः=जीतने योग्य है—जीता जा सकता है।

व्याख्या—मन्त्री चकवाक कहता है—देव, शत्रु पक्ष का समाचार लेने को

भेजे हुए गुप्तचर ने यहां आकर सूचना दी है कि महामन्त्री गृध्र का उपदेश राजा चित्रवर्ण ने सुना अनसुना कर दिया अर्थात् मन्त्री की बात नहीं मानी। इसलिए उस मूर्ख राजा चित्रवर्ण पर सरलता से विजय की जा सकती है।

तथा च उक्तम्=उसी प्रकार कहा भी है—

लुब्धः क्रूरोऽलसोऽसत्यः······सुखच्छेद्यो रिपुः स्मृतः॥ ६७॥

सन्धि-विच्छेद—भीरुः=भीरुः+अस्थिरः—विसर्ग को स् फिर रेफ (र्) विसर्गसंधि।

समास—योधावमन्ता—योधस्य योधानां वा अवमन्ता—षष्ठी तत्पुरुष। सुखच्छेद्यः—छेत्तुं योग्यः छेद्यः, सुखेन छेद्यः इति सुखच्छेद्यः—तृतीया तत्पुरुष।

अन्वय—लुब्धः, क्रूरः, अलसः, असत्यः, प्रमादी, भीरुः अस्थिर, मूढः, योधावमन्ता च रिपुः सुखच्छेद्यः स्मृतः।

शब्दार्थ—लुब्धः=धन का लोभी। क्रूरः=निर्दय। असत्यः=झूठ बोलने वाला। प्रमादी=असावधान। भीरुः=डरपोक, कायर। अस्थिरः=अस्थायी विचार वाला। मूढः=विचार न करने वाला। योधावमन्ता=योद्धाओं अथवा सैनिकों का अपमान करने वाला। रिपुः सुखच्छेद्यः स्मृतः=शत्रु सरलता से नष्ट किया जा सकता है।

व्याख्या—इस श्लोक में यह वर्णन किया गया है कि कैसे शत्रु को सरलता से जीता जा सकता है। जो शत्रु धन का लोभी, क्रूर—परद्रोही या कठोर, आलसी, असत्यवादी, असावधान, कायर, चंचल प्रकृति वाला, मूर्ख और वीरों या सैनिकों का तिरस्कार करने वाला होता है, वह सुगमता से जीता जा सकता है।

ततोऽसौ यावद् अस्मद्-दुर्गम्······सेनापतयो नियुज्यन्ताम्॥

सन्धि-विच्छेद—नयद्रि-वन-वर्त्मसु—इ को य्—यणसंधि।

समास—अस्मद्-दुर्ग-द्वार-रोधम्-अस्माकं दुर्गं इति अस्मद्-दुर्गः,—षष्ठी तत्पुरुष, अस्मद्-दुर्गस्य द्वारस्य रोधः इति—तत्पुरुष—तम्। नयद्रि-वन-वर्त्मसु—नद्यः च पर्वताः च वनानि च नद्यद्रिपर्वतवनानि—द्वन्द्व—तेषां वर्त्मसु—तत्पुरुष।

रूप—करोति—कृ=करना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति। नियुज्यन्ताम्—युज्—जोड़ना—मिलाना, नि उपसर्ग, नियुज्—नियुक्त करना—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट् अन्य पुरुष, एकवचन—नियुज्यताम्, नियुज्येताम्, नियुज्यन्ताम्।

शब्दार्थ—यावत्=जब तक । अस्मद्–दुर्ग–द्वार–रोधं न करोति=हमारे किले के द्वार–फाटक–पर नहीं आता । तावत्=तब तक । नदी–अद्रि–वन–वर्त्मसु=नदियों, पर्वतों और वनों–नदी, पर्वत और वन के मार्गों में । तद्बलानि हन्तुम्=उसकी सेना का विनाश करने को । सारसादयः सेनापतयो नियुज्यन्ताम्=सारस आदि सेनापतियों को नियुक्त करना चाहिए ।

व्याख्या—जब तक मयूर चित्रवर्ण की सेना हमारे किले के द्वार–फाटक पर नहीं आती, तब तक नदी, पर्वत, वन के मार्गों में उसकी सेना का विध्वंस करने को सारस आदि सेनापतियों को नियुक्त करना चाहिए ।

तथा च उक्तम्= जैसा कि कहा है–

दीर्घ–वर्त्म–परिश्रान्तम्·········क्षुत्पिपासाहितक्लमम् ॥ ६८ ॥

समास—दीर्घ–वर्त्म–परिश्रान्तम्–दीर्घं च तत् वर्त्म इति दीर्घ–वर्त्म–कर्मधारय, दीर्घ–वर्त्मना परिश्रान्तम्–तत्पुरुष । नद्यद्रिवन–संकुलम्–नदी च अद्रिः–च च–नदी–अद्रि–वनानि–द्वन्द्व–तैः संकुलम्–तत्पुरुष । घोराग्नि–भय–संत्रस्तम्–घोरश्चासौ अग्निः इति घोराग्निः–कर्मधारय, घोराग्नेः भयात् संत्रस्तम्–तत्पुरुष । क्षुत् पिपासाहितक्लमम्–क्षुत् च पिपासा च–क्षुत्–पिपासे–द्वन्द्व–क्षुत्–पिपासाभ्याम् आहितः क्लमः यस्य तत्–बहुव्रीहि ।

शब्दार्थ—दीर्घ–वर्त्म–परिश्रान्तम्=लम्बा मार्ग तय करने के कारण थकी हुई । घोराग्नि–भय–संत्रस्तम्=भयानक आग लगने से भयभीत । क्षुत्पिपासाहित क्लमम्=भूख और प्यास से आकुल ।

व्याख्या—लम्बे मार्ग चलने से थकी हुई, नदी, वन पहाड़ से घिरी हुई, भयानक आग से भयभीत तथा भूख–प्यास से व्याकुल ।

भयानक आग लगने से भयभीत, भूख–प्यास से व्याकुल (सेना के सब विशेषण हैं) ।

नोट—६८, ६९, और ७० श्लोकों का एक साथ अर्थ समझना चाहिए । ७० वें श्लोक में क्रिया–विघातयेत् का प्रयोग है । तीनों श्लोकों का जब एक साथ अर्थ हो उसे विशेषक कहते हैं ।

–व्यसनम्·········वृष्टि–वात–समाकुलम् ॥ ६९ ॥

.. व्यसन–व्यग्रम्–व्यसने व्यग्रम्, इति–तत्पुरुष । व्याधि–दुर्भिक्ष–

पीड़ितम्–व्याधिना व्याधिभिः दुर्भिक्षेण च पीड़ितम्–तत्पुरुष। वृष्टि–वातसमाकुलम्–वृष्टि–वाताभ्यां समाकुलम्–तत्पुरुष।

शब्दार्थ—प्रमत्तम्=असावधान अथवा सुरापान करने से मतवाली। भोजन-व्यग्रम्=भोजन करने में व्यस्त। व्याधि–दुर्भिक्ष-पीड़ितम्=रोग तथा अकाल से पीड़ित। असंस्थितम्=अव्यवस्थित। अभूयिष्ठम्=अल्प। वृष्टि–वात–समाकुलम्=वर्षा तथा वायु से व्यग्र।

व्याख्या—जो शत्रु की सेना असावधान अथवा सुरापान करके मतवाली हो, भोजन करने में लगी हो, रोग और दुर्भिक्ष–अकाल–से सतायी गई हो, अव्यवस्थित–इधर–उधर बिखरी हुई हो, थोड़ी हो तथा वर्षा और आँधी से घबरायी हुई हो।

पंक–पांशु–जलाच्छन्नम्·········परसैन्यं विघातयेत् ॥ ७० ॥

समास—पंक–पांशु–जलाच्छन्नम्–पंकेन, पांशुना जलेन च आच्छन्नम्। दस्यु–विद्रुतम्–दस्युभिः–विद्रुतम्–तत्पुरुष।

अन्वय—महीपालः पंक–पांशु–जलाच्छन्नं, सुव्यस्तं, दस्यु–विद्रुतं एवं-भूतं पर सैन्यं विघातयेत्।

शब्दार्थ—महीपालः = राजा। पंक–पांशु–जलाच्छन्नम् = दलदल, धूल और जल से व्याप्त। सुव्यस्तम् = इधर–उधर बिखरी हुई। दस्यु–विद्रुतम् = डाकुओं से पीड़ा की हुई। परसैन्यं विघातयेत् = शत्रु की सेना का विनाश कर दे।

व्याख्या—अपनी सेना की रक्षा करता हुआ राजा दल-दल, धूल और जल से व्याप्त, इधर-उधर बिखरने से घबराई हुई, डाकुओं द्वारा सताई हुई शत्रु की सेना का विनाश कर दे।

भावार्थ—व्यसनग्रस्त शत्रु सेना का विनाश आवश्यक है।

अन्यत् च = और भी—

अवस्कन्द–भयाद्राजा·············निद्रा–व्याकुलसैनिकम् ॥७१॥

समास—अवस्कन्द–भयात्–अवस्कन्दात् भयम्–इति अवस्कन्दभयम्–तस्मात्–तत्पुरुष। निद्रा–व्याकुल-सैनिकम्–निद्रया व्याकुलः सैनिकः यस्मिन् तत्–बहुव्रीहि।

रूप—समाहन्यात्—सम् आ उपसर्ग, हन् मार डालना—क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन—समाहन्यात्, समाहन्याताम्, समाहन्युः।

अन्वय—राजा अवस्कन्दभयात्, प्रजागर-कृतश्रमं, दिवासुप्तं, निद्रा-व्याकुलसैनिकं समाहन्यात्।

शब्दार्थ—राजा = नृप। अवस्कन्दभयात् = आक्रमण के डर से। प्रजागर-कृत-श्रमम् = रात भर जागने का श्रम करने वाली। दिवा सुप्तम् = दि[न] में शयन करने वाली। निद्रा-व्याकुल-सैनिकम् = नींद से व्याकुल सैनिक समाहन्यात् = मार दे।

व्याख्या—राजा का कर्तव्य है कि जो शत्रु सेना आक्रमण के भय से रा[त] में जागती रही हो, अतएव दिन में सो रही हो और जिस समय उसके सैनिक नीं[द] के कारण व्याकुल हों, तब उस सेना का विनाश कर दे।

भावार्थ—शत्रु सेना किसी भी दशा में क्यों न हो, उस पर आक्रमण करना ही श्रेयस्कर है।

अतस्तस्य प्रमादिनो बलं गत्वा······सैनिका सेनापतयश्च ततः।

शब्दार्थ—तस्य प्रमादिनो बलं गत्वा = उस असावधान की सेना में जाकर। यथावकाशं दिवानिशम् = अवसर के अनुसार दिन-रात। अस्मत्-सेनापतयः = हमारे सेनापति। घ्नन्तु = मारकाट मचा दें। तथानुष्ठिते = ऐसा करने पर। चित्रवर्णस्य सैनिकाः = चित्रवर्ण के सैनिक। सेनापतयः च बहवो हताः = और अनेक सेनापति भी मारे गए।

व्याख्या—इसलिए उस असावधान राजा की सेना का मुकाबला कर हमारे सेनापति दिन-रात अवसर देखकर मारकाट मचा दें। ऐसा करने पर मयूरराज चित्रवर्ण के अनेक सेनापति और सैनिक मार डाले गये।

ततश्चित्रवर्णो विषण्णः············किं क्वाप्यविनयो ममास्ति।

शब्दार्थ—विषण्णः = उदासीन-दुःखी। स्वमन्त्रिणं दूरदर्शिनम् आह = अपने मन्त्री दूरदर्शी गृध्र से कहता है। किम् इति = यह क्या। अस्मान् उपेक्षा क्रियते = आप हमारी उपेक्षा करते हैं। किं क्व अपि मम अविनयः अस्ति = क्या मुझ से कुछ धृष्टता हो गई है?

तथा च उक्तम् = और भी कहा है—

दक्षः श्रियमधिगच्छति·········धर्मार्थ-यशांसि च विनीतः ॥७२॥

समास—धर्मार्थ-यशांसि-धर्मः च अर्थः च यशः च-धर्मार्थ-यशांसि-द्वन्द्व-वानि। पथ्याशी-पथ्यम् अश्नातीति पथ्याशी-तत्पुरुष।

रूप—श्रियम्-श्री-लक्ष्मी-शोभा-शब्द, द्वितीया विभक्ति, एकवचन-श्रियम्, श्रियौ, श्रियः। अधिगच्छति-गम्-गच्छ्-जाना-क्रिया, अधि उपसर्ग, अधिगम्-प्राप्त करना, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-अधिगच्छति, अधिगच्छतः, अधिगच्छन्ति।

अन्वय—दक्षः श्रियम् अधिगच्छति, पथ्याशी कल्यताम् (अधिगच्छति), अरोगी सुखम्, उद्युक्तः विद्यान्तं च विनीतः धर्मार्थ-यशांसि (अधिगच्छति)।

शब्दार्थ—दक्षः = अपने कार्य में चतुर। श्रियम् अधिगच्छति = लक्ष्मी को प्राप्त करता है। पथ्याशी = पथ्य भोजन करने वाला-संयम-पूर्वक खाने वाला। कल्यताम् = नीरोगता को। उद्युक्तः = अथक परिश्रमी। विद्यान्तम् = विद्या के अन्त को। विनीतः = शिक्षित, नीति से काम करने वाला-नम्र। धर्मार्थ-यशांसि = धर्म, धन और यश को।

व्याख्या—अपने कार्य में चतुर व्यक्ति धन प्राप्त करता है अर्थात् धनाढ्य हो जाता है। पथ्य भोजन करने वाला-संयमपूर्वक खाने वाला सदा नीरोग रहता है। स्वस्थ पुरुष सुख प्राप्त करता है। सर्वतोभाव से अध्ययन करने वाला अर्थात् पढ़ने में अथक परिश्रमी विद्वान् हो जाता है और सुशिक्षित-विनीत-पुरुष को संसार में धर्म, धन और यश की प्राप्ति होती है।

प्रसंग—चित्रवर्ण का मन्त्री पुन बोला। देव, प्रभु=देव सुनिये।

अविद्वानपि भूपालः·················जलासन्नतरुर्यथा ॥७३॥

समास—विद्या-वृद्धोपसेवया-विद्या-वृद्धानाम् उपसेवा-तत्पुरुष-तया। जलासन्नतरुः-जलस्य आसन्न इति जलासन्नः-तत्पुरुष, जलासन्नस्य तरुः इति-तत्पुरुष।

रूप—अवाप्नोति-अव् उपसर्ग, आप्-पाना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-अवाप्नोति, अवाप्नुतः, अवाप्नुवन्ति।

अन्वय—अविद्वान् अपि भूपालः विद्या-वृद्धोपसेवया परां श्रियम् अवाप्नोति यथा जलासन्नतरुः।

रूप—अनुभूयते-भू-होना, अनु उपसर्ग, अनुभू-अनुभव-करना-क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-अनुभूयते, अनुभूयेते, अनुभूयन्ते।

शब्दार्थ—स्वबलोत्साहम् अवलोक्य=अपनी सेना का उत्साह देखकर। साहसैकरसिना=केवल साहस को ही मुख्य मानने वाले-साहस का आनन्द लेने वाले। मया उपन्यस्तेषु=मेरे द्वारा उपस्थित किये गये कर्त्तव्य कार्यों में भी। अनवधान कृतम्=लापरवाही दिखाई-सुना अनसुना कर दिया अर्थात् मेरी सलाह न मानी। वाक्पारुष्यं च कृतम्=उल्टा-सीधा कह गये-कठोर वचन कहा। दुर्नीतेः फलम् अनुभूयते=दुर्नीति का फल भोग रहे हो।

व्याख्या—अपनी सेना के उत्साह को देख कर केवल साहस को ही मुख्य मानने वाले-केवल साहस पर ही विश्वास करने वाले-तुमने मेरे द्वारा बताये हुए मन्त्र-सलाह के प्रति उदासीनता दिखाई और उल्टी-सीधी बातें कीं अर्थात् मेरी सम्मति न मान कर मनमाना काम किया, उसी दुर्नीति—उसी दुर्व्यवहार के फल का अनुभव अब हो रहा है अर्थात् यह उसी का परिणाम है।

तथा च उक्तम्=और कहा भी है:—

मुदं विषादः शरदं हिमागमः··········अपि हन्ति दुर्नयः ॥ ७५ ॥

अन्वय—विषादः मुदं, हिमागमः शरदं, विवस्वान् तमः, कृतघ्नता सुकृतं, प्रियोपपत्तिः शुचं, नयः आपदं, दुर्नयः समृद्धा अपि श्रियः हन्ति। (हन्ति क्रिया का प्रयोग सबके साथ किया जा सकता है)

शब्दार्थ—विषादः मुदम्=दुःख हर्ष को। हिमागमः शरदं=हेमन्त ऋतु शरद् ऋतु को। विवस्वान्=सूर्य। कृतघ्नता=अहसान-फरामोशी-किसी के उपकार को न मानना। सुकृतं=पुण्य को। प्रियोपपत्तिः=प्रिय की प्राप्ति। शुचम्=शोक को। नयः=नीति। दुर्नयः=दुर्नीति। समृद्धा श्रियः=बढ़ी हुई लक्ष्मी-धन-दौलत को। हन्ति=नष्ट कर देती है।

व्याख्या—दुःख हर्ष को नष्ट कर देता है, हेमन्त ऋतु के आने पर शरद् ऋतु का अन्त हो जाता है, सूर्य अन्धकार का नाश करता है और कृतघ्नता—अहसान-फरामोशी—अहसान न मानना—पुण्य-सत्कार्य को उखाड़ फेंकती है। प्रिय वस्तु की प्राप्ति से शोक दूर हो जाता है और नीति विपत्ति का अन्त कर देती है। दुर्नीति—अन्याय से बड़ी-चढ़ी-लक्ष्मी-धन-दौलत की इतिश्री-समाप्ति हो जाती है।

ततो मयापि आलोचितम्········वागुल्काभिस्तिमिरयति ॥

सन्धि-विच्छेद—मयाप्यालोचितम्–मया + अपि + आलोचितम्–दीर्घ और यण् सन्धि । प्रज्ञाहीनोऽयम्–प्रज्ञाहीनो + अयम्–पूर्वरूप संधि ।

समास—प्रज्ञाहीनः–प्रज्ञया हीनः इति प्रज्ञाहीनः–तृतीया तत्पुरुष । नीतिशास्त्र–कथा–कौमुदीम्–नीतेः शास्त्रम् इति नीति–शास्त्रम्–तत्पुरुष, नीतिशास्त्रस्य कथा एव कौमुदी–इति नीति–शास्त्र–कथा कौमुदी–ताम् । वागुल्काभिः वाचः एव उल्काः इति वागुल्काः–ताभिः–वागुल्काभिः ।

शब्दार्थ—मया अपि आलोचितम् = मैंने भी विचार किया । अयं राजा प्रज्ञा–हीनः = यह राजा निर्बुद्धि है । नो चेत् = नहीं तो । नीतिशास्त्र–कथा कौमुदीम् = नीतिशास्त्र की कथारूपी कौमुदी–ज्योत्स्ना–को । वागुल्काभिः = वाणीरूपी अलात–लुआठी–बनेठी–से । कथ तिमिरयति=क्यों मलिन करता है ।

व्याख्या—तब मैंने भी सोचा कि राजा निर्बुद्धि है, वरन् नीतिशास्त्र की कथारूपी चांदनी को वाणीरूपी बनेठी से क्यों मलिन करता ।

यतः = क्यों कि—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा··············दर्पणः किं करिष्यति ॥७६॥

रूप—करोति = कृ–करना–क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति । करिष्यति–कृ–करना–क्रिया, भविष्यत्काल, अन्य पुरुष, एकवचन–करिष्यति, करिष्यतः, करिष्यन्ति ।

अन्वय—यस्य स्वयं प्रज्ञा न अस्ति, शास्त्रं तस्य किं करोति । (न किमपि) लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ?

शब्दार्थ—यस्य स्वयं प्रज्ञा नास्ति = जिसमें स्वयं प्रतिभा नहीं । शास्त्रं तस्य किं करोति = शास्त्रों का अध्ययन उसका क्या भला कर सकता है अर्थात् कुछ नहीं । लोचनाभ्यां विहीनस्य = नेत्रहीन–अन्धे–को । दर्पणः किं करिष्यति = दर्पण–शीशा क्या करेगा ।

व्याख्या—जिस व्यक्ति में स्वयं प्रतिभा नहीं है, शास्त्रों का अध्ययन भी उसका कुछ उपकार नहीं कर सकता है, जिस प्रकार अन्धे प्राणी के लिए दर्पण । तात्पर्य यह है कि जैसे अन्धा दर्पण का लाभ नहीं उठा सकता; उसी प्रकार दुर्बुद्धि शास्त्र पढ़ कर भी उससे प्राप्त होने वाले लाभ से वञ्चित ही रहता है ।

अथ राजा बद्धांजलिराह .... क्रियतामत्र प्रतीकारः ॥

सन्धि-विच्छेद—बद्धांजलिराह–बद्धाजलिः + आह–विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग संधि। अस्त्ययम्–अस्तु + अयम्–उ को व्–यण् संधि। तथोपदिश–तथा+उपदिश–अ + उ = ओ–गुणसन्धि।

समास—बद्धाञ्जलिः–बद्धः अञ्जलिः येन सः–बद्धांजलिः–बहुव्रीहि। अवशिष्टबल–सहितः–अवशिष्टं च तद् बलम्–इति अवशिष्ट–बलम्–कर्मधारय–अवशिष्ट–बलेन सहितः–इति तृतीया तत्पुरुष।

रूप—आह–ब्रू–बोलना–क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–आह, आहतुः, आहुः–ब्रू को पांच वचनों में "आह" आदेश भी हो जाता है। उपदिश–दिश्–दिखाना, उप उपसर्ग–उपदिश्–उपदेश–देना–क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन–उपदिश, उपदिशतम्, उपदिशत। क्रियताम्–कृ–करना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन–क्रियताम्, क्रियेताम्, क्रियन्ताम्।

शब्दार्थ—बद्धांजलिः आह = हाथ जोड़कर कहता है। अयं मम अपराधः अस्तु = यह मेरा अपराध क्षमा करो। यथा = जैसे। अवशिष्ट–बल–सहितः = शेष–सेना सहित। प्रत्यावृत्य = लौटकर। तथा उपदिश = वैसा उपदेश करो। स्वगतं चिन्तयति = मन ही मन में सोचता है। प्रतीकारः क्रियताम् = वैर का शोधन करना चाहिये—उपाय करना चाहिये।

व्याख्या—राजा चित्रवर्ण हाथ जोड़ कर कहता है–तात, यह मेरा अपराध है। अब कोई ऐसा सोचिए, जिससे मैं शेष सेना के साथ लौटकर विन्ध्याचल चला जाऊँ। दूरदर्शी मन्त्री गृध्र मन में विचार करता है–इसका प्रतीकार–उपाय करना चाहिये। यतः = क्योंकि।

देवतासु गुरौ गोषु .... बाल–वृद्धातुरेषु च ॥३७॥

समास—बाल–वृद्धातुरेषु–बाल च वृद्धः च आतुरः च–बाल–वृद्धातुराः–द्वन्द्व–तेषु।

रूप—गुरौ–गुरु–बड़ा, शिक्षक–शब्द, पुलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन–गुरौ, गुर्वोः, गुरुषु। गोषु–गो–गाय–शब्द, पुलिंग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन–गवि, गवोः, गोषु। राजसु–राजन्–राजा–शब्द, पुलिंग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन–राज्ञि–राजनि, राज्ञोः, राजसु।

अन्वय—देवतासु, गुरौ, गोषु, राजसु ब्राह्मणेषु, बाल-वृद्धातुरेषु च सदा कोपः निवर्त्यः ।

शब्दार्थ—देवतासु = देवताओं पर । गुरौ = गुरु-शिक्षक या बड़ों पर । गोषु = गायों पर । राजसु = राजाओं पर । ब्राह्मणेषु = ब्राह्मणों पर । बाल-वृद्धातुरेषु च = बालक, बूढ़े और रोगी पर । सदा कोपः निवर्त्यः = सदा क्रोध को रोकना चाहिये अर्थात् क्रोध नहीं करना चाहिये ।

व्याख्या—देवता, गुरु, गायों, राजा लोग, ब्राह्मण, बालक, बूढ़े और रोगी पर क्रोध नहीं करना चाहिये ।

मन्त्री विहस्य ब्रूते = मन्त्री हंस कर कहता है । देव मा भैषीः = मत डरो । समाश्वसिहि = धैर्य रखो ।

व्याख्या—दूरदर्शी मन्त्री कुछ हँस कर कहता है—राजन्, मत डरिये, धैर्य धारण कीजिए ।

शृणु देव = राजन् सुनिये ।

मन्त्रिणां भिन्न-संधाने··········सुस्थे को वा न पण्डितः ॥८५॥

समास—भिन्न-संधाने-भिन्नस्य भिन्नानां वा सन्धानम्-इति भिन्न सन्धानम्-तत्पुरुष-तस्मिन् ।

रूप—मन्त्रिणाम्-मन्त्रिन्-मन्त्री-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन-मन्त्रिणः, मन्त्रिणोः, मन्त्रिणाम् । भिषजाम्-भिषज् = वैद्य-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन-भिषजः, भिषजोः, भिषजाम् । कर्मणि-कर्मन्-काम-शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन-कर्मणि, कर्मणोः, कर्मसु ।

अन्वय—मन्त्रिणां भिन्न-संधाने, भिषजां सान्निपातिके कर्मणि प्रज्ञा व्यज्यते । सुस्थे कः पण्डितः न भवति ।

शब्दार्थ—मन्त्रिणां = मन्त्रियों की । भिन्न-संधाने = फूटे हुए को मिलाने में-शत्रुओं से मेल कराने में । भिषजाम् = वैद्यों की । सान्निपातिके = सन्निपात रोग में । प्रज्ञा व्यज्यते = बुद्धि देखी जाती है । सुस्थे कः पण्डितः न = अच्छी दशा में कौन पण्डित नहीं होता अर्थात् सब ही होते हैं ।

व्याख्या—मन्त्रियों की प्रतिभा की परीक्षा फूटे हुए को मिलाने अर्थात् शत्रु राजा को मित्र बनाने, वैद्यों की बुद्धि की परीक्षा सन्निपात रोग-ग्रस्त रोगी का उप-

चार-इलाज करने में होती है। अच्छी दशा में कौन चतुराई की डींग नहीं हाँकता अर्थात् सब ही चतुर बन जाते हैं।

तदत्र भवत्प्रतापादेव ········तत्सहसैव दुर्गद्वारावरोधः क्रियताम्॥

संधि विच्छेद—विजिगीषोरदीर्घसूत्रता—विजीगीषो.—अदीर्घसूत्रता – विसर्ग-को रेफ (र्) व्यंजन संधि। सहसैव—सहसा+एव—आ+ए=ऐ-वृद्धि संधि।

समास—भवत्प्रतापात्—भवतः प्रताप इति भवत्प्रतापः—षष्ठी तत्पुरुष—तस्मात् कीर्ति-प्रताप-सहितम्—कीर्त्या प्रतापेन च सहितम्—तत्पुरुष। स्वल्प—बलेन—स्वल्पम् च तत् बलम् इति स्वल्प—बलम्—कर्मधारय—तेन। दुर्ग—द्वारावरोधः—दुर्गस्य द्वारस्य द्वाराणां वा अवरोधः—तत्पुरुष।

रूप—नेष्यामि—नी—ले जाना—क्रिया, परस्मैपद, भविष्यत्काल, उत्तम पुरुष, एकवचन नेष्यामि, नेष्यावः नेष्यामः। क्रियताम्—कृ-करना—क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा, लोट् अन्य पुरुष, एकवचन-क्रियताम्, क्रियेताम् क्रियन्ताम्।

शब्दार्थ—भवत्प्रतापात् एव=आप के प्रताप से ही। दुर्गं भंक्त्वा=शत्रु के किले को भंग कर-तोड़ कर। कीर्ति-प्रताप-सहितम्=कीर्ति-यश-और प्रताप के साथ। अचिरेण कालेन=कुछ समय में ही अर्थात् शीघ्र। नेष्यामि=ले जाऊँगा। स्वल्प-बलेन=बहुत थोड़ी-सी सेना से। तत् कथं सम्पद्यते=वह किस प्रकार संपन्न हो सकता है अर्थात् किले को कैसे भंग किया जा सकता है। सर्वं भविष्यति=सब कुछ होगा। विजिगीषोः=जय के अभिलाषी की। अदीर्घ-सूत्रता=कार्यतत्परता। विजयसिद्धेः=विजय की सफलता का। अवश्यंभावि लक्षणम्=अवश्य होने वाला चिन्ह है। सहसा=तुरन्त। दुर्ग द्वारावरोधः = किले के द्वार का घेरा। क्रियताम्= कीजिये डालिये।

व्याख्या—दूरदर्शी गृध्र कहता है—देव! आप के प्रताप से ही किले को भंग-तोड़ कर कीर्ति और प्रताप के साथ शीघ्र ही विन्ध्याचल को ले चलूँगा। राजा कहता है-थोड़ी-सी सेना से यह कार्य किस प्रकार सम्पन्न हो सकता है? गृध्र कहता है-राजन्! सब कुछ होगा, क्योंकि विजयाभिलाषी की कार्य-तत्परता—विजय चाहने वाले का कार्य में लग जाना देर न करना ही विजय प्राप्ति का अमोघ लक्षण है। इसलिए तुरन्त ही किले के द्वार पर घेरा डाल देना चाहिए अर्थात् किले को घेर लेना चाहिए।

भावार्थ—दीर्घदर्शी विनश्यति।

अथ प्रणिधिना बकेनागत्य……यथार्हं प्रसाद-प्रदानं क्रियताम्।

समास—सारासार-विचारः-सारस्य असारस्य च विचार इति सारासार-विचारः-तत्पुरुष।

रूप—आगत्य-गम-जाना, उपसर्ग, आगम्-आना-क्रिया, त्वा प्रत्यय, उपसर्ग पूर्व में होने से त्वा को य हो गया है। करिष्यति- कृ-करना, क्रिया, भविष्यत्काल, अन्य पुरुष, एकवचन-करिष्यति, करिष्यतः, करिष्यन्ति।

शब्दार्थ—प्रणिधिना बकेन आगत्य=राजा हिरण्यगर्भ राजहंस के गुप्तचर बक ने आकर। कथितम्=कहा। देव=राजन्। स्वल्पबल एव अयं राजा चित्रवर्णः=थोड़ी-सी सेना रखने वाला राजा चित्रवर्ण। गृध्रस्य मंत्रेण=मंत्री गृध्र-दूरदर्शी के परामर्श-सलाह-से। दुर्ग-द्वारावरोधं करिष्यति=किले के द्वार पर घेरा डालेगा। राजहंसः ब्रूते=राजा राजहंस अपने मंत्री चक्रवाक से कहता है। सर्वज्ञ! अधुना किं विधेयम्=सर्वज्ञ! अब क्या करना युक्ति युक्त होगा? चक्रो ब्रूते=मंत्री चक्रवाक कहता है। स्वबले सारासार-विचारः क्रियताम्=अपनी सेना का बल-अबल देखना चाहिए। तद् ज्ञात्वा=यह समझ लेने पर। यथार्हम्=यथायोग्य। सुवर्ण वस्त्रादिकं प्रसाद प्रदानं क्रियताम्=सैनिकों को पुरस्कार रूप में सुवर्ण वस्त्र आदि देने चाहिए।

व्याख्या—राजा हिरण्यगर्भ के गुप्तचर बक ने आकर यह सूचना दी कि राजन्! थोड़ी सी सेना लेकर ही राजा चित्रवर्ण गृध्र मंत्री की सलाह से आपके किले के द्वार पर घेरा डालेगा। राजहंस कहता है— सर्वज्ञ! अब क्या करना चाहिए? चक्रवाक कहता है—अपनी सेना का बलाबल देख लें। यह समझ लेने के पश्चात् अपने सैनिकों को पुरस्कार रूप में सुवर्ण, वस्त्र आदि देना उचित होगा।

यतः=क्योंकि—

यः काकिनीमप्यपथप्रपन्नाम्……राजसिंहं न जहाति लक्ष्मीः॥

संधि विच्छेद—काकिनीमप्यपथप्रपन्नाम्-काकिनीम्+अपि+अपथप्रपन्नाम्-इ को य् =यण् संधि। समुद्धरेन्निष्कः-समुद्धरेत्+न-त् को न्-व्यंजन संधि। कोटिष्वपि-कोटिषु+अपि-उ को व्-यण् संधि।

समास—अपथ-प्रपन्नाम्-अपथे प्रपन्ना इति अपथप्रपन्ना-तत्पुरुष-ताम्। मुक्तहस्तः-मुक्तः हस्तः यस्य सः-मुक्त-हस्तः-बहुव्रीहि। राजसिंहः-राजसु सिंह इति राजसिंहः-तत्पुरुष।

रूप—समुद्धरेत्—हृ—हर्—हरण करना, सम् और उत् दोनों उपसर्ग, हृ को—समुद्धर्—रक्षा करना—उद्धार करना—क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन—समुद्धरेत्, समुद्धरेताम्, समुद्धरेयुः। जहाति—हा—त्यागना—क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—जहाति, जहितः—जहीतः, जहति।

अन्वय—यः अपथ-प्रपन्नां काकिनीम् अपि निष्क-सहस्रतुल्या समुद्धरेत्, कालेषु कोटिषु अपि मुक्तहस्तः, लक्ष्मीः तं राजसिंहं न जहाति।

शब्दार्थ—यः=जो राजा। अपथ-प्रपन्नाम्=दुरुपयुक्त। काकिनीम् अपि=कौड़ी को भी। निष्क-सहस्र-तुल्याम्=हजारों मोहर-अशर्फिया—समझकर। समुद्धरेत्=अपव्यय से रक्षा करे। कालेषु कोटिषु अपि=समय पड़ने पर करोड़ों व्यय करने में। मुक्त-हस्तः=मुक्तहस्त—खुले हाथ खर्च करने वाला—हो जाय। लक्ष्मीः तं राजसिंहं न जहाति=लक्ष्मी उस राजसिंह को कभी नहीं छोड़ती।

व्याख्या—जो राजा कौड़ी को हजारों अशर्फियां समझ कर उसका अपव्यय नहीं करता अर्थात् कौड़ी का भी दुरुपयोग नहीं करता और समय पड़ने पर—अवसर आने पर—करोड़ों रुपये मुक्त हाथ से खर्च करता अर्थात् व्यय करने में संकोच नहीं करता, उस राजसिंह को लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती है। अर्थात् उसके यहाँ लक्ष्मी सर्वदा रहती है।

...

भावार्थ—राजा को समुचित व्यय और अपव्यय का जानकार होना चाहिए।

राजाह=राजा कहता है। इह समये=इस समय। अतिव्ययः कथं युज्यते=अति व्यय करना किस प्रकार उपयुक्त हो सकता है?

व्याख्या—राजा राजहंस कहता है तो इस समय अधिक खर्च करना युक्ति-युक्त है?

उक्तं च=और कहा है—

आपदर्थे धनं रक्षेत्।

समास—आपदर्थे=आपदाम् अर्थे—तत्पुरुष।

रूप—रक्षेत्—रक्ष्—रक्षा करना—क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन—रक्षेत्, रक्षेताम्, रक्षेयुः।

शब्दार्थ—आपदर्थे=आपत्ति के लिए। धनं रक्षेत्=धन की रक्षा करनी चाहिए।

मन्त्री ब्रूते–श्रीमतः कथमापदः ?

रूप—श्रीमतः–श्रीमत्–श्रीमान्–शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन–श्रीमतः, श्रीमतोः, श्रीमताम् ।

शब्दार्थ—मन्त्री ब्रूते=मन्त्री कहता है । श्रीमतः आपदः कथम्=श्रीमान्–वैभवशाली–को आपत्ति कैसी ? अर्थात् धनवान् आपत्ति को धन के बल पर पार कर जाता है ।

राजाह—कदाचिच्च चलेल्लक्ष्मीः,

संधि-विच्छेद—कदाचिच्च–कदाचित्+च=त् को च्–व्यंजन संधि । चलेल्लक्ष्मीः–चलेत्+लक्ष्मीः–त् को ल्–यदि त् के बाद ल आता है तो त् को ल्, यदि त् के बाद च आता है तो त् को च् और यदि त् के बाद न आता है तो त् को न हो जाता है ।

शब्दार्थ—राजा आह=राजा कहता है । कदाचित् लक्ष्मीः चलेत्=संभवतः लक्ष्मी चली जाय ।

मंत्री ब्रूते····················संचितापि विनश्यति ॥८०॥

शब्दार्थ—संचित धन भी नष्ट हो जाता है ।

तद् देव, कार्पण्यं विमुच्य·······दानमानाभ्यां पुरस्क्रियन्ताम् ।

शब्दार्थ—तद् देव=हे राजन् । कार्पण्यं विमुच्य=कृपणता का परित्याग कर । स्वभटाः=अपने योद्धा लोग । दान-मानाभ्यां पुरस्क्रियन्ताम्=दान और आदर देकर पुरस्कृत किये जायं अर्थात् उन्हें पुरस्कार में धन और उच्च पद प्रदान किया जाय ।

तथा चोक्तम्=कहा भी है—

परस्परज्ञाः संहृष्टाः·············विजयन्ते द्विषद्-बलम् ॥८१॥

समास—परस्परज्ञाः–परस्परं जानन्ति इति परस्परज्ञाः–तत्पुरुष । द्विषद्-बलम्–द्विषतः इति द्विषद्–बलम्–तत्पुरुष ।

रूप—संहृष्टाः–सम् उपसर्ग हृष्–क्रिया, त प्रत्यय । त्यक्तुम्–त्यज्–त्यागना–क्रिया, तुम् प्रत्यय ।

अन्वय—परस्परज्ञाः संहृष्टाः (सेवकाः) प्राणान् त्यक्तुं सुनिश्चिताः (भवन्ति) कुलीनाः पूजिताः च (सेवकाः) सम्यक् द्विषद्–बलम् विजयन्ते ।

शब्दार्थ—परस्परज्ञाः=एक दूसरे से परिचित अर्थात् स्वामी और सेवक का परिचय रखने वाले। संहृष्टाः=अतिशय हर्षित। प्राणान् त्यक्तुम्=प्राणों का परित्याग करने को। सुनिश्चिताः=तत्पर रहते हैं। द्विषद्—बलं विजयन्ते=शत्रु की सेना को जीत लेते हैं।

व्याख्या—स्वामी और सेवक एक दूसरे के स्वभाव से परिचित अर्थात् सुहृद्भाव रखने वाले हों, तब सेवक हर्षित हो अपने जीवन को स्वामी के लिए त्याग देने को तत्पर हो जाते हैं अर्थात् प्राण हथेली पर रख कर स्वामी के हित के लिए जूझ जाते—अपने प्राणों का बलिदान कर देते हैं। ऊँचे वंश में जन्म लेने वाले आदर पाकर शत्रु की सेना पर विजय प्राप्त करने अर्थात् शत्रु सेना को पराजित करने में समर्थ होते हैं।

सत्यं शौर्यं दया त्यागः······प्राप्नोति खलु वाच्यताम् ॥ ८२ ॥

सन्धि-विच्छेद—नृपस्यैते=नृपस्य+एते=अ+ए=ऐ=गुण संधि।

समास—महागुणाः=महान्तः च ते गुणा इति महागुणाः=कर्मधारय। महीपालः=महीं पालयतीति महीपालः=तत्पुरुष।

रूप—प्राप्नोति=आप्=क्रिया, प्र उपसर्ग=प्राप्=प्राप्त करना=क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन,=प्राप्नोति, प्राप्नुतः, प्राप्नुवन्ति।

अन्वय—सत्यं, शौर्यं, दया, त्यागः एते नृपस्य महागुणाः (सन्ति)। एतैः (गुणैः) त्यक्तः महीपालः खलु वाच्यतां प्राप्नोति।

शब्दार्थ—शौर्यम्=वीरता। महागुणाः (सन्ति)=महान् गुण हैं। त्यक्तः=रहित। वाच्यतां प्राप्नोति=निन्दा पाता है।

व्याख्या—सचाई, वीरता, दया, और त्याग राजा के महान् गुण हैं। इनसे रहीत राजा निन्दित होता है अर्थात् जनता का प्रियपात्र नहीं माना जाता है।

शब्दार्थ—ईदृशि प्रस्तावे=ऐसा प्रस्ताव प्रसंग=उपस्थित होने पर। अमात्याः=मंत्री लोगों का। अवश्यं पुरस्कर्तव्याः=अवश्य ही सत्कार करना चाहिए।

तथा च उक्तम्=कहा भी है—

यो येन प्रतिबद्धः स्यात्······प्राणेषु च धनेषु च ॥ ८३ ॥

सन्धि-विच्छेद—तेनोदयी=तेन+उदयी=अ+उ=ओ=गुणसंधि।

रूप—स्यात्=अस्=होना=क्रिया, परस्मैपद, विधि लिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन,=स्यात्, स्याताम्, स्युः उदयी=उदयिन्=उदय होने वाला=इन्नन्त शब्द;

पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन—उदयी, उदयिनौ, उदयिनः । इसी प्रकार व्ययी, व्ययिनौ, व्ययिनः ।

अन्वय—यः येन सह प्रतिबद्धः (अस्ति) स विश्वस्तः तेन सह उदयी व्ययी स्यात् प्राणेषु च धनेषु च नियोक्तव्यः ।

शब्दार्थ—यः येन सह प्रतिबद्धः (अस्ति)=जो जिसके साथ बँधा हुआ है अर्थात् जिसके साथ जिसके हित और अहित बंधे हैं । स तेन सह उदयी व्ययी स्यात्=वह उसी के साथ लाभ और हानि का अनुभव करे । प्राणेषु च धनेषु नियोक्तव्यः=ऐसे विश्वासी लोगों को प्राणों की तथा धन की रक्षा के लिए लगा देना चाहिए ।

व्याख्या—जिसका जिसके साथ हित और अहित बंधे हैं, उनका उसी के साथ लाभ और हानि का अनुभव भी होनी चाहिए । ऐसे विश्वासपात्र को प्राणों और धन की रक्षा के लिए नियुक्त कर देना चाहिए । तात्पर्य यह है कि विश्वासपात्र को ही उच्च कार्य के सम्पन्न करने को नियुक्त करना चाहिए ।

'धूर्त्तः स्त्री वा शिशुर्यस्य·········कार्याब्धौ स निमज्जति ॥ ८४ ॥

समास—अनीति-पवन-क्षिप्तः—अनीति-पवनेन क्षिप्त इति-तत्पुरुष ।

रूप—निमज्जति—मज्ज् क्रिया, नि उपसर्ग, निमज्ज्–डूबना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—निमज्जति, निमज्जतः, निमज्जन्ति । स्युः—अस्–होना विध्यर्थ अन्य पुरुष, बहुवचन—स्यात्, स्यातां, स्युः ।

अन्वय—यस्य महीपतेः मन्त्रिणः धूर्तः स्त्री वा शिशुः स्युः स अनीति-पवन क्षिप्तः कार्याब्धौ निमज्जति ।

शब्दार्थ—यस्य महीपतेः मन्त्रिणः=जिस राजा के मन्त्री अर्थात् परामर्श दाता । धूर्तः=वंचक । शिशुः स्युः=बालक हों । अनीति-पवन-क्षिप्तः=अन्याय रूपी वायु के झोंके से उड़ा हुआ । कार्याब्धौ निमज्जति=कार्य रूपी समुद्र में डूब जाता है अर्थात् अपने राज्य के ही कार्यों में ही व्यस्त रहता है ।

व्याख्या—जिस राजा के मन्त्री—परामर्शदाता धूर्त—वंचक—स्त्री अथवा बालक होते हैं, वह राजा अनीति रूपी वायु के झोंकों से उड़ कर राज्य के कार्यरूप समुद्र में डूब जाता है अर्थात् राज्य-कार्य में ही व्यस्त रहता है, पराराष्ट्र नीति को नहीं कर पाता ।

शृणु देव······राजन्, सुनिये:—

हर्षक्रोधौ यतौ यस्य·········तस्य स्याद् धनदा धरा ॥ ८५ ॥

समास—हर्ष-क्रोधौ-हर्षश्चक्रोधश्च-हर्ष-क्रोधौ-द्वन्द्व । भृत्यानुपेक्षा—न उपेक्षा इति अनुपेक्षा, भृत्यानां भृत्येषु वा अनुपेक्षा इति भृत्यानुपेक्षा—तत्पुरुष । धनदा-धनं ददाति इति धनदा—तत्पुरुष ।

अन्वय—यस्य नृपस्य हर्ष-क्रोधौ यतौ स्वप्रत्ययेन च कोषः, नित्यं भृत्यानुपेक्षा तस्य धरा धनदा स्यात् ।

शब्दार्थ—हर्ष-क्रोधौ यतौ=प्रसन्नता और कोप समान । स्वप्रत्ययेन च कोषः=कोप अपने अधीन हो । भृत्यानुपेक्षा=नौकरों के प्रति आस्था । तस्य धरा धनदा स्यात्—उसकी पृथ्वी धन देती है ।

व्याख्या—जो राजा हर्ष और क्रोध अर्थात् दुःख को समान समझता, जिसका कोप उसके अधीन है और जो नौकरों के प्रति उपेक्षा नहीं दिखाता अर्थात् सेवकों का उचित आदर करता है, उसकी ही पृथ्वी सोना उगलती अर्थात् धन देने वाली होती है ।

भावार्थ—सुख-दुःखे समे कृत्वा सेवकान् तोषयेत् सदा ।
कोपश्च स्वाधीनोऽस्ति तस्य धनदा वसुन्धरा ॥

अथागत्य प्रणम्य मेघवर्णो ब्रूते······तेन देवप्रसादानामानृण्यमुपगच्छामि ।

समास—युद्धार्थी-युद्धस्य अर्थी-तत्पुरुष ।

रूप—कुरु-कृ-करना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, मध्यम पुरुष, एकवचन-कुरु, कुरुतम्, कुरुत । विपक्षी-विपक्षिन्-शत्रु-शब्द पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन-विपक्षी, विपक्षिणौ, विपक्षिणः । निःसृत्य-सृ-सरण करना, निस् उपसर्ग, निःसृ-निकलना क्रिया से क्त्वा प्रत्यय, उपसर्ग पूर्व में होने से क्त्वा को य हो गया है ।

शब्दार्थ—आगत्य=आकर । प्रणम्य=प्रणाम करके । दृष्टिप्रसादं कुरु=दया-दृष्टि कीजिए । युद्धार्थी=युद्ध का अभिलाषी । विपक्षी=शत्रु । दुर्गद्वारि वर्तते=किले के द्वार पर है । देवपादादेशात्=आपके आदेश से । बहिः निःसृत्य=बाहर निकल कर । स्वविक्रमं दर्शयामि=अपना पराक्रम दिखाऊँ । देव-प्रसादानाम्=आपकी कृपा के भार से । आनृण्यम् उपगच्छामि=उऋण हो जाऊँ ।

व्याख्या—इसी समय मेघवर्ण काक उपस्थित हो प्रणाम कर कहता है–देव प्रसन्न हों–दयादृष्टि करें। यह युद्ध का अभिलाषी शत्रु दुर्ग के द्वार पर उपस्थित है। यदि आपका आदेश हो तो बाहर निकल कर अपना पराक्रम प्रदर्शित करूँ और आप के अहसानों से उऋण हो जाऊँ।

चक्रो ब्रूते=मंत्री चकवाक कहता है। मैवम्=ऐसा नहीं। यदि बहिः निःसृत्य योद्धव्यं=यदि दुर्ग के बाहर निकल कर युद्ध करना है। तदा दुर्गाश्रयणम् एव निष्प्रयोजनम्=तो दुर्ग का आश्रय लेना व्यर्थ ही है।

वायसो ब्रूते=मेघ वर्ण काक कहता है। देव! स्वयं गत्वा=राजन्! स्वयं वहाँ जाकर। युद्धं दृश्यताम्=युद्ध देखिए। यतः=क्योंकि।

पुरस्कृत्य बलं राजा·········किं न सिंहायते ध्रुवम्॥ ८६॥

रूप—अवलोकयन्–अवलोकयत्–देखता हुआ–शतृप्रत्ययान्त शब्द, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–अवलोकयन्, अवलोकयन्तौ, अवलोकयन्तः। स्वामिना–स्वामिन्–स्वामी–इन्नत शब्द, तृतीया विभक्ति, एकवचन–स्वामिना, स्वामिभ्यां, स्वामिभिः। अधिष्ठितः–अधि उपसर्ग, स्था–क्रिया से त प्रत्यय। श्वा–श्वन्–कुत्ता–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–श्वा, श्वानौ, श्वानः।

अन्वय—राजा बलं पुरस्कृत्य अवलोकयन् योधयेत्, स्वामिना अधिष्ठितः श्वा अपि किं ध्रुवम् न सिंहायते।

शब्दार्थ—बलं पुरस्कृत्य=सेना को आगे करके अर्थात् मोरचे पर खड़ा करके। अवलोकयन् योधयेत्=देखता हुआ युद्ध करने को प्रोत्साहित करे। स्वामिना अधिष्ठितः=स्वामी के द्वारा अधिष्ठित। श्वा किं ध्रुवं न सिंहायते=क्या कुत्ता निश्चय ही सिंह का सा आचरण नहीं करता अर्थात् क्या सिंह के समान वीरता से नहीं लड़ता।

व्याख्या—राजा का यह कर्त्तव्य है कि अपनी सेना को मोरचे पर खड़ा करके अपने निरीक्षण में युद्ध करने को उसे प्रोत्साहित करे। स्वामी के साथ साथ रहने पर क्या कुत्ता सिंह के समान वीरतापूर्वक नहीं लड़ता अर्थात् अवश्य लड़ता है।

अनन्तरं ते सर्वे···········स्वप्रतिज्ञातमधुना निर्वाहय॥

स — १ आहव त महाहवः–कर्मधारय–हस्त

कृतवन्तः—कृतवत्—करता हुआ—शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन—कृत-
वान्, कृतवन्तौ, कृतवन्तः। उवाच—ब्रू – बोलना – कहना – परस्मैपद, परोक्ष
भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन – उवाच, ऊचतुः, ऊचुः – ब्रू को वच्
आदेश हो जाता है।

शब्दार्थ—दुर्ग–द्वारं गत्वा=किले के द्वार पर जाकर। महाहवं कृतवन्तः=
घनघोर युद्ध किया। अपरेद्युः—दूसरे दिन। गृध्रम् उवाच=गृध्र से बोला। अधुना
स्वप्रतिज्ञातं निर्वाहय=अब अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह कीजिए अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा
पूर्ण कीजिए।

व्याख्या—तत्पश्चात् किले के फाटक पर जाकर उन्होंने घमासान युद्ध
किया। दूसरे दिन राजा चित्रवर्ण मंत्री गृध्र से बोला—हे तात, अब अपनी प्रतिज्ञा
निबाहिये अर्थात् पूर्ण कीजिए।

गृध्रो ब्रूते=गीध कहता है। देव, शृणु तावत्=महाराज सुनिये—

अकालसहमत्यल्पम्······दुर्ग-व्यसनमुच्यते ॥ ८७ ॥

अन्वय– सरल है।

शब्दार्थ—अकाल–सहम्=अधिक समय तक रक्षा में असमर्थ। अत्यल्पम्=
बहुत थोड़ी सेना का होना। मूर्ख–व्यसनि–नायकम्=मूर्ख और व्यसनी सेनापति
का होना। अगुप्तम्=दुर्ग के रक्षण का समुचित प्रबन्ध न होना। भीरु–योधम्=
सैनिकों का डरपोक होना। दुर्ग–व्यसनम् उच्यते=ये सब दुर्ग के व्यसन कहलाते
अर्थात् ये दुर्ग की विपत्तियां हैं।

व्याख्या—अधिक समय तक रक्षा में असमर्थ होना, थोड़ी सी सेना का
होना, व्यसनी और मूर्ख सेनापति, दुर्ग की रक्षा के उचित प्रबन्ध का अभाव और
डरपोक सैनिक—ये सब दुर्ग के व्यसन कहलाते हैं।

तत् तावत् अत्र नास्ति=यह बात तो यहाँ नहीं है।

उपजापश्चिरारोधः······चत्वारः कथिता इमे ॥ ८८ ॥

अन्वय—उपजापः, चिरारोधः, अवस्कन्दः, तीव्र–पौरुषम् इमे चत्वारः
दुर्गस्य लंघनोपायाः कथिताः।

शब्दार्थ—उपजापः=फूट–भेद। चिरारोधः=बहुत समय तक घेरा डाले
रहना। अवस्कन्दः=आक्रमण। तीव्र–पौरुषम्=कठिन पुरुषार्थ।

व्याख्या—किले पर विजय प्राप्त करने के ये चार उपाय हैं—किले के अन्दर रहने वालों में फूट पैदा करा देना, बहुत समय तक किले को घेरे रहना अर्थात् उसकी नाकाबन्दी कर देना, आक्रमण कर घमासान युद्ध करना और अपना पौरुष दिखाना।

अत्र च यथाशक्ति यत्नः क्रियते = इस विषय में शक्ति के अनुसार यत्न किया जा रहा है। कर्णे कथयति—एवम् एव=गीध राजा के कान में कहता है इस प्रकार।

ततोऽनुदित एव भास्करे.........सत्वरं ह्रदं प्रविष्टाः ॥

सन्धि-विच्छेद—चतुर्ष्वपि-चतुर्षु+अपि–उ को व्-यण्संधि

समास—अनुदिते–न उदिते इति अनुदिते-नञ्-निषेधवाचक तत्पुरुष। दुर्गाभ्यन्तर-गृहेषु–दुर्गस्य आभ्यन्तरगृहाणि इति दुर्गाभ्यन्तर-गृहाणि–तत्पुरुष तेषु।

रूप—निक्षिप्तः-क्षिप् क्रिया, नि उपसर्ग-निक्षिप्–त प्रत्यय। प्रविष्टाः–विश् क्रिया, प्र उपसर्ग, त प्रत्यय।

शब्दार्थ—अनुदिते एव भास्करे=सूर्य के उदय न होने पर अर्थात् सूर्योदय से पहले। चतुर्ष्वपि दुर्गद्वारेषु युद्धे प्रवृत्ते=किले के चारों दरवाजों पर युद्ध प्रारम्भ होने पर। दुर्गाभ्यन्तर-गृहेषु=किले के अन्दर के घरों में। काकैः अग्निः निक्षिप्तः=कौओं ने आग लगा दी। गृहीतं गृहीतं दुर्गम्=किला ले लिया, किला जीत लिया। इति कोलाहलं श्रुत्वा=ऐसा कोलाहल सुन कर। अनेक-गृहेषु प्रदीप्तं पावकम्=अनेक घरों में लगी आग को। प्रत्यक्षं एव अवलोक्य=सामने देख कर। राजहंसस्य सैनिकाः=राजहंस के सैनिक। अन्ये दुर्ग-वासिनः=किले में रहने वाले अन्य सभी पक्षी। सत्वरं ह्रदं प्रविष्टाः=शीघ्र सरोवर में घुस गये।

व्याख्या—तत्पश्चात् सूर्य के उदय होने से पहले ही किले के चारों फाटकों पर युद्ध प्रारम्भ होने पर दुर्ग के अन्दर के घरों में कौओं ने–मेघवर्ण के साथियों ने–आग लगा दी। फिर किला ले लिया, किला ले लिया—इस कोलाहल को सुनकर और दुर्ग के अन्दर के अनेक घरों को प्रत्यक्ष जलता देखकर राजहंस के सैनिक और किले में रहने वाले अन्य पक्षी शीघ्र ही सरोवर में घुस गये–अर्थात् जान बचा कर भाग निकले।

यतः=क्योंकि—

सुमन्त्रितं सुविक्रान्तम्.............कुर्यान्न तु विचारयेत् ॥८५॥

समास—यथाशक्ति-शक्तिम् अनतिक्रम्य इति यथाशक्ति-अव्ययीभाव।

रूप—कुर्यात्-कृ-करना-क्रिया, परस्मैपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एक-न-कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्युः।

अन्वय—प्राप्ते काले सुमन्त्रितं, सुविक्रान्तं, सुयुद्धं, सुपलायितं यथाशक्ति र्यात् न तु विचारयेत्।

शब्दार्थ—प्राप्ते काले=समय आने पर। सुमन्त्रितम्=उत्तम मन्त्रणा-मति। सुविक्रान्तम्=अपूर्व पराक्रम। सुपलायितम्=बन्धन-मुक्त होने पर भाग ना। कुर्यात्=करना चाहिए।

व्याख्या—समय आने पर उत्तम मन्त्रणा करनी चाहिए, अनोखा पराक्रम खाना चाहिए। घनघोर युद्ध करना चाहिए और बन्धन से मुक्त होने के लिए ग जाना चाहिए। इसमें सोच-विचार करना उचित नहीं है। तात्पर्य यह है कि जब जैसा समय उपस्थित हो, तब वैसा ही कार्य करना चाहिए—इसमें आगा-छा करना उचित नहीं।

राजहंसश्च स्वभावान्मन्दगतिः......कुक्कुटेनागत्य वेष्टितः।

समास—मन्द-गतिः-मन्दा गतिः यस्य सः-मन्दगतिः-बहुव्रीहि।

शब्दार्थ—स्वभावात् मन्दगतिः=स्वभाव से ही धीमे धीमे चलने वाला। सारसद्वितीयः=सारस के साथ। कुक्कुटेन आगत्य वेष्टितः=मुर्गे ने आकर घेर लिया।

व्याख्या—चित्रवर्ण के सेनापति मुर्गे ने सारस सहित धीरे धीरे चलने वाले राजा राजहंस को घेर लिया।

हिरण्यगर्भः सारसमाह.........द्वार-वर्त्मना प्रविशतु शत्रुः॥

सन्धि विच्छेद—यावच्चन्द्रार्कौ-यावत्+चन्द्र+अर्कौ-त् को च्-व्यंजन संधि, दीर्घ संधि।

समास—चन्द्रार्कौ-चन्द्रः च अर्कः च-द्वन्द्व। मांसासृक्लिप्तेन-मांसेन असृजा च लिप्तः इति मांसासृक् लिप्तः-तत्पुरुष-तेन।

शब्दार्थ—व्यापादयत्यसि=मरवा रहे हो। चन्द्रार्कौ दिवि तिष्ठतः=

अन्वय—यदि समरम् अपास्य मृत्योः भयं न अस्ति (तदा) इतः अन्यतः प्रयातुं युक्तम् (अस्ति)। जन्तोः मरणम् अवश्यम् एव, तदा यशः मलिनं मुधा किम् इति क्रियेत ।

शब्दार्थ—समरम्=संग्राम भूमि को छोड़कर । मृत्योः भयं न अस्ति=मृत्यु का डर नहीं है अर्थात् मृत्यु न आवे । इतः अन्यतः प्रयातुं युक्तम्=यहाँ से अन्यत्र-दूसरी जगह-चले जाना उचित है । जन्तोः मरणम् अवश्यम् एव=प्राणी की मृत्यु अवश्यम्भावी है । यशः मलिनं मुधा किम् इति क्रियेत=यश को व्यर्थ मलिन क्यों किया जाय अर्थात् यहां से भाग कर यश पर धब्बा क्यों लगाया जाय ?

व्याख्या—यदि संग्राम-स्थल का परित्याग कर मौत का भय नहीं है अर्थात् मौत कभी नहीं आयेगी तब तो यहां से भाग जाना ठीक है, किन्तु प्राणी की मृत्यु अवश्यंभावी है, तब व्यर्थ यश को मलिन क्यों किया जाय ! तात्पर्य यह है कि जब एक-न-एक दिन मौत का प्राप्त हो जाना निश्चित है, तब मैं यहां से भागकर क्यों अपनी रक्षा करूं ।

अत्रापि=यहां भी । राज्यांगप्रधानम्=राज्य के प्रधान ।स्वामी सर्वथा रक्षणीयः= स्वामी की सब प्रकार से अर्थात् अपने प्राण देकर भी रक्षा करनी चाहिए ।

प्रकृतिः स्वामिना त्यक्ता......किम् करोति गतायुषि ॥ ६२ ॥

समास—गतायुषि—गतम् आयुः यस्य सः गतायुः-बहुव्रीहि-तस्मिन् गतायुषि ।

रूप—स्वामिना-स्वामिन्-मालिक-शब्द पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन-स्वामिना, स्वामिभ्याम्, स्वामिभिः । त्यक्ता-त्यज्-त्यागना-क्रिया से त प्रत्यय-त्यक्तः पुल्लिंग, त्यक्ता-स्त्रीलिंग, त्यक्तम्-नपुंसकलिंग । गतायुषि-गतायुष्-मरणासन्न-शब्द, पुंल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन-गतायुषि गतायुषो, गतायुषः ।

अन्वय—स्वामिना त्यक्ता समृद्धा अपि प्रकृतिः न जीवति । गतायुषि धन्वन्तरिः वैद्यः अपि किं करोति ?

शब्दार्थ—स्वामिना त्यक्ता-स्वामी-राजा-से त्यागी हुई । प्रकृतिः=प्रजा । न जीवति=जीवित नहीं रह सकती । गतायुषि=मरणासन्न—मृत्युशैया पर पड़ा हुआ ।

व्याख्या—राजा से त्यक्त अर्थात् राजा से रहित प्रजा चाहे कितनी भी समृद्ध क्यों न हो, परन्तु वह जीवित नहीं रह सकती । मृत्युशैया पर पड़े हुए रोगी को वैद्य धन्वन्तरि भी नहीं बचा सकते ।

अपरं च = और भी—

नरेशे जीवलोकोऽयं निमीलति निमीलति···रवा

सन्धि-विच्छेद—उदेत्युदीयमाने–उदेति + उदीय
रवाविव–रवौ+इव–यदि ए, ऐ, ओ या औ के बाद कोई
अय्, ऐ को आय्, ओ को अव् और औ को आव्
संधि।

समास—सरोरुहम्–सरसि रोहति इति–सरोरुहः–सर
सरोरुहम्।

रूप—निमीलति–निमीलत्–शतृ–अत्–प्रत्ययान्त–शब्द
को प्राप्त होता हुआ–शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एक
निमीलतो:, निमीलत्सु। निमीलति–मील्–क्रिया, नि उपसर्ग, नि
नष्ट हो जाना–क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकव
निमीलतः, निमीलन्ति। उदेति–इ–जाना, उत् उपसर्ग उत् इ–उद
परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, उदेति, उदितः, उदन्ति। रव
शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन–रवौ, रव्योः, रविषु।

अन्वय—अयं जीवलोकः नरेशे निमीलति (सति) निमीलति,
च रवौ सरोरुहम् इव उदेति।

शब्दार्थ—अयं जीवलोकः=यह संसार। नरेशे निमीलति (सति
के नष्ट हो जाने पर। निमीलति=नष्ट हो जाता है।

व्याख्या—यह संसार राजा के अस्त हो जाने पर अस्त हो जाता है
, राजा के उदय पर उदित होता है अर्थात् राजा के अभ्युदय–काल में सं
भी कल्याण होता है जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर कमल खिल ज
और सूर्य के अस्त होने पर बन्द हो जाते हैं।

अथ कुक्कुटेनागत्य राजहंस–शरीरे·········येन हरदेह–स्थाने
स्थानी रचितः॥

समास—नरतर–नरश्चासौ–···
आपातः इति नगरातः–···

जर्जरीकृतेन–नख-प्रहारैः जर्जरीकृत इति नख-प्रहार जर्जरीकृतः–तत्पुरुष–तेन। दुर्गावस्थितम्–दुर्गे अवस्थित इति दुर्गावस्थितः–सप्तमी तत्पुरुष–तम्।

रूप—क्षिप्तः–क्षिप्–फैंकना–क्रिया से त (क्त) प्रत्यय। हतः–हन्–मार डालना–क्रिया से त प्रत्यय। जगाम–गम्–जाना–क्रिया, परोक्ष भूतकाल, परस्मैपद, अन्य पुरुष, एकवचन–जगाम, जग्मतुः, जग्मुः। पुण्यवान्–पुण्यवत्–पुण्यात्मा–शब्द, पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति, एकवचन–पुण्यवान्, पुण्यवन्तौ, पुण्यवन्तः।

शब्दार्थ—खरतर नखाघातः=अति तीक्ष्ण नाखूनों का आघात–चोट। सत्वरम् उपसृत्य=शीघ्र पास आकर। स्व-देहान्तरितः=अपने शरीर से ढक लिया। चंचुप्रहारेण विभिद्य=चोंचों के प्रहार से भेद कर। व्यापादितः=मार डाला गया। दुर्गावस्थितं द्रव्यं ग्राहयित्वा=किले में रक्खे हुए धन को ग्रहण करा कर। वन्दिभिः=चारणों द्वारा। स्वस्कन्धावारं=अपने शिविर–छावनी–को। जगाम=चला गया। उक्तम्=कहा। राजहंस-बले=हिरण्यगर्भ राजहंस की सेना में। पुण्यवान्=पुण्यात्मा। स्वामी रक्षितः=स्वामी को बचाया।

व्याख्या—चित्रवर्ण के सेनापति कुक्कुट ने आकर हिरण्यगर्भ राजहंस के शरीर पर अति तीक्ष्ण नखों से चोट की। तब शीघ्र पास आकर राजहंस के सेनापति सारस ने राजा को अपने शरीर से ढक लिया अर्थात् राजा पर शत्रु द्वारा किये जाने वाले आघातों को स्वयं सहन किया और राजा को जल में पहुँचा दिया–फैंक दिया, जिससे कि उसके प्राणों की रक्षा हो जाय। कुक्कुट के नख–प्रहार से जर्जर होने वाले सारस ने कुक्कुट की बहुत-सी सेना मार डाली। तत्पश्चात् सारस [illegible] डाला गया। राजा चित्रवर्ण दुर्ग में प्रविष्ट हुआ [illegible] ( ) द्रव्य को ग्रहण करा फिर चारणों द्वारा [illegible] नी छावनी में चला गया। राजकुमारों ने [illegible] की उस सेना में वह सारस [illegible] बचाया।

॥ ६४ ॥

१.–बहुव्रीहि–वान्–

समास—स्वाम्यर्थे-स्वामिनः+अर्थे इति स्वाम्यर्थे-षष्ठी तत्पुरुष। त्यक्त-जीविताः-त्यक्तानि जीवितानि यैः ते-त्यक्त-जीविताः-बहुब्रीहि। भर्तृभक्ता-भर्तुः भक्ता इति-षष्ठी तत्पुरुष। स्वर्ग-गामिनः-स्वर्गं गन्तुं शील येषा ते-बहुब्रीहि।

रूप—स्वर्ग-गामिनः-स्वर्ग-गामिन्-स्वर्ग जाने वाला-शब्द, पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन-स्वर्गगामी, स्वर्गगामिनौ, स्वर्गगामिनः।

अन्वय—ये शूराः आहवेषु स्वाम्यर्थे त्यक्त-जीविताः भर्तृभक्ताः कृतज्ञा. च (भवन्ति) ते नराः स्वर्गगामिनः (सन्ति)।

शब्दार्थ—ये शूराः=जो वीर। स्वाम्यर्थे=स्वामी के लिये। आहवेषु=संग्रामों में। त्यक्त-जीविताः=जीवन त्याग करने वाले। भर्तृभक्ताः=स्वामी के भक्त। कृतज्ञाः=अहसानमन्द। स्वर्गगामिनः=स्वर्ग जाने वाले।

व्याख्या—जो शूरवीर संग्राम में स्वामी के हित के लिए जीवन का उत्सर्ग कर देते हैं, जो सेवक स्वामिभक्त और कृतज्ञ-अहसान मानने वाले-होते हैं, वे सेवक स्वर्गगामी होते हैं अर्थात् उन्हें स्वर्ग मिलता है।

शब्दार्थ—भवद्भिः विग्रहः श्रुतः=पं० विष्णु शर्मा राजकुमारों से कहते हैं कि आप लोगों ने विग्रह--युद्धनीति-को सुना ?

राजपुत्रैरुक्तम्=राजकुमारों ने कहा—श्रुत्वा=सुन कर। वयं सुखिनो भूताः= हम सुखी हुए। विष्णु शर्मा अब्रवीत्=पं० विष्णु शर्मा बोले। अपरम् अपि एवम् अस्तु=और ऐसा भी हो—

विग्रहः करि-तुरग-पत्तिभिः·····················गिरि-गव्हरं द्विषः ॥६६॥

समास—करि-तुरग-पत्तिभिः—करिणः च तुरगाः च पत्तयः च इति करि-तुरग-पत्तयः-द्वन्द्व—तैः।

रूप—संश्रयन्तु-श्रि-श्रिय्-सं उपसर्ग-सश्रि-आश्रय लेना-क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, बहुवचन-संश्रयतु संश्रयतात्, संश्रयताम्, संश्रयन्तु। द्विषः-द्विष्-द्वेष करने वाला अर्थात् शत्रु, पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन-द्विट्-द्विड्, द्विषौ, द्विषः।

अन्वय—इह भवतां विग्रहः करि-तुरग-पत्तिभिः कदा अपि नो भवताम्। नीति-मन्त्र-पवनैः समाहताः द्विषः गिरि-गव्हरं संश्रयन्तु।

शब्दार्थ—भवताम्=आप लोगों का। विग्रहः=युद्ध। करि-तुरग-पत्तिभिः=

व्याख्या—तुमुल युद्ध होने पर चित्रवर्ण और हिरण्यगर्भ के अनेक सैनिक मैदान में मारे गये। तब स्थिर-दृढ़-विचार वाले चित्रवर्ण के मन्त्री गृध्र और, हिरण्यगर्भ के मन्त्री चक्रवाक ने आपस में संलाप कर शीघ्र ही संधि कर ली।

राजपुत्राः ऊचुः=राजकुमार बोले। एतत् कथम्=यह किस प्रकार। विष्णुशर्मा कथयति=विष्णुशर्मा कहते हैं।

ततस्तेन राजहंसेनोक्तम्·····························मम दुर्दैवमेव एतत्॥

सन्धि-विच्छेद—राजहंसेनोक्तम्-राजहंसेन+उक्तम्=अ+उ=ओ-गुणसंधि। तस्यैव=तस्य+एव-अ+ए=ऐ-वृद्धि संधि।

समास—अस्मद्-दुर्ग-वासिना-अस्माकं दुर्गे वसतीति-अस्मद्-दुर्गवासी-तत्पुरुष-तेन। विपक्ष-प्रयुक्तेन=विपक्षेण प्रयुक्त इति-विपक्षप्रयुक्तः-तत्पुरुष-तेन।

शब्दार्थ—अग्निः निक्षिप्तः=अग्नि रखी-आग लगाई। पारक्येण=शत्रु के गुप्तचर द्वारा। अस्मद् दुर्गवासिना=हमारे किले में रहने वाले। विपक्षप्रयुक्तेन= शत्रु द्वारा नियुक्त किए हुए से। निष्कारणबन्धुः=अकारण ही भ्रातृभाव रखने वाला। सपरिवारः न दृश्यते=परिवार के साथ दिखाई नहीं देता। मन्ये=मानता हूँ—मेरा विचार है। विचेष्टितम्=कार्य। विचिन्त्य=सोचकर। मम दुर्दैवम्=मेरा दुर्भाग्य।

व्याख्या—तब राजहंस ने कहा—हमारे दुर्ग में आग किसने लगाई? शत्रु के गुप्तचर ने अथवा शत्रु द्वारा नियुक्त-उस गुप्तचर ने जो कि हमारे ही किले में रहता था? चक्रवाक कहता है—महाराज आपका अकारण बन्धु मेघवर्ण काक अपने साथियों सहित नहीं दिखाई देता है। अतएव मेरा यह विचार है कि यह उसी का कार्य था। राजा क्षण भर विचार कर कहता है—यह मेरा दुर्भाग्य ही है।

अपराधः स दैवस्य·····························दैवयोगाद् विनश्यति॥८॥

समास—दैवयोगात्-दैवस्य योगात्-तत्पुरुष।

रूप—मन्त्रिणाम्-मन्त्रिन्-मन्त्री-शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन- मन्त्रिणः, मन्त्रिणोः, मन्त्रिणाम्।

अन्वय—अयं दैवस्य अपराधः पुनः मन्त्रिणां न, क्वापि सुचरितम् कार्यम् अपि दैवयोगात् विनश्यति।

शब्दार्थ—अयं दैवस्य अपराधः=यह भाग्य का अपराध-दोष-है। मन्त्रिणां न=मन्त्रियों का नहीं। क्व अपि सुचरितं कार्यम् अपि=कभी-कभी उत्तम कार्य भी दैवयोगात् विनश्यति=भाग्य के दोष से बिगड़ जाता है।

व्याख्या—यह सब भाग्य का दोष-खेल-है, मन्त्रियों का नहीं। यह देखा जाता है कि कभी-कभी उत्तम कार्य भी-बना-बनाया काम भी-भाग्य के दोष से बिगड़ जाता है।

भावार्थ—तेरे मन कछु और है विधना के कछु और।

मन्त्री ब्रूते=मन्त्री चक्रवाक कहता है। एतत् उक्तम् एव=यह कहा जा चुका है—

विषमां हि दशां प्राप्य..........नैव जानात्यपंडितः ॥३॥

सन्धि-विच्छेद—कर्म-दोषांश्च=कर्म-दोषान्+च=न् को अनुस्वार और श्—व्यंजन सन्धि। जानात्यपंडितः=जानाति+अपंडितः—इ को य्—यण् सन्धि।

समास—कर्म-दोषान्—कर्मणां दोषा इति कर्मदोषाः—षष्ठी तत्पुरुष-समास।

रूप—आत्मनः—आत्मन्—आत्मा या अपना—शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति एकवचन—आत्मनः, आत्मनोः, आत्मनाम्। जानाति—ज्ञा—जानना—क्रिया, ज्ञा को जा हो जाता है, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन—जानाति, जानीतः, जानन्ति।

अन्वय—हि नरः विषमां दशां प्राप्य दैवं गर्हयते, अपंडितः आत्मनः कर्म-दोषान् नैव जानाति।

शब्दार्थ—विषमां दशाम्=दुर्दशा को। प्राप्य=पाकर। दैवं गर्हयते=दैव-प्रारब्ध की निन्दा करता है—दैव को दोषी ठहराता है। अपंडितः=यह मूर्ख। आत्मनः=अपने। कर्म-दोषान् नैव जानाति=कर्मों के दोषों-दुष्कर्मों-को नहीं जानता अर्थात् अपने कर्मों को नहीं देखना चाहता है।

व्याख्या—मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो दुर्दशा—बुरा दिन—आने पर दैव-प्रारब्ध को कोसने लगता है—प्रारब्ध की निन्दा करता है। वह अपनी अपने कर्मों पर ध्यान नहीं करता अर्थात् अपने स्वयं कर्मों को देखना नहीं चाहता। परन्तु वह इन स्वयं कर्मों का निश्चित परिणाम दिखता है तो दैव को दोषी ठहराता है।

भावार्थ—मानव को निज कार्य-निरीक्षण स्वयं करना चाहिए।

अपरं च=और भी

सुहृदां हितकामानां यो वाक्यम्……काष्ठाद् भ्रष्टो विनश्यति ॥४॥

समास—हितकामानाम्–हितं कामयन्ते इति हितकामाः–तत्पुरुष–तेषाम्। दुर्बुद्धिः दुः (दुष्टा) बुद्धिः यस्य सः–दुर्बुद्धिः=बहुव्रीहि।

अन्वय—यः हितकामानां सुहृदां वाक्यं न अभिनन्दति स दुर्बुद्धिः काष्ठात् भ्रष्टः कूर्म इव विनश्यति।

शब्दार्थ—हितकामानाम्=हित की कामना करने वाले–भला चाहने वाले। न अभिनन्दति=अनुमोदन नहीं करता—नहीं मानता। दुर्बुद्धिः=मूर्ख। काष्ठात् भ्रष्टः=लकड़े से गिरे हुए। कूर्म इव विनश्यति=कछुए के समान नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—जो हितकारी मित्रों की बात नहीं मानता, वह विपत्ति के जाल में फँस जाता है। राजा आह एतत् कथम्=राजा राजहंस कहता है—यह कैसे? मन्त्री कथयति=मन्त्री कहता है—

हंस-कूर्मयोः कथा=हंसों और कछुए की कहानी।

अस्ति मगध देशे………दृष्ट-व्यतिकरोऽहमत्र ॥

सन्धि विच्छेद—अथैकदा–अथ + एकदा–अ+ए=ऐ–वृद्धिसंधि। धीवरैरागत्य=धीवरैः + आगत्य–विसर्ग को रेफ (र्) विसर्ग संधि। सर्वथाम्–सर्व+आरम्–अ+उ=ओ–गुणसंधि। हंसावाहतुः–हंसौ+आहतुः–यदि ए, ऐ, ओ या औ के बाद स्वर आते हैं तो ए को अय्, ऐ को आय्, ओ को अव् और औ को आव् हो जाता है। यहाँ औ को आव् हुआ है—अयादि संधि।

समास—फुल्लोत्पलाभिधानम्–फुल्लानि उत्पलानि यस्मिन् तत्–फुल्लोत्पलम्—बहुव्रीहि; फुल्लोत्पलम् एव अभिधानं यस्य तत्–फुल्लोत्पलाभिधानम्–बहुव्रीहि। दृष्ट-व्यतिकरः–दृष्टः व्यतिकरः येन सः–दृष्ट-व्यतिकरः बहुव्रीहि।

रूप—आह-ब्रू–कहना–क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–आह, आहतुः, आहुः। (अन्य पुरुष के तीन और मध्यम पुरुष के दो वचनों में ब्रू–धातु को "आह" हो जाता है। जानन्–ज्ञा–जानना–क्रिया, कर्तृवाच्य, आत्मनेपद, आशार्थ, अन्य पुरुष, एकवचन–जानताम्, जानेताम् जानन्तम्।

व्याख्या—प्राचीन काल में इसी सरोवर में इसी प्रकार मछुओं के आने पर तीन मत्स्यों ने विचार किया। वहाँ अनागतविधाता नामक एक मत्स्य था। उसने सोचा कि मुझे दूसरे तालाब में चले जाना चाहिए—यह सोचकर वह दूसरे सरोवर में चला गया। दूसरे प्रत्युत्पन्नमति नामक मत्स्य ने कहा—देखा जायगा। भविष्य पर विश्वास के अभाव में मैं कहाँ जाऊँ। विपत्ति के उपस्थित होने पर उपाय किया जायगा। यद्भविष्य ने कहा—

यद्भावि न तद्भावि··············अगदः किं न पीयते ॥ ६ ॥

सन्धि-विच्छेद—यद्भावि-यत्+अभावि-त् को द्-व्यंजन संधि। चेन्न-चेत्+न, किन्न-किम्+न-त् को न्, म् को न्—व्यंजन सन्धि।

समास—चिन्ता-विषघ्नः-चिन्ता एव विषम्—चिन्ताविषं हन्ति इति-चिन्ता-विषघ्नः—तत्पुरुष।

अन्वय—यत् अभावि, तत् भावि न, भावि चेत् तत् अन्यथा न-इति चिन्ताविषघ्नः अगदः किं न पीयते।

शब्दार्थ—भावि-होनहार। अन्यथा न=बदल नहीं सकता। चिन्ताविषघ्न= चिन्तारूपी विष का नाश करने वाला। अगदः=औषध।

व्याख्या—जो होनहार नहीं है, वह हो नहीं सकता और जो होनहार है वह बदला नहीं जा सकता। चिन्तारूपी विष को नष्ट करने वाला यह औषध क्यों नहीं पिया जाता अर्थात् होनहार टाला नहीं जा सकता, अतएव चिन्ता करना व्यर्थ है। यह दैववादी यद्भविष्य मत्स्य के विचार थे।

ततः प्रातः जालेन बद्धः·······पद्य-यत्नेन मयापि सुखेन गन्तव्याम् ॥

सन्धि-विच्छेद—मृतवदात्मानम्—मृतवत् + आत्मानम्-त् को द्-व्यंजन सन्धि। इंशावाहतः-इंशौ+आहतः-औ को आव्—अयादि संधि।

समास—यथाशक्ति-शक्तिम् अनतिक्रम्य इति यथाशक्ति-अव्ययीभाव। चंचुघृतम्-चंचुभ्यां घृतम्-इति चञ्चुघृतम्-तृतीया तत्पुरुष।

रूप—प्रविष्टः-प्र उपसर्ग, विश=अन्दर जाना-क्रिया से त (क्त) प्रत्यय। प्राप्नोति-प्र उपसर्ग, आप्-पाना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन-प्राप्नोमि, प्राप्नुव, प्राप्नुमः। गच्छतः-गच्छत्-शतृ (अत्) प्रत्ययान्त-जाता हुआ-शब्द, पुल्लिंग, षष्टी विभक्ति एकवचन-गच्छतः, गच्छतोः, गच्छताम्।

कूर्मः पृच्छति = कछुआ पूछता है। एतत् कथम् = यह कथा किस प्रकार है। तौ कथयतः = वे (दोनों हंस) कहते हैं।

बकनकुलयोः कथा—बक और नेवलों की कथा।

अस्त्युत्तरापथे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते······अथ आर्वा म् वः-उपायं चिन्तयन् इत्यादि ॥

सन्धि-विच्छेद—अस्त्युत्तरापथे=अस्ति+उत्तरापथे-इ को य् =यण् संधि।

समास—शोकार्त्तानाम्-शोकेन आर्त्ता इति-शोकार्त्ताः-तृतीया-तत्पुरुष-तेषाम्।

रूप—विकिरत-वि उपसर्ग, कृ-फेंकना-क्रिया,परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, बहुवचन-विकिर-विकिरतात्, विकिरतम्, विकिरत।

शब्दार्थ—उत्तरापथे = उत्तरी भारतवर्ष में। महापिप्पलवृक्षः = पीपल का बड़ा पेड़। अधस्तात् विवरे = नीचे बिल में। बालापत्यानि = छोटे बच्चों को। शोकार्त्तानाम् = शोक से व्याकुल। उपादाय = लेकर। आरभ्य = आरम्भ करके। सर्पविवरं यावत् = साँप के बिल तक। पंक्ति-क्रमेण विकरत = पंक्ति-बद्ध-लाइन से-बिखेर दो। तत् आहार-लुब्धैः = उस भोजन के लालची। स्वभाववैरात् = स्वाभाविक शत्रुता के कारण। तद्वृत्तम् = वही हुआ। बक-शावकरवः = बगुलों के बच्चों की आवाज।

व्याख्या—उत्तरी भारत में गृध्रकूट नामक पर्वत पर एक विशाल पीपल का वृक्ष है। वहाँ अनेक बगुले निवास करते हैं। उस वृक्ष के नीचे बिल में रहने वाला साँप बगुलों के बच्चों को खा जाता है। शोक से व्याकुल होने वाले बगुलों का विलाप-रोना-सुनकर किसी बगुले ने कहा—ऐसा करो कि तुम मछलियों को लेकर नकुल के बिल से साँप के बिल तक लाइन बिछा दो। भोजन के लालची नकुल आकर साँप को देखेंगे और स्वाभाविक शत्रुता के कारण साँप को अवश्य ही मार देंगे। उनके ऐसा करने पर वही हुआ। नकुल वहाँ आ गये और उन्होंने जब वहाँ बगुलों के बच्चों की आवाज सुनी तो वृक्ष पर चढ़ कर सभी बच्चों को खा लिया। अतएव हम कहते हैं कि उपाय सोचते समय-अपाय-खतरे को भी सोचना आवश्यक है।

आवाभ्यां नीयमानं त्वामलोक्य···अतोऽहं ब्रवीमि सुहृदां हि
कम्मानाम् इत्यादि ॥

समास—कोपाविष्टः—कोपेन आविष्ट इति कोपाविष्टः—तृतीया तत्पुरुष
विस्मृत-पूर्व-संस्कारः—विस्मृतः पूर्वः संस्कारः येन सः—बहुव्रीहि ।

रूप—पक्त्वा—पच्—पकाना—रांधना—क्रिया—से त्वा प्रत्यय । दग्ध्वा—
दह्—चलाना—क्रिया—से त्वा प्रत्यय । भस्म—भस्मन्—धूल—राख—शब्द, नपुंसक-
लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-भस्म, भस्मनी, भस्मानि ।

शब्दार्थ—आवाभ्यां नीयमानम् = हम दोनों से ले जाते हुए को ।
वक्तव्यम् एव = कहा गया । त्वन्मरणम् – तेरी मौत । अत्र एव स्थीयताम्=यहीं
ठहरो । अप्राज्ञः–अज्ञानी । पक्त्वा खादितव्यः = पका कर खाना चाहिए । दग्ध्वा
= भूनकर । कोपाविष्टः = क्रोध में भरा हुआ । विस्मृत-पूर्व-संस्कारः=पहली बात
को भूल जाने वाला । युष्माभिः भस्म भक्षितव्यम् = तुम धूल खाना । पतितः
गिरा । व्यापादितः = मारा गया ।

व्याख्या—दोनों हंस कहते हैं कि हम दोनों से ले जाते हुए तुम्हें देख कर
लोग कुछ न कुछ कहेंगे ही । उसे सुन कर यदि तुम उत्तर दोगे तो तुम्हारी मृत्यु
निश्चित है । इसलिए तुम यहीं रहो । कछुआ कहता है—क्या मैं अज्ञानी-मूर्ख
हूँ ! मैं उत्तर नहीं दूंगा और न कुछ कहूँगा । ऐसा करने पर अर्थात् हंसों द्वारा
ले जाते हुए कछुए को देख कर ग्वाले पीछे दौड़ते और कहते हैं—अहो, बड़ा
आश्चर्य है । पक्षी कछुए को ले जाते हैं । कोई कहता, यहीं भून कर खाना
चाहिए । कोई कहता, घर ले जाकर खाना ठीक होगा । उनके वचन सुनकर
कछुए को क्रोध आ गया, वह पहली बात भूल गया और फौरन बोला—
धूल खाना । इतना बोलते ही गिर पड़ा और मारा गया । इसलिए मैं कहता
कि जो अपने हितैषी मित्रों की बात नहीं सुनता, वह मूर्ख कछुए के समान डाल
से गिर कर मारा जाता है ।

अथ प्रणिधिः बकः···············राजा निःश्वस्य आह ॥

संधि-विच्छेद—तत्रागत्योवाच—तत्र + आगत्य + उवाच – दीर्घ और
गुणसन्धि । प्रागेव-प्राक् + एव—क् को ग् व्यंजन सन्धि ।

समास—गृध्र-प्रयुक्तेन—गृध्रेण प्रयुक्तः इति गृध्र-प्रयुक्तः—तत्पुरुष-तेन ।

शब्दार्थ—आगत्य उवाच = आकर बोला। प्रागेव-पहले ही। निगदितम् = कहा था। अनवधानस्य फलम् अनुभूतम् = उसी असावधानी का फल पाया। दुर्ग-दाहः = किले का दाह—जलाना। गृध्र-प्रयुक्तेन = मन्त्री गृध्र द्वारा नियुक्त किये हुए ने।

व्याख्या—गुप्तचर बक ने वहाँ जाकर कहा—स्वामिन्! मैंने पहले ही कहा था कि किले का शोधन होना चाहिये अर्थात् देखना चाहिए कि किले में कोई पंचमांगी तो नहीं आ गया है और वह आपने किया नहीं। उसी असावधानी का फल पाया। किले को गृध्र द्वारा नियुक्त किये हुए मेघवर्ण वायस ने जलाया। राजा गहरी-ठंडी-साँस लेकर कहता है—

प्रणयादुपकाराद्वा·············पतितःप्रतिबुध्यते ॥ ८ ॥

अन्वय—यः प्रणयात् वा उपकारात् शत्रुषु विश्वसिति सुप्त सः वृक्षाग्रात् पतितः प्रतिबुध्यते।

शब्दार्थ—प्रणयात् = स्नेह से। विश्वसिति = विश्वास करता है। पतितः गिरा हुआ। प्रतिबुध्यते = जागता है।

व्याख्या—जो मनुष्य स्नेह-वश या उपकार-वश शत्रुओं पर विश्वास करता है, सोया हुआ वह पुरुष वृक्ष के अग्र भाग से गिरने वाले के समान जागता है अर्थात् वृक्ष पर सोने वाला जब नीचे गिर जाता है, तभी उसकी आंख खुलती है—तभी सचेत होता है—गिरने के पहले नहीं। यदि गिरने के पहले वह सचेत हो जाय तब नीचे गिरे ही क्यों?

प्रणिधिः पुनरुवाच......महतामास्पदे नीचः कदापि न कर्त्तव्यः।

समास—प्रधान-मन्त्रिणा-प्रधानः चासौ मन्त्री इति प्रधानमन्त्री—कर्मधारय-तेन।

रूप—अभिषिच्यताम्—सिच्—सींचना, पानी देना, अभि उपसर्ग, अभिसिच्-अभिषेक करना-क्रिया, आत्मनेपद कर्मवाच्य, आज्ञा लोट, एक-वचन-अभिषिच्यताम्, अभिषिच्येताम्, अभिषिच्यन्ताम्।

शब्दार्थ—विधाय=करके। प्रसादितेन=प्रसन्न होने वाले ने। अभिषिच्यताम्=अभिषेक करो-राजा बना दो। अभिहितम्=कहा। प्रसादान्तरं क्रियताम्=दूसरी कृपा कीजिये-अन्य पारितोषिक दीजिए। महताम् आस्पदे=बड़ों के स्थान पर।

व्याख्या—गुप्तचर ने फिर कहा—यहां किला बना कर अब मेघवर्ण वहां पहुँचा, तब राजा चित्रवर्ण ने प्रसन्न हो कहा—कर्पूरद्वीप का राजा मेघवर्ण को बना देना चाहिए। मन्त्री चकवा कहता है—देव, गुप्तचर जो कहता है वह आपने सुना ! राजा बोला—फिर गुप्तचर बोला—प्रधान मन्त्री गृध्र ने बता दिया—स्वामिन् ! यह उचित नहीं है। दूसरा कोई पारितोषिक दे दीजिए। महान् पुरुषों के स्थान पर छोटे को बैठाना उचित नहीं है।

तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा गया है—

नीचः श्लाघ्य-पदं प्राप्य······मुनिं हन्तुं गतो यथा ॥६॥

समास—श्लाघ्यपदम्—श्लाघ्यं च तत् पदम् इति-श्लाघ्य कर्मधारय।

अन्वय—नीचः (पुरुषः) श्लाघ्य-पदं प्राप्य स्वामिनं हन्तुम् इच्छति यथा मूषकः व्याघ्रतां प्राप्य मुनिं हन्तुं गतः।

शब्दार्थ—श्लाघ्य-पदम्=प्रशंसनीय पद को-महत्ता को अर्थात् ऊँचे दर्जे को। प्राप्य=पाकर। हन्तुम् इच्छति=मारना चाहता है। व्याघ्रतां प्राप्य=बाघ बन कर। हन्तुं गतः=मारने को गया।

व्याख्या—नीच मनुष्य यदि ऊँचा पद पा लेता है तो वह अपने स्वामी को ही नष्ट कर देना चाहता है। जिस प्रकार कि एक मूषक को मुनि ने बाघ बना दिया तो वह उनको ही समाप्त करने को दौड़ पड़ा। अतएव नीच जन को ऊँचे पद पर बैठाना खतरे से खाली नहीं है।

चित्रवर्णः पृच्छति=चित्रवर्ण पूछता है। एतत् कथम्=यह कैसे ? कथयति=कहता है।

मुनि-मूषिकयोः कथा=मुनि और मुहिया की कथा—

अथ गौतमारण्ये······पुनर्मूषको भव इत्युक्त्वा मूषक एव कृतः

संधि-विच्छेद—एतच्छ्रुत्वा-एतत्-त् को च् और श् को छ्-व्यंजन सन्धि।

समास—महातपाः-महत् तपः यस्य सः-महातपाः बहुव्रीहि।

रूप—[illegible]-[illegible] बना-क्रिया, प्र उपसर्ग-[illegible], परस्मैपद, [illegible] भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन-[illegible]। [illegible] बना-क्रिया, परस्मैपद, [illegible]

पुरुष, एकवचन-विभेति, विभीतः—विभितः, विभ्यति। स्थीयते-स्था-ठहरना-क्रिया कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-स्थीयते, स्थीयेते, स्थीयन्ते।

शब्दार्थ—महातपाः=बड़ा तपस्वी। काक-मुखाद् भ्रष्टः=काक के मुख से गिरा हुआ। स्वभाव-दयात्मना=स्वभाव से दयालु ने। नीवारः-कणैः संवर्धितः=पशाई आदि तृणधान्य से बढ़ाया हुआ। उपधावति=पास दौड़ता है। मुनेः क्रोड़े प्रविवेश=मुनि की गोद में प्रविष्ट हो गया। मार्जारो भव=बिलाव हो जा। पलायते=भागता है। बिभेषि=डरते हो। स्थीयते=स्थिर रहता है—जीवित रहता है। स्वरूपाख्यानम्=अपने रूप की कहानी। अकीर्तिकरम्=अपयश करने वाली। आलोच्य=विचार कर।

व्याख्या—गौतम वन में महातपस्वी एक मुनि थे। उन मुनि ने वहाँ कौए के मुख से गिरे हुए एक मूषक को देखा। स्वभाव से ही दयालु मुनि ने उस मूषक को काक से छुड़ाया और तीने के चावलों द्वारा उसका पोषण किया। तत्पश्चात् बिलाव उस चूहे को खाने को पास आता है। उसे देखकर मूषक भयभीत हो मुनि की गोद में घुस गया। तब मुनि ने कहा—मूषक तुम बिलाव हो जाओ। बिलाव कुत्ते को देखकर भागता है। तब मुनि ने कहा—कुत्ते से डरते हो। तुम भी कुत्ता हो जाओ। वह कुत्ता बन कर भी बाघ से डरता है। तब मुनि ने कुत्ते को बाघ बना दिया। मुनि उस बाघ को मूषक ही समझते। उन मुनि और व्याघ्र को देखकर सभी जनता कहती कि इन मुनि ने इस चूहे को व्याघ्र बना दिया। यह सुन व्याघ्र ने सोचा—जब तक मुनि जीवित हैं, तब तक निन्दाकारी मेरे रूप की कहानी नष्ट नहीं हो सकती है—यह सोच कर मूषक मुनि को मारने को गया। मुनि ने यह देख-'फिर मूषक हो जा' यह कह कर उसे फिर चूहा बना दिया।

अतोऽहं ब्रवीमि=वह कह रहा है कि इसीलिए मैं कहता हूँ—नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य=नीच पुरुष ऊँचा पद पाकर अपने स्वामी को ही नष्ट करना चाहता है।

अपरंच=और। इदं सुकरम्=यह आसान—सरल है। इति न मन्तव्यम्=यह नहीं विचार करना चाहिए।

शृणु = सुनिये—

भक्षयित्वा बहून् मत्स्यान्……मृतः कर्कट-ग्रहात् ॥१०॥

समास—उत्तमाधम-मध्यमान्–उत्तमः च अधमः च मध्यमः च–उत्तमाधममध्यमाः–द्वन्द्व–तान् ।

रूप—मृतः–मृ=मरना–क्रिया त (क्त) प्रत्यय ।

अन्वय—कश्चित् बकः उत्तमाधम-मध्यमान् बहून् मत्स्यान् भक्षयित्वा अतिलौल्यात् कर्कट-ग्रहात् मृतः ।

शब्दार्थ—अतिलौल्यात्=अधिक लालच से । कर्कट-ग्रहात्=केकड़े द्वारा पकड़ने से । मृतः=मर गया ।

व्याख्या—कोई बगुला उत्तम, मध्यम और अधम आकार वाली अनेक मछलियां खाकर लालच के कारण केकड़े द्वारा पकड़े जाने पर मारा गया अर्थात् केकड़े ने उसकी गर्दन दबा कर मार डाला ।

चित्रवर्णः पृच्छति–एतत् कथम्=राजा चित्रवर्ण पूछता है—यह किस प्रकार ?

मंत्री कथयति=मंत्री उत्तर कहता है ।

बक-कुलीरयोः कथा=बक और केकड़े की कथा ।

अस्ति मालवदेशे पद्मगर्भनामधेयं सरः……तद् अयमेव यः कर्तव्यंपृच्छ्यताम् ॥

संधि-विच्छेद—तत्रैकः–तत्र+एकः=वृद्धिसंधि । कैवर्तैरागत्य=कैवर्तैः+आगत्य–विसर्ग को रेफ (र्) विसर्गसन्धि ।

समास—सामर्थ्य हीनः–सामर्थ्येन हीनः–तृतीया तत्पुरुष । नगरोपान्ते–नगरस्य उपान्ते–षष्ठी तत्पुरुष । वर्तनाभावात्–वर्तनस्य अभावात्–तत्पुरुष ।

रूप—दृष्टः–दृश्–देखना–क्रिया से त (क्त) प्रत्यय । पृष्टः–प्रच्छ्–पूछना–क्रिया से त (क्त) प्रत्यय । ज्ञात्वा–ज्ञा–जानना–क्रिया, क्त्वा । उपस्थितम्–स्था–ठहरना, उप उपसर्ग–उपस्था–मौजूद होना–क्रिया, त (क्त) प्रत्यय ।

शब्दार्थ—नामधेयम्=नामक । सामर्थ्य हीन=निर्बल । उद्विग्नम् इव=घबराया हुआ सा । दर्शयित्वा=दिखा कर । कुलीरेण पृष्टः=केकड़े ने पूछा । व्यापादयितव्याः=धीवरों–मनुष्यों द्वारा मारी जाएंगी । नगरोपान्ते=पास । वर्तन–अभावात्=जीविका के अभाव से–जीवन चलाने के

न होने से। आहारे अपि अनादरः=भोजन में भी अनादर—ग्लानि। रकः=उपकारी। लक्ष्यते= मालूम होता है। यथाकर्तव्यं पृच्छयताम्= योग्य कार्य पूछा जाय।

व्याख्या—मालव देश में पद्मगर्भ नामक सरोवर है। वहां एक बूढ़ा, बगुला स्वयं को व्याकुल-सा दिखाकर बैठा था। किसी कुम्भीरक—ने उसे देखा और पूछा—आप यहां भोजन त्याग कर क्यों बैठे हैं? कहा—मछलियां मेरे जीवन का कारण हैं अर्थात् मछलियां खाकर मैं रहता हूँ। धीवर यहां आकर उन्हें मार देंगे—यह समाचार मैंने के पास सुना है, अतएव जीविका के न होने से मेरी मृत्यु उपस्थित है—चार कर भोजन के प्रति भी मेरे मन में अनादर हो गया है अर्थात् मुझे भी अच्छा नहीं लगता है। मछलियों ने सोचा कि इस समय यह बगुला सा उपकारी दिखाई देता है, अतएव इससे ही अपने कर्तव्य को पूछना।

त च उक्तम्=वैसा ही कहा गया है—

उपकर्त्रारिणा संधि.........लक्ष्यं लक्षणमेतयोः॥ ११॥

मास—अपकारिणा—अपकारं करोति—इति अपकारी—सत्पुरुष—तेन।
र—उपकर्ता—उपकर्तृ—उपकारी—शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति र—उपकर्त्रा, उपकर्तृभ्यां उपकर्तृभिः। अपकारिणा—अपकारिन्—अपकार करने वाला—शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति—अपकारिणा-भ्यां, अपकारिभिः।

न्वय—उपकर्त्रा अरिणा संधिः (विधेयः)। अपकारिणा मित्रेण न (विधेयः) उपकार अपकारौ हि एतयोः लक्ष्यं लक्षणम्।

ब्दार्थ—उपकर्त्रा अरिणा=उपकार करने वाले शत्रु से। संधिः (विधेयः)=संधि कर लेनी चाहिए। अपकारिणा मित्रेण=अपकार करने वाले मित्र से नहीं। उपकार-अपकारौ=भलाई और बुराई। एतयोः=इन दोनों का। लक्षणम्=चिह्न।

व्या—उपकार-भलाई-करने वाले शत्रु के साथ संधि कर लेनी परन्तु अपकार-बुराई-करने वाले मित्र के साथ नहीं। मित्र और शत्रु

का जिसे उपकार और अपकार ही देखना चाहिए अर्थात् जो उपकार करता है वह मित्र और जो अपकारी है, वह शत्रु होता है।

मत्स्या ऊचुः भो बक............अनोऽद्य मयोनि भक्षितवान् बहून् मत्स्यान् ॥

समास—अपूर्व-कुलीर-मांस-स्वादार्थी—अपूर्वः चासौ कुलीरः—इति अपूर्व-कुलीर-मांसः—कर्मधारय-अपूर्व-कुलीर मांसस्य स्वादार्थी—इति—तत्पुरुष। मत्स्यास्थि-कण्टकाकीर्णम् = मत्स्यानां अस्थीनि—इति मत्स्यास्थीनि—तत्पुरुष—मत्स्यास्थिभिः कण्टकैः च आकीर्णम्—इति तत्पुरुष। मन्दभाग्यः—मन्दं भाग्यं यस्य सः— मन्दभाग्यः—बहुव्रीहि।

रूप—धृतवान्—धृतवत्=धरता हुआ-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-धृतवान्, धृतवन्तौ, धृतवन्तः। व्यवहरिष्यामि—हृ—हरण करना, वि अव-उपसर्ग—व्यवहृ = व्यवहार करना-क्रिया, परस्मैपद, भविष्यत्काल, उत्तम पुरुष, एकवचन—व्यवहरिष्यामि, व्यवहरिष्यावः, व्यवहरिष्यामः। चिच्छेद-छिद्,—काटना-क्रिया, परस्मैपद, परोक्षभूत काल, अन्य पुरुष, एकवचन-चिच्छेद, चिच्छिदतुः, चिच्छिदुः।

शब्दार्थ—रक्षणोपायः=रक्षा का उपाय। जलाशयान्तरगमनम्=दूसरे सरोवर में आश्रय लेना। एकैकशः=एक-एक करके-क्रमशः। अपूर्व-कुलीर-मांस-स्वादार्थी=अनोखे केकड़े के मांस के स्वाद का अभिलाषी। तत् स्थानम् आलोक्य=उस जगह को देख कर। मत्स्यास्थि-कण्टक-आकीर्णम्=मछलियों की हड्डियों और काँटों से व्याप्त-पूर्ण। व्यवहरिष्यामि=व्यवहार करूंगा। ग्रीवां चिच्छेद=गर्दन को काटा अर्थात् उसकी गर्दन को अपने तेज नाखून से दबाया।

व्याख्या—मछलियाँ बोलीं—हे बगुले! यहां रक्षा का क्या उपाय है? बगुला कहता है—दूसरे सरोवर में जाना ही रक्षा का उपाय है। मैं एक एक करके तुम सबको ले जाऊँगा। मत्स्य बोले—यह ठीक है-ऐसा ही हो। तत्पश्चात् वह बगुला उन मत्स्यों को एक-एक करके ले जाकर खा लेता है। इसके बाद केकड़े ने उससे कहा—भो बक! मुझे भी वहां ले चल। तब विचित्र मांस के स्वाद के अभिलाषी ...

रक्खा। केकड़ा मछलियों की हड्डियों और काँटों में व्याप्त उस स्थान को देख कर सोचने लगा—हा! मैं मन्दभागी मारा जाऊँगा। अच्छा जो कुछ हो, मैं अब समयानुसार व्यवहार करूँगा। यह विचार कर केकड़े ने उसकी गर्दन छेद डाली, जिससे वह बगुला मर गया। इसीलिए मैं कहता हूँ कि उत्तम-मध्यम और अधम सब तरह की मछलियाँ खाने वाला बक लोभवश केकड़े द्वारा मारा गया।

ततः चित्रवर्णोऽवदत्…………………दूरदर्शी विहस्याह देव!

रूप—राज्ञा—राजन्-राजा-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन-राज्ञा, राजभ्याम्, राजभिः। यावन्ति-यावत्-जितना-शब्द, नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन-यावत्, यावती, यावन्ति। उपनेतव्यानि, उप उपसर्ग, नी-क्रिया, उपनी-से तव्य प्रत्यय। स्थातव्यम्-स्था-ठहरना-क्रिया से तव्य प्रत्यय।

शब्दार्थ—अवस्थितेन=रहने वाले। यावति उत्तमानि वस्तूनि=जितनी उत्तम चीजें। उपनेतव्यानि=ले जानी चाहिए। स्थातव्यम्=स्थित रहेंगे। विहस्य=हँस कर।

व्याख्या—राजा चित्रवर्ण बोला—तो हे मन्त्री जी, सुनिये। मैंने यह विचार किया है। यहां रहने वाला मेघवर्ण कर्पूरद्वीप के राजा की जितनी उत्तम वस्तुएं बताया है, उतनी ले जानी चाहिए। जिससे हम विन्ध्याचल में सुखपूर्वक रहें अर्थात् उन वस्तुओं का उपभोग कर आनन्दपूर्वक रहें। दूरदर्शी गृध्र हंस कर कहता है—हे देव—

अनागतवतीं चिन्तां कृत्वा………भग्नभाण्डो द्विजो यथा॥ १२॥

समास—भग्नभाण्डः=भग्नं भाण्डं यस्य सः—भग्नभाण्डः—बहुव्रीहि।

रूप—आप्नोति-आप्-पाना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-आप्नोति, आप्नुतः, आप्नुवन्ति।

अन्वय—यः तु अनागतवतीं चिन्तां कृत्वा प्रहृष्यति स तिरस्कारम् आप्नोति यथा भग्नभाण्डः द्विजः।

शब्दार्थ—अनागतवतीम् = भविष्य की। प्रहृष्यति = खुश होता है।

तिरस्कारम् आप्नोति = अनादर पाता है। यथा भग्नभाण्डः द्विजः = टूटे हुए बर्तन वाला ब्राह्मण।

व्याख्या—जो भविष्य की चिन्ता कर अर्थात् न आने वाली बात की चिन्ता करके खुश होता है, वह बर्तन तोड़ने वाले ब्राह्मण के समान तिरस्कार को पाता है।

भग्नभाण्ड द्विज-कथा=जिसका बर्तन टूट गया है, उस ब्राह्मण की कथा

अस्ति देवीकोट्टनाम्नि नगरे.....................वहिष्कृतश्च।

सन्धि-विच्छेद—तदात्रैव-तदा+अत्र+एव-दीर्घ और वृद्धि सन्धि इत्यभिधाय-इति+अभिधाय-इ को य-यण् सन्धि।

समास—सक्तु - पूर्ण - शरावः- सक्तुभिः पूर्णः इति-सक्तुपूर्णः-तृतीया तत्पुरुष, सक्तुपूर्णः चासौ शराव इति सक्तु-पूर्ण-शरावः-कर्मधारय, । भाण्ड-पूर्ण-मण्डपैकदेशे-भाण्डैः पूर्णं इति भाण्डपूर्णः, भाण्डपूर्णः चासौ मण्डप इति भाण्डपूर्ण-मण्डपः-कर्मधारय, भाण्ड-पूर्ण - मण्डपस्य एकदेशे - तत्पुरुष कोपाकुलः-कोपेन आकुल इति कोपाकुलः-तृतीया तत्पुरुष।

रूप—सुप्तः—सुप्-सोना-शयन करना-क्रिया से त प्रत्यय। सपत्न्यः सपत्नी - सौत - शब्द, स्त्रीलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति बहुवचन-सपत्नी, सपत्न्यौ, सपत्न्यः।

शब्दार्थ—महाविषुवत्संक्रान्त्यां = मेष की संक्रान्ति में-जिसमें रात-दिन समान होते हैं। सक्तु-पूर्ण-शरावः = सत्तुओं से भरा हुआ सकोरा। भाण्ड-पूर्ण-मण्डपैकदेशे = बर्तनों से भरे हुए मकान के एक भाग में। सुप्तः = सो कर। विक्रीय= बेच कर। कपर्दिकान् = कौड़ियों को। प्राप्स्यामि = प्राप्त करूंगा। घट-शरावादिकम् = घड़े-सकोरे आदि को। उपक्रीय = खरीद कर। पूग = सुपारी। विक्रीय = बेच कर। लक्ष = लाख। चतुष्टयम् = चार। सपत्न्यः = सौतें। द्वन्द्वं करिष्यन्ति = झगड़ा करेंगी। कोपाकुलः=कोप में भरा हुआ। लगुडेन ताडयिष्यामि = लाठी से पीटूँगा। अभिधाय = कह कर। क्षिप्तः= फेंक दी। चूर्णितः = टूट गया। भग्नानि = टूट गये। तथा-विधानि = उस तरह के अर्थात् टूटे हुए। तिरस्कृतः = अनादर किया। बहिष्कृतः=बाहर कर दिया।

व्याख्या—देवकोट नामक नगर में देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण था। उसने मेष की संक्रान्ति के दिन (दान में) सत्तुओं से भरा एक सकोरा प्राप्त किया। उसे लेकर वह किसी कुम्हार के बर्त्तनों से भरे हुए घर के एक भाग में सो गया। सत्तुओं की रक्षा के लिए हाथ में एक डण्डा लेकर सोचने लगा—यदि मैं सत्तुओं से पूर्ण इस सकोरे को बेच कर दस कौड़ियां पा लूँगा तो यहीं पर उन कौड़ियों से सकोरे और घड़े खरीद कर अनेक प्रकार से धन-वृद्धि करके फिर सुपारी, वस्त्र आदि खरीद कर और बेच कर लाखों रुपया इकट्ठा कर चार विवाह कर लूँगा। उनमें जो अधिक सुन्दर होगी, वह मुझे अतिशय प्रिय होगी। जब सौतें (चारों पत्नियां) आपस में झगड़ा करेंगी, तब क्रोध से भर डण्डों से पीटूंगा—यह कर उसने डण्डा फैंका, जिससे सत्तुओं से भरा सकोरा टूट गया और (कुम्हार के) अनेक बर्त्तन भी टूट गये। उसके शब्द को सुन कर कुम्हार ने अपने बर्त्तनों को देख ब्राह्मण को तिरस्कृत कर मण्डप से बाहर निकाल दिया।

ततो राजा रहसि गृध्रमुवाच·········मम संमतं तावदेतत् ॥

सन्धि-विच्छेद—तथोपदिश-तथा + उपदिश – आ + उ=ओ–गुणसंधि लब्ध्वैव-लब्ध्वा + एव = आ + ए–वृद्धि संधि।

समास—पर-भूमिष्ठानाम्–परस्य भूमौ तिष्ठति–इति परभूमिष्ठः–तत्पुरुष-वेषाम्। स्वदेशगमनम्–स्वस्य देश इति स्वदेशः–स्वदेशे गमनम् इति स्वदेश-गमनम्–तत्पुरुष।

रूप—रहसि–रहस् –सकारान्त–शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एक-वचन–रहसि, रहसोः, रहस्सु। उपदिश–दिश,–दिखाना, उप उपसर्ग, उपदिश्–उपदेश देना–क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन–उपदिश-तात्, उपदिशतम्, उपदिशत। क्रियते–कृ–करना–क्रिया, आत्मनेपद, कर्मवाच्य, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन–क्रियते, क्रियेते, क्रियन्ते। गम्य-ताम्–गम्–जाना क्रिया, आत्मनेपद, कर्मवाच्य, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन–गम्यताम्, गम्येताम्, गम्यन्ताम्।

व्याख्या—राजा चित्रवर्ण ने एकान्त में मन्त्री गृध्र से कहा—हे तात! जो कर्तव्य है, उसे बताइये। गृध्र कहता है—हे स्वामिन्! सुनिये—क्या हमने

अपनी सेना के बल से दुर्ग तोड़ा या आपके प्रताप द्वारा तोड़ा ? राजा क
है—आपके उपाय से। गृध्र कहता है—यदि आप हमारी बात मानें तो अ
देश को चलिए। नहीं तो वर्षा का समय आ जाने तथा फिर युद्ध छिड़ ब
पर दूसरों की भूमि में रहने वाले हमको अपने देश में जाना दुर्लभ
जायगा। इसलिये सुख-शोभा की बात यही है कि राजहंस के साथ संधि
चल देना चाहिए। किला भग्न कर दिया-जीत लिया-यश भी प्राप्त हो
गया। मेरी तो यही सम्मति है।

यतः=क्योंकि—

यो हि धर्मं पुरस्कृत्य·········तेन राजा सहायवान् ॥ १३ ॥

सन्धि-विच्छेद—अप्रियाण्याह-अप्रियाणि + आह-इ को य् = यण्संधि

रूप—भर्त्तुः-भर्तृ-स्वामी-शब्द, *पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन* भर्त्तुः,भर्त्रोः, भर्तृणाम्। सहायवान्-सहायवत्-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति एकवचन-सहायवान्, सहायवन्तौ, सहायवन्तः।

अन्वय—यः (मंत्री) भर्त्तुः, प्रिय-अप्रिये हित्वा धर्मं पुरस्कृत्य अप्रि याणि तथ्यानि आह तेन राजा सहायवान्।

शब्दार्थ—भर्त्तुः = स्वामी के। प्रिय-अप्रिये हित्वा = प्रसन्नता और अप्रसन्नता को त्याग कर। धर्मं पुरस्कृत्य = धर्म को आगे करके अर्थात् धर्म *का आश्रय लेकर। अप्रियाणि तथ्यानि आह = अप्रिय सच्ची बात कह देता है।*

व्याख्या—जो मन्त्री स्वामी की प्रसन्नता और अप्रसन्नता का ख्याल न कर धर्मपूर्वक अप्रिय सत्य कह देता है तो राजा को इससे सहायता मिलती है।

अपरं च = और भी—

सन्धिमिच्छेत् समेनापि······नष्टौ तुल्यबलौ न किम् ? ॥ १४ ॥

संधि विच्छेद—सुन्दोपसुन्दावन्योऽन्यम्-सुन्द + उपसुन्दौ + अन्यो + अन्यम्-गुण, अयादि, पूर्वरूप संधियाँ।

समास—सुन्दोपसुन्दौ-सुन्दः च उपसुन्दः च-द्वन्द्व। तुल्यबलौ-तुल्यं बलं ययोः तौ-बहुव्रीहि।

अन्वय—युधि विजयः सन्दिग्धः, समेन अपि संधिम् इच्छेत्। तुल्यबलौ [illegible] किम् अन्योन्यं न नष्टौ (अपि तु नष्टौ)।

शब्दार्थ—युधि = युद्ध में । विजयः सन्दिग्धः = विजय निश्चित नहीं । समेन अपि = तुल्यबल वाले के साथ भी । संधिम् इच्छेत् = संधि कर लेनी चाहिए । तुल्य बलौ = समान बल वाले । किं न नष्टौ = क्या विनाश को प्राप्त नहीं हुए अर्थात् अवश्य हुए ।

व्याख्या—युद्ध में विजय-प्राप्ति निश्चित नहीं, अतएव समान बल वाले शत्रु के साथ भी संधि कर लेनी चाहिए । सुन्द और उपसुन्द समान बलशाली थे तो भी आपस में लड़कर नष्ट हो गये ।

राजा उवाच = राजा बोला । एतत् कथम् = यह कैसे ? मन्त्री कथयति = मन्त्री कहता है ।

सुन्दोपसुन्दयोः कथा=सुन्द और उपसुन्द की कथा

पूर दैत्यौ सहोदरौ सुन्दोपसुन्दनामानौ······पार्वती प्रदत्ता ॥

समास—विचार मूढयोः-विचारे मूढः इति विचार-मूढः-सप्तमी तत्पुरुष तयोः । प्रमाण-पुरुषः-प्रमाणः चासौ पुरुष इति-कर्मधारय ।

रूप—परितुष्टः-परि उपसर्ग, तुष्-सन्तुष्ट होना क्रिया से त (क्त) प्रत्यय । ददातु-दा-देना-क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा, लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन-ददातु-दत्तात्, दत्ताम्, ददतु । भगवता-भगवत्-भगवान्, ऐश्वर्यशाली-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन-भगवता, भगवद्भ्याम्, भगवद्भिः ।

शब्दार्थ—चन्द्रशेखरम् आराधितवन्तौ = भगवान् शंकर की आराधना-पूजा-करते हुए । वरं वरयताम् = वर मांगो । समधिष्ठितसरस्वत्या = सरस्वती के बैठ जाने से । अन्यद् वक्तुकामौ = अन्य वर को चाहने वाले । अन्यत् अभिहितवन्तौ = दूसरी बात कह गये—दूसरा वर मांग गये । परितुष्टः-संतुष्ट । ददातु = दे । क्रुद्धेन = क्रुद्ध-नाराज-होने वाले ने । विचार-मूढयोः = सोचने-विचारने में मूढ़ों को ।

व्याख्या—प्राचीन काल में सहोदर सुन्द और उपसुन्द नामक दैत्यों ने तीनों [illegible] जीतने की इच्छा से बहुत समय तक भगवान् शंकर की पूजा [illegible] से सन्तुष्ट हो भगवान् चन्द्रशेखर ने उनसे कहा—वर [illegible] पर सरस्वती ने विराजमान होकर कुछ का कुछ कहला [illegible] चाहते थे, उसको न कह दूसरा मांग बैठे ।

उन्होंने कहा—यदि आप प्रसन्न हैं तो अपनी प्रिया पार्वती को दे दीजिये। क्रुद्ध शंकर ने उन विचारहीन मूर्खों को पार्वती को दे दिया। जिससे कि वरदान का महत्त्व व्यर्थ न हो।

तमनन्तरस्या रूपलावण्य-लुब्धाभ्याम्······इति भाव पृच्छयताम् ॥

सन्धि-विच्छेद—मनसोत्सुकाभ्याम्—मनसा+उत्सुकाभ्याम्—अ+उ = ओ = गुणसंधि। इत्यन्योन्यं—इति+अन्योन्यं—इ को य् = यण् संधि। तत्रोपस्थितः—तत्र+उपस्थितः—अ+उ = ओ—गुणसंधि। कस्येयम् — कस्य+इयम् — अ+इ = ए—गुणसंधि।

समास—रूप-लावण्य-लुब्धाभ्याम्—रूपेण लावण्येन च लुब्धौ—इति रूप-लावण्य-लुब्धौ—तत्पुरुष—ताभ्याम्—रूप-लावण्य-लुब्धाभ्याम्। प्रमाण-पुरुषः—प्रमाणरूपश्चासौ पुरुष इति प्रमाण-पुरुषः—कर्मधारय। स्वबल-लब्धा—स्वबलेन लब्धा—तत्पुरुष।

रूप—समागत्य—गम्—जाना, सम् और आ उपसर्ग, क्त्वा प्रत्यय किन्तु उपसर्ग पहले होने से क्त्वा को य हो गया। उपस्थितः—स्था—ठहरना, उप उपसर्ग, उपस्था—उपस्थित होना—क्रिया से क्त प्रत्यय।

शब्दार्थ—तस्याः = देवी पार्वती के। रूप-लावण्य-लुब्धाभ्याम् = रूप और सौन्दर्य के लोभी। मनसा उत्सुकाभ्याम् = मन में उत्कंठा रखने वाले। पाप-तिमिराभ्याम् = पाप बुद्धि के कारण हित-अहित के ज्ञान से शून्य। मम इति = मेरी है। अन्योन्यं कलहायमानाभ्याम् = एक दूसरे से झगड़ा करने वालों ने। कश्चित् प्रमाण-पुरुषः पृच्छ्यताम् = किसी प्रामाणिक पुरुष से पूछा जाय—किसी को मध्यस्थ बनाया जाय। इति मतौ कृतायाम् = ऐसी बुद्धि करने—ऐसा विचार होने पर। भट्टारकः = भगवान् चन्द्रशेखर। वृद्ध-द्विजरूपः = बूढ़े ब्राह्मण का वेश धारण करने वाले। समागत्य = आकर। तत्र उपस्थितः = वहाँ उपस्थित हो गये। आवाभ्यां = हम दोनों ने। इयं स्वबल-लब्धा = इसको अपने बल से पाया है। अपृच्छताम् = दोनों ने पूछा।

व्याख्या—तदनन्तर पार्वती के रूप-लावण्य पर मोहित होने वाले सुन्द और उपसुन्द के मन में उत्कंठा जाग्रत हो गई और पापबुद्धि के कारण, हित और अहित के ज्ञान से शून्य, "यह मेरी है" "यह मेरी है", ऐसा कह कर आपस में झगड़ा करने लगे। फिर उन दोनों ने आपस में यह निर्णय किया कि किसी

प्रामाणिक पुरुष से इसका निर्णय कराना चाहिए अर्थात् किसी ज्ञानी पुरुष को मध्यस्थ बना कर झगड़ा तय करना चाहिए। उसी समय भगवान् शंकर बूढ़े ब्राह्मण के वेश में वहाँ आ गये। हम दोनों ने अपने बल से इसको प्राप्त किया है—यह हम दोनों में से किसकी हो सकती है? उन्होंने ब्राह्मण से यह पूछा।

ब्राह्मण बोले=ब्राह्मण वेषधारी शंकर कहते हैं—

वर्ण-श्रेष्ठो द्विजः पूज्यः······शूद्रस्तु द्विज-सेवया ॥१४॥

समास—वर्ण-श्रेष्ठः—वर्णेषु श्रेष्ठ इति—तत्पुरुष। द्विज—सेवया—द्वाभ्यां (योनिसंस्काराभ्यां) जायते इति द्विजः—द्विजानां सेवा—इति द्विज—सेवा—तत्पुरुष—तया।

रूप—बलवान्—बलवत्—वती—शब्द, पुल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन—बलवान्, बलवन्तौ, बलवन्तः।

अन्वय—द्विजः वर्ण-श्रेष्ठः पूज्यः (भवति) क्षत्रियः बलवान् पूज्यः, वैश्यः धन-धान्याधिकः (पूज्यः) शूद्रः द्विज-सेवया पूज्यः।

शब्दार्थ—वर्ण-श्रेष्ठः = वर्णों में उत्तम। धन-धान्याधिकः = धन धान्य से भरपूर। द्विज सेवया = द्विजातियों की सेवा से।

व्याख्या—चारों वर्णों में उत्तम होने से ब्राह्मण, बलवान् होने से क्षत्रिय, धन और धान्य के आधिक्य से वैश्य और द्विजातियों की सेवा करने से शूद्र पूजनीय-सम्माननीय होता है।

तद् युवां क्षत्रधर्मानुगौ······अतोऽहं ब्रवीमि-"सन्धिर्विधीयताम् समेनापि"।

संधि-विच्छेद—साधूक्तम्—साधु+उक्तम्—दीर्घसंधि।

समास—क्षत्रधर्मानुगौ—क्षत्रस्य धर्म इति क्षत्रधर्मः—तत्पुरुष—क्षत्रधर्मम् अनुगच्छति इति क्षत्रधर्मानुगः—तत्पुरुष—तौ।

रूप—उपगतौ—गम्—जाना, उप उपसर्ग, उपगम्—प्राप्त करना, क्रिया से क्त प्रत्यय।

शब्दार्थ—युवां क्षत्रधर्म-अनुगौ = तुम दोनों ही क्षत्रिय धर्म के अनुयायी हो अर्थात् वीर हो। नियमः = विधान। अभिहिते सति = कहने पर। अनेन साधु उक्तम् = इसने ठीक कहा। अन्योन्य-तुल्य-वीर्यौ = एक दूसरे के समान पराक्रमी। समकालम् = एक ही समय में। अन्योऽन्यघातेन = एक दूसरे पर

आक्रमण—चोट—करने से। विनाशम् उपगतौ = विनष्ट हो गए। समेन श्र सन्धिम् इच्छेत् = समान बली के साथ भी सन्धि कर लेनी चाहिए।

व्याख्या—ब्राह्मण वेषधारी भगवान् शंकर कहते हैं तुम दोनों क्षत्रिय ध के अनुयायी हो अर्थात् वीर हो। तुम्हारे लिए तो एकमात्र युद्ध ही विधान है ब्राह्मण के ऐसा कहने पर उन्होंने कहा—इसने ठीक कहा, यह विचार कर ए दूसरे के समान पराक्रमी दोनों ने एक दूसरे पर आघात किया। आपस में आघात प्रतिघात—चोट—करते हुए दोनों ही एक साथ विनष्ट हो गये—मर मिटे। इसीलिए मैं कहता हूँ (यह मंत्री गृध्र कह रहा है) कि समान बल वाले के साथ भी संधि कर लेनी चाहिए।

राजाह प्रागेव किं नोक्तं भवद्भिः·········साधुगुणयुक्तोऽयं हिरण्यगर्भो न विग्राह्यः।

संधि-विच्छेद—प्रागेव-प्राक्+एव—क् को ग्—व्यंजन संधि। नोक्तम्—न+ उक्तम्—अ—उ=ओ—गुणसंधि।

समास—मद्—वचनम्—मम वचनम् इति—षष्ठी तत्पुरुष। साधु-गुण-युक्तः—साधु—गुणैः युक्त इति—तृतीया तत्पुरुष।

रूप—भवद्भिः—भवत्—आप—शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन—भवता, भवद्भ्यां, भवद्भिः।

शब्दार्थ—राजा आह = राजा चित्रवर्ण कहता है। भवद्भिः प्राक् एव किं न उक्तम् = यह बात आपने पहले ही क्यों नहीं कह दी थी। मंत्री ब्रूते = मंत्री गृध्र कहता है। भवद्भिः = आपने। अवसानपर्यन्तं मद्वचनं श्रुतम् = क्या आपने अन्त तक मेरी बात सुनी—मानी—थी। तदापि मम संमत्या न अयं विग्रहारम्भः = उस समय भी मेरी सम्मति से यह युद्ध आरम्भ नहीं हुआ था। साधु-गुण-युक्तः = उत्तम गुणों से युक्त। हिरण्यगर्भः न विग्राह्यः = राजा हिरण्यगर्भ के साथ युद्ध नहीं करना चाहिए।

व्याख्या—राजा चित्रवर्ण अपने मंत्री दूरदर्शी गृध्र से कहता है, यह बात आपने पहले ही क्यों नहीं कही? मंत्री कहता है कि क्या आपने मेरी बात अन्त तक सुनी थी अर्थात् क्या मेरी सलाह मानी थी? उस समय भी यह युद्ध मेरी सम्मति से आरम्भ नहीं हुआ था। राजा हिरण्यगर्भ अनेक उत्तम गुणों से युक्त है, अतएव उसके साथ युद्ध नहीं करना चाहिए।

तथा च उक्तम् = और कहा भी है—

सत्यार्यो धार्मिकोऽनार्यः·······सन्धेयाः सप्त कीर्तिताः ॥१६॥

समास—सत्यार्यो = सत्यः च आर्यः च = सत्यार्यो-द्वन्द्व । अनेक-युद्ध-विजयी—अनेकानि च तानि युद्धानि इति—अनेक-युद्धानि-कर्मधारय-तेषु विजयी-तत्पुरुष । सन्धेयाः—सन्धातुं योग्या इति सन्धेयाः ।

रूप—बली-बलिन्-बलवान्-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन—बली, बलिनौ, बलिनः ।

अन्वय—सत्यार्यो, धार्मिकः, अनार्यः, भ्रातृ-संघातवान्, बली, अनेक-युद्ध-विजयी सप्त सन्धेयाः प्रकीर्तिताः ।

शब्दार्थ—सत्यार्यो = सत्यवादी, सभ्य । अनार्यः = बर्बर । भ्रातृसंघातवान् = भाई-बन्धुओं के संघ-गुट-वाले अर्थात् पूर्णतया सुसंगठित । अनेक-युद्ध-विजयी = अनेक युद्ध-विजेता । सप्त सन्धेयाः प्रकीर्तिताः = ये सात शत्रु संधि करने के योग्य कहे गये हैं ।

व्याख्या—सत्यवादी, आर्य, धर्मात्मा, बर्बर, भाई-बन्धुओं का संग रखने वाले अर्थात् भाई-बन्धुओं के गुट वाले, अपने से अधिक बलवान और अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने वाले—ये सात शत्रु संधि के योग्य माने गये हैं अर्थात् इनके साथ संधि कर लेनी चाहिए ।

बलिना सह योद्धव्यम्·········घनः कदाचिदुपसर्पति ॥१७॥

समास—प्रतिवातम्—वातं वातं प्रति-इति प्रतिवातम्-अव्ययीभाव ।

रूप—बलिना-बलिन्-बलवान्-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति-एकवचन—बलिना, बलिभ्यां, बलिभिः । योद्धव्यम्-युध्-लड़ना-क्रिया से तव्य प्रत्यय ।

अन्वय—बलिना (शत्रुणा) सह योद्धव्यम् इति निदर्शनं नास्ति । घनः प्रतिवातं कदाचित् न हि उपसर्पति ।

शब्दार्थ—बलिना सह योद्धव्यम् = बलवान् शत्रु के साथ युद्ध करना चाहिए । इति निदर्शनं नास्ति = यह नीतिशास्त्र की आज्ञा-नीतिशास्त्र का अनुशासन नहीं है । घनः = मेघ । प्रतिवातम् = वायु के प्रतिकूल । कदाचित् न उपसर्पति = कभी भी नहीं चलता है ।

व्याख्या—अपने से बलवान् शत्रु के साथ युद्ध करने की आज्ञा नीति-

ज्ञोतुम्-ज्ञ-जानना-क्रिया, तुम् प्रत्यय । इच्छामि-इष्-चाहना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन-इच्छामि, इच्छावः, इच्छामः ।

शब्दार्थ—तावत् बहुभिः गुणैः उपेतः=अनेक उत्तम गुणों से युक्त । अयं राजा सन्धेयः=यह राजा संधि करने योग्य है । चक्रवाकोऽवदत्=चकवा बोला । प्रणिधे ! = गुप्तचर । सर्वम् अवगतम्=हम सब समझ गये । व्रज=जाओ—सर्वत्र भ्रमण करो । पुनः आगमिष्यसि=समाचार लेकर फिर वापिस आओगे । चक्रवाकं पृष्टवान्=चकवाक से पूछा । असन्धेयाः कति=सन्धि न करने योग्य कितने होते हैं ! तान् ज्ञोतुम् इच्छामि=उन्हें जानना चाहता हूँ । मन्त्री ब्रूते-देव ! कथयामि=मन्त्री कहता है—राजन् ! कहता हूँ ।

व्याख्या—अनेक उत्तम गुणों से युक्त इस राजा के साथ संधि कर लेनी चाहिए । चकवाक कहता है-गुप्तचर ! समाचार जान लिया । सब जगह भ्रमण करो और शत्रु का वृत्तान्त जान कर फिर वापिस आओगे । राजा हिरण्यगर्भ ने चकवाक से पूछा—मन्त्रिन् ! किन किन के साथ संधि नहीं करनी चाहिए । मन्त्री कहता है-देव ! कहता हूँ ।

शृणु-सुनिये ।

बालो वृद्धो दीर्घरोगी·············लुब्धो लुब्धजनस्तथा ॥ १६ ॥

समास—ज्ञाति-बहिष्कृतः-ज्ञातिभिः बहिष्कृत इति ज्ञाति-बहिष्कृतः-तृतीया तत्पुरुष । भीरुक-जनः-भीरुकाः जनाः यस्य सः-बहुव्रीहि ।

अन्वय—बालः, वृद्धः, दीर्घरोगी, तथा ज्ञाति-बहिष्कृतः आदि अन्वय सरल है ।

शब्दार्थ—दीर्घ-रोगी=सदा बीमार रहने वाला । ज्ञाति-बहिष्कृतः=भाई-बन्धुओं द्वारा तिरस्कृत । भीरुक=डरपोक । भीरुक-जनः=जिसके सेवक डरपोक हैं अर्थात् जिसके सैनिक आदि कायर हैं । लुब्धः=लालची । लुब्धजनः-जिसके सेवक लोभी हैं ।

व्याख्या—मन्त्री चकवाक हिरण्यगर्भ से कहता है कि बालक, बूढ़े, सदा रोगी रहने वाले तथा भाई-बंधुओं से तिरस्कृत-अर्थात् भाई-बंधु जिसके साथी न हो, डरपोक, जिसके सैनिक आदि सेवक कायर हों, जो लालची हो तथा जिसके नौकर

चाकर-मंत्री आदि लोभी हों-ऐसे राजाओं के साथ कभी संधि नहीं करनी चाहिए।

विरक्त-प्रकृतिश्चै..................देव-ब्राह्मण-निन्दकः ॥ २०

सन्धि-विच्छेद—विषयेष्वतिशक्तिमान्- विषयेषु+अतिशक्तिमान्-उ के यण् संधि।

समास—विरक्त-प्रकृतिः-विरक्ताः प्रकृतयः यस्य सः-विरक्त – प्रकृ बहुव्रीहि। अनेकचित्तमन्त्रः=नास्ति एकं चित्तं येषां ते अनेकचित्ताः-बहुव्रीहि, अ चित्तैः सह मन्त्रः यस्य सः अनेक चित्तमन्त्रः-बहुव्रीहि। अथवा अनेकानि चित्त मन्त्राः च यस्य सः-बहुव्रीहि। देव-ब्राह्मण-निन्दकः-देवाः च ब्राह्मणाः च-ब्राह्मणाः-द्वन्द्व-देव-ब्राह्मणानां निन्दां करोति इति-देव-ब्राह्मण-निन्दकः-तत्पु

अन्वय—सरल है।

शब्दार्थ—विरक्त-प्रकृतिः=जिस राजा की प्रजा से अथवा मन्त्री से विरक्त हों अर्थात् राजा के प्रति भक्तिभाव न रखते हों। विषयेषु=भोगों में अतिशक्तिमान्=जो राजा अत्यन्त आसक्ति-प्रेम-रखता हो। अनेक-चित्त-मन्त्र अस्थिर बुद्धि जिसके परामर्शदाता हों अथवा किसी मन्त्रणा पर जो अपना मन स्थिर न कर सकता हो अथवा जिसकी मंत्रणा का रहस्य दूसरों को ज्ञात हो। देव ब्राह्मण-निन्दकः=देवों और ब्राह्मणों का निंदक।

व्याख्या—जिसकी प्रजा अथवा मंत्री जिस राजा के स्वामिभक्त न हों, रात दिन भोगों में फंसा रहता हो, जिसके परामर्शदाता अस्थिर विचार वाले हों अथवा जो किसी मंत्रणा पर अपना मन एकाग्र न कर सकता हो अथवा जिसकी मन्त्रणा का रहस्य पूर्ण होने से पहले ही खुल जाय, जो देवों और ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला हो।

दैवोपहतकश्चैव..................बल-व्यसन-संकुलः ॥ २१ ॥

समास—दैवोपहतः-दैवेन उपहतः-इति दैवोपहतः-तृतीया तत्पुरुष। दैव-परायणः-दैवे परायणः इति-दैव-परायणः- सप्तमी तत्पुरुष। दुर्भिक्ष-व्यसनोपेतः-दुर्भिक्षम् एव व्यसनम्-इति दुर्भिक्ष-व्यसनम्-दुर्भिक्ष-व्यसनम्-बल-व्यसनेन संकुल इति-बल-व्यसन-संकुल -तत्पुरुष।

अन्वय—दैव-उपहतः, तथा दैव-परायणः, दुर्भिक्ष-व्यसन-उपेतः, बल-

शब्दार्थ—दैव-उपहतकः=दैव से मारा हुआ — प्रारब्ध-हीन-अभागा। दैव-परायण:=दैववादी। दुर्भिक्ष-व्यसनोपेत:=दुर्भिक्ष-अकाल-रूपी आपत्ति का मारा हुआ। बल-व्यसन-संकुलः— सेना में फूट पड़ने के प्रभाव से प्रभावित।

व्याख्या—जो राजा प्रारब्धहीन-अभागा हो, जो दैववादी हो अर्थात् भाग्य को सब कुछ मानता हो, जो अकाल रूपी विपत्ति के जाल में फंसा हो तथा जिसकी सेना में फूट हो अथवा सैनिक बल जिसका नगण्य-तुच्छ-हो।

अदेशस्थो बहुरिपुः··················विंशतिः पुरुषा अमी ॥ २२ ॥

समास—अदेशस्थः—देशे तिष्ठति इति देशस्थः—तत्पुरुष, न देशस्थः—नञ्—निषेधवाचक-तत्पुरुष। बहुरिपुः—बहवः रिपवः यस्य सः—बहुरिपुः—बहुव्रीहि। सत्य-धर्म-व्यपेतः सत्यधर्मेण व्यपेत इति-सत्य-धर्म-व्यपेतः—तत्पुरुष।

रूप—अमी-अदस्- यह — सर्वनाम शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन-असौ, अमू, अमी।

अन्वय—अदेशस्थः बहुरिपुः यः कालेन न युक्तः च सत्यधर्म-व्यपेतः अमी विंशतिः पुरुषाः (असंधेयाः)

शब्दार्थ—अदेशस्थः=जो परदेश में हो। बहुरिपुः=जिसके अनेक शत्रु हों। यः कालेन न युक्तः=जो युद्ध की तैयारी न कर सका हो। अमी विंशतिः पुरुषाः= बीस प्रकार के राजा। असन्धेयाः=सन्धि के योग्य नहीं होते हैं।

व्याख्या—जो राजा विदेश में हो, जिसके शत्रु हों, जो युद्ध की तैयारी करने में असमर्थ हो अर्थात् पूर्णतया युद्ध की तैयारी न कर सका हो तथा जो सत्यधर्म से रहित हो अर्थात् सत्यतापूर्वक कर्त्तव्यपरायण न हो-"Trwe duty" से हीन हो-ये बीस पुरुष अर्थात् राजा लोग संधि के अयोग्य हैं अर्थात् इनके साथ संधि नहीं करनी चाहिए।

एतैः सन्धिं न कुर्वीत··················क्षिप्रं यान्ति रिपोर्वशम् ॥ २३ ॥

रूप—कुर्वीत-कृ-करना-क्रिया, आत्मनेपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-कुर्वीत, कुर्वीयाताम्, कुर्वीरन्। विगृह्णीयात्-ग्रह्-ग्रहण करना, वि उपसर्ग, विग्रह्-युद्ध-लड़ाई-करना-क्रिया, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-विगृह्णीयात्, विगृह्णीयाताम्, विगृह्णीयुः। यान्ति-या-जाना-प्राप्त होना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन-याति, यातः, यान्ति।

श्रोतुम्–श्रु–सुनना–क्रिया, तुम् प्रत्यय। इच्छामि–इष्–चाहना–क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन–इच्छामि, इच्छावः, इच्छामः।

शब्दार्थ—तावत् बहुभिः गुणैः उपेतः=अनेक उत्तम गुणों से युक्त। अयं राजा सन्धेयः=यह राजा संधि करने योग्य है। चक्रवाकोऽवदत्=चकवा बोला। प्रणिधे! = गुप्तचर। सर्वम् अवगतम्=हम सब समझ गये। व्रज=जाओ–सर्वत्र भ्रमण करो। पुनः आगमिष्यसि=समाचार लेकर फिर वापिस आओगे। चक्रवाकं पृष्टवान्=चक्रवाक से पूछा। असन्धेयाः कति=सन्धि न करने योग्य कितने होते हैं। तान् श्रोतुम् इच्छामि=उन्हें जानना चाहता हूँ। मन्त्री ब्रूते–देव! कथयामि=मन्त्री कहता है—राजन्! कहता हूं।

व्याख्या—अनेक उत्तम गुणों से युक्त इस राजा के साथ संधि कर लेनी चाहिए। चक्रवाक कहता है–गुप्तचर! समाचार जान लिया। सब जगह भ्रमण करो और शत्रु का वृत्तान्त जान कर फिर वापिस आओगे। राजा हिरण्यगर्भ ने चक्रवाक से पूछा—मन्त्रिन्! किन किन के साथ संधि नहीं करनी चाहिए। मन्त्री कहता है–देव! कहता हूँ।

शृणु–सुनिये।

बालो वृद्धो दीर्घरोगी……………लुब्धो लुब्धजनस्तथा॥ १६॥

समास—ज्ञाति–बहिष्कृतः–ज्ञातिभिः बहिष्कृत इति ज्ञाति–बहिष्कृतः–तृतीया तत्पुरुष। भीरुक–जनः–भीरुकाः जनाः यस्य सः–बहुव्रीहि।

अन्वय—बालः, वृद्धः, दीर्घरोगी, तथा ज्ञाति–बहिष्कृतः आदि अन्वय है।

शब्दार्थ—दीर्घ–रोगी=सदा बीमार रहने वाला। ज्ञाति–बहिष्कृतः=भाई–बन्धुओं द्वारा तिरस्कृत। भीरुकः=डरपोक। भीरुक–जनः=जिसके सेवक डरपोक हैं, जिसके सैनिक आदि कायर हैं। लुब्धः=लालची। लुब्धजनः–जिसके ... लोभी हैं।

व्याख्या—मन्त्री चक्रवाक हिरण्यगर्भ से कहता है कि बालक, बूढ़े, सदा रोगी ... तथा भाई–बंधुओं से तिरस्कृत–अर्थात् भाई–बंधु जिसके साथी न हों, ... जिसके सैनिक आदि सेवक कायर हों, जो लालची हो तथा जिसके नौकर–

चाकर-मंत्री आदि लोभी हों—ऐसे राजाओं के साथ कभी संधि नहीं करनी चाहिए।

विरक्त-प्रकृतिश्चै·················देव-ब्राह्मण-निन्दकः ॥ २० ॥

सन्धि-विच्छेद—विषयेष्वतिशक्तिमान्—विषयेषु+अतिशक्तिमान्—उ को यण् संधि।

समास—विरक्त-प्रकृतिः—विरक्ताः प्रकृतयः यस्य सः—विरक्त-प्रकृतिः—बहुव्रीहि। अनेकचित्तमन्त्रः=नास्ति एकं चित्तं येषां ते अनेकचित्ताः—बहुव्रीहि, अनेक चित्तैः सह मन्त्रः यस्य सः अनेक चित्तमन्त्रः—बहुव्रीहि। अथवा अनेकानि चित्तानि मन्त्राः च यस्य सः—बहुव्रीहि। देव-ब्राह्मण-निन्दकः—देवाः च ब्राह्मणाः च—देव ब्राह्मणाः—द्वन्द्व—देव-ब्राह्मणानां निन्दां करोति इति—देव-ब्राह्मण-निन्दकः—तत्पुरुष।

अन्वय—सरल है।

शब्दार्थ—विरक्त-प्रकृतिः=जिस राजा की प्रजा से अथवा मन्त्री राजा विरक्त हों अर्थात् राजा के प्रति भक्तिभाव न रखते हों। विषयेषु=भोगों में। अतिशक्तिमान्=जो राजा अत्यन्त आसक्ति-प्रेम-रखता हो। अनेक-चित्त-मन्त्रः=अस्थिर बुद्धि जिसके परामर्शदाता हों अथवा किसी मन्त्रणा पर जो अपना मन स्थिर न कर सकता हो अथवा जिसकी मंत्रणा का रहस्य दूसरों को ज्ञात हो। देव-ब्राह्मण-निन्दकः=देवों और ब्राह्मणों का निंदक।

व्याख्या—जिसकी प्रजा अथवा मंत्री जिस राजा के स्वामिभक्त न हों, जो रात दिन भोगों में फंसा रहता हो, जिसके परामर्शदाता अस्थिर विचार रखते हों अथवा जो किसी मंत्रणा पर अपना मन एकाग्र न कर सकता हो अथवा जिसकी मन्त्रणा का रहस्य पूर्ण होने से पहले ही खुल जाय, जो देवों और ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला हो।

दैवोपहतकश्चैव·················बल-व्यसन-संकुलः ॥ २१ ॥

समास—दैवोपहतकः—दैवेन उपहतकः—इति दैवोपहतकः—तृतीया तत्पुरुष। दैव-परायणः—दैवे परायणः इति—दैव-परायणः—सप्तमी तत्पुरुष। दुर्भिक्ष-व्यसनोपेतः—दुर्भिक्षम् एव व्यसनम्—इति दुर्भिक्ष-व्यसनम्—दुर्भिक्ष-व्यसनम्-उप-संकुल इति—बल-व्यसन-संकुलः—तत्पुरुष।

अन्वय—दैव-उपहतकः, तथा दैव-परायणः, दुर्भिक्ष-व्यसन-उपेतः, बल-संकुलः।

शब्दार्थ—दैव-उपहतकः=दैव से मारा हुआ – प्रारब्ध-हीन-अभागा। दैव-परायणः=दैववादी। दुर्भिक्ष-व्यसनोपेतः=दुर्भिक्ष-अकाल-रूपी आपत्ति का मारा हुआ। बल-व्यसन-संकुलः– सेना में फूट पड़ने के प्रभाव से प्रभावित।

व्याख्या—जो राजा प्रारब्धहीन-अभागा हो, जो दैववादी हो अर्थात् भाग्य को सब कुछ मानता हो, जो अकाल रूपी विपत्ति के जाल में फंसा हो तथा जिसकी सेना में फूट हो अथवा सैनिक बल जिसका नगण्य-तुच्छ-हो।

अदेशस्थो बहुरिपुः·················विंशतिः पुरुषा अमी ॥ २२ ॥

समास—अदेशस्थः-देशे तिष्ठति इति देशस्थः-तत्पुरुष, न देशस्थः-नञ्-निषेधवाचक-तत्पुरुष। बहुरिपुः-बहवः रिपवः यस्य सः-बहुरिपुः-बहुव्रीहि। सत्य-धर्म-व्यपेतः सत्यधर्मेण व्यपेत इति-सत्य-धर्म-व्यपेतः-तत्पुरुष।

रूप—अमी-अदस्– यह – सर्वनाम शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन-असौ, अमू, अमी।

अन्वय—अदेशस्थः बहुरिपुः यः कालेन न युक्तः च सत्यधर्म-व्यपेतः अमी विंशतिः पुरुषाः (असंधेयाः)

शब्दार्थ—अदेशस्थः=जो परदेश में हो। बहुरिपुः=जिसके अनेक शत्रु हों। कालेन न युक्तः=जो युद्ध की तैयारी न कर सका हो। अमी विंशतिः पुरुषाः= ... प्रकार के राजा। असन्धेयाः=सन्धि के योग्य नहीं होते हैं।

व्याख्या—जो राजा विदेश में हो, जिसके शत्रु हों, जो युद्ध की तैयारी ... में असमर्थ हो अर्थात् पूर्णतया युद्ध की तैयारी न कर सका हो तथा जो ... धर्म से रहित हो अर्थात् सत्यतापूर्वक कर्त्तव्यपरायण न हो-"Trwe duty" ... न हो-ये बीस पुरुष अर्थात् राजा लोग संधि के अयोग्य हैं अर्थात् इनके ... संधि नहीं करनी चाहिए।

...तैः सन्धिं न कुर्वीत···········क्षिप्रं यान्ति रिपोर्वशम्॥ २३ ॥

रूप—कुर्वीत-कृ-करना-किया, आत्मनेपद, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-... कुर्वीयाताम्, कुर्वीरन्। विगृह्णीयात्-ग्रह्-ग्रहण करना, वि उपसर्ग, ... -क्रिया, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-विगृह्णीयात्, ...। यान्ति-या-जाना-प्राप्त होना-क्रिया, परस्मैपद, ...ति, यातः, यान्ति।

अन्वय—एतैः (सह) संधिं न कुर्वीत तु केवलं विगृह्णीयात् । हि विगृह्यमाणा एते क्षिप्रं रिपोः वशं यान्ति ।

शब्दार्थ—एतैः=इन बीस प्रकार के राजाओं के साथ । सन्धि न कुर्वीत= संधि नहीं करनी चाहिए । केवलं विगृह्णीयात्=केवल विग्रह-युद्ध करना चाहिए विगृह्यमाणाः=युद्ध करते हुए । क्षिप्रम्=शीघ्र । रिपोः वशंयान्ति=शत्रु के वशीभूत हो जाते हैं ।

व्याख्या—उपर्युक्त ऊपर बताये हुए-इन बीस राजाओं के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिए । इनके साथ तो युद्ध ही करना चाहिए । इनसे जब युद्ध किया जाता है, तब ये शत्रु के वशीभूत शीघ्र ही हो जाते हैं ।

अपरम् अपि कथयामि=और भी कहता हूँ ।

सन्धि-विग्रह-यानासन- संश्रय-द्वैधीभावाः·········विजिगीषवो भवन्ति महान्तः ।।

समास—सन्धि-विग्रह—यानासन—संश्रय-द्वैधीभावाः—सन्धिः च विग्रहः च यानं च आसनं च संश्रयश्च द्वैधीभावश्च—सन्धि-विग्रह-यानासन-संश्रय-द्वैधीभावाः—द्वन्द्व ।

शब्दार्थ—सन्धि-विग्रह-यान-आसन-संश्रय-द्वैधीभावाः = मेल, युद्ध, चढ़ाई, अपने स्थान पर तैयार रहना, आश्रय, शत्रु के अधिकारियों में फूट । षाड्गुण्यम्=ये छः गुण कहलाते हैं । पंचांगो मन्त्रः=ये पाँच राजा के मन्त्र कहलाते हैं । कर्मणामारम्भोपायः=कार्यों के आरम्भ करने का उपाय ।

पुरुष-द्रव्य-सम्पत्=सैनिक और धन-प्राप्ति । देश-काल-विभागः=देश और काल का विभाजन । विनिपात-प्रतीकारः=विपत्ति का प्रतिकार । कार्यसिद्धिः=काम में सफलता । यह पंचांग मन्त्र कहलाता है । उत्साह शक्तिः मन्त्र-शक्तिः, प्रभु शक्तिः च शक्ति-त्रयम्=विक्रम और बल शक्ति, उत्साह-शक्ति, सन्धि आदि छः गुण और साम आदि चार मन्त्र=शक्ति, तथा कोश और दण्डबल-प्रभु शक्ति कहलाते हैं । एतत् सर्वम् आलोच्य=इस सब पर विचार करके । महान्तः भवन्ति=महापुरुष विजय के अभिलाषी होते हैं ।

व्याख्या—मन्त्री कह रहा है कि आप राजनीति भी सुनिए—सन्धि मेल, युद्ध, यान चढ़ाई, आसन-अपने स्थान पर पीछी तैयारी, संश्रय-दूसरे का

...ाश्रय, द्वैधीभाव–शत्रु के अधिकारियों–सेनानायकों–आदि में फूट उत्पन्न करा...ना—ये छः गुण कहलाते हैं। कार्य आरम्भ करने वाले सैनिक, धन-प्राप्ति...श और काल विभाग, विपत्ति का प्रतीकार–अर्थात् विपत्ति टालने का उपाय...र कार्य सिद्धि—ये राजा का पंचांग मन्त्र कहलाता है। साम परस्पर उपकार–...मझौता करना, दान-धन देना, भेद-फूट डालना, दण्ड–शासन करना–दमन...ना—ये राजा के चार उपाय कहे गये हैं। उत्साह-शक्ति–बल–विक्रम, मन्त्र–...क्ति–सन्धि आदि छः गुण और साम आदि चार उपाय, तथा प्रभु शक्ति,...ा और दण्ड बल—ये राजाओं की तीन शक्तियां होती हैं। इन सब पर...कपूर्ण विचार करके विजय के इच्छुक राजा महान् हो जाते हैं अर्थात् अवश्य...विजय पाते हैं।

...या हि प्राण-परित्यागमूल्येन······चंचलापि प्रधावति ॥२४॥

...समासा—प्राण-परित्याग-मूल्येन–प्राणानां परित्यागः–प्राण-परित्यागः–...तत्पुरुष, प्राण-परित्याग एव मूल्यं तेन। नीति–विदाम्–नीतिं वेत्ति इति...वेत्–तत्पुरुष–तम्।

...रूप—लभ्यते–लभ्–पाना–क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, वर्तमान काल, ...पुरुष, एकवचन–लभ्यते, लभ्येते, लभ्यन्ते।

...अन्वय—या प्राण–परित्याग मूल्येन अपि न लभ्यते, पश्य चंचला अपि ...ः नीतिविदं प्रधावति।

...शब्दार्थ—प्राण–परित्याग–मूल्येन=प्राणों के त्याग के मूल्य से। न लभ्यते= ...प्त होती। चंचला अपि सा=वह चंचल होती हुई भी। नीतिविदं प्रधा-...नीतिज्ञ पुरुष के पास स्वयं दौड़ कर आती है।

...व्याख्या—जो लक्ष्मी प्राणों का परित्याग करने पर भी प्राप्त नहीं होती, ...चल लक्ष्मी नीति को जानने वाले पुरुष के पास स्वयं दौड़ कर चली ...है।

...ा च उक्तम्=और भी कहा है—

...यदा यस्य समं विभक्तम्···स सागरान्तां पृथिवीं प्रशास्ति ॥२५॥

...स—प्राणिषु–प्राणिन्–प्राणी–इन्नन्त शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति,

बहुवचन-प्राणिनि, प्राणिनोः, प्राणिषु । ब्रवीति ब्रू-कहना-क्रिया, परस्मै वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एक वचन-ब्रवीति, ब्रूतः, ब्रुवन्ति ।

अन्वय—यस्य वित्तं समं विभक्तं, चरः च गूढः, (यस्य) मन्त्रः संवृतः यः प्राणिषु अप्रियं न ब्रवीति, स सागरान्तां पृथिवीं प्रशास्ति ।

शब्दार्थ—यस्य वित्तं समं विभक्तम्=जिसका धन समान है अर्थात् जो धन का उचित विनिमय करता है । (यस्य) चरः गूढः=जिसका दूत गुप्त है । मन्त्रः संवृतः=जिसकी मन्त्रणा का भेद गुप्त रहता है । यः प्राणिषु अप्रियं न ब्रवीति जो प्राणियों से अप्रिय नहीं बोलता । स सागरान्तां पृथिवीं प्रशास्ति=वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का शासन करता है ।

व्याख्या—जो अपने धन का समान रूप से विभाजन करता अर्थात् धन का उचित विनिमय करता है, जिसके दूत गुप्त रहते तथा जिसकी मन्त्रणा दूसरे नहीं जान पाते, वह समुद्रपर्यन्त पृथिवी का शासन करता है अर्थात् चक्रवर्ती सम्राट् होता है ।

किन्तु यद्यपि महामन्त्रिणा गृध्रेण…जम्बूद्वीपे घोषं जनयतु ॥

समास—महामन्त्रिणा-महान् चासौ मन्त्री-इति महामन्त्री-कर्मधारय-तेन । भूतजय-दर्पात्-भूतः चासौ जयः इति भूत-जयः-कर्मधारय, भूतजयस्य दर्पात्-तत्पुरुष ।

रूप—राज्ञा-राजन्-राजा-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन-राज्ञा, राजभ्यां, राजभिः । मन्तव्यम्-मन्-मानना-क्रिया से तव्य प्रत्यय । क्रियताम् कृ-करना-क्रिया, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञार्थ, अन्य पुरुष, एकवचन-क्रियताम्, क्रियेताम्, क्रियन्ताम् ।

शब्दार्थ—महामन्त्रिणा गृध्रेण=प्रधान मन्त्री गृध्र ने । [illegible] राज्ञा (चित्रवर्ण) द्वारा । भूतजय-दर्पात्=अपनी हुई विजय के घमंड से । न मन्तव्यम्=नहीं मानना चाहिए । [illegible] । [illegible] । जम्बूद्वीपे घोषं जनयतु=जम्बूद्वीप पर [illegible] कर दे ।

व्याख्या—यद्यपि इस प्रकार प्रधानमन्त्री गृध्र ने राजा चित्रवर्ण के [illegible] है कि [illegible] चाहिये, परन्तु [illegible]

चित्रवर्ण प्राप्त की हुई विजय के अभिमान से शायद उसके प्रस्ताव से सहमत हो। स्वामिन्, इसलिए ऐसा करना चाहिए कि सिंहलद्वीप के महाबल सारस राजा हमारे मित्र, हैं वे जम्बूद्वीप के राजा चित्रवर्ण के प्रति अपना प्रकट करें—अर्थात् चढ़ाई कर दें।

राजा "एवमस्तु" इति निगद्य=ठीक है, ऐसा ही हो, यह कह कर। सुलेखं दत्त्वा=गुप्त लेख देकर। विचित्र-नामा बक:=विचित्र नामक बक सिंहलद्वीपं प्रहित:=सिंहलद्वीप को भेज दिया।

अथ प्रणिधिरागत्योवाच—देव!······विहस्य मेघवर्णं प्राह।

सन्धि-विच्छेद—प्रणिधिरागत्योवाच—प्रणिधि:+आगत्य+उवाच—विसर्ग-विसर्गसंधि, गुणसंधि। क्वाप्यवलोक्यते—क्व + अपि+अवलोक्यते—दीर्घ यणसंधि।

समास—सन्धेय-गुण-युक्त:—सन्धातुं योग्य. सन्धेय:—सन्धेयस्य गुणा (सन्धेयगुणा:—सन्धेयगुणै: युक्त इति—सन्धेय-गुण-युक्त:—तृतीया तत्पु महाशय:—महान् आशय: यस्य स:—महाशय.—बहुव्रीहि।

रूप—वेत्ति-विद्—जानना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य एकवचन—वेत्ति, वित्त:, विदन्ति।

शब्दार्थ—प्रणिधि: आगत्य उवाच=गुप्तचर आकर बोला। तत्रत्य प्रस्तावम्=वहाँ का प्रस्ताव सुनिये। चिरम् उषित:=बहुत समय तक वास रहा। वेत्ति=जानता है। सन्धेय-गुण-युक्त:=सन्धि के गुणों से युक्त। मत्वा=पूछा कर। पृष्ट:=पूछा। युधिष्ठिर-सम: महाशय:=युधिष्ठिर के समान है। बकोत:=टगा। विहस्य=हँस कर। प्राह=कहता है।

व्याख्या—गुप्तचर आकर बोला—देव! वहाँ का प्रस्ताव सुनिये। गृध्र ने यह कहा—देव, मेघवर्ण नामक काक वहाँ बहुत काल तक रहा है, इसलिए जानता है कि राजा हिरण्यगर्भ सन्धि करने योग्य है अथवा नहीं। तदनन्तर चित्रवर्ण ने उसे बुला कर पूछा—मेघवर्ण, हिरण्यगर्भ राजा कैसा है? और चक्रवाक कैसा है? मेघवर्ण काक बोला—महाराज! राजा हिरण्यगर्भ युधिष्ठिर के समान महान् और चक्रवाक के समान मंत्री कहीं दिखाई नहीं देता है। राजा कहता है—यदि ऐसी बात है तो तुमने उसे कैसे ठग लिया? हँस कर कहता है—राजन्!

विश्वासप्रतिपन्नानाम्..........हत्वा किं नाम पौरुषम् ॥२६॥

समास—विश्वास-प्रतिपन्नानाम्—विश्वासं प्रतिपन्नः इति विश्वास-प्रतिप... द्वितीया तत्पुरुष-तेषाम्।

रूप—आरुह्य—रुह्-उगना, आ उपसर्ग, आरुह्-सवार होना-बैठना-क्रिया... त्वा प्रत्यय किन्तु उपसर्ग पूर्व में होने से त्वा को य हो गया है। हत्वा-हन्-जान... से मार डालना-क्रिया से त्वा प्रत्यय।

अन्वय—विश्वास-प्रतिपन्नानां (जनानां) वंचने का विदग्धता (अस्ति)। ... कि अंकम् आरुह्य सुप्तं हत्वा नाम किं पौरुषम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—विश्वास-प्रतिपन्नाम्=विश्वास करने वालों के। वंचने — ... विदग्धता=ठगने में क्या विद्वत्ता—चतुराई—है। अंकम् आरुह्य सुप्तं हत्वा ... में सोने वाले को मार कर। पौरुषम्=पुरुषार्थ।

व्याख्या—विश्वास करने वालों को ठग लेने—धोखा देने—में क्या चतु... है अर्थात् विश्वस्त पुरुष को आसानी से ठगा जा सकता है। अपनी गोद में ... हुए को मार डालने में क्या पौरुष है अर्थात् कुछ भी नहीं, वह बड़ी आसा... से मार दिया जाता है।

शृणु देव=स्वामिन् सुनिये। तेन मन्त्रिणा=उस मन्त्री चक्रवाक ने। प्र... पूर्वदर्शने शतः=पहली बार भेंट होने के समय मुझे जान लिया अर्थात् वह समझ... गया था कि मैं शत्रु का भेदिया हूँ। किन्तु महाशयः असौ राजा=परन्तु राजा ... हिरण्यगर्भ महाशय है। तेन मया विप्रलब्धः=इसी से मैंने धोखा दिया।

तथा च उक्तम्=यही कहा भी गया है—

आत्मौपम्येन यो वेत्ति ......ब्राह्मणश्छागतो यथा ॥ २७ ॥

समास—सत्यवादिनम्—सत्यं वदति इति सत्यवादी—तत्पुरुष—तम्।

रूप—वेत्ति-विद्—जानना-क्रिया, परस्मैपद, वर्तमान काल, अन्य पु... एक वचन—वेत्ति, वित्तः, विदन्ति। सत्यवादिनम्—सत्यवादिन्—सच बोलने वाला ... इन्नन्त-शब्द, पुल्लिंग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन—सत्यवादिनम्, सत्यवादिनौ ... सत्यवादिनः।

अन्वय—यः दुर्जनः आत्मौपम्येन ...

शब्दार्थ—आत्मौपम्येन=अपने समान। वेत्ति=जानता है। वंच्यते=ठगा जाता है। छागतः=बकरे से।

व्याख्या—जो सज्जन दुर्जन को अपने समान सत्यवादी समझता है, वह अवश्य ही दुर्जन द्वारा ठग लिया जाता है, जैसे कि धूर्तों ने ब्राह्मण को ठग कर बकरा ले लिया।

राजा उवाच=राजा बोला। एतत् कथम्=यह कैसे? मेघवर्णः कथयति=मेघवर्ण कहता है—

त्रयो धूर्ताः = तीन ठग

अस्ति गौतमारण्ये'''छागं भूमौ निधाय दोलायमानमतिश्चलितः॥

समास—प्रस्तुत-यज्ञः-प्रस्तुतः यज्ञः येन सः-बहुव्रीहि। अनन्तर-स्थितेन-अनन्तरे स्थित इति-अनन्तरस्थितः-तत्पुरुष-तेन।

रूप—लभ्यते-लभ्-पाना-क्रिया, आत्मनेपद, कर्मवाच्य, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-लभ्यते, लभ्येते, लभ्यन्ते। पथि-पथिन्-मार्ग-शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन-पथि, पथोः, पथिषु। श्वा श्वन्-कुत्ता-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन-श्वा, श्वानौ, श्वानः। चलितः-चल-चलना-क्रिया, त (क्त) प्रत्यय।

शब्दार्थ—प्रस्तुत-यज्ञः=यज्ञ करने वाला। ग्रामान्तरात्=दूसरे गाँव से। छागम् उपक्रीय=बकरा खरीद कर। स्कन्धे कृत्वा=कंधे पर रखकर। धूर्त-त्रयेण अवलोकितः=तीन धूर्तों ने देखा। मति-प्रकर्षः=बुद्धि की अधिकता-चतुराई। वृक्षत्रय-तले=तीन वृक्षों के नीचे। क्रोशान्तरेण=कोस-कोस के अन्तर से। आगमनं प्रतीक्ष्य=आने की प्रतीक्षा में। अभिहितः=कहा। स्कन्धेन उह्यते=कंधे पर रख लिया जाता है-ढोया जाता है। यज्ञ-छागः=यज्ञ के लिये बकरा। भूमौ निधाय=जमीन पर रख। दोलायमानमतिः=चंचल मन वाला।

व्याख्या—गौतम के वन में किसी ब्राह्मण ने यज्ञ करने का विचार किया। यज्ञ के लिए एक बकरा खरीद कर कंधे पर रख मार्ग में जाते हुए (ब्राह्मण) को तीन धूर्तों-ठगों-ने देखा। यदि यह बकरा किसी उपाय से हमारे हाथ लग जाता है, तभी हमारी चतुराई है-यह विचार कर वे तीनों एक-एक कोस के अन्तर-फासले पर वृक्ष के नीचे मार्ग में खड़े हो गये और ब्राह्मण के आने की प्रतीक्षा

करने लगे। पहले ठग ने ब्राह्मण को जाता हुआ देख कर कहा—हे ब्राह्मण! कुत्ते को कंधे पर क्यों ढो रहे—ले जा रहे हो! ब्राह्मण ने कहा—यह कुत्ता नहीं है, किन्तु यज्ञ का बकरा है। एक कोस के अन्दर खड़े हुए दूसरे ठग ने ब्राह्मण को देख उसी प्रकार अर्थात् पहले ठग के समान ही कहा। ऐसा सुनकर ब्राह्मण बकरे को भूमि पर रख डांवाडोल चित्त होकर चल दिया।

यतः=क्योंकि—

मतिर्दोलायते सत्यं सतामपि······म्रियते चित्रकर्णवत् ॥ ८८ ॥

समास—खलोक्तिभिः–खलानाम् उक्तयः–खलोक्तयः–तत्पुरुष–ताभिः।

रूप—सताम्–सत्–भला–शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी, विभक्ति, बहुवचन–सतः सतोः, सताम्। म्रियते–मृ–मरना–क्रिया, वर्त्तमान काल आत्मनेपद, अन्य पुरुष, एकवचन–म्रियते, म्रियेते, म्रियन्ते।

अन्वय—खलोक्तिभिः सताम् अपि मतिः सत्यं दोलायते। ताभिः विश्वासितः च असौ चित्रकर्णवत् म्रियते।

शब्दार्थ—खलोक्तिभिः = दुष्टों के वचनों से। सताम् अपि मतिः = सज्जनों की बुद्धि भी। दोलायते = डांवाडोल हो जाती है। विश्वासितः = विश्वास करने वाला। म्रियते = मर जाता है।

व्याख्या—दुष्टों के वचनों से सज्जनों की बुद्धि भी डांवाडोल हो जाती है। दुष्ट-वचनों पर विश्वास करने वाला चित्रकर्ण के समान मृत्यु को प्राप्त होता है।

राजाह=राजा कहता है। एतत् कथम् = यह किस प्रकार? सः कथयति=वह कहता है।

चित्रकर्णोकथा=कथा चित्रकर्ण नामक ऊँट की कथा।

अस्ति कस्मिंश्चिद् वनोद्देशे······इह समये सीदतामस्माकं पालनमपि करिष्यति।

समास—मदोत्कटः–मदेन उत्कट इति–तत्पुरुष। शरीर–वैकल्यात् शरीरस्य वैकल्यात् इति–तत्पुरुष।

रूप—प्रमदनैः–प्रमद्–घूमता हुआ–शत् (अत्) प्रत्ययान्त शब्द, पुंलिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन–भ्रमता, भ्रमद्भ्याम्, भ्रमद्भिः। बभूव–भू

होना–क्रिया, परस्मैपद, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, बहुवचन–बभूव, बभूवतुः बभूवुः।

शब्दार्थ—वनोद्देशे = वन के भाग में। भ्रमद्भिः = घूमते हुओं ने। सार्थाद्भ्रष्टः = झुण्ड से भ्रष्ट हो गये–अलग हो गये हो। आत्म-वृत्तान्तम् = अपनी कथा। नीत्वा = ले जाकर। समर्पित = समर्पण किया। अभयवाचं दत्त्वा = अभयदान देकर। शरीर-वैकल्यात् = शरीर की विकलता से–शरीर स्वस्थ न होने से। भूरि वृष्टि-कारणात् च = अधिक वर्षा के कारण से। आहारम् अलभमानाः = भोजन न पाते हुए। व्यग्रा बभूवः, = घबरा गये। व्यापादयति = मार देता है। अनुष्ठीयताम् = करना चाहिए। अनेन कण्टक-भुजा किम् = काँटे खाने वाले इससे क्या लाभ है। संभवति = संभव हो सकता है। क्षीणः = दुर्बल।

व्याख्या—किसी वन में मदोत्कट नामक सिंह रहता था। काक, बाघ और गीदड़ उसके तीन सेवक थे। घूमते हुए उन्होंने एक ऊँट देखा और उससे पूछा—आप अपने झुण्ड से भटक कर कहाँ से आ गये हैं? उसने अपनी कथा कह सुनाई। तब उन्होंने उसे ले जाकर सिंह को सौंप दिया। सिंह ने उसे अभयदान देकर चित्रकर्ण नाम रख अपने पास रख लिया। एक बार सिंह के अस्वस्थ होने और अधिक वर्षा होने से भोजन न पाकर वे तीनों व्याकुल हो उठे। तब उन्होंने विचार किया—स्वामी चित्रकर्ण को जिस प्रकार मार दें, वही कार्य करना चाहिए। इस काँटे खाने वाले से क्या लाभ? बाघ ने कहा कि स्वामी ने अभयदान देकर जिस पर अनुग्रह किया है, उसके साथ ऐसा कब संभव है? काक कहता है—इस समय स्वामी निर्बल है, अतः पाप भी कर सकेगा। भूखा क्या नहीं कर सकता?

यत = क्योंकि

त्यजेत् क्षुधार्ता महिला······क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति ॥७६॥

समास—क्षुधार्ता–क्षुधया आर्ता इति–तृतीया तत्पुरुष।

अन्वय—क्षुधार्ता महिला स्वपुत्रं त्यजेत्। क्षुधार्ता भुजगी स्वम् अण्डम् खादेत्। बुभुक्षितः किं पापं न करोति। क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति।

शब्दार्थ—क्षुधार्त=भूख से व्याकुल—भूखी मरने वाली। बुभुक्षित भूखा। निरवत्राकलत्राढीन, कृद।

व्याख्या—भूख से पीड़ित—भूखी मरने वाली सर्पिणी अपने पुत्र त्याग देती है, बेच देती है। भूखी मरने वाली सर्पिणी अपने अंडे खा जाती है भूखा क्या पाप नहीं करता अर्थात् अनेक पाप करने लगता है। भूखे मनु निर्दय हो जाते हैं।

अन्यत् च = और भी—

मत्तः प्रमत्तश्चोन्मत्तः······कामुकश्च न धर्मवित् ॥ ३० ॥

सन्धि विच्छेद—प्रमत्तश्चोन्मत्तः—प्रमत्तः + च उन्मत्तः—विसर्ग को श्— सर्ग सन्धि, अ + उ = ओ = गुणसन्धि।

समास—धर्मवित्—धर्मं वेत्ति इति धर्मवित्—तत्पुरुष।

अन्वय—सरल है।

शब्दार्थ—मत्तः = अत्यन्त हर्षित। प्रमत्तः = पागल। उन्मत्तः = वात से पीड़ित। श्रान्तः = थका हुआ। क्रुद्धः = क्रोधी। बुभुक्षितः = भूखा। = लालची। भीरुः = डरपोक। त्वरायुक्तः = जल्दबाज। कामुकः = । धर्मवित् न = धर्म का ज्ञाता नहीं होता।

व्याख्या—अत्यन्त हर्षित अथवा मद्य आदि पान करने से विकृत बुद्धि पागल तथा वात आदि विकार से पीड़ित होने के कारण भूल जाने थका हुआ, क्रोधी, भूखा, लालची, कायर जल्दबाज और कामी धर्म- को नहीं समझ पाते हैं।

इति संचिन्त्य सर्वे······अभयवाचं दत्वा धृतोऽयमस्माभिः तत्कथ- भवति

वि-विच्छेद—तैरुक्तम्—तैः + उक्तम् — अ + उ = ओ गुणसंधि। = तैः + उक्तम् — विसर्ग को रेफ — र् विसर्गसंधि। अब्रवीच्च—अब्र- —त् को च् व्यंजन संधि।

स—जीवनोपायः—जीवनस्य + उपायः इति—षष्ठी तत्पुरुष। स्वाधीना- : अधीन इति स्वाधीनः, स्वाधीनश्चासौ आहार इति —कर्मधारय, स्वाधीनाहारस्य परित्यागः—षष्ठी तत्पुरुष—तस्मात्।

रूप—जग्मुः—गम्—जाना—क्रिया, परस्मैपद, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष बहुवचन—जगाम, जग्मतुः, जग्मुः। उपस्थितः—स्था—ठहरना—खड़ा होना क्रिया, उप उपसर्ग—उपस्था—उपस्थित होना—क्रिया से त प्रत्यय। अब्रवीत्, ब्रू=बोलना क्रिया, परस्मैपद, भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन—अब्रवीत्, अब्रूताम्, अब्रुवन्।

शब्दार्थ—संचिन्त्य = सोचकर। सिंहान्तिकं जग्मुः = शेर के पास गये। आहारार्थम् = भोजन के लिए। किंचित् प्राप्तम् = कुछ मिला। यत्नात् अपि किंचित् न प्राप्तम् = यत्न करने पर भी कुछ नहीं मिला। जीवनोपायः कः = जीवित रहने का क्या उपाय है? स्वाधीनाहार—परित्यागात् = अपने अधीन भोजन के त्याग देने से। भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति = भूमि को छूकर कानों को छूता है अर्थात् तोबा–तोबा कहता है। अभयवाचं दत्वा = अभयदान देकर।

व्याख्या—यह विचार कर (काक, व्याघ्र, और गीदड़) तीनों शेर के पास गये। शेर ने कहा—क्या भोजन के लिए कुछ प्राप्त हुआ? उन्होंने कहा—यत्न करने पर भी कुछ नहीं मिला। सिंह ने कहा—अब जिंदा रहने की क्या तरकीब है? काक कहता है—देव, जो भोजन अपने अधिकार में है, उसका परित्याग करने ही सर्वनाश का समय उपस्थित है। सिंह ने कहा—स्वाधीन भोजन कौन-सा है? काक शेर के कान में कहता है—चित्रकर्ण। सिंह पृथ्वी का स्पर्श कर कानों को छूता है अर्थात् तोबा–तोबा करता और कहता है—जिसको अभयदान देकर हमने यहाँ रक्खा है, उसके साथ ऐसे व्यवहार की संभावना किस प्रकार की जा सकती है अर्थात् उसका वध कर कैसे खा सकते हैं।

न भूप्रदानं न सुवर्णदानम् ………… दानेष्वभय प्रदानम् ॥३१॥

सन्धि-विच्छेद— वदन्तीह—वदन्ति+इह—इ = ई—दीर्घसंधि। दानेष्वभय—प्रदानम्—दानेषु+अभय प्रदानम्—उ को व्—यण् संधि।

समास— गो-प्रदानम्—गोः वा गवां प्रदानम्—इति गोप्रदानम्—षष्ठी तत्पुरुष। अन्नदानम्—अन्नस्य दानम् इति—षष्ठी तत्पुरुष। महाप्रदानम्—महत् च तत् प्रदानम् इति महाप्रदानम्—कर्मधारय।

रूप—सर्वेषु—सर्व—सब—शब्द, पुल्लिंग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन—सर्वस्मिन्, सर्वयोः, सर्वेषु।

अन्वय—भूप्रदानं तथा न, सुवर्णदानं तथा न, गोप्रदा[illegible] तथा न, अन्नदान
(अपि) तथा न। यथा (विद्वांसः) सर्वेषु दानेषु अभयप्रदानं म[illegible] हाप्रदानं वदन्ति।

शब्दार्थ—भूप्रदानम्=भूमि का दान। गोप्रदानम्=गोदा[illegible]। अभयप्रदानम्=
अभयदान-शरणागत रक्षण को। महाप्रदानम् वदन्ति=सब से [illegible] बड़ा दान कहते हैं

व्याख्या—भूमि का दान, सुवर्ण का दान, गाय का दा[illegible] तथा अन्न क
दान भी वैसा महत्व नहीं रखता, जैसा कि विद्वान् पुरुष समस्त [illegible] दानों में श्रेष्ठ
अभयदान को बड़ा समझते हैं—कहते हैं। अभयदान इन समस्त दानों से महान
और उत्तम कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि शरणागत का रक्षण सब से
उत्तम है।

अन्यत् च = और भी……

सर्व काम-समृद्धस्य……………रक्षिते शरणागते ॥ ३२॥

समास—सर्व-काम-समृद्धस्य-सर्वः चासौ काम इति सर्व-कामः-कर्मधारय-
सर्व-कामे च समृद्ध इति सर्व-काम-समृद्धः-तत्पुरुष-तस्य। शरणागते-शरणे
आगत इति-शरणागतः-सप्तमी तत्पुरुष-तस्मिन्।

रूप—लभते-लभ्-धातु-क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान क[illegible]ल, अन्य पुरुष,
एकवचन-लभते, लभेते, लभन्ते।

अन्वय—सर्व-काम-समृद्धस्य अश्वमेधस्य यत्फलं लभते, सम्यक् रक्षिते
शरणागते तत्फलं लभते।

शब्दार्थ—सर्व-काम-समृद्धस्य=सब प्रकार की कामना से [illegible] समृद्धिशाली।
अश्वमेधस्य यत्फलं लभते=अश्वमेध यज्ञ करने पर जो फल मिलता है। तत्फलं=
वह फल। सम्यक् रक्षिते शरणागते=शरण में आने वाले की भली भाँति रक्षा करने पर।

व्याख्या—समस्त कामनाओं से युक्त अश्वमेध यज्ञ करने पर जो फल
मिलता है, वह फल शरण में आने वाले की भली भाँति रक्षा करने पर सरलता
से प्राप्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि अति प्रयासजन्य अश्वमेध यज्ञ करने
वही शरणागत की रक्षा करने से मिल जाता है।

[illegible] तदिदानीं मदीयमांसम् [illegible] पशुम्प्रयाम्॥

सन्धि—[illegible]-बिन्दु+[illegible]-उ को [illegible] ए-[illegible] को ऊ-यण्
को रेफ-विसर्ग संधि। [illegible] और य को
संधि। [illegible] गुण संधि।

समास—स्व देह दानम्—स्वस्य देह इति स्वदेहः – स्वदेहस्य दानम् इति स्वदेह दानम्–षष्ठी. तत्पुरुष । लब्धावकाशः – लब्धः अवकाशः येन सः– बहुव्रीहि । अनेकोपवास-खिन्नः –न एकः इति अनेकः – नञ्–निषेधवाचक तत्पुरुष, अनेक – उपवासैः खिन्न इति अनेक–उपवास-खिन्नः – बहुव्रीहि ।

रूप—स्वामिना–स्वामिन्–मालिक-इन्नन्त शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन–स्वामिना, स्वामिभ्यां, स्वामिभिः । उपभुज्यताम् –उप उपसर्ग, भु ज्– क्रिया–उपभुज्–आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन–उपभुज्यताम् , उपभुज्येतां, उपभुज्यन्ताम् ।

शब्दार्थ—स्व-देह-दानम् अंगीकरोति = अपने शरीर को देना स्वीकार कर लेता है । तूष्णीं स्थितः = चुप रहा । लब्धावकाशः = मौका—अवसर प्राप्त किया है जिसने । कूटं कृत्वा = कपट कर । अनेकोपवास खिन्नः = अनेक उपवास करने से उदास–भोजन न मिलने से दुःखी । उपभुज्यताम्=खा लीजिये ।

व्याख्या—काक कहता है—स्वामी से यह नहीं मारा जाना चाहिए अर्थात् स्वामी इसका वध स्वयं न करे । किन्तु हम ऐसा कार्य करें, जिससे कि यह स्वयं ही अपना शरीर देना अंगीकार कर ले । यह सुन कर सिंह चुप रहा । तत्पश्चात् काक अवसर पाकर कपट-जाल–षड्यन्त्र–रच कर सब को लेकर सिंह के पास गया । काक ने कहा—स्वामिन् ! यत्न करने पर भी भोजन नहीं मिला । आप अनेक उपवास के कारण–भोजन न मिलने से–उदास दुःखी हैं तो इस समय मेरा मांस खा लें ।

स्वामि-मूला भवन्त्येव·········प्रयत्नः सफलो नृणाम् ॥ ३३ ॥

संधि विच्छेद—भवन्त्येव–भवन्ति + एव; सनूलेष्वपि – सनूलेषु + अपि इ को य् और उ को व् यण्-संधि ।

समास—स्वामि-मूलाः–स्वामी मूलः यासां ताः- स्वामि–मूला–बहुव्रीहि ।

अन्वय—सर्वाः प्रकृतयः खलु स्वामि–मूला एव भवन्ति । नृणां प्रयत्नः सनूलेषु वृक्षेषु सफलः (भवति)

शब्दार्थ—सर्वाः प्रकृतयः = समस्त प्रजा का । स्वामि–मूला एव भवन्ति = स्वामी ही प्रधान आश्रय होता है । नृणां प्रयत्नः = मनुष्यों का प्रयास फलान्न् सिंचन आदि से वृद्धि का उपाय । सनूलेषु वृक्षेषु सफलः=जड़ वाले वृक्षों पर ही सफल होता है ।

व्याख्या—समस्त प्रजा का प्रधान आधार स्वामी—राजा—ही होता है, सारी प्रजा स्वामी के सहारे ही जीवित रहती है। जिस प्रकार कि मनुष्य वृक्ष प्रयत्न-सिंचन आदि से बढ़ाने का उपाय—समूल वृक्षों के लिए ही होता है अर्थात् निर्मूल वृक्ष को सींचने और बढ़ाने का कोई भी प्रयत्न नहीं करता।

सिंहेनोक्तम्—वरं प्राण-परित्याग ·········अतोऽहं ब्रवीमि-मतिः ... यते सत्यम् इत्यादि॥

सन्धि-विच्छेद—नैवम्-न + एवम्-आ + ए = ऐ-वृद्धिसंधि। तथैव—... एव-वृद्धिसंधि।

समास—प्राण—परित्यागः-प्राणानां परित्याग इति तत्पुरुष। जात-विश्वासः—विश्वासः यं सः-जात-विश्वासः- बहुव्रीहि।

...—कर्मणि-कर्मन्-कार्य-शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन—... कर्मणोः, कर्मसु। जीवतु-जीव्-जीवित रहना क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा ... अन्य पुरुष एकवचन-जीवतु-जीवतात्, जीवताम्, जीवन्तु।

पदार्थ—प्राण-परित्यागः वरम् = प्राणों का त्याग अच्छा है। पुनः ईदृशे ... प्रवृत्तिः न (वरम्) = ऐसे काम में लगना अच्छा नहीं अर्थात् यह ... ठीक नहीं है। स्वामी मद्-देहेन जीवतु = स्वामी मेरे शरीर से अपने ... वें। जात-विश्वासः=विश्वस्त-जिसे विश्वास हो गया है। आत्मदानम् ... अपना शरीर देने को कहता है। कुक्षिं विदार्य = कोख फाड़ कर। ... = मार दिया। सर्वैः भक्षितः = सबने खा लिया।

...या—सिंह ने कहा—मर जाना अच्छा है, परन्तु ऐसा काम करना ... ही है। गीदड़ ने भी उसी प्रकार अपने शरीर को देने को कहा। ...हा— नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। बाघ बोला—स्वामी मेरे शरीर ... प्राणों की रक्षा करें। सिंह ने कहा—यह कभी उचित नहीं है। तत्-... स हो जाने पर चित्रकर्ण ऊँट भी अपना शरीर देने को कहता है। ...कहने पर बाघ ने उसकी कोख फाड़ कर उसे मार दिया और सबने ... स्थिचकर्ण काक कहता है कि इसीलिये मैं कहता हूँ कि दुष्टों के वचनों ... बुद्धि भी चलायमान हो जाती है।

ततस्तृतीय धूर्त्तवचनम् श्रुत्वा'''''आत्मौपम्येन यो वेत्ति' इत्यादि ॥

समास—तृतीय-धूर्त-वचनम् – तृतीयस्य धूर्त्तस्य वचनम्-तत्पुरुष । स्व-मतिभ्रमम्-स्वमतेः भ्रमः-तत् पुरुष-तम् ।

रूप—ययौ-या-जाना-क्रिया, परस्मैपद, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन-ययौ, ययतुः, ययुः ।

शब्दार्थ—तृतीय-धूर्त्त-वचनम्-तीसरे ठग के वचन को । स्वमति-भ्रमं निश्चित्य=अपनी बुद्धि का भ्रम समझ कर । छागं त्यक्त्वा=बकरे को छोड़ कर । गृहं ययौ=घर चला गया । नीत्वा=ले जाकर ।

व्याख्या—तत्पश्चात् तीसरे ठग की बात सुनकर अपना बुद्धि-भ्रम निश्चय कर अर्थात् यह बकरा नहीं, कुत्ता ही है—यह ख्याल कर बकरे को छोड़ स्नान कर वह ब्राह्मण अपने घर चला गया । तीनों धूर्त उस बकरे को ले जाकर खा गये । इसलिये मैं कहता हूँ जो कि अपने समान ही दुर्जन को सत्यवादी समझता है, वह ठगा जाता है ।

राजाह मेघवर्णः ''''''स्वप्रयोजनवशाद्वा किं न क्रियते ॥

समास—शत्रु-मध्ये-शत्रूणां मध्ये-तत्पुरुष । स्वामि-कार्यार्थिना-स्वामिनः कार्यम् इति स्वामि-कार्यम्, स्वामि-कार्यस्य अर्थी इति स्वामिकार्यार्थी-तत्पुरुष-तेन ।

रूप—उषितम्-वस-रहना-क्रिया से त प्रत्यय । उवाच—ब्रू-कहना-क्रिया, परस्मैपद, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन-उवाच, ऊचतुः, ऊचुः । क्रियते-कृ-करना-क्रिया, कर्मवाच्य,आत्मनेपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एक-वचन-क्रियते, क्रियेते, क्रियन्ते ।

शब्दार्थ—शत्रुमध्ये=शत्रुओं के बीच में । चिरम्=अधिक समय तक । कथम् उषितम्=कैसे वास किया गया । अनुनयः कृतः=विनती-खुशामद की । स्वामिकार्यार्थिना=स्वामी के कार्य की करने की इच्छा रखने वाले से । स्वप्रयोजन-वशात्=अपने प्रयोजन से ।

व्याख्या—राजा चित्रवर्ण कहता है—मेघवर्ण ! शत्रुओं के मध्य तुम इतने समय तक कैसे रहे ? और उनकी अनुनय-विनय-खुशामद-किस प्रकार की ? मेघवर्ण बोला—देव ! स्वामी के कार्य को करने की इच्छा रखने वाला तथा

मण्डूकेन दृष्टः=मेंढक ने देखा। न अन्विष्यसि = अन्वेषण नहीं करते। संजात-कौतुकः=अचरज करने वाला। श्रोत्रियस्य=वेदपाठ करने वाले के। विंशतिवर्षदेशीयः=बीस वर्ष की अवस्था वाला। दुर्दैवात्=दुर्भाग्य से। नृशंसस्वभावेन=क्रूर स्वभाव होने से। दष्टः=डस लिया- काट लिया। लुलोठ=लोट गया। उपविष्टाः=बैठ गये।

व्याख्या—पुराने बाग में मन्दविष नामक सर्प रहता था। वृद्धावस्था के कारण वह भोजन प्राप्त करने में भी असमर्थ हो गया, अतएव एक सरोवर के तट पर आकर पड़ गया। तत्पश्चात् दूर से किसी मेंढक ने उसे देखा और पूछा कि तुम भोजन की तलाश क्यों नहीं करते-अपने खाने पीने की फिक्र क्यों नहीं करते? साँप कहता है—सज्जन! तुम जाओ। मुझ मन्दभागी का वृत्तान्त पूछने से क्या लाभ? तब अचरज करने वाला मेंढक कहता है—समस्त वृत्तांत कहिए। साँप कहता है-ब्रह्मपुर में रहने वाले, वेद पाठी कौण्डिन्य के बीस वर्ष के पुत्र को मैंने क्रूर स्वभाव होने से डस लिया। सुशील नामक उस कुमार को मृत देख कर कौण्डिन्य मूर्छित हो पृथ्वी पर लोट गया। इसके बाद ब्रह्मपुर के निवासी उसके भाई-बन्धु वहां आकर बैठ गये।

तथा च उक्तम्=और कहा भी है—

उत्सवे व्यसने चैव..................यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥३४॥

समास—राष्ट्र-विप्लवे-राष्ट्रे विप्लव इति-राष्ट्र-विप्लवः-तत्पुरुष-तस्मिन्। राजद्वारे-राज्ञः द्वारम् इति राजद्वारम्-तत्पुरुष-तस्मिन्।

रूप—तिष्ठति-स्था-तिष्ठ्-ठहरना-क्रिया, परस्मैपद, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन-तिष्ठति, तिष्ठतः, तिष्ठन्ति।

अन्वय—यः उत्सवे, व्यसने, युद्धे, दुर्भिक्षे, राष्ट्रविप्लवे, राजद्वारे, श्मशाने तिष्ठति, स बान्धवः (अस्ति)

शब्दार्थ—व्यसने=विपत्ति में। दुर्भिक्षे=अकाल पड़ने पर। राष्ट्र विप्लवे=देश में लूट-मार होने पर। राजद्वारे=राजा के द्वार-कचहरी-कोर्ट-में।

व्याख्या—जो उत्सव, विपत्ति, लड़ाई, अकाल, देश में क्रान्ति-लूटमार, कचहरी, और श्मशान में उपस्थित होता-साथ देता है, वही बान्धव है।

शब्दार्थ—तत्र कपिलो नाम स्नातकोऽवदत्=कपिल नामक स्नातक बोला।

अरे कौण्डिन्य=रे कौण्डिन्य । मूढः असि=मूर्ख है । येन एवं विलपसि=जो इस प्रकार विलाप करता है ।

व्याख्या—कपिल नाम स्नातक कहने लगा=कौण्डिन्य, तुम मूर्ख हो, जो इस प्रकार विलाप करते हो ।

शृणु=सुनिये—

क्व गताः पृथिवीपालाः············भूमिरद्यापि तिष्ठति ॥३६॥

समास—पृथिवीपालाः=पृथिवीं पालयन्ति इति पृथिवीपालाः-तत्पुरुष सहैन्य-बल-वाहनः-सैन्येन, बलेन, वाहनैः च सह इति-अव्ययीभाव ।

अन्वय—ससैन्य-बल-वाहनाः क्व गताः, येषां वियोग-साक्षिणी भू अद्यापि तिष्ठति ।

शब्दार्थ—ससैन्य-बल-वाहनाः=सेना, बल और वाहन रखने वाले पृथिवीपालाः क्व गताः=राजा लोग कहां चले गये । येषां=जिनके । वियोग-साक्षिणी=वियोग की गवाही देने वाली । भूमिः अद्यापि तिष्ठति=पृथ्वी आज विद्यमान है ।

व्याख्या—बड़े बड़े शूरवीर सेना और वाहन-सम्पन्न राजा लोग कहां च[illegible] गये, जिनके वियोग की गवाही देने वाली पृथ्वी आज भी विद्यमान है अर्था[त्] सब काल के गाल में समा गये । तात्पर्य यह है कि काल ने पानी की लकीर [के] समान उनके नाम-निशान मिटा दिये ।

यतः=क्योंकि—

अनित्यं यौवनं रूपम्············मुह्येत् तत्र न पंडितः ॥३७॥

समास—द्रव्य-संचयः-द्रव्यस्य संचयः-तत्पुरुष । प्रिय-संवासः-प्रियाणां संवासः-तत्पुरुष । पंडा संजाता अस्य इति पंडितः ।

रूप—मुह्येत्-मुह्-मोह-करना-विधि, लिङ्, परस्मैपद, प्रथम पुरुष, एकवचन, मुह्येत्, मुह्येताम्, मुह्येयुः ।

अन्वय—ऐश्वर्यं, प्रियसंवासः, जीवितं रूपं, यौवनम् अनित्यम् (अस्ति) पंडितः तत्र न मुह्येत् ।

शब्दार्थ—प्रिय-संवासः=प्रिय-समागम । द्रव्य-संचयः=धन का इकट्ठा[illegible]

होना । अनित्यम्=नाशवान् है । पंडितः=विद्वान् को । न मुह्येत्=मोह न
चाहिये ।

व्याख्या—ऐश्वर्य, अपने प्रियजनों के साथ रहना, धनसंचय,
सौन्दर्य और युवावस्था—ये सब ही अनित्य—नष्ट होने वाले—हैं, अतएव
पुरुष को इनके लिये मोह नहीं करना चाहिए ।

यथा काष्ठं च काष्ठं च..........तद्वत् भूतसमागमः ॥३८॥

समास—महादधौ—महान् चासौ उदधिः—इति महोदधिः — कर्मध
धारिनन् । भूतसमागमः—भूतानां समागम इति—भूत—समागमः—षष्ठी तत्पुरुष

अन्वय—यथा महोदधौ काष्ठं काष्ठं च समेयाताम्, समेत्य च व्यपेयातां
भूतसमागमः अस्ति ।

शब्दार्थ—महादधौ=महासागर में । काष्ठं काष्ठं च समेयाताम्=लकड़ी
एक टुकड़ा दूसरे से मिल जाता है । समेत्य=मिल कर । व्यपेयाताम्=अलग
हो जाते हैं । तद्वत् भूतसमागमः (अस्ति)=उसी प्रकार प्राणियों का भी
हो जाता है ।

व्याख्या—महासागर में बहते हुए जिस प्रकार लकड़ी के दो टुकड़े
मिल जाते हैं और तरंगों की चोट से फिर अलग अलग हो जाते हैं; उसी
प्राणियों का समागम और वियोग होता रहता है ।

यथा हि पथिकः कश्चित्..........तद्वत् भूतसमागमः ॥३६॥

अन्वय—यथा कश्चित् पथिकः छायाम् आश्रित्य तिष्ठति, विश्रम्य च
गच्छेत् तद्वत् भूतसमागमः (अस्ति) ।

शब्दार्थ—कश्चित् पथिकः=कोई राही । छायाम् आश्रित्य तिष्ठति=
छाया का आश्रय लेकर ठहर जाता है । विश्रम्य=विश्राम करके—पश्चात्
पुनः गच्छेत्=फिर आगे चल पड़ता है ।

व्याख्या—जैसे कोई यात्री मार्ग में चलते चलते परिश्रान्त होकर—
वृक्ष की छाया में थोड़ी देर के लिये थकावट दूर करने को बैठ जाता
विश्राम करके फिर आगे चल देता है; उसी प्रकार संसार में थोड़े समय
ही प्राणियों का मिलन होता है ।

अन्यत् च = और भी—

पंचभिः निर्मिते·················तत्र का परिदेवना ॥८०॥

अन्वय— पंचभिः निर्मिते देहे स्वा स्वां योनिम् अनुप्राप्ते पुनः पंचत्वं सति तत्र का परिदेवना ।

शब्दार्थ—पंचभिः निर्मिते देहे=पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आका इन पाँच तत्वों से बना हुआ शरीर । स्वां स्वां योनिम् अनुप्राप्ते=अपने अ तत्वों से मिलने पर । पचत्वं पुनः गते=फिर पच तत्व में मिल जाने पर–मा के मर जाने पर । का परिदेवना=कैसा रोना-भींकना ।

व्याख्या—यह शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश-इन पं तत्वों से बना हुआ है–अर्थात् इन पांचों के संयोग से शरीर का निर्माण हुअ है । यह शरीर फिर अपने अपने कारणों-तत्वों-में जा मिलता है, अतएव इसं लिए शोक–रोना भींकना–क्यों किया जाय ।

ततः कौण्डिन्यः उत्थायाब्रवीत्···· ········वनमेव गच्छामि ॥

समास—गृह-नरकवासेन–गृहम् एव नरकः तस्मिन् वासः–तेन–तत्पुरुष ।

रूप—उत्थाय–स्था–ठहरना–क्रिया, उत् उपसर्ग–उत् स्था–उठना–क्रिया से त्वा प्रत्यय, किन्तु उपसर्ग पहले होने से त्वा को य हो गया है । अब्रवीत्–ब्रू–कहना–बोलना–क्रिया, परस्मैपद, भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन–अब्रवीत्, अब्रूताम्, अब्रुवन् ।

शब्दार्थ—उत्थाय=उठ कर । अब्रवीत्=बोला । गृह-नरकवासेन अलम्= घर रूपी नरक में रहना व्यर्थ है ।

व्याख्या—तदनन्तर कौण्डिन्य शोक दूर कर उठ खड़ा हुआ और बोला– घर रूपी नरक में वास करना व्यर्थ है । मैं वन को जाता हूँ अर्थात् एकान्त करूँगा ।

कपिलः पुनः आह=कपिल फिर कहता है—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्······गृहं तपोवनम् ॥८१॥

समास—पंचेंद्रिय-निग्रहः=पंचानाम् इन्द्रियाणाँ निग्रह इति-पंचेन्द्रिय-निग्रहः–तत्पुरुष । निवृत्तरागस्य-निवृत्तः रागः यस्य सः–निवृत्तरागः–बहुव्रीहि-तस्य ।

रूप—रागिणाम्–रागिन्–राग–आसक्ति–रखने वाला–शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी

विभक्ति, बहुवचन-रागिणः, रागिणोः, रागिणाम्। कर्मणि-कर्मन् कार्य-शब्द, नपुंसक लिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन -कर्मणि, कर्मणोः, कर्मसु।

अन्वय—रागिणा वने अपि दोषाः प्रभवन्ति। पंचेन्द्रिय-निग्रहः गृहे अपि तपः (अस्ति)। यः अकुत्सिते कर्मणि प्रवर्तते (तस्य) निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—रागिणाम्=विषयों के उपभोग की इच्छा रखने वालों को। वने अपि दोषाः प्रभवन्ति=वन में भी बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं अर्थात् बुरे विचार उत्पन्न हो जाते हैं। यः अकुत्सिते कर्मणि प्रवर्तते=जो भले कार्य में रत है अर्थात् जिसका मन शुभ कार्यों के करने में लग गया है। पचेन्द्रिय निग्रह:=पाचों इन्द्रियों का दमन-वशीकरण। तपः=तप है। निवृत्तरागस्य=विषयों के उपभोग से दूर रहने वाले को। गृहम् एव तपोवनम्=घर ही तपोवन है।

व्याख्या—विषयों के उपभोग की इच्छा रखने वाले पुरुषों के मन में वन में रह कर भी दुर्भावनाएं ही उत्पन्न होती हैं। जिसने पाचों इन्द्रियों का निग्रह कर लिया है अर्थात् जिसने इन्द्रियों को वशीभूत कर लिया है, वह घर में भी तप कर सकता है। जो शुभ मार्ग में कदम बढ़ा चुका है अर्थात् जिसने काम-क्रोधादि पर विजय प्राप्त कर ली है, उस आसक्ति-रहित पुरुष के लिए घर ही तपोवन है अर्थात् वह घर में रह कर भी तपोवन के सुख का लाभ पाता है।

भावार्थ—इन्द्रिय-संयमी घर में भी तपोवन के वास का आनन्द पा लेता है।

यतः = क्योंकि—

दुःखितोऽपि चरेत् धर्मम्……न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ४२ ॥

अन्वय—यत्र कुत्र आश्रमे रतः दुःखितः अपि धर्मं चरेत्। सर्वेषु भूतेषु समः (स्यात्) लिंगं (एव) धर्मकारणं न।

शब्दार्थ—यत्र कुत्र आश्रमे रतः—गृहस्थ, वानप्रस्थ आदि किसी आश्रम में भी रहने वाला। दुःखितः अपि धर्मं चरेत् = दुखी होता हुआ भी अपने धर्म का पालन करे। भूतेषु = प्राणियों में। समः = समान—समभाव रखने वाला। लिंगं धर्मकारणं न = चिन्ह-वेषभूषा-जटा, कण्ठी-माला आदि-धर्म का कारण नहीं है।

व्याख्या—किसी भी आश्रम में रहे और दुःखी भी हो तो भी अपने धर्म—

कर्त्तव्य–का पालन करना चाहिए अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि किसी भी आश्रम में रहने वाले को अपने धर्म–कर्त्तव्य–का त्याग दुःखी होने पर भी नहीं करना चाहिए। मनुष्य को समस्त प्राणियों के प्रति समान भाव रखना चाहिए अर्थात् सब को समान समझना ही ईश्वर–सृष्टि का मुख्य रहस्य है। लिंग–चिन्ह–बड़ा-जटा बढ़ाना, कण्ठी माला पहनना आदि धर्म का कारण नहीं है, इसके बिना भी मानव अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकता है।

तथा हि = जैसे कि

आत्मा नदी संयम पुण्यतीर्था·········शुध्यति चान्तरात्मा ॥ ४३ ॥

समास—संयम – पुण्य – तीर्था – संयम एव पुण्यं तीर्थं यस्याः सा बहुव्रीहि।

सत्योदका–सत्यम् एव उदकं यस्याः सा–सत्योदका–बहुव्रीहि। ज्ञानतटा–ज्ञानम् एव तटम् यस्याः सा=ज्ञान-तटा–बहुव्रीहि। दयोर्मिः–दया एव ऊर्मिः यस्याः सा – बहुव्रीहि।

रूप—वारिणा–वारि–जल–शब्द, नपुंसकलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन–वारिणा, वारिभ्यां, वारिभिः।

शब्दार्थ—संयम–पुण्यतीर्था = जिस आत्मा रूपी नदी के तीर्थ इन्द्रिय-निग्रह और पुण्य हैं। सत्योदका = सत्य जिसका जल है। ज्ञान-तटा = ज्ञान जिस नदी का तट है। दयोर्मिः = दया जिस नदी की तरंग है। पाण्डुपुत्र = हे युधिष्ठिर! तत्र अभिषेकं कुरु = उसमें–वहां–स्नान कीजिए। वारिणा=जल से। अन्तरात्मा = अन्तःकरण। न शुध्यति = साफ नहीं होता है।

व्याख्या—यहाँ आत्मा रूपी नदी का रूपक है। आत्मा रूपी नदी है, संयम और पुण्य जिस आत्मा रूपी नदी के तीर्थस्थान हैं। सत्य उस आत्मा नदी का जल, है सदाचार, उस आत्मा-नदी का तट है, दया उस नदी की तरंग है। हे युधिष्ठिर! ऐसी आत्मा-रूपी नदी में स्नान करो। यहाँ स्नान करने से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। जल से अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती। (जल से केवल शरीर शुद्धि होती है)। अन्तरात्मा की शुद्धि के लिए संयम, पुण्य, सत्य, ज्ञान और दया को अपनाना होगा।

भावार्थ—आत्मा—नदी।

संयम और पुण्य—नदी-तट के तीर्थ।

सत्य—नदी का जल।

शील—नदी का तट।

दया—नदी की तरंग।

भावार्थ—यह है कि मानव संयमी, पुण्यात्मा, सत्यवादी, ज्ञानी और दयालु होने से अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर सकता है अन्यथा नहीं। जल स्नान और प्रक्षालन से शरीर-शुद्धि होती है, आत्मा की नहीं होती। आत्म-शुद्धि बिना संसार के समस्त शुभ कार्यों का सुफल प्राप्त होना असम्भव ही है, अतः आत्म-शुद्धि करो।

विशेषतः च=विशेषरूप से—

जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि······असारं त्यजतः सुखम् ॥४४॥

समास—जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-वेदनाभिः=जन्म च मृत्युश्च जरा च व्याधिश्च-जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधयः-द्वन्द्व-जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधीनां वेद इति-तत्पुरुष-ताभिः।

रूप—त्यजतः-त्यजत्-छोड़ता हुआ-शतृ-अत् प्रत्ययान्त शब्द, षष्ठ विभक्ति, एकवचन-त्यजतः, त्यजतोः, त्यजताम्।

अन्वय—जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-वेदनाभिः उपद्रुतम् इमम् असारं संसा त्यजतः (एव) सुखम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-वेदनाभिः=जन्म लेने, मरने, बुढ़ापे और रोगों की वेदनाओं से। उपद्रुतम्=भरे हुए अर्थात् पूर्ण। इमम् असारम्= इस सार-तत्व-हीन। संसारं त्यजतः=संसार का त्याग करने वाले को। सुखम् (अस्ति)=सुख है।

व्याख्या—जन्म लेना, मरना, वृद्धावस्था, रोग आदि की वेदनाओं-कष्टों-से भरे हुए इस असार संसार को त्यागने वाला ही सुख का अनुभव करता है—सुखी होता है।

यतः-क्योंकि—

दुःखमेवास्ति न सुखम्··········सुख-संज्ञा विधीयते ॥४५॥

समास—दुःखार्त्तस्य-दुःखेन आर्त्तः इति दुःखार्त्तः-तत्पुरुष-तस्य।

अन्वय—(संसारे) दुःखम् एव अस्ति, सुखं न, दुःखार्तस्य प्रतीकारे सु
धीयते, यस्मात् तत् उपलक्ष्यते।

शब्दार्थ—दुःखार्तस्य प्रतीकारे=दुःख से पीड़ित प्राणियों के प्रतीकार–
करने में। सुखसंज्ञा विधीयते=सुख नाम रख दिया है–सुख मालूम होता।

व्याख्या—संसार में दुःख ही है, सुख नहीं। जब मनुष्य दुःखी प्राणियों
के दूर करने में लग जाता है, तब सुख मालूम होता है।

कौण्डिन्यो ब्रूते—'एवमेव'·········शोकाविष्टं ते हृदयम् ॥

सन्धि-विच्छेद—सम्प्रत्युपदेशासहिष्णुः–सम्प्रति+उपदेश+असहिष्णुः–द
यण् संधि।

समास—शोकाकुलेन–शोकेन आकुल इति शोकाकुलः–तृतीया तत्पुरुष
।

रूप—ब्रूते–ब्रू–बोलना–क्रिया, आत्मेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, ए
ब्रू ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते। शप्तः–शप्–शाप देना–कोसना–क्रिया से त प्रत्यय
(–भवत्–आप–शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन–भवान्, भवन्तौ
ः।

शब्दार्थ—कौण्डिन्यः ब्रूते=कौण्डिन्य कहता है। एवम् एव–यह ठीक है–
का कहना उचित है। ततः–तत्पश्चात्। तेन शोकाकुलेन ब्राह्मणेन श्र
शोक से व्याकुल उस ब्राह्मण (कौण्डिन्य) ने मुझे शाप दिया। यत्=कि
प्रारभ्य=आज से। मण्डूकानां वाहनं भविष्यसि=तुम मेढकों का वाहन होगा
मेढक तुम पर सवारी करेंगे। कपिलो ब्रूते=कपिल स्नातक कहता है।
=इस समय। भवान् उपदेश–असहिष्णुः=आप उपदेश की बात को सहन
रोगे अर्थात् उपदेशप्रद बात नहीं सुन सकोगे। ते हृदयं शोकाविष्टम्=
हृदय शोक से व्याकुल है।

व्याख्या—कौण्डिन्य कहता है–आप का कहना ठीक है। तत्पश्चात् शोक
ल उस ब्राह्मण ने मुझे यह शाप दे दिया कि आज से तुम मेढकों के
आओगे अर्थात् मेढक तुम्हारी पीठ पर सवारी करेंगे। स्नातक कपिल
—इस समय आप मेरी उपदेशप्रद बात नहीं सुन सकते, क्योंकि
हृदय शोक से सन्तप्त हो रहा है।

तथापि वार्यं श्रृणु=फिर भी तुम्हें जो करना है, उसे सुनो—

संगः सर्वात्मना त्याज्यः·········सतां संगो हि भेषजम् ॥४६॥

रूप—त्यक्तुम्–त्यज्–त्यागना–किया, तुम् प्रत्यय । सद्भिः–सत्–श्‍
शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन–सता, सद्भ्याम्, सद्भिः ।

अन्वय—सर्वात्मना संगः त्याज्यः, चेत् सः त्यक्तुं न शक्यते (तदा सद्भिः सह कर्त्तव्यः, सतां संगः हि भेषजम् (अस्ति)

शब्दार्थ—सर्वात्मना=सर्वभाव से–पूर्णरूप से । संगः त्याज्यः=संसार के की आसक्ति को छोड़ दो । त्यक्तुं न शक्यते=नहीं त्याग सकते । सः=वह साथ । सद्भिः सह कर्त्तव्यः=सदाचारी पुरुषों का करो । सतां संगः=सज्जनों का मेल । हि भेषजम्=निश्चय ही औषध है अर्थात् जैसे औषध व्याधि को हटा है, उसी प्रकार सत्संग काम क्रोध एवं संसार की आसक्ति रूपी रोग को दू देता है ।

व्याख्या—अपनी पूर्ण शक्ति से सांसारिक पदार्थों के सुख की आसक्ति हटा दो अर्थात् संसार के सुखोपभोग की इच्छा मत करो । यदि ऐसा नह सकते तो सत्संग करो, क्योंकि सज्जनों का साथ उत्तम औषधि है अर्थात् प्रकार औषध-सेवन से व्याधि नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार सज्जन-संग से क्रोधादि शान्त हो जाते हैं ।

भावार्थ—सत्संग से आधि–मानसिक व्यथा और औषध से श शारीरिक व्यथा शान्त हो जाती है ।

एतच्छ्रुत्वा स कौण्डिन्यः···अतोऽहं ब्रवीमि-स्कन्धेनापि वहेच्छत्रु·····इत

संधि-विच्छेद—एतच्छ्रुत्वा–एतत्+श्रुत्वा–त् को च् और श् को छ्– संधि । ततोऽहमागत्य–ततः+अहं–विसर्ग को ऽ–विसर्ग संधि, अ+उ=ओ संधि, अ का पूर्वरूप–पूर्वरूप संधि । अहं+आगत्य=औ को आव्–अयादि

समास—कपिलोपदेशामृत – प्रशान्त-शोकानलः–कपिलस्य उपदेश कपिलोपदेशः–तत्पुरुष, कपिलोपदेश एव अमृतम्– इति कपिलोपदेशा कपिलोपदेशामृतेन प्रशान्तः शोकानलो यस्य सः– बहुव्रीहि । यथाविधि– अनतिक्रम्य इति यथाविधि–अव्ययीभाव । मण्डूकनाथः=मण्डूकानां नाथ तत्पुरुष । मन्दा गतिर्यस्य सः मन्दगतिः–बहुव्रीहि । महाप्रसादः—महान् च

प्रसाद इति महाप्रसादः – कर्मधारय । निर्मण्डूकम् – मण्डूकानाम् अभावो
निर्मण्डूकम्–अव्ययीभाव । चित्रपदक्रमम्–चित्रः पदक्रमः यस्मिन् तत्–बहुव्रीहि ।

रूप—कृतवान्–कृतवत्–करता हुआ–शब्द, पुलिंग, प्रथमा विभक्ति, ए
वचन–कृतवान्, कृतवन्तौ, कृतवन्तः वोढुम्–वह्–पहुँचना–ढोना–क्रिया, तु
प्रत्यय । आरूढवान्–रुह्–उगना–क्रिया, आ उपसर्ग, आरुह्–सवार होना–क्रिया
से तवत् प्रत्यय–आरूढवत्–सवार होता हुआ–पुलिंग शब्द, प्रथमा विभक्ति, एक-
वचन–आरूढवान्, आरूढवन्तौ, आरूढवन्तः । बभ्राम, बभ्रमतुः, बभ्रमुः ।

शब्दार्थ—कपिलोपदेशामृत–प्रशान्त–शोकानलः=स्नातक कपिल के उपदेश
रूपी अमृत से शान्त हो गया है शोक रूपी अनल–अग्नि–जिसकी ऐसा ।
यथाविधि=विधि–विधान के अनुसार । दण्ड-ग्रहणं कृतवान्=दण्ड ग्रहण किया
अर्थात् सन्यास ले लिया । वोढुम्=वहन करने–सवारी देने को । जलपाद–नाम्नः
अग्रे=जलपाद–नामक के सम्मुख । पृष्ठम् आरूढवान्=पीठ पर चढ़ गया । पृष्ठे
कृत्वा=पीठ पर चढ़ा कर । चित्र–पद–क्रमं बभ्राम=अद्भुत चाल से घूमा ।

परेद्युः=दूसरे दिन । मन्द–गतिः=धीमी चाल वाला । आहार–विरहात्=भोज
के विरह–भोजन के अभाव–से । असमर्थ अस्मि=चलने में अशक्त हूँ ।
मदाज्ञया=मेरी आज्ञा से । महा–प्रसादः=बड़ा प्रसाद । क्रमशः=एक एक करके ।
निर्मण्डूकं=मेंढकों से खाली । मण्डूकनाथः खादितः = मेंढकों के राजा को भी
खा लिया ।

व्याख्या—यह सुन कर कौण्डिन्य ने कपिल स्नातक के उपदेशरूपी अमृत
शोकरहित -अशोक होकर विधि–पूर्वक दण्ड ग्रहण किया अर्थात् सन्यास
लिया । इसीलिये ब्राह्मण के शाप से मैं मेंढकों को ढोने यहाँ आया हूँ ।
मेंढक ने यह वृत्तान्त जलपाद नामक मेंढकों के राजा के सम्मुख कह
या । मण्डूकनाथ वहां आकर साँप की पीठ पर चढ़ गया । सांप उसको
ी पीठ पर बैठा कर अद्भुत गति से घूमने लगा । दूसरे दिन चलने में
क साँप से मण्डूकनाथ ने कहा—आज आप धीमे-धीमे क्यों चल रहे हैं !
कहता है—स्वामिन् ! भोजन न मिलने से अशक्त हूँ । मण्डूकनाथ ने
मेरी आज्ञा से मेढ़कों को खा लो । आपकी कृपा से यह महान् प्रसाद
।—यह कह कर वह एक एक करके मेंढकों को खाने लगा । अन्त

में मेंढकों से खाली सरोवर को देख कर उसने मण्डूकनाथ को
लिया।

अतोऽहं ब्रवीमि = इसीलिए मैं कहता हूँ (मेघवर्ण काक कह रह
स्कन्धेनापि वहेत् शत्रून् = समय पड़ने पर शत्रुओं को भी अपनी
बैठा कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा देना चाहिए।

देव ! यातु इदानीं पुरावृत्ताख्यानकथनम्……नो चेद् विगृह

शब्दार्थ—पुरावृत्ताख्यानं यातु = प्राचीन कथा-वर्णन छोड़िये। स
सन्धि करने योग्य। सन्धीयताम् = सन्धि कीजिए। मे मतिः = मेरा
अस्माभिः जितः = हमसे जीत लिया गया। विगृह्यताम् = विग्रह युद्ध करे

व्याख्या—हे देव ! अब पुरानी कथाओं का कहना छोड़िये। राजा
गर्भ सब प्रकार से सन्धि करने योग्य हैं, अतः उनसे सन्धि करनी चाहिए
मेरा विचार है। राजा ने कहा—तुम्हारा यह कैसा विचार है ! हमने
लिया है। इसलिए वह हमारा सेवक बनकर रहना चाहता है तो रहे,
युद्ध करे।

अत्रान्तरे जम्बुद्वीपादागत्य……गत्वा तमेव समूलमुन्मूलय

संधि-विच्छेद—जम्बुद्वीपमाक्रम्यावतिष्ठते-जम्बु-द्वीपम् + आक्रम्य
तिष्ठते-सन्धि का साधारण नियम और दीर्घ सन्धि। एकदैव = एकदा
आ + ए = ऐ-वृद्धि सन्धि।

शब्दार्थ—उक्तम् = कहा। आक्रम्य अवतिष्ठते = आक्रमण कर
घेरा डाल दिया है। ससंभ्रमं ब्रूते = शीघ्र कहता है। पूर्वोक्तं कथयति
कथन को फिर कहता है। स्वगतम् = मन ही मन। सकोपम् = क्रोध से
लम् उन्मूलयामि = जड़ से उखाड़ फेंकता हूँ—समूल नष्ट कर देता हूँ

व्याख्या—इसी बीच में जम्बुद्वीप से आकर गुप्तचर शुक ने कहा
सिंहलद्वीप के राजा सारस इस समय जम्बुद्वीप पर आक्रमण कर व
हुए हैं अर्थात् उन्होंने वहाँ घेरा डाल दिया है। राजा शीघ्र ही कहता
क्या ! शुक अपनी वही बात फिर कह देता है। मन्त्री गृध्र मन ही म
लगा—अच्छा रे चक्रवाक सर्वज्ञ मन्त्री ! साधु, साधु अर्थात् यह तूने स्

राजा क्रोध में भर कहता है—इसको रहने दो, वहाँ पहुँच कर उस सा
समूल उखाड़ फेंकता हूँ—अर्थात् उसका सर्वनाश कर देता हूँ।

न शरन्मेघवत्कार्यम्······प्रकाशयति नो महान् ॥ ४७ ॥

अन्वय—शरत्-मेघवत् वृथा घनगर्जितं न कार्यम्। महान् परस्य
या अनर्थं नो प्रकाशयति।

शब्दार्थ—शरत् मेघवत् = शरद् ऋतु के मेघ के समान। वृथा एव घ
र्जितं न कार्यम् = बेकार ही मेघ के समान गर्जना नहीं करनी चाहिए
महान् = पण्डित। परस्य = शत्रु के। अर्थम् = प्रिय बात। अनर्थम् = अप्रि
बात को। न प्रकाशयति = प्रकट नहीं करता।

व्याख्या—शरत्काल के मेघों के समान बेकार ही मेघ-गर्जना नहीं करनी
चाहिए। तात्पर्य यह है कि शरत् कालीन मेघ गर्जना ही करते हैं, वर्षा नहीं।
इसी प्रकार व्यर्थ बातें बनाना उचित नहीं। बुद्धिमान् पुरुष भलाई बुराई को
दूसरों के सामने प्रकट नहीं करते अर्थात् दूसरों से कहते नहीं फिरते अथवा दूसरे
की भलाई बुराई को प्रकट नहीं करते।

अपर च=और भी—

एकदा न विगृह्णीयात्······ बहुभिर्नाशयते ध्रुवम् ॥ ४८ ॥

सन्धि विच्छेद—सर्पोऽप्युरगः-सर्पः + अपि उरगः-विसर्ग को उ, अ+
उ को ओ, तत्पश्चात् पूर्वरूप सन्धि, इ को य यण्सन्धि।

समास—सर्पं-दर्पेण सह = सदर्पं-अव्ययीभाव। उरगः-उरसा गच्छति
इति उरग-तृतीया तत्पुरुष।

रूप—विगृह्णीयात्-वि + ग्रह = ग्रहण करना-लेना, वि उपसर्ग, विग्रह्-युद्ध
लड़ाई करना-क्रिया, परस्मैपद, विधिलिङ्, अन्य पुरुष, एकवचन-विगृह्णीयात्,
विगृह्णीयाताम्, विगृह्णीयुः। अभिमानिनः-अभिमानिन्=अभिमान करने वाला
शब्द, पुल्लिङ्ग, द्वितीया विभक्ति, बहुवचन - अभिमानिनम्, अभिमानिनौ
अभिमानिनः।

अन्वय—राजा एकदा बहुभिः ···
···ः बर्तिः ···

शब्दार्थ—बहून् अभियातिनः = अनेक आक्रान्ताओं के साथ । न वि
यात् = युद्ध नहीं करना चाहिए । दर्पं अपि उरगः = घमण्डी साँप
कीटैः ध्रुवं नाश्यते = बहुत से कीड़ों से अवश्य नष्ट कर दिया जाता है

व्याख्या—राजा का यह कर्तव्य है कि अनेक आक्रमणकारियों
युद्ध न करे—एक समय ही अनेक के साथ विरोध उचित नहीं । बलवा
भी अनेक कीड़ों द्वारा अवश्य ही नष्ट कर दिया जाता है अर्थात्
मिलकर तुच्छ कीड़े भी बलवान् साँप का विनाश कर ही देते हैं ।

शब्दार्थ—देव ! किम् इतः=क्या यहाँ से । सन्धानं विना=बिना सं
गमनम् अस्ति = चले जाना है ? यतः = क्योंकि । तदा = उस
अस्माकं पश्चात् = हमारे पीछे । अनेन कोपः कर्तव्य = यह क्रुद्ध
व्याख्या—देव ! संधि किये बिना जाना कैसे हो सकता है ? हमा
चले जाने पर संभवतः यह क्रोध करे ।

अपरं च = और भी—

योऽर्थतत्त्वमविज्ञाय ...... ब्राह्मणो नकुलात् यथा ॥ ४६ ॥

संधि-विच्छेद—योऽर्थतत्त्वमविज्ञाय—यः + अर्थ-तत्त्वम् + अविज्ञाय
को उ-विसर्ग-सन्धि, अ + उ ओ-गुण-सन्धि, अ का पूर्वरूप, पूर्वरूप सं
का साधारण नियम ।

समास—अर्थतत्त्वम्—अर्थस्य तत्त्वम्—षष्ठी तत्पुरुष ।

रूप—तप्यते—तप्—तपना—क्रिया, आत्मनेपद, वर्तमान काल, अ
एकवचन—तप्यते, तप्येते, तप्यन्ते ।

अन्वय—यः अर्थ-तत्त्वम् अविज्ञाय क्रोधस्य एव वशं गतः (अस्ति)
तथा तप्यते यथा नकुलात् ब्राह्मणः ।

शब्दार्थ—अर्थ तत्त्वम् = प्रयोजन की असलियत को—प्रयोजन की ब
को । अविज्ञाय = न समझ कर । वशं गतः = वश में हो गया है ।
संतप्त होता = दुःखी होता है । नकुलात् = नेवले से ।

व्याख्या—जो मनुष्य वास्तविक बात को बिना जाने क्रोध के
जाता अर्थात् क्रोध करता है, वह मूढ़ उसी प्रकार संतप्त होता—पश्चाता
है, जिस प्रकार कि नकुल के मार देने से ब्राह्मण को दुःखी होना पड़ा ।

लगा, यदि मैं शीघ्र ही नहीं जाता हूँ तो अन्य कोई (ब्राह्मण) ग्रहण कर लेगा अर्थात् राजा के यहां और कोई चला जायगा।

यतः = क्योंकि—

आदानस्य प्रदानस्य······कालः पिबति तद्रसम् ॥ ४० ॥

रूप—कर्मणः-कर्मन्-काम शब्द, नपुंसकलिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन—कर्मणः, कर्मणोः, कर्मणाम्।

अन्वय—क्षिप्रम् अक्रियमाणस्य आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य कर्मणः रसं कालः पिबति।

शब्दार्थ—क्षिप्रम् अक्रियमाणस्य=शीघ्र न किये जाने वाले। आदानस्य=ग्रहण करने योग्य-लेने योग्य। प्रदानस्य=देने योग्य। कर्त्तव्यस्य च=और करने योग्य। कर्मणः रसं कालः पिबति=काम का रस-सार-समय पी जाता है अर्थात् फिर उसकी सफलता में सन्देह हो जाता है।

व्याख्या—तीन बातों को शीघ्र करना लाभप्रद होता है--लेन-देन और करने योग्य कार्य को यदि शीघ्र न किया जाय तो समय बीत जाने पर सफलता-प्राप्ति की आशा नहीं रहती है। यदि कोई वस्तु लेना है और न ली जाय तो समय बीत जाने पर देने वाला देना नहीं चाहता, यदि जो वस्तु देनी है और न दी जाय तो वह आगे चल कर भार मालूम होने लगती है, जैसे--ब्याज आदि। यदि कर्त्तव्य करने में शिथिलता आ गई तो जीवन में सफलताप्राप्ति-प्राप्ति कठिन हो जाती है।

भावार्थ—शुभस्य शीघ्रम्। "काल करे सो आज कर।"

किन्तु बालकस्यात्र रक्षको नास्ति·········नकुलं निरीक्ष्य भावित-चेताः स परं विषादमगमत् ॥

समास—बालक-रक्षायां-बालकस्य रक्षा इति बालक-रक्षा-षष्ठी तत्पुरुष-तस्याम्। रक्त-विलिप्त-मुखपादः-रक्तेन विलिप्ताः मुखः पादाः च यस्य सः-रक्त-विलिप्त-मुखपादः-बहुव्रीहि। उपकारकम्-उपकारं करोति इति उपकारकः-तत्पुरुष-तम्। भावित-चेताः-भावितं चेतः यस्य सः-भावित-चेताः-बहुव्रीहि। कृष्णसर्पः-कृष्णः चासौ सर्पः इति-कर्मधारय।

रूप—यातु—या—जाना—क्रिया, परस्मैपद, आज्ञा लोट्, अन्य, पुरुष, एक-वचन—यातु, याताम्—यान्तु । आयान्तम्—या—जाना—आ उपसर्ग—आ या—आना—क्रिया से शतृ—अत्—प्रत्यय, द्वितीया विभक्ति, एकवचन—आयान्तम्, आयतः । लुट्—लोटना—क्रिया, परस्मैपद, परोक्ष भूतकाल, अन्य पुरुष, एकव लुलोट, लुलुटतुः, लुलुटुः ।

शब्दार्थ—रक्षकः—रक्षा करने वाला । यातु=जाने दो । व्यवस्थाप्य=व्यव करके—प्रबन्ध करके । आगच्छन्=आता हुआ । कृष्ण-सर्पो दृष्टः—काला देखा । व्यापाद्य=मारकर । खण्ड खण्डं कृत्वा=टुकड़े-टुकड़े करके । आयान्त अवलोक्य=आते हुए को देख कर । रक्त-विलिप्त-मुख-पादः=खून से लथपथ मुँह और पैर वाला—जिसके मुख और पैरों पर खून के दाग लगे हैं । लुलोट= लोटने लगा । तथाविधं=उस प्रकार के अर्थात् खून मे लथपथ । अवधार्य= निश्चय कर नकुलं व्यापादितवान्=नेवले को मार दिया । यावत्=ज्यों ही । उपसृत्य=पास जाकर । अपत्यं=सन्तान को । सुस्थः—स्वस्थ । सुप्तः=सोया हुआ । व्यापादितः=मारा गया । उपकारकं=उपकार करने वाले को । निरीक्ष्य=देखकर । भावित-चेताः=भावावेश में आने वाला । विषादम्= दुःख को ।

व्याख्या—ब्राह्मण माधव सोच रहा है—किन्तु बच्चे की रक्षा करने वाला यहाँ कोई नहीं है । तब क्या करूँ । अच्छा जाने दो । बहुत दिनों से बेटे के समान पाले हुए इस नेवले को ही बालक की रक्षा करने को स्थापित कर अर्थात् नेवले पर ही बालक की रक्षा का भार सौंप कर चला जाता हूँ । वही प्रबन्ध कर (ब्राह्मण) चला गया । तत्पश्चात् नेवले ने बालक के समीप आता हुआ एक काला सांप देखा और क्रोध में उसे मार कर टुकड़े-टुकड़े कर खा लिया । (कुछ समय बाद) उसको आते देखकर खून से लथपथ मुख पैर वाला नेवला शीघ्र आकर उसके (ब्राह्मण के) चरणों में लोटने लगा । उस ब्राह्मण ने नेवले को खून से सना देखकर "इसने बालक को खा लिया है" यह विचार करने वाले को मार दिया । वह ज्यों ही समीप जाकर अपनी सन्तान को देखता है, त्यों ही उसने देखा कि बालक सोया हुआ है और मरा सांप समीप पड़ा है । उपकार करने वाले उस नेवले को देखकर भावावेश में आने वाले उस ब्राह्मण को बहुत विषाद हुआ ।

: प्रवीनि=दूरदर्शी यम यह रहा है कि इसीलिए मैं कहता हूँ ।

योऽर्थतत्वम् अविज्ञाय=जो वास्तविकता को न समझ क्रोध के वशीभूत हो जाता है, वह पीछे पछताता है।

भावार्थ—बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥

अपरं च=और भी—

कामः क्रोधस्तथा मोह..................सुखी नृपः ॥५१॥

अन्वय—कामः, क्रोधः, मोहः, लोभः, मानः तथा मदः एवं षड्वर्गम् उत्सृजेत्। अस्मिन् त्यक्ते नृपः सुखी भवेत्॥

शब्दार्थ—उत्सृजेत्=त्याग देना चाहिए। अस्मिन् त्यक्ते=इस षड्वर्ग के त्याग देने पर। नृपः सुखी भवेत्=राजा सुखी हो सकता है।

व्याख्या—काम, क्रोध, मोह, लोभ, घमण्ड और मद—इन छः शत्रुओं का परित्याग ही उचित है। इन छः के त्याग देने से राजा सुखी हो सकता है। तात्पर्य यह है कि षड्वर्ग का त्याग करने से सब ही सुखी हो सकते हैं।

भावार्थ—काम, क्रोध, मद, लोभ की जब लगि मन में खान।
तब लगि पंडित मूर्ख हू "तुलसी एक समान॥
—गोस्वामी तुलसीदास

शब्दार्थ—राजा आह=राजा कहता है। मन्त्रिन्, एष ते निश्चयः=मन्त्री, यही तुम्हारा निश्चय है। मन्त्री ब्रूते=मन्त्री कहता है। एवम् एष=यही निश्चय है।

व्याख्या—चित्रवर्ण दूरदर्शी गृध से कह रहा है—आपने यही निश्चय किया है कि संधि करके यहाँ से चलना ठीक होगा। दूरदर्शी गृध्र कहता है—हां, यही।

यतः=क्योंकि—

स्मृतिश्च परमार्थेषु..................मन्त्रिणः परमो गुणः ॥५२॥*

समास—परमार्थेषु–परमः चासौ अर्थः इति परमार्थः–कर्मधारय–तेषु। ज्ञान-निश्चयः–ज्ञानेन निश्चय इति–तत्पुरुष। मन्त्र गुप्तिः–मन्त्रस्य मन्त्राणां वा गुप्तिः–षष्ठी तत्पुरुष।

*नोट—पुस्तक में 'मूढता' छपा है, जो अशुद्ध है–दृढता–होना चाहिए। परमो गुणः–के स्थान पर परमा गुणाः होना चाहिए।

के वश में रहने वाली सम्पत्तियां सोच-विचार कर काम करने वाले मनुष्य के पास स्वयं चली आती हैं। तात्पर्य यह है कि संपत्तियां गुणों के अधीन हैं।

भावार्थ—बिना विचारे जो करे आफत में फँस जाय।
सोच समझकर जो करे वह सम्पत् को पाय ॥

तत् देव=हे राजन्। यदि इदानीम् अस्मत् वचनं क्रियते=यदि इस समय आप मेरा कहना मानें। तदा सन्धाय गम्यताम्=तो राजा हिरण्यगर्भ राजहंस के साथ संधि करके चल दीजिये।

यतः=क्यों कि—

अज्ञः सुखमाराध्यः······ब्रह्मापि नरं न रंजयति ॥ ५५ ॥

समास—विशेषज्ञः–विशेषं जानाति इति–विशेषज्ञः–तत्पुरुष। ज्ञानलव-दुर्विदग्धम्–ज्ञानस्य लव इति ज्ञानलवः–ज्ञानलवेन दुर्विदग्ध इति–तत्पुरुष-वम्।

अन्वय—अज्ञः सुखम् आराध्यः (भवति)। विशेषज्ञः सुखतरम् आराध्यते। (किन्तु) ज्ञान-लव दुर्विदग्धं नरं ब्रह्मा अपि न रंजयति।

शब्दार्थ—अज्ञः = मूर्ख। आराध्यः = आराधना करने योग्य-वश में करने के लायक। सुखतरम् = अधिक सुविधा से। विशेषज्ञः = विद्वान्। ज्ञान-लव-दुर्विदग्धम् = अल्पज्ञान वाले घमण्डी को। न रंजयति = प्रसन्न नहीं कर सकता है।

व्याख्या—अल्प ज्ञानी सुख से प्रसन्न किया जा सकता है। विद्वान् अधिक सुखपूर्वक खुश किया जा सकता है, परन्तु अल्प ज्ञान से अहंकारी को ब्रह्मा भी खुश नहीं कर सकता अर्थात् मूर्ख सुविधापूर्वक और विद्वान् अति सुविधापूर्वक प्रसन्न किये जा सकते-वश में लाये जा सकते हैं—परन्तु अहंकारी को प्रसन्न करने की शक्ति ब्रह्मा में भी नहीं है।

विशेषतश्च धर्मज्ञो राजा······कृत-कार्य-अनुदर्शनात् च ॥

समास—कृत-कार्य-अनुदर्शनात्—तेन कृतम् इति कृतम्–तत्पुरुष, कृतस्य कार्यस्य, कृतानां कार्याणां वा अनुदर्शनम्—इति कृत-कार्य-अनुदर्शनम्–तत्पुरुष-समास। महामन्त्री–महान् चासौ मन्त्री–कर्मधारय।

शब्दार्थ—विशेषतः च = और विशेष रूप से। मयापूर्वं ज्ञातम् = मैंने पहले समझ लिया था। तत्कृत-कार्य-सन्दर्शनात् च = उसके द्वारा किये हुए कार्य को देखने से।

व्याख्या—विशेष रूप से राजा (हिरण्यगर्भ राजहंस) धर्मात्मा और मंत्रज्ञ चतुर है। यह बात मैंने मेघवर्ण (काक) के कहने पर पहले ही जान ली थी और उसके कार्यों को देख कर भी पता चल गया था।

यतः=क्योंकि—

कर्मानुमेयाः सर्वत्र ········ फलैः कर्मानुमाव्यते ॥ ५५ ॥

समास—कर्मानुमेयाः – कर्मभिः अनुमेया इति – तत्पुरुष। परोक्ष-गुण-वृत्तय :-गुणाः च वृत्तयः च इति गुण-वृत्तयः – द्वन्द्व, परोक्षाश्च गुण-वृत्तय इति परोक्ष-गुणवृत्तयः-तत्पुरुष।

अन्वय—सर्वत्र परोक्ष-गुण-वृत्तयः कर्मानुमेयाः (भवन्ति)। तस्मात् परोक्ष-वृत्तीनां फलैः कर्म अनुमाव्यते।

शब्दार्थ—सर्वत्र = सब जगह। परोक्ष-गुण-वृत्तयः = छिपे हुए गुण और वृत्ति-विवरण। कर्मानुमेया भवन्ति =कर्म द्वारा अनुमानकरने योग्य होते हैं। अर्थात् कर्मों द्वारा गुप्त गुण और जीवन के कार्यों का पता चल जाता है। परोक्ष-वृत्तीनाम् = छिपे हुए गुणों के। फलैः=परिणामों से। कर्म अनुमाव्यते= कर्म का पता चल जाता है।

व्याख्या—सर्वत्र छिपे हुए गुण और जीवन की घटनाओं द्वारा (किसी के) कार्यों को जान लिया जाता है अर्थात् प्रत्येक के कार्यों के जानने के मुख्य साधन उसके गुण और जीवन की घटनाएँ ही होते हैं। इसी प्रकार गुणों के परिणाम से कार्य का पता चल जाता है। तात्पर्य यह है कि गुणों से कार्य तथा कार्यों से गुणों का ज्ञान हो जाता है।

राजाह अलमुत्तरोत्तरेण······यदाविच्छेदैव न भिद्यते, कदापि सर्वत्र शंका ॥

सन्धिविच्छेद—इत्युक्त्वा-इति + उक्त्वा-इ को य्-यण्संधि। कदाचिद्दंशैव-कदाचित् + दंशा + एव = त को द, ए को ऐ – व्यंजन सन्धि वृद्धिसन्धि।

महामंत्री–महान् चासौ मंत्री इति महामंत्री–कर्मधारय । मन्द-
। मतयः येषां ते – मन्दमतयः – बहुव्रीहि – तेषाम् ।

ष्ठीयताम् – स्था – ठहरना, अनु उपसर्ग, अनुस्था – कार्य
त्मनेपद, आज्ञार्थ, एकवचन – स्थीयताम् – अनु उ पहले
र् और थ को ठ हो जाता है–अनुष्ठीयतान, अनुष्ठीयेताम्,
। आगन्तव्यम् – गम् – जाना, आ उपसर्ग, आगम्–आना–
प्रत्यय। विहस्य – वि उपसर्ग हस् – हँसना किया, त्वा प्रत्यय,
होने से त्वा को य हो गया है। क्रियते – कृ करना – क्रिया –
नेपद, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन – क्रियते, क्रियते,

–उत्तरोत्तरेण अलम् = उत्तर-प्रत्युत्तर करना व्यर्थ है । अभि-
– अभिलषित - प्रिय । अनुष्ठीयताम् = कीजिए । मन्त्रयित्वा =
यथार्ह कर्तव्यम् = उचित किया जाय । दुर्गाभ्यन्तरं चलितः =
चला गया । प्रणिधि–बकेन आगत्य = गुप्तचर बगुले ने
त् अभिसंधिना = किसी विपद कार्य के अनुरोध से । मन्दमतीनां
द्धि वालों का स्वभाव ।

–राजा (चित्रवर्ण) कहता है—उत्तर-प्रत्युत्तर करना अब व्यर्थ
नहीं, वैसा करो । इस प्रकार मन्त्रणा–विचार-विमर्श–करके
—"जो उचित होगा, वही किया जायगा।" यह कह कर किले के
या। तत्पश्चात् गुप्तचर बक ने आकर राजा हिरण्यगर्भ के सम्मुख
।

महामन्त्री एस हमारे पास सन्धि करने आ रहे हैं। राजा कहता है–
ामी विपद कार्य के अनुरोध से–किसी विशेष गुप्त कार्य वश यह यह
नरेश बकवाक हस कर कहता है—हे देव ! यहां शंका नहीं करन
कि एस मन्त्री महाशय–सज्जन–और दूरदर्शी है। अल्प बुद्धि
ही ही होती है कि वे कभी तो शंका ही नहीं करते
न्देह ही होता है।
= उसी प्रकार—

व्याख्या—इसलिए हे देव ! मन्त्री गृध्र के सत्कार करने की शक्ति के अ
द्वार रत्न आदि भेंट करने का सामान सजाइये। ऐसा करने अर्थात् रत्न आ
उपहार की सामग्री सजा देने पर हिरण्यगर्भ के मन्त्री ने दुर्ग-द्वार पर ज
समीप जा, सत्कार कर अन्दर लाकर गृध्र को राजा के दर्शन कराये-भेंट करा
और तब वे एक आसन पर बैठ गये। मन्त्री चक्रवाक बोला—सब कुछ आ
अधीन है अर्थात् सब कुछ आपका ही है। अपनी इच्छा से राज्य का उपभ
कीजिए। राजहंस कहता है—हां, यह ठीक है। दूरदर्शी गृध्र कहता है—यह
ठीक है, किंतु इस समय अतिशयोक्तिपूर्ण वचन व्यर्थ हैं—प्रपंच की बातें-ब
बातें-करना व्यर्थ है।

तदिदानीं सन्धाय गम्यताम्······सर्वे स्वस्थानं प्राप्य मनोऽभिलषि
फलम् प्राप्नुवन्निति।

समास—महाप्रतापः-महान् प्रतापः यस्य स —महाप्रताप.—बहुव्रीहि। प्रहृ
मना.-प्रहृष्टं मनः यस्य सः-प्रहृष्टमनाः-बहुव्रीहि।

रूप—विधीयताम्-धा-धारण करना-क्रिया-वि उपसर्ग वि धा-विध
करना-कर्मवाच्य, आत्मनेपद, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, एकवचन-विधीयता
विधीयेताम्, विधीयन्ताम्। प्राप्नुवन्-प्र उपसर्ग, आप्-क्रिया-आप् = प्र
करना-क्रिया, भूतकाल, परस्मैपद, अन्य पुरुष, बहुवचन-प्राप्नोत्, प्राप्नुता
प्राप्नुवन्।

शब्दार्थ—संधाय = संधि करके। महाप्रतापः = बड़ा प्रतापी। संधानं क
तत् अपि उच्यताम् = संधि करना है, उसे भी कहिये। संमतेन = सम्मति
सत्यवादि-सन्धि पुरस्सरयोः = सत्य की शपथ खाकर सन्धि करने वालों
कांचन अभिधानसन्धिः = कभी न टूटने वाली-आजन्म रहने वाली-सन्धि
वस्त्रालंकार-उपहारैः = वस्त्र, आभूषण आदि उपहारों से। प्रहृष्ट मनाः = प्र
मन वाला। तत्सिधानं गतः = समीप गया। बहु-दान-मान-पुरस्सरम् = बहुत
और मान सहित। संभाषितः = संभाषण किया। स्वीकृत्य = स्वीकार कर। प्रस
पितः = भेज दिया। नः समीहितम् = हमारी अभिलाषा। प्राप्नुवन् = प्र
किया।

व्याख्या—इस समय महाप्रतापी राजा चित्रवर्ण सन्धि करके जाना चाहते

मन्त्री चक्रवाक कहता है—जिस प्रकार सन्धि करना है, उनको कहि
कहता है—मेरी सम्मति में सत्य की शपथ खाकर दोनों राजाओं को
नामक सन्धि' आजन्म रहने वाली—कभी न टूटने वाली—सन्धि कर लेनी च
सर्वज्ञ चक्रवाक कहता है—ऐसा ही हो। तब राजा राजहंस ने वस्त्र अलंकार
उपहार द्वारा दूरदर्शी गृध्र का सम्मान किया और प्रसन्न मन गृध्र चक्रवा
लेकर मयूरराज चित्रवर्ण के पास गया। राजा चित्रवर्ण ने अपने मन्त्री गृध्र
सम्मति से मन्त्री सर्वज्ञ चक्रवाक को दान और मान से पुरस्कृत कर सम्मा
किया। इसी सन्धि को स्वीकार कर राजहंस के पास भेज दिया। दूरदर्शी गृध्र
कहा—हे देव! हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई। इस समय अपने स्थान विन्ध्याचल
को प्रस्थान कीजिए। सबने अपने स्थान पर पहुँच कर अपनी अभिलाषा का फल
प्राप्त किया अर्थात् सबकी मनोकामनाएं पूरी हुईं।

विष्णुशर्मणोक्तम् = विष्णुशर्मा ने कहा—अपर किं कथयामि = और क्या
कहूँ! तत् कथ्यताम् = बताओ। अथ राजपुत्रा ऊचुः = राजकुमार बो
तव प्रसादात् = हे आर्य! आपकी कृपा से। राज्य-व्यवहाराङ्गम् = रा
व्यवहार के अंग को अर्थात् राजनीति को = मित्रलाभ, सुहृद्भेद, सन्धि, विग्र
को। विज्ञातम् = हमने भली प्रकार समझ लिया। सुखिनः वयम् = हम सुखी
हुए। विष्णुशर्मा उवाच = पं० विष्णुशर्मा बोले। तथापि इदम् अपि अस्तु =
तो यह भी हो।

प्रालेयाद्रेः सुतायाः प्रणय-निवसतिः···रचितः समहोऽयं कथानाम्॥४७॥

सन्धि-विच्छेद—यावल्लक्ष्मीः—यावत्+लक्ष्मीः—त् को ल्—यदि त् के बाद
ल् आता है तो भी ल् हो जाता है—व्यंजन संधि।

समास—चन्द्रमौलिः—चन्द्रः मौलौ यस्य सः—चन्द्रमौलिः—बहुव्रीहि।

अन्वय—यावत् प्रालेयाद्रेः सुतायाः प्रणय-निवसतिः चन्द्रमौलिः, यावत्
जलदे तडित् इव विस्फुरन्ती मुरारेः मानसे लक्ष्मीः यावत् दव-दहन-समः अयं
स्वर्णाचलः यस्य स्फुलिंगः सूर्यः (अस्ति) तावत् नारायणेन रचितः कथानाम् अयं
संग्रहः प्रचरतु।

शब्दार्थ—प्रालेयाद्रेः सुतायाः = हिमा···
निवसतिः=प्रेमपूर्वक···

तडित् इव विस्फुरन्ती=बिजली के स्फुरण करती हुई । दव-दहन-सम:=दा
के समान अतिभासुर-चमकीला । स्वर्णाचल=सुमेरु पर्वत । स्फुलिंग:=अग्नि
चिनगारी । प्रचरतु=प्रचारित हो ।

व्याख्या—जब तक पार्वतीजी भगवान् शंकर के साथ प्रेमपूर्वक
करती रहें, मेघ में स्फुरित होती हुई-चमचमाती हुई-बिजली के समान ज
भगवान् विष्णु के मन मानस में भगवती लक्ष्मी वास करें । सूर्य जिसकी चि
के समान है, ऐसा दावानल के समान अतिभासुर-चमकीला पर्वत सुमेरु ज
विद्यमान है, तब तक पंडित नारायण द्वारा रचित यह कथासंग्रह (हितोपदेश
संसार में प्रचार होता रहे । तात्पर्य यह है कल्प के अन्त तक इसका पठन
होता रहे ।

इति बाल-हितोपदेशः समाप्तः ।

हितोपदेशे मित्रलाभस्य कथारम्भः

अभ्यासः

१—अनधिगत-शास्त्राणाम्, उन्मार्ग-गामिनाम्, उद्विग्नमनाः, प
समाम्, नीतिशास्त्रोपदेशेन—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समास ब

विग्रह और समास-नाम—अनधिगत-शास्त्राणाम्-न अधिगता
अनधिगतम् -अनधिगतानि शास्त्राणि यै. ते-अनधिगत-शास्त्रा.-तेषाम्-
गत-शास्त्राणाम्-बहुव्रीहि । उन्मार्ग-गामिनाम्-उन्मार्गे गन्तुं शीलं ये
उन्मार्ग-गामिनः-तेषाम् – उन्मार्ग-गामिनाम्-बहुव्रीहि । उद्विग्न-मनाः-
मनः यस्य सः-उद्विग्नमनाः-बहुव्रीहि । पण्डितसमाम्-पण्डितानां स
पण्डितसभा-ताम्-पण्डित-सभाम् – तत्पुरुष । नीति-शास्त्रोपदेशेन-नीति-
उपदेशः-इति नीति शास्त्रोपदेशः-तेन-तत्पुरुष ।

२—नरपति, मनस्, गुणिन्, सभा, विद्वस्, कांचन—इन शब्दों के
एकवचन और द्वितीया बहुवचन में रूप लिखो ।

प्रथमा एकवचन—नरपतिः । मनस्-मनः । गुणिन्-गुणी । सभा-
विद्वस्-विद्वान् । कांचन-कांचनम् ।

कुर्वन्ति। लोट्–करोतु–कुरुतात्, कुरुताम्, कुर्वन्तु । रुद्–लट्–रोदिति, रोदितः, रोदन्ति। लोट्–रोदितु, रोदिताम्, रोदन्तु। या–लट्–याति, यातः, यान्ति । लोट्–यातु, याताम्, यान्तु।

६—विष्णु शर्मा कौन था? उसने राजपुत्रों को किस प्रकार छः महीने में नीतिशास्त्र में निपुण कर दिया?

राजा सुदर्शन के पुत्र अपठित थे। वे राजकुमार सुमार्ग की ओर न जाकर कुमार्ग की ओर पैर बढ़ाने लगे। राजा बड़ा चिन्तित और उदास रहा करता था। एक दिन राजा ने पण्डितों की एक सभा–कान्फ्रेंस–बुलाई और विद्वानों के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि आप लोगों में जो कोई कुमार्गगामी मेरे पुत्रों को नीतिशास्त्र में चतुर बना देगा, उसका मैं बहुत कृतज्ञ हूँगा। उस सभा में एक विद्वान् राजा के प्रस्ताव को सुन कर बोला—मैं छः महीने में इन राजकुमारों को नीति-शास्त्र में निपुण कर सकता हूँ। उस महापंडित का नाम विष्णु शर्म्मा था। वह अखिल शास्त्रवेत्ता और नीतिशास्त्र में बृहस्पति के समान पटु था।

उसने उन राजकुमारों को कथाएँ सुना कर नीति शास्त्र का तत्व हृदयंगम करा दिया। मित्र अवश्य बनाने चाहिये, मित्रों की सहायता से मानव समस्त कठिनाइयों को पार कर सकता है। इसको प्रमाणित करने के लिए उसने राज-कुमारों को "मित्र-लाभ" की छोटी छोटी कहानियां सुनाईं, जो राजाओं को तथा सर्वसाधारण को अत्यधिक लाभकारी हैं।

दो अभिन्न मित्रों में किस प्रकार फूट उत्पन्न की जा सकती है और अपना कार्य सिद्ध किया जा सकता है—इसकी शिक्षा "सुहृद्भेद" में है।

"विग्रह" में राजकुमारों को युद्ध करने की तथा संधि में मेल करने की शिक्षा लघुकथाओं द्वारा देकर उन्हें छः मास में ही नीतिशास्त्र में निपुण कर दिया। महापंडित विष्णु शर्मा की विद्वत्ता का इससे बढ़कर अन्य क्या प्रमाण हो सकता है?

काक-कूर्म-मृग-मूषकाणां कथा

अभ्यासः

१—भू, दीप्, कथ्, रु, दृश्, भू, पठ—इन धातुओं के कर्मवाच्य में लट् प्रथम पुरुष एकवचन में रूप लिखो।

कंकण-लोभि-पथिकस्य कथा

अभ्यासः

१—कुशहस्तः, अनेक-गो-मानुषाणाम्, गलित-नख-दन्तः, ग
गगन विहारी, कार्य विरतिः, दूरस्थ राजः, धर्मार्थ-काम-मोक्षाणाम्-इ
पदों का विग्रह करो और समास बताओ।

कुश-हस्तः—कुशः हस्ते यस्य सः—कुश-हस्तः—बहुव्रीहि। अनेक-गो-
णाम्—न एक इति अनेकः—अनेकगावः मानुषाः च—इति अनेक-गो-मा
द्वन्द्व-तेषाम्। गलित-नख-दन्तः—गलिता नखाः दन्ताः च यस्य सः—बहु
राज-कुलम्—राज्ञः कुलम् इति—षष्ठी तत्पुरुष। गगन-विहारी—गगने विहर्
यस्य सः—बहुव्रीहि। कार्य-विरतिः—कार्ये विरतिः इति—सप्तमी तत्पुरुष। दू
राजः—दूरस्थानां राजा इति—षष्ठी तत्पुरुष। धर्मार्थ-काम-मोक्षाणाम्—धर्मः
अर्थः च कामः च मोक्षः च—द्वन्द्व-तेषाम्।

२—चर्, वन्, दश्, ब्रू, वद्, पठ्, पत्—इन धातुओं के शत्रन्त-प्र
प्रत्ययान्त-रूप बनाओ।

चर्—चरना—घूमना—शतृ—अत्—चरत्—घूमता हुआ। जन्—उत्पन्न होना—
जन् को जा आदेश हो जाता है, यह धातु आत्मनेपदी है, अतएव शानच्—मान—
प्रत्यय—जायमानः। दश्—शतृ—अत् प्रत्यय—दशत्। ब्रू— ब्रुवत्। वद्=वदत्।
पठ्—पठत्। पत्—पतत्।

३—दा, पठ्, ग्रह्, कृ, भू, गम्—इन धातुओं के विधि कृदन्त "तव्य"
लगा कर बताओ।

दा—से तव्य—दातव्यः, दातव्या, दातव्यम्। पठ् से तव्य—पठितव्यः, पठित
। ग्रह् से तव्य—ग्रहीतव्यः, ग्रहीतव्याः, ग्रहीतव्यम्। कृ से तव्य—कर्त
, कर्तव्यम्। भू से तव्य—भवितव्यः, भवितव्या, भवितव्यम्। गम्
·, गन्तव्या, गन्तव्यम्।

४—इन शब्दों के लिङ्ग बताओ—

कंकण, सन्देह, हस्त, दार, पुत्र, वयस्, धृति, शास्त्र।

कंकण—नपुंसकलिंग—कंकणम्। सन्देह—सन्देहः—पुल्लिंग। हस्त—हस्तः—
। दार—शब्द नित्य पुल्लिंग और बहुवचनान्त ही होता है—

पुत्रः-पुल्लिंग । तपस्-तपः-नपुंसकलिंग । धृति-धृतिः-स्त्रीलिंग । शास्त्र-शास्त्रम्-नपुंसकलिंग ।

५—गति, दया, साधु, सरस्, स्त्री, नृपति, पुंस्-इन शब्दों के द्वितीया बहुवचन तथा षष्ठी एकवचन में रूप लिखो ।

गति—द्वितीया बहुवचन—गतीः । गति-षष्ठी एकवचन-गत्याः-गतेः । दया-द्वितीया बहुवचन-दयाः । दया-षष्ठी एकवचन-दयायाः । साधु-द्वितीया बहुवचन-साधून् । साधु-षष्ठी एकवचन-साधोः । सरस्-द्वितीया बहुवचन-सरांसि सरस्-षष्ठी एकवचन-सरसः । स्त्री-द्वितीया बहुवचन-स्त्रीः । स्त्री-षष्ठी एकवचन-स्त्रियाः । नृपति-द्वितीया बहुवचन-नृपतीन् । नृपति-षष्ठी एकवचन-नृपतेः । पुंस-द्वितीया बहुवचन-पुंसः । पुंस-षष्ठी एकवचन-पुंसः ।

६—इन धातुओं के कर्मवाच्य लिखो—

दा, स्था, कृ, परीक्ष्, हन्, पठ् श्रु ।

दा-कर्मवाच्य-दीयते । स्था-स्थीयते । कृ-क्रियते । परीक्ष्-परीक्ष्यते । हन्-हन्यते । पठ्-पठ्यते । श्रु-श्रूयते ।

काक-रक्षित-मृगस्य कथा

अभ्यास

१—मृग-काकौ, हृष्ट-पुष्टांगः, बन्धु-हीनः अज्ञात-कुल-शीलस्य, मरीचि-मालिनि, चित्रांगः-इन समस्त पदों का विग्रह करो और समास बताओ ।

मृग-काकौ-मृगः च काकः च मृगकाकौ-द्वन्द्व । हृष्ट-पुष्टांगः-हृष्टानि पुष्टानि च अंगानि यस्य सः=बहुव्रीहि । बन्धुहीनः-बन्धुना वा बन्धुभिः हीन इति-तत्पुरुष । अज्ञात-कुल-शीलस्य-अज्ञातं कुलं शीलं च यस्य सः-बहुव्रीहि । मरीचि-मालिनि-मरीचीनां माला यस्मिन् सः-मरीचि माली-बहुव्रीहि-तस्मिन्-मरीचि-मालिनि । चित्रांगः-चित्राणि अंगानि यस्य सः-बहुव्रीहि ।

२—आ + रुह्; वि + हस्; उप + गम्; अभि + ज्ञा; निः + सृ-इनके ल्यप् के रूप लिखो ।

आ + रुह-ल्यप् (य) आरुह्य । वि + हस् = विहस्य । उप + गम् = उपगम्य । अभि + ज्ञा = अभिज्ञाय । निः + सृ = निःसृत्य ।

३—छिद्, क्षुद्, हन्, गम्, स्था, दा इन धातुओं के तुमुनन्त रूप बनाओ और वाक्यों में प्रयोग करो।

छिद्—तुम् = छेत्तुम्। क्षुद्—से तुम् = क्षोदुम्। हन् से—तुम् = हन्तुम्। गम्—से तुम् = गन्तुम्। स्था—से तुम्—स्थातुम्। दा—से तुम् = दातुम्।

वाक्य-प्रयोग—मूषकोऽवदत्—अहं जालं छेत्तुं समर्थः। क्षोदुम्—सज्जना एव दुर्जनानां कुवाक्यानि क्षोदुं समर्थाः। हन्तुम्—नृपः दूतं हन्तुम् उद्यतः। गन्तुम्—अपि त्वं कंटकाकीर्णे पथि गन्तुं शक्नोषि ! स्थातुम्—रणे वीरा एव स्थातुं समर्था भवन्ति। दातुम्—देशहिताय धनं दातुं तत्परो भव।

४—इन वाक्यों को कर्तृवाच्य में लिखो—

बध्यन्ते निपुणैरगाध-सलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि।

निपुणैः अगाध-सलिलात् समुद्रात् अपि मत्स्या बध्यन्ते। (कर्मवाच्य)

निपुणा अगाध-सलिलात् समुद्रात् अपि मत्स्यान् बध्नन्ति। (कर्तृवाच्य)

गुणत्वमापन्नैः तृणैः मत्तदन्तिनः बध्यन्ते। (कर्मवाच्य)

गुणत्वमापन्नानि तृणानि मत्तदन्तिनः बध्नन्ति। (कर्तृवाच्य)

राहुणा विधि-योगात् अमी विधुः अपि ग्रस्यते। (कर्मवाच्य)

राहुः विधियोगात् अमुं विधुम् अपि ग्रसति। (कर्तृवाच्य)

५—इन धातुओं के क्तान्त (त प्रत्ययान्त) रूप लिखो—

ब्रू, गम्, युज्, हन्, स्था, या, पत्।

ब्रू—से—उक्तः, उक्ता, उक्तम्। गम्—से—त—गतः, गता, गतम्। युज्—से—त—युक्तः, युक्ता, युक्तम्। हन्—से—त—हतः, हता, हतम्। स्था—से—त—स्थितः, स्थिता, स्थितम्। या—से—त—यातः, याता, यातम्। पत्—से—त—पतितः, पतिता, पतितम्।

६—छिद्, कृ, गम्, दा, दृश्—इन धातुओं के लृट्—भविष्यत्काल, प्रथम पुरुष—अन्य पुरुष—एकवचन लिखो।

छिद्—लट्, एकवचन—छेत्स्यति=काट देगा। कृ—लट्—एकवचन—करिष्यति=। गम्—लट्—एकवचन—गमिष्यति=जायगा। दा—लट्—एकवचन—दास्यति=। दृश्—लट्—एकवचन—द्रक्ष्यति=देखेगा।

जरद्गव-गृध्रस्य कथा

अभ्यासः

१. शनकैः + भयार्त्तैः, ततः + तम्, तत् + श्रुत्वा, हत + अस्मि, चेत् + हन्तव्यः, खभः + ब्रूते, अरी + अपि, पूज्यः + एव—इन शब्दों में सन्धि करो और नियम बताओ।

शनकैः + भयार्त्तैः—यदि विसर्ग के पहले अ या आ के अतिरिक्त कोई अन्य स्वर हो तो विसर्ग को रेफ (र्) हो जाता है—विसर्ग सन्धि। ततः + तम्—यदि च, छ, ट, ठ, त, थ विसर्ग के आगे आते हैं तो विसर्ग को स् हो जाता है—ततस्तम्। तत् + श्रुत्वा—स या त से पहले या पीछे श या चवर्ग हो तो क्रमशः त् को च् हो जाता है—तच् + श्रुत्वा—श को छ—तच्छ्रुत्वा—व्यंजन-संधि। हतः + अस्मि—यदि विसर्ग के पूर्व अ हो तो विसर्ग को उ हो जाता है—हत + उ + अस्मि—अ + उ = ओ—गुण-संधि, हतो + अस्मि—यदि शब्द के अन्त में ए या ओ हों और बाद में ह्रस्व अ हो तो उसका पूर्व-रूप हो जाता है और उसके स्थान पर ऽ ऐसा चिन्ह बना दिया जाता है—हतोऽस्मि। चेत् + हन्तव्यः—त् को द् और ह को ध—व्यंजन-संधि—चेद्धन्तव्यः। खभः + ब्रूते—विसर्ग को उ, अ + उ = ओ—विसर्ग और व्यंजन-संधि। अरी + अपि—यदि ए, ऐ, ओ या औ के बाद स्वर हों तो ए को अय्, ऐ को आय्, ओ को अव् और औ को आव्—हो जाता है—अरी + अपि = अरावपि—अयादि-संधि। पूज्यः + एव—विसर्ग का लोप—विसर्ग-संधि।

२. इन धातुओं के कर्मवाच्य में (प्रथम पुरुष एकवचन) रूप लिखो—दा, हन्, पूज्, भू, जि, जीव्, छिद्, स्था।

दा—कर्मवाच्य प्रथम पुरुष—दीयते। हन्—कर्मवाच्य, प्रथम पुरुष—हन्यते। पूज्—कर्मवाच्य, प्रथम पुरुष—पूज्यते। भू—कर्मवाच्य, प्रथम पुरुष—भूयते। जि—कर्मवाच्य, प्रथम पुरुष—जीयते। जीव्—कर्मवाच्य, प्रथम पुरुष—जीव्यते। छिद्—कर्मवाच्य, प्रथम पुरुष—छिद्यते। स्था—कर्मवाच्य, प्रथम पुरुष—स्थीयते।

३. भी, प्र + आप्, पत्, हन्, कृ, मृ—इनके तव्य अन्त विधि कृदन्त लिखो।

ब्रह्मचारी–ब्रह्मचारिणी–स्त्रीलिंग । नरः–नारी–स्त्रीलिंग । काकः–काकी–स्त्रीलिंग । पतिः–पत्नी–स्त्रीलिंग । साधुः–साध्वी–स्त्रीलिंग । शृगालः–शृगाली–स्त्रीलिंग ।

चूडाकर्ण-हिरण्यकयोः कथा

अभ्यासः

१. नीचे लिखी धातुओं के क्त (त) क्त्वा (त्वा) प्रत्ययान्त प्रयोग लिखो—

मद्, ताड्, खन्, ग्रह्, मृ, गम्, त्यज्, स्था ।

मद्—अशुद्ध छपा है। ताड्–त–प्रत्यय–ताडितः, ताडिता, ताडितम् । ताड्–त्वा प्रत्यय–ताडयित्वा । खन्–त प्रत्यय–खातः, खाता, खातम् । खन्–त्वा प्रत्यय–खनित्वा । ग्रह्–त प्रत्यय–गृहीतः, गृहीता, गृहीतम् । ग्रह्–त्वा–प्रत्यय–गृहीत्वा । मृ–मरना–त प्रत्यय–मृतः, मृता, मृतम् । मृ–त्वा प्रत्यय–मृत्वा । गम्–जाना–त प्रत्यय–गतः, गता, गतम् । गम्–त्वा प्रत्यय–गत्वा । त्यज्–त्यागना–त प्रत्यय–त्यक्तः त्यक्ता, त्यक्तम् । त्यज्–त्वा प्रत्यय–त्यक्त्वा । स्था–त प्रत्यय–स्थित, स्थिता, स्थितम् । स्था–त्वा प्रत्यय–स्थित्वा ।

२. सखि, बलवत्, सरित्, मति, मनस्विन्, मूर्धन्, तृषा, धावत्—इन शब्दों के द्वितीया और षष्ठी में रूप लिखो।

सखि – मित्र – द्वितीया – सखायम्, सखायौ, सखीन् । सखि–षष्ठी–सख्युः, सख्योः, सखीनाम् । बलवत्–बलवान्–द्वितीया–बलवन्तम्, बलवन्तौ, बलवन्तः । बलवत्–षष्ठी–बलवतः, बलवतोः, बलवताम् । सरित्–नदी–द्वितीया–सरितम्, सरितौ, सरितः । सरित्–षष्ठी–सरितः, सरितोः, सरिताम् । मति–बुद्धि–द्वितीया–मतिम्, मती, मतीः । मति–षष्ठी–मत्याः–मतेः, मत्योः मतीनाम् । मनस्विन्–विचारशील–द्वितीया–मनस्विनम्, मनस्विनौ, मनस्विनः । मनस्विन्–षष्ठी–मनस्विनः, मनस्विनोः, मनस्विनाम् । मूर्धन्–सिर–द्वितीया–मूर्धानम्, मूर्धानौ, मूर्ध्नः । मूर्धन्–षष्ठी–मूर्ध्नः, मूर्ध्नोः, मूर्ध्नाम् । तृषा–प्यास–द्वितीया–तृषाम्, तृषे, तृषाः । तृषा–षष्ठी–तृषायाः, तृषयोः, तृषाणाम् । धावत् = दौड़ता हुआ–द्वितीया–धावन्तः, धावन्तौ, धावन्तः । धावत्–षष्ठी–धावतः, धावतोः, धावताम् ।

३. कथाप्रसंगावस्थितः, कथा विरतिः, चिरसंचितम्, सलोत्साह दर्दुरः,

(ख) यदि ऋ, र् या ष् के मध्य में कवर्ग, पवर्गः आङ्, नुम् (अनुस्वार) और अट् प्रत्याहार का कोई अक्षर आ जाय तो भी न को ण हो जाता है। जैसे–रामायणम्, कृपणम्, बृंहणम् आदि।

६—द्वि, त्रि, चतुर्–इनके तीनों लिंगों में रूप लिखो—

द्वि–दो–शब्द सदा द्विवचनान्त ही होता है। पुल्लिंग–द्वौ, द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः। सम्बोधन नहीं होता है। द्वि शब्द, स्त्रीलिंग–द्वे द्वे, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः। द्वि नपुंसकलिंग के रूप स्त्रीलिंग के समान ही होते हैं। त्रि–तीन–शब्द, सदा बहुवचनान्त ही होता। पुल्लिंग–त्रयः, त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः, त्रिभ्यः, त्रयाणाम्, त्रिषु। त्रि शब्द स्त्रीलिंग–तिस्रः, तिस्रः, तिसृभिः, तिसृभ्यः, तिसृभ्यः, तिसृणाम्, तिसृषु। त्रि शब्द–नपुंसकलिंग–त्रीणि, त्रीणि, शेष पुल्लिंग के समान होते हैं। चतुर्–चार संख्यावाचक शब्द सदा बहुवचनान्त होता है। रूप–चत्वारः, चतुरः, चतुर्भिः, चतुर्भ्यः, चतुर्भ्यः, चतुर्णाम्, चतुर्षु। चतुर्–चार स्त्रीलिंग–चतस्रः, चतस्रः, चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृभ्यः, चतसृणाम्, चतसृषु। चतुर्–चार–नपुंसकलिंग, चत्वारि, चत्वारि–शेष रूप पुल्लिंग के समान होते हैं।

संचय-शील-शृगालस्य कथा

अभ्यासः (१)

१—आदाय, निधाय, आहतः, अधीत्य, आगत्य, उपविष्टः, आलोच्य, विहस्य–ये व्याकरण में क्या हैं? इनके धातु और प्रत्यय लिखो।

आदाय—आ उपसर्ग दा धातु, त्वा प्रत्यय किन्तु आ उपसर्ग पहले होने से त्वा को (ल्यप्) य हो जाता है–आदाय–पूर्वकालिक कृदन्त है। निधाय–नि उपसर्ग, धा–धातु से त्वा प्रत्यय, किन्तु नि उपसर्ग पहले होने से त्वा को (ल्यप्) य हो जाता है। निधाय–पूर्वकालिक कृदन्त। आहतः–आ उपसर्ग, हन्–मारना–क्रिया, (क्त) त प्रत्यय–आहतः (कर्मणि भूतकालिक कृदन्त) है। अधीत्य–अधि उपसर्ग इ–अध्ययन करना–धातु से त्वा प्रत्यय किन्तु अधि उपसर्ग पहले होने से त्वा को (ल्यप्) य हो गया है। अधीत्य–पूर्वकालिक कृदन्त है। आगत्य–आ उपसर्ग गम् धातु, त्वा प्रत्यय किन्तु आ उपसर्ग पहले होने से त्वा को य हो गया है। आगत्य–

(ख) उपर्युक्त कथा से क्या शिक्षा मिलती है?
नित्यं संचयः कर्त्तव्यः परन्तु अति-संचयः न कर्त्तव्यः। संचय करना चाहिये, किन्तु अतिसंचय नहीं करना चाहिए। अतिसंचय करने वाला दीर्घराव शृगाल भोजन प्राप्त होने पर भी मर गया।

५—धन सुखकारी क्यों नहीं? इस विषय में नीति क्या कहती है?
धन सुखकारी इसलिए नहीं है—

जनयन्त्यर्जने दुःखं तापयंति विपत्तिषु ।
मोहयंति च सम्पत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः ॥
धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते ।
लब्धनाशो यथा मृत्युस्तस्मादेतन्न चिन्तयेत् ॥
राजतः सलिलात् अग्नेः चौरतः स्वजनात् अपि ।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव ।

धनी लोलुपो भवति, तदुदाहरणं भाषायाम्—

एक हुआ तब दो की इच्छा, चार हुए फिर हुए हजार ।
लाखों पर तब नौबत पहुँची, और हो गया जागीरदार ॥
ठाठ बाट सब बना निराला, सब कहते हैं उसको आला ।
झुककर नर कहते हैं नमस्ते, आज बने वे स्वर्ग फरिश्ते ॥
फिर भी वह निज पद भरता है, औरों की मम्मत् हरता है ।
इच्छा उसकी बढ़ती जाती, ज्यों ज्यों वह पूरी करता है ॥

६—इन धातुओं के लृट् और लङ् के प्रथम पुरुष में रूप लिखो—
गम्, दृश्, मृ, मुच्, चिन्त्, छिद्, या, स्पृश्, लभ्, पा ।
गम्-लृट्-भविष्यत्काल, प्रथम पुरुष-अन्य पुरुष-गमिष्यति, गमिष्यतः, गमिष्यन्ति। गम्-लङ् अनद्यतन भूतकाल-अगच्छत्, अगच्छताम्, अगच्छन्। दृश्-लृट्-द्रक्ष्यति, द्रक्ष्यतः, द्रक्ष्यन्ति। दृश्-लङ्- अपश्यत्, अपश्यताम्, अपश्यन्। मृ-लृट्-मरिष्यति, मरिष्यतः, मरिष्यन्ति। मृ-लङ्-अम्रियत, अम्रियेताम्, अम्रियन्त। मुच्-लृट्-मोक्ष्यति, मोक्ष्यतः, मोक्ष्यन्ति। मुच्-लङ्- अमुञ्चत्, अमुञ्चताम्, अमुञ्चन्। चिन्त्-लृट् – चिन्तयिष्यति, चिन्तयिष्यतः, [illegible]—अचिन्तयत्, अचिन्तयताम्, अचिन्तयन्। छिद् [illegible] छेत्स्यन्ति। छिद्-लङ्, अच्छिनत्, अच्छिन्ताम्, अच्छि-

के योग में चतुर्थी विभक्ति आती है । जैसे—बालकृष्णाय नवनीतं रोचते—बालकृष्ण को मक्खन अच्छा लगता है । रामाय स्वदते मिष्टान्नम्—राम को मिठाई भाती है ।

(ग) धृ (To owe) धातु के योग में भी उत्तमर्ण (Creditor) ऋण देने वाले के योग में भी चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है जैसे—त्वं मह्यं शतं धारयसि । तुम पर मेरे सौ रुपये हैं ।

(घ) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् आदि के योग में भी चतुर्थी होती है । जैसे गुरवे नमः । स्वस्ति प्रजाभ्यः । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा । शूरः संग्रामाय अलम् आदि ।

४—लघुपतनक और हिरण्यक ने मन्थर नामक कछुए और मृग को व्याध के पंजे से किस प्रकार छुड़ाया ।

लघुपतनक, हिरण्यक (चूहा), मन्थर और चित्रांग चारों में प्रगाढ़ मैत्री थी । एक दिन स्थल पर चलते हुए मन्थर (कछुए) को व्याध ने पकड़ लिया और वह उसे धनुष में बाँध चल दिया । अपने मित्र को विपत्ति में देखकर हिरण्यक ने जो उपाय बताया, उससे मन्थर को मुक्ति मिली ।

चित्रांग (हरिण) जलाशय के समीप मुर्दे के समान लेट गया । कौआ उसे कुरेदने लगा । व्याध ने देखा कि समीप ही मृत हरिण पड़ा है । वह उसे लेने उसकी ओर चला । इतने में ही हिरण्यक ने मन्थर के बंधन काट दिये और वह जलाशय में प्रविष्ट हो गया । चित्रांग हरिण व्याध को समीप आता देख उठ कर भाग गया । इस प्रकार लघुपतनक (काक) और हिरण्यक ने उन्हें बचाया ।

५—इन धातुओं के णिजन्त तथा कर्मवाच्य रूप बनाओ—

गम्, दा, हन्, मद्, कृ, स्पृश्, तप्, श्रु ।

गम्–णिजन्त–गमयति । गम्–कर्मवाच्य–गम्यते । दा–णिजन्त–दापयति । दा–कर्मवाच्य–दीयते । हन्–णिजन्त–घातयति । हन्–कर्मवाच्य–हन्यते । मद्–णिजन्त–मदयति । कर्मवाच्य–मद्यते । कृ–णिजन्त–कारयति । कृ–कर्मवाच्य–क्रियते । स्पृश्–णिजन्त–स्पर्शयति । स्पृश्–कर्मवाच्य–स्पृश्यते । तप्–कर्मवाच्य–तप्यते । श्रु–णिजन्त–श्रावयति । श्रु–कर्मवाच्य–श्रूयते ।

अचिरेण—छात्रः अचिरेण काशीतः आगमिष्यति । अधः—नीचे-इधर अधः कः उपविशति ? क्षिप्रम्—शीघ्र-एतत् कार्यं क्षिप्रम् कुरु । चिराय—रामः चिराय यतते । रहस्यम्—एतत् रहस्यम् हि कः ज्ञातुं समर्थः ? प्रतिक्षणम्—प्रतिक्षणम् आयुः क्षीयते । अलम्—राम. रावण वधाय अलम् ।

अभ्यासः (२)

१—संजीवक और पिंगलक की कथा संक्षेप से लिखो और बताओ कि इस कथा से क्या शिक्षा मिलती है ?

वर्धमान नामक वैश्य अपने बैल को लंगड़ा देख जंगल में छोड़ कर चल दिया। "ईश्वर जिसका रक्षक कोई नहीं उसका भक्षक" इस कहावत का प्रत्यक्ष उदाहरण संजीवक जंगल में हृष्ट पुष्ट हो जोर-जोर से रम्भाने लगा।' जल पानाभिलाषी पिंगलक शेर उसके रम्भाने का शब्द सुनकर यमुना ही खाड़ी में अपने दल-सहित रुक गया और जल पीने नहीं गया। इस रहस्य को दमनक भांप गया। स्वामी द्वारा तिरस्कृत होने वाले दमनक ने स्वार्थ-साधन के लिए पिंगलक के जल न पीने और लौटने का कारण पिंगलक से पूछा। पिंगलक ने अपरिचित शब्द ही कारण बताया।

दमनक स्वामी से पुरस्कार प्राप्त कर संजीवक के पास गया। अपने स्वामी का गौरव उसके सम्मुख वर्णन कर दोनों को मैत्री के सूत्र में बाँध दिया। वे दोनों सच्चे मित्र बनकर आनन्दपूर्वक रहने लगे।

इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि शब्द मात्र से ही नहीं डरना चाहिए, विषम स्वभाव के मित्रों की मित्रता स्थायी नहीं होती है तथा मनुष्य को कानों का कच्चा नहीं होना चाहिए।

२—करटक और दमनक ने संजीवक और पिंगलक में किस प्रकार भेद उत्पन्न कर दिया ?

एक दिन पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण वहां आया। उसके भोजन के लिए पिंगलक शिकार करने चला। तब ही संजीवक ने पूछा—कल जो पशु मारे थे उनका मांस कहां है ? पिंगलक ने कहा—दमनक करटक जानते हैं। संजीवक कहता है—इतना अधिक मांस वे (दोनों) कैसे खा गये ? पिंगलक कहता है—

खाया, लुटाया और शेष फेंक दिया। यह सुन संजीवक कहता है कि स्वामी की आज्ञा के बिना कुछ भी करना सेवक को उचित नहीं।

तत्पश्चात् स्तब्धकर्ण की सम्मति से संजीवक को धन का अधिकारी बना दिया गया। खजांची—अर्थाधिकारी—का पद प्राप्त करने के बाद संजीवक ने सेवकों को भोजन देने में भी शिथिलता दिखाई। दमनक और करटक को इच्छानुसार खाने के अवसर से हाथ धोना पड़ा।

दमनक पिंगलक के समीप गया और अति विनीत होकर बैठ गया। पिंगलक ने उससे आने का कारण पूछा। दमनक ने पिंगलक के कान भरकर संजीवक की ओर से उसका मन फेर दिया कि संजीवक तो आपका राज्य हड़पना चाहता है। पिंगलक को संजीवक के मारने को तत्पर कर चलने से पूर्व उसने स्वामी को यह भी कहा कि जब संजीवक अपने सींग उठाकर आपके सम्मुख आये, तब आप समझ लें कि वह आप के प्रति द्रोह-बुद्धि रखता है। दमनक स्वामी को संजीवक के विरुद्ध कर उसके पास पहुँचा और धीरे धीरे चल कर, स्वयं को चकित सा दिखा कर एक लंबी साँस लेकर बैठ गया। संजीवक के पूछने पर बोला कि अतिगुप्त रहस्य को तुम्हारे सम्मुख कहता हूँ, अन्य किसी को यदि इसका पता चल गया तो दोनों के प्राणों पर आ बनेगी। इस प्रकार धूर्त दमनक ने विश्वास उत्पन्न कर यह कहा कि स्वामी ने कहा है कि संजीवक को मार कर अपने परिवार को तृप्त करूँगा।

संजीवक यह सुनकर अति दुःखी हुआ और सोचने लगा कि इस कष्ट से किस प्रकार छुटकारा मिल सकता है? आखिरकार संजीवक ने पिंगलक के साथ युद्ध कर मर जाने का निश्चय किया। दमनक ने संजीवक को बता दिया कि जब वह मुख फाड़, पूँछ ऊँची कर तुम्हें देखे तब तुम अपना पराक्रम दिखाना।

इस प्रकार धूर्त दमनक ने दोनों मित्रों में भेद उत्पन्न करा दिया और अपना उल्लू सीधा किया।

३—सेवाधर्म कहाँ तक कठिन कार्य समझा गया है? इस संबंध में नीति कहती है? सरल संस्कृत में उत्तर दो।

सेवकः स्वामिनमनुसरन् यदि मौनं धारयति तदा मूर्खः कथ्यते। वाचालो भवति तदा जल्पक इति कथ्यते। यदि सेवकः क्षाम्यति तदा भीरुः, यदि न

चाम्यति तदा अकुलीनः इत्यनुमीयते। सेवकः यदि स्वामिनः पार्श्वे वसति तदा धृष्टः, यदि दूरतः वसति तदा अप्रगल्भः कथ्यते। एष निष्कर्षः यत् सेवकः कथमपि प्रशंसां न लभते। अतएव सत्यमिदमुक्तम्–यत् सेवाधर्मः परम-गहनो योगिनामप्यगम्यः।

४—नीचे लिखी धातुओं के लृट् प्रथम पुरुष एकवचन में रूप लिखो—

शा, ब्रू, सेव्, या, अस्, (अदादिगण) कृ, हन्, दा।

शा-लृट्-प्रथम पुरुष-शास्यति। ब्रू–लृट्–वक्ष्यति। सेव्–लृट्–सेविष्यते। अस्–लृट्–भविष्यति। कृ–लृट्–करिष्यति। हन्–लृट्–हनिष्यति। दा–लृट्–दास्यति। या–लृट्–यास्यति।

५—समुन्नत लांगूलः, उन्नत-चरणः, विवृतास्यः, प्रोत्सारितार्धासनः, दुर्जन-चित्तवृत्तिहरणे, उत्तमाधमयोः—इन समस्त पदों में विग्रह करो और समास भी बताओ।

समुन्नत-लांगूलः-समुन्नत लांगूलं येन सः बहुव्रीहि। उन्नत-चरणः–उन्नतौ चरणौ यस्य स.–बहुव्रीहि। विवृतम् आस्यं यस्य स –बहुव्रीहि। प्रोत्सारितार्धासनः–प्रोत्सारितम् अर्धम् आसनं येन सः– बहुव्रीहि। दुर्जन–चित्त–वृत्ति–हरणे–दुर्जनस्य चित्तम्–इति दुर्जन–चित्तम्, दुर्जन–चित्तस्य वृत्तेः हरणम्–इति दुर्जन–चित्त–वृत्ति – हरणम् – तत्पुरुष–तस्मिन्। उत्तमाधमयो.–उत्तमश्च अधमश्च इति उत्तमाधमौ- द्वन्द्व -तयोः।

कर्पूर-पटकरजकस्य कथा

अभ्यासः

१—नीचे लिखे शब्दों में संधि विच्छेद करो—

बद्धस्तिष्ठति- बद्धः+तिष्ठति। कुक्कुरो न ते–कुक्कुरः+न ते। पापीयांस्त्वम्–पापीयान्+त्वम्। यद्विपत्तौ–यद्+विपत्तौ। इत्युक्त्वा–इति+उक्त्वा।

२—अधोलिखित समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम लिखो—

अहर्निशम्–अहश्च निशा च इति–द्वन्द्व। आहारदाने–तत्पुरुष। कुभृत्यः–कुत्सितः भृत्यः) इति–कर्मधारय। ..... निद्राभंगः–निद्रायाः भंगः–तत्पुरुष। दुष्टमतिः –दुष्टा मतिः यस्य सः – अथवा–दुष्टा चासौ मतिः इति–कर्मधारय।

केसराग्रं लुनाति । ततः स सिंहः दधिकर्णनामानं बिडालं स्वकन्दरे आनयत् मांसाहारं दत्वा तं सम्यक् पर्यतोषयत् । तद्भया संत्रस्तः मूषकः एकदा बहि अभ्रमत् । दधिकर्णः तं व्यापादयत् । यदा बहुकालं सिंहः मूषकस्य शब्दं नाशृणोत तदा बिडालाय भोजनमपि नायच्छत् । अनाहारेण दधिकर्णः मृतः ।

वानर—घण्टा—कथा

अभ्यासः

१—इन शब्दों में संधि करो:–

इति+उक्त्वा–इत्युक्त्वा । अवसरः+अयम्=अवसरोऽयम् । तदा+अहम्+एनम्–तदाहमेनम् । फलानि+आकीर्णानि–फलान्याकीर्णानि । कः+चित्+चौरः–कश्चिच्चौरः ।

२—नीचे लिखे समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ–

जन-प्रवादः–जनानां प्रवाद इति–तत्पुरुष । अनुक्षणम्–क्षण क्षणम् इति अनुक्षणम्–अव्ययीभाव ।

फलासक्ताः–फलेषु आसक्ता इति–तत्पुरुष । तत्पाणिपतिता–तस्य पाणिः इति तत्पाणिः, तत्पाणेः, पतिता इति–तत्पुरुष । अनवसरः– न अवसर इति–नञ्–निषेधवाचक तत्पुरुष ।

३—पलायमानः–परा उपसर्ग अय्–धातु–शानच् (आन) प्रत्यय । प्रविश्य–प्र उपसर्ग, विश्–धातु (ल्यप्) य प्रत्यय । प्राप्ता–प्र उपसर्ग, आप्–धातु, त प्रत्यय । स्थापितः–स्था धातु, त प्रत्यय । आदाय–आ उपसर्ग, दा–धातु, ल्यप् (य) प्रत्यय । पूरया–पूर्–धातु, यत् प्रत्यय ।

४—ब्रह्मपुर नगर से लोगों के भाग जाने का क्या कारण था ?

कराला लोगों की दृष्टि में क्योंकर पूज्य हुई ?

कोई चोर घंटा चुराकर श्रीपर्वत की चोटी पर भागा । व्याघ्र ने उसे मार डाला । उसके हाथ से घंटा गिर गया । वह वानरों के हाथ लगा । वानर उसे बजाते थे । ब्रह्मपुर की जनता का यह ख्याल था कि पर्वत के शिखर पर घंटाकर्ण राक्षस रहता है ।

चोर की हड्डियों के ढेर को देख कर जनता का यह विश्वास दृढ़ हो गया

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
पश्य सिंहः मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥

अनया कथया एषैव शिक्षा प्राप्यते—यत् बुद्धिमान् निर्बलोऽपि बलवान् भवति, न तु शरीरेण बलवान् ।

टिट्टिभ-समुद्रयोः कथा

अभ्यासः

१—संधि करो:—

टिट्टिभः + अवदत् = टिट्टिभोऽवदत् । ननु + इदम् = नन्विदम् । तानि + अण्डानि = तान्यण्डानि । अतः + अहम् = अतोऽहम् । तत् + शक्तेः = तच्छक्तेः ।

२—नीचे लिखे समासों का विग्रह करो और उनके नाम बताओ—

आसन्नप्रसवा, प्रमदा-जन-विश्वासः, अनुचितकार्यारम्भः, स्वजनविरोधः, बुद्धि-स्थिति-प्रणय-हेतुः, शोकार्ता । आसन्नप्रसवा:—आसन्नः प्रसवो यस्याः सा—बहुव्रीहि । प्रमदा जन विश्वासः—प्रमदा जनेषु विश्वास इति—तत्पुरुष । अनुचित कार्यारम्भः—न उचितम् इति अनुचितम्—नञ्—निषेधवाचक—तत्पुरुष, अनुचितं च तत् कार्यम् इति अनुचितकार्यम्—कर्मधारय, अनुचितकार्यस्य आरम्भः इति—तत्पुरुष । स्वजनविरोधः—स्वजनेषु विरोध इति—तत्पुरुष । बुद्धि-स्थिति-प्रणय-हेतुः—बुद्धिः च स्थितिः च प्रणयश्च इति बुद्धि-स्थिति-प्रणयाः—द्वन्द्व, बुद्धि-स्थिति-प्रणयानां हेतुः इति—तत्पुरुष । शोकार्ता—शोकेन आर्ता इति—तत्पुरुष ।

३—अवदत्, रोदिति, पृच्छति, करवाणि, निवसामः—इन क्रियाओं के लकार, पुरुष और वचन बताओ ।

अवदत्—वद्—धातु, अनद्यतन भूतकाल—लङ्, अन्य पुरुष, एकवचन । रोदिति—रुद्—धातु, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन । पृच्छति—प्रच्छ्—धातु, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन । करवाणि—कृ—धातु, [illegible] पुरुष, एकवचन । निवसामः—[illegible], वस्—धातु, वर्तमान काल, [illegible] वचन ।

४—अनन्तरम्, [illegible], पुनः—इनके अर्थ लिखो और वाक्यों में प्रयोग

२—पक्षिराजः, दशाननः, यथाशक्ति, पृथिवीपतिः, शत
योगः—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बत

पक्षिराजः—पक्षिणां राजा इति पक्षिराजः—तत्पुरुष । दशा
नानि यस्य सः बहुव्रीहि । यथाशक्ति—शक्तिम् (अनतिक्रम्य) यथ
भाव । पृथिवीपतिः—पृथिव्याः पतिरिति पृथिवीपतिः—तत्पुरुष ।
शत—सहस्राणि—शतानि च सहस्राणि च—इति द्वन्द्व ।
युद्धोद्योगः—युद्धाय उद्योग इति युद्धोद्योगः—तत्पुरुष ।

३—राजोवाच, सन्त्येव, स्वभाव एव, मनेव, आदावेव, दूरादे
ध्यानाहूय—इनमें संधि–विच्छेद करो ।

राजोवाच—राजा + उवाच । सन्त्येव—सन्ति + एव । स्वभावः
आदौ + एव । दूरात् + एव । सर्वान् + शिष्यान् + आहूय ।

४—निम्न क्रियापदों में धातु लकार, पुरुष तथा वचन बताओ ।

ददातु—दा—देना—धातु. आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष एकवचन ।
यायात्—या—जाना—धातु विधि या आशीः लिङ्, अन्य पुरुष, एकवच
दूषयेत्—दूष्—धातु, विधिलिङ्, अन्य पुरुष एकवचन ।
आसीत्—अस्—होना—धातु. अनद्यतन भूतकाल (लङ्) अन्य
एकवचन ।

करिष्यति—कृ—करना—धातु,भविष्य काल (लृट्) अन्य पुरुष, एकवचन ।
घ्नन्ति—हन्—जान से मारना—धातु,वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन ।
मज्जति—मस्ज् धातु, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन ।

अभ्यास (८)

१—सत्वरम्, दुःसहम्, वृथा, अचिरेण, सर्वतः—इनके अर्थ लिखो और वाक्यों
में प्रयोग करो ।

सत्वरम्—शीघ्र—सत्वरम् अगागच्छ । दुःसहम्—कठोर—मरन मातुः दुःसहं बच
भुत्वा राजा दशरथोऽम्रियत । वृथा—व्यर्थ—वृथैव तर्कः क्रियते । अचिरेण—शीघ्र
अचिरेण तव मनोरथाः पूर्णाः भवन्तु ।

२—जीतने की इच्छा वाले राजा को शत्रु पर किस प्रकार आक्रम चाहिये ?

जीतने की इच्छा वाले राजा को शत्रु पर इस प्रकार आक्रमण कर कि नदी, पर्वत, वन आदि जिन स्थानों में किसी प्रकार का भय हो तो को सेना की व्यूह रचना करके भेजना चाहिए। वीर सैनिकों सहित आगे तथा मध्य भाग में स्वामी, धन और निर्बल सेना रहनी चाहिए और घोड़े, घोड़ों की बगल में रथ, रथ की बगल में हाथी रहने चाहि तीव स्थानों को हाथियों और घोड़ों की सेना द्वारा पार करना चाहि जलीय स्थानों को नौका द्वारा। मार्ग में जो शत्रु राज्य मिलें, उन्हें वश हुए मार्गदर्शकों को आगे भेजना चाहिए। विजय की अभिलाषा र को चाहिये कि शत्रु की सेना को अपग बना दे। शत्रु के दायाद–हि फोड़ कर अपनी ओर मिला लेना चाहिए तथा शत्रु के युवराज या प्र से गुप्त संधि करके शत्रु को जीत लेना चाहिए।

३—विग्रह किन-किन अवस्थाओं में करना चाहिए और इसका क्या

विग्रह उस समय करना चाहिए जब कि मंत्री, मित्र, सगे–सम्बन्ध अनुकूल हों और शत्रु के मंत्री, मित्र तथा सगे सम्बन्धी उसके प्रति भूमि, मित्र और सुवर्ण-लाभ–धन प्राप्ति–ये तीन विग्रह के फल हैं। ज प्राप्ति निश्चय हो, तभी युद्ध छेड़ना चाहिए अन्यथा नहीं।

४—इन वाक्यों में रिक्त स्थानों को पूर्ण करो—

मद्बलंलावद् विलोकयतु स्वामी।
सतो राजा बाददन्न स्वों मदृतिन् आपदमो।
गृहचारस्य यो भलो स्थले च चरति।
किन्तु देव ! स्वभाव एव एव मूर्खाणाम्।

से उसे मार डाला । वाग्दोषेण गर्दभो हतः—बोलने के कारण गधा मारा गया ।

३— तस्य चर्मणा, चैत्रे क्षेत्रवत्यः, शब्दात्, लीलया—इनके शब्द, लिंग, विभक्ति और वचन लिखो ।

तस्य—तत्-शब्द, पुल्लिंग अथवा नपुंसकलिंग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन । चर्मणा—चर्मन्-शब्द, नपुंसकलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन । क्षेत्रे—क्षेत्र शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन । क्षेत्रपतयः—क्षेत्रपति-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन । शब्दात्—शब्द—पुल्लिंग पंचमी विभक्ति, एकवचन । लीलया—लीला—शब्द, स्त्रीलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन ।

४—सुचिरम्, दूरात्, त्वरम्, एकदा, उच्चैः—इनके अर्थ लिखो और वाक्यों में प्रयोग करो ।

सुचिरम्—बहुत समय—त्वं सुचिरं प्रतीक्षितोऽसि । दूरात्—दूर से—दूरात् आगताः अतिथयः इन्द्रप्रस्थे महात्मनः समाधौ पुष्पाञ्जलीः समर्पयन्ति । त्वरम्—शीघ्र—त्वरमागच्छ । एकदा—एक बार—एकदा महात्मा गांधिः अस्मिन्नगरे समागतः । उच्चैः—ऊँचे स्वर से—उच्चैः सम्भाषणं नो कुरु ।

शशक—गज—यूथ कथा

अभ्यासः

१—वृष्टेरभावात्, अस्त्यत्र, यूथपतिराह, भवदन्तिकम्, सदैव, उद्यतेष्वपि, जिघ्रन्नपि—इन शब्दों में संधि-विच्छेद करो ।

वृष्टेः+अभावात् । अस्ति+अत्र । यूथपतिः+आह । भवत्+अन्तिकम् । सदा+एव । उद्यतेषु+अपि । जिघ्रन्+अपि ।

२—कुर्मः, हन्ति, ब्रूते, गच्छ, विधास्यते, ब्रूमः—इन क्रियापदों में धातु, लकार, पुरुष तथा वचन लिखो ।

कुर्मः—कृ—धातु, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, बहुवचन । हन्ति—हन्—धातु, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन । ब्रूते—ब्रू—धातु, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, एकवचन । गच्छ—गम्—धातुः आज्ञा लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन । विधास्यते—वि उपसर्ग धा—धातु, भविष्यत्काल (लृट्) अन्य पुरुष, एकवचन । ब्रूमः—ब्रू—धातु, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, बहुवचन ।

३—यूथपतिम्, जीवनाय, बन्धूनाम्, वयम्, गच्छन्तु, स्थपन्—इन पदों में शब्द, विभक्ति और वचन लिखो ।

यूथपति–शब्द, द्वितीया विभक्ति, एकवचन। जीवनाय–जीवन–शब्द,–चतुर्थी विभक्ति, एकवचन। जन्तूनाम्–जन्तु–शब्द, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन। वयम्–अस्मद्–शब्द, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। गच्छत्सु–गच्छत्–शब्द, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन। स्पृशन्–स्पृशत्–शब्द, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

४—अनन्तरम्, नातिदूरम्, प्रत्यहम्, अन्तिकम् अज्ञानतः, वारान्तरम्–इन शब्दों के अर्थ लिखो और वाक्यों में प्रयोग करो।

अनन्तरम्–पश्चात्–बाद। तदनन्तरं गज-यूथः गतः। नातिदूरम्=समीप–नातिदूरं गत्वा मम मित्र न्यवर्तत। प्रत्यहम्=प्रतिदिन। एष गजयूथः प्रत्यह–मत्रागमिष्यति। अन्तिकम्=समीप–पास–चन्द्रेण भवदन्तिकं प्रेषित। अज्ञानतः=अज्ञानवश–अज्ञानतः कृतोऽयमपराधः क्षन्तव्यः। वारान्तरम्–दूसरी बार–वारान्तर–मेषोऽपराधं न करिष्यति।

५—शशकों ने हाथियों से किस प्रकार रक्षा की?

विजय नामक एक बूढ़े खरगोश ने यह प्रतिज्ञा की कि मैं इसका प्रतिकार करूँगा। वह पर्वतशिखर पर चढ़ गया। जब हाथियों का झुंड फिर सरोवर में जल-पान करने आया, तब उसने कहा कि मुझे भगवान चन्द्रमा ने आपके पास भेजा है। उनके आदेश से मैं यहाँ आया हूँ। उनकी यह आज्ञा है कि तुमने हमारे चन्द्र–सरोवर के रक्षक खरगोशों को यहाँ से निकाल बाहर कर दिया है, यह उचित नहीं किया। यूथपति ने उत्तर दिया—यह कार्य अज्ञान-वश हो गया है, भविष्य में ऐसा न होगा। विजय यूथपति को सरोवर के पास ले गया और बोला—भगवान् चन्द्रमा को नमस्कार कर क्षमा माँगो। यूथपति क्षमा माँग कर वहाँ न आने की प्रतिज्ञा कर अपने झुंड के साथ वापिस लौट गया। शशकों ने शक्ति वाली चन्द्र के नाम लेने मात्र से ही अपनी रक्षा की।

हंस-मरण-कथा

अभ्यासः

१—सूर्य-तेजसा, तन्मुखम्, मुख-व्यादानम्, असहिष्णुः, हंसकाकौ, ग्रीष्म-समये, वृक्ष स्थितेन- इन समस्त पदों का विग्रह करो और बताओ।

सूर्य-तेजसा–सूर्यस्य तेज इति–सूर्य-तेजः–षष्ठी तत्पुरुष–तेन। तन्मुखम्–

स्य मुखम् इति–षष्ठी तत्पुरुष । सुख–आसनम्–सुखस्य आसनम् । अमर्दितुः–
नञ् –निषेधवाचक–तत्पुरुष । हंस काकौ–हंसश्च काकश्च इति हंस-काकौ–
द्वन्द्व । ग्रीष्म समये ग्रीष्मस्य समय इति-तत्पुरुष तस्मिन् । वृक्ष-स्थितेन-वृक्षे
स्थित इति–सप्तमी तत्पुरुष–तेन ।

२—समम, क्षणान्तरे, अमर्दयितुः, ऊर्ध्वम् , काण्डेन—इनके अर्थ लिखो
और वाक्यों में प्रयोग करो ।

समम–साथ-रामेण समं लक्ष्मणोऽपि वन गतः । क्षणान्तरे–थोड़ा देर
में–क्षणान्तरं परिक्रम्य सूर्यात् छायापगता । अमर्दयितुः–मर्दन न करने वाला–
ईर्ष्यालुः परगुणममर्दयितुर्भवति । ऊर्ध्वम्–ऊपर–ऊर्ध्वं विलोकय । काण्डेन–
बाण से–रामस्य एकेन काण्डेन हता ताटका स्वर्गता ।

३—सन्धि–विच्छेद करो—

कश्चित्, धनुष्काण्डम्, पान्थः, उत्थाय, यावदसौ छायापगता ।

कः + चित् । धनुः + काण्डम् । पाम् + थः । उद् + स्थाय । यावत्
असौ । छाया + अपगता ।

४—इस कथा से हमें क्या शिक्षा मिलती है ।

इस कथा से हमें यह शिक्षा मिलती है कि दुर्जन का साथ कभी न
करना चाहिए । दुष्ट दुष्टता करता है, किन्तु उसका परिणाम सज्जन को भोगना
पड़ता है । रावण ने सीताहरण किया, किन्तु समुद्र का पुल बाँधा गया । गोस्वामी
तुलसीदास जी ने कहा है—बरु भल वास नरक कर ताता । दुष्ट संग नहि
देय विधाता ।

वर्तकमरण—कथा

अभ्यासः

१—काकवर्तकौ; समुद्र-तीरम् , दधि-भाण्डम्, मन्दगतिः, यात्रा–प्रसंगेन इन
समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ ।

काक–वर्तकौ–काकश्च वर्तकश्चेति–द्वन्द्व । समुद्र–तीरम्–समुद्रस्य तीरम्–तत्पु-
। दधिभाण्डम्–दध्नः भाण्डम् इति–षष्ठी तत्पुरुष । मन्दगतिः मन्दा
स्यः स–बहुव्रीहि । मन्दा चासौ गतिः इति कर्मधारय । यात्रा-प्रसंगेन–
ः प्रसंग इति-तत्पुरुष-तेन ।

२—इन शब्दों के लिंग बताओ—

वृक्षः, पक्षिन्, क्षीर, दधि, भूमि, माण्ड, गति।

वृक्ष—वृक्षः—पुल्लिंग। पक्षिन्—पक्षी—पुल्लिंग। क्षीर—क्षीरम्—नपुंसकलिंग। दधि—दधि—नपुंसकलिंग। भूमि—भूमिः—स्त्रीलिंग। माण्ड—माण्डम्—नपुंसकलिंग।

३—वर्तकः+चलितः, यावत् + असौ, ततः+तेन, अतः + अहम्, निधाय + ऊर्ध्वम्—इन शब्दों में संधि करो।

वर्तकः+चलितः—वर्तकश्चलितः। यावत् + असौ—यावदसौ। ततः + तेन—ततस्तेन। अतः+अहम्—अतोऽहम्। निधाय+ऊर्ध्वम—निधायोर्ध्वम्।

४—एकदा, निधाय, यावत्, मन्दगतिः, यात्रा-प्रसंगः—इनके अर्थ बताओ और वाक्यों में प्रयोग करो।

एकदा—एक बार—एकदा वर्तकः काकेन सह चलितः। यावत्—ज्यों ही—यावत् मोहनः बाजारे गन्तुमपश्यत् तावत् जलान्निर्गतः। मन्द-गतिः—धीमी चाल वाला—वर्तकः मन्दगतिर्भवति। यात्रा-प्रसंग—सफर का प्रसंग—पक्षिणां यात्रा-प्रसंगः समुपस्थितः, अतः सर्वे समुद्रतीरं प्रचलिताः।

नील-वर्ण-शृगाल-कथा

अभ्यासः

१—अस्त्यरण्ये, मृत इति, प्रारब्धोत्थुः, एकदैव, नगरोपान्ते, तत उत्थातुम्—इन शब्दों में संधिच्छेद करो।

अस्त्यरण्ये—अस्ति+अरण्ये। मृत इति—मृतः+इति। प्रारब्धोत्थुः—प्रारब्ध+ऊत्थुः। नगरोपान्ते—नगर+उपान्ते। तत उत्थातुम्—ततः+उत्थातुम्।

२—नगरोपान्ते, व्याघ्र सिंहादीन्, वर्णमात्र विप्रलब्धाः, सन्ध्यासमये, जाति-स्वभावात्, महारावम्—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ।

नगरोपान्ते—नगरस्य उपान्ते—इति—तत्पुरुष। व्याघ्र-सिंहादीन्—व्याघ्रः च सिंहादयश्च—द्वन्द्व—तान्। वर्णमात्र विप्रलब्धाः—वर्णमात्रेण विप्रलब्धा इति—तृतीया तत्पुरुष। सन्ध्यासमये—सन्ध्यायाः समये—तत्पुरुष। जाति-स्वभावात्—जातेः स्वभाव इति जातिस्वभावः—तत्पुरुष—तस्मात्। महारावम्—महान् चासौ राव इति महारावः—द्वन्द्व—तम्।

उसने अपने सजातीय गीदड़ों का अपमान कर निकाल दिया। एक बूढ़े शृगाल ने इसका बदला लेने का विचार किया। सब गीदड़ सन्ध्यासमय पास ही शब्द करने लगे। उनका शब्द सुन कर नील शृगाल ने भी वैसा ही शब्द किया। उसका शब्द सुन कर बाघ ने उसे मार दिया।

इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि उच्च पद पर पहुँच जाने पर भी अपनी जाति वालों का अनादर नहीं करना चाहिए।

वीरवरस्य कथा

अभ्यासः

१—राजदर्शनम्, खड्गपाणिः, अहर्निशम्, प्रत्यहम्, क्षुद्रजन्तवः, सपुत्रदारः, राजपुत्र, पञ्चशतानि, रूप-यौवनसम्पन्नाः—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ।

राजदर्शनम्—राज्ञः दर्शनम्—इति—तत्पुरुष। खड्गपाणिः—खड्गः पाणौ यस्य सः—बहुव्रीहि। अहर्निशम्—अहः च निशा च द्वन्द्व। प्रत्यहम्—अहनि अहनि प्रति—अव्ययीभाव। क्षुद्रजन्तवः—क्षुद्राः च ते जन्तव—कर्मधारय। सपुत्रदारः—पुत्रेण दारैः च सहित इति—अव्ययीभाव। राजपुत्र—राज्ञः पुत्र इति—तत्पुरुष। पंचशतानि—पंचानां शतानां समाहारः—पञ्चशतम्—द्विगु—तानि। रूप-यौवन-सम्पन्नाः—रूपेण यौवनेन च सम्पन्ना इति तत्पुरुष।

२—द्वारि, रात्रौ, चतुर्ष्वपि, राज्ञा, रुदती, छायायाम्, भगवत्याः, स्त्रियाः—इन पदों के शब्द, लिंग, विभक्ति और वचन लिखो।

द्वारि—द्वार्—शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन। रात्रौ—रात्रि—शब्द, स्त्रीलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन। चतुर्ष्वपि—चतुर्—शब्द, स्त्रीलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन। राज्ञा—राजन्—शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन। रुदती—रुदती—शब्द, स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। छायायाम्—छाया—शब्द, स्त्रीलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन। भगवत्याः—भगवती—शब्द, स्त्रीलिंग, पंचमी या षष्ठी विभक्ति, एकवचन। स्त्रियाः—स्त्री—शब्द, स्त्रीलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

३—नीचे लिखी धातुओं के क्त्वा तथा ल्यप् प्रत्यय प्रयोग बताओ और उनका वाक्यों में प्रयोग करो—

हनिष्यति । नकुलः सर्पं हनिष्यति । भू–भविष्यति–न जाने श्वः किं भविष्यति । दृश्–द्रक्ष्यति–श्वः कः चित्रपटं द्रक्ष्यति ?

२—चूड़ामणिः, क्षीणपापः, यक्षेश्वरेण, धनार्थी, सुवर्णकलशः, निधि–प्राप्तिः, राजपुरुषैः इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ।

चूड़ामणिः—चूड़ाया मणिः इति–तत्पुरुष । अथवा–चूड़ायां मणिर्यस्य सः–बहुव्रीहि । क्षीणपापः–क्षीणं पापं यस्य सः–बहुव्रीहि । यक्षेश्वरेण–यक्षाणाम् ईश्वर इति यक्षेश्वरः–तत्पुरुष–तेन । धनार्थी–धनस्य अर्थी–तत्पुरुष । सुवर्ण–कलशः–सुवर्णस्य कलश इति–तत्पुरुष । निधि–प्राप्तिः–निधेः प्राप्तिः–तत्पुरुष । राजपुरुषैः–राज्ञः पुरुषा इति–तत्पुरुष–तैः ।
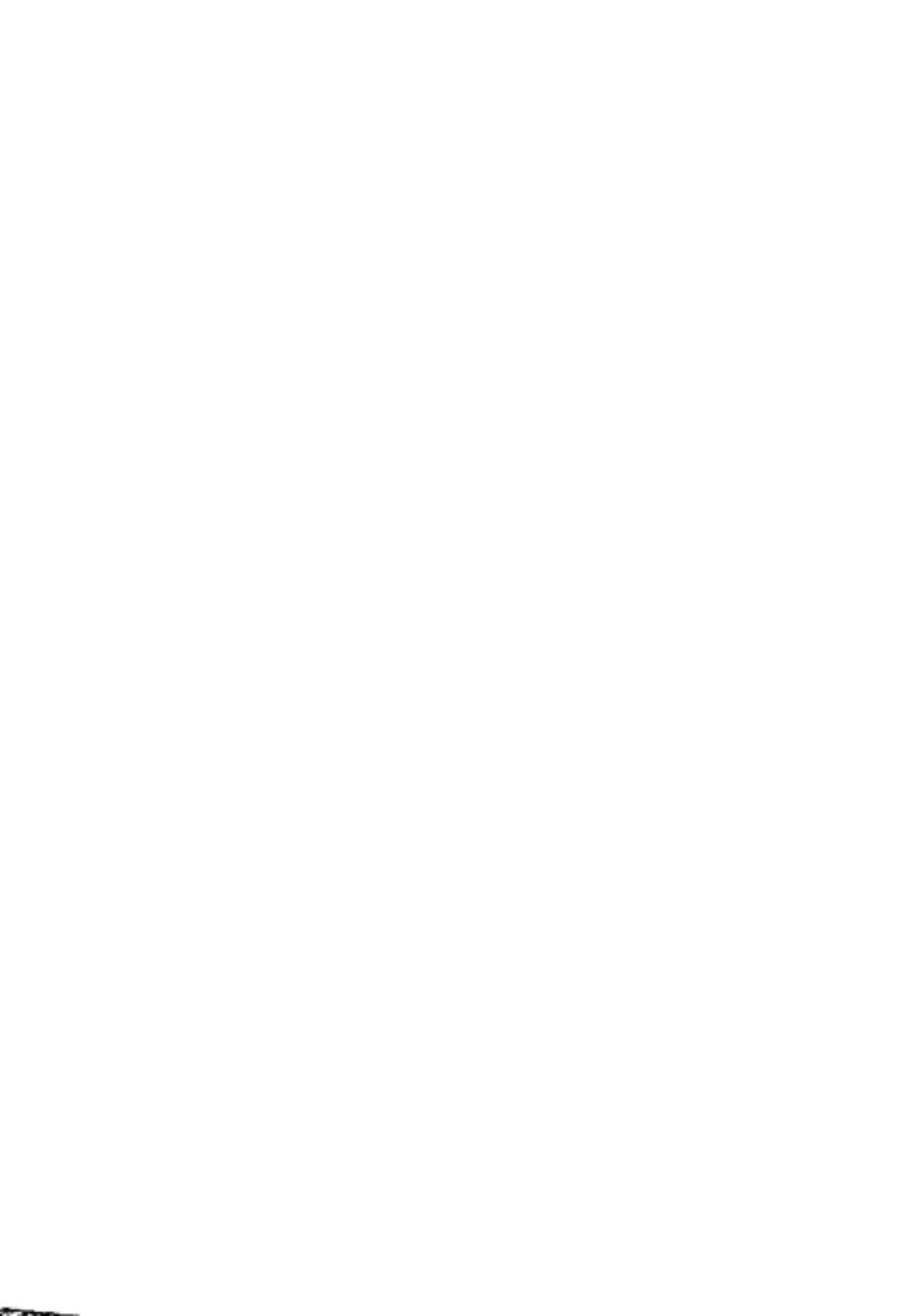
३—धनार्थिना, महता, निधि–प्राप्तेः, राजपुरुषैः, आनीतेन, भिक्षोः–इन पदों के शब्द, लिंग, विभक्ति तथा वचन बताओ।

धनार्थिन्–शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति एकवचन । महत्–शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन । निधि–प्राप्ति–शब्द, स्त्रीलिंग, पंचमी या षष्ठी विभक्ति, एकवचन । राजपुरुषैः–राजपुरुष–शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन । आनीतेन–आनीत–शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन । भिक्षोः–भिक्षु–शब्द, पुल्लिंग, पंचमी या षष्ठी विभक्ति, एकवचन ।

४—चिरम्, अद्य, प्रातर्, निभृतम्, यावज्जीवम्, प्रत्यहम्, प्रभृति–इनके अर्थ लिखो और वाक्यप्रयोग करो—

चिरम्–अधिक समय–देवदत्तः चिरं काशीमुषित्वाध्ययनमकरोत् । अद्य–आज–आकाशः मेघाच्छन्नः, अद्य वर्षा भविष्यति । प्रातर्=सुबह–प्रातः भ्रमणार्थं गन्तव्यम् । निभृतम्–चुपचाप । चौरः निभृतं गृहे प्रविवेश–यावज्जीवम्–जीवन भर–भीष्मपितामहः यावज्जीवं ब्रह्मचारी आसीत् । प्रत्यहम्=प्रतिदिन–प्रत्यहं स्नानं कुरु । प्रभृति–तब से–ततः प्रभृति नापितः भिक्षोः आगमनं प्रतीक्षते ।

५—क्षीण-पापः+असौ, यक्ष+ईश्वरः, यावत्+जीवम्, तत्+च, प्रान्तेः+अयम्, अहम्,+अपि,+एवम्–इनमें संधि करो और नियम भी बताओ।

क्षीणपापः + असौ = क्षीणपापोऽसौ । यक्ष + ईश्वरः–यक्षेश्वरः–संधि–नियम लिखा जा चुका है । यावत् + जीवम्–यावज्जीवम्–त् को ज्–यदि त् के बाद ज आता है तो त् को ज् और यदि त् के बाद ल आता है तो त् को ल् हो जाता है —व्यंजन संधि । तत् + च = तच्च । प्रान्तेः + अयम्–प्रान्तेरयम् । अहम् + अपि = अहमपि । अहमपि + एवम्–अहमप्येवम्–इ को य्–यण्संधि ।

हनिष्यति । नकुलः सर्पं हनिष्यति । भू-भविष्यति-न जाने श्वः किं भ
दश्-द्रक्ष्यति-श्वः कः चित्रपटं द्रक्ष्यति ?

२—चूडामणिः, क्षीणपापः, यद्वेश्वरेण, धनार्थी, सुवर्णकलश
प्राप्तिः, राजपुरुषैः इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम

चूडामणिः—चूडाया मणिः इति-तत्पुरुष । अथवा-चूडाया मणि
बहुव्रीहि । क्षीणपापः-क्षीणं पाप यस्य सः-बहुव्रीहि । यद्वेश्वरेण
ईश्वर इति यद्वेश्वरः-तत्पुरुष-तेन । धनार्थी-धनस्य अर्थी-तत्पुरुष
कलशः-सुवर्णस्य कलश इति-तत्पुरुष । निधि-प्राप्तिः-निधेः प्राप्ति
राजपुरुषैः-राज्ञः पुरुषा इति-तत्पुरुष-तैः ।

३—धनार्थिना, महता, निधि-प्राप्तेः, राजपुरुषैः, आनीतेन,
पदों के शब्द, लिंग, विभक्ति तथा वचन बताओ ।

धनार्थिन्-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति एकवचन । महत्-श
तृतीया विभक्ति, एकवचन । निधि-प्राप्ति-शब्द, स्त्रीलिंग, पंचम
विभक्ति, एकवचन । राजपुरुषैः-राजपुरुष-शब्द, पुल्लिंग, तृती
बहुवचन । आनीतेन-आनीत-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति,
भिक्षोः-भिक्षु-शब्द, पुल्लिंग, पंचमी या षष्ठी विभक्ति, एकवचन ।

४—चिरम्, अद्य, प्रातर्, निभृतम्, यावज्जीवम्, प्रत्यहम्,
अर्थ लिखो और वाक्यप्रयोग करो—

चिरम्-अधिक समय-देवदत्तः चिरं काशीमुषित्वाध्ययनमकरो
आज-आकाशः मेघाच्छन्नः, अद्य वर्षा भविष्यति । प्रातर्=सुबह-
स्नार्थं गन्तव्यम् । निभृतम्-चुपचाप । चौरः निभृतं गृहे प्रविवेश-
जीवन भर-भीष्मपितामहः यावज्जीवं ब्रह्मचारी आसीत् । प्रत्यहम्=प्रति
स्नानं कुरु । प्रभृति-तब से-ततः प्रभृति नापितः भिक्षोः आगमनं प्र

५—क्षीण-पापः+असौ, यत्+ईश्वरः, यावत्+जीवम्, तत्+
अयम्, अहम्+अपि,+एवम्-इनमें संधि करो और नियम भी बताओ

क्षीणपापः + असौ = क्षीणपापोऽसौ । यत् + ईश्वरः-यद्वे
नियम लिखा जा चुका है । यावत् + जीवम्-यावज्जीवम्-त् को ज
बाद ज आता है तो त् को ज् और यदि त् के बाद ल आता है तो
हो जाता है —व्यंजन संधि । तत् + च = तच्च । प्राप्तेः + अयम्-
अहम् + अपि = अहमपि । अहमपि + एवम्-अहमप्येवम्-इ को य

अभ्यास

१—मित्र, सरस्, कूर्म, चञ्चु, नीर, उपाय, निधि, विधि, काष्ठ—इनके लिङ्ग लिखो।

मित्र—मित्रम्—नपुंसकलिंग। सरस्—सर—नपुंसकलिंग। कूर्म—कूर्मः—पुल्लिंग। चञ्चु—चञ्चुः—स्त्रीलिंग। नीर—नीरम्—नपुंसकलिंग। उपाय—उपायः—पुल्लिंग। निधि—निधिः—पुल्लिंग। विधि—विधिः—पुल्लिंग। काष्ठ—काष्ठम्—नपुंसकलिंग।

२—इन शब्दों में संधि करो और नियम भी लिखो—हंसावाहतुः, अथैकदा, धीवरैरागत्य, तत्रोक्रम्, कूर्म आह, कच्छपो वदति, यद्ययम्, मैवम्।

हंसौ + आहतुः—अयादिसंधि—यदि, ए, ऐ, ओ या औ के बाद स्वर आते हैं तो ए को अय्, ऐ को आय्, ओ को अव् और औ को आव् हो जाता है। यहाँ औ को आव् हुआ है—अयादिसंधि। अथ + एकदा—यदि ह्रस्व या दीर्घ अ के आगे ए या ऐ आते हैं तो दोनों को मिला कर ऐ और ओ या औ आते हैं तो दोनों को मिला कर औ हो जाता है—वृद्धि संधि। धीवरैः + आगत्य—अ या आ के अतिरिक्त यदि विसर्ग के पहले कोई अन्य स्वर हो तो विसर्ग को रेफ (र्) हो जाता है—विसर्ग संधि। तत्र + उक्तम्—यदि लघु या दीर्घ आ के बाद इ, उ, ऋ या लृ आते हैं तो अ + इ=ए, आ + उ = ओ, अ + ऋ =अर् और अ + लृ = अल्—हो जाता है—गुणसंधि। कूर्मः + आह विसर्ग का लोप। कच्छपः + वदति—विसर्ग को उ, अ + उ = ओ—व्यंजन संधि, गुण संधि। यद्ययम्—यदि + अयम्—इ को य्—यण् संधि। मा + एवम्—आ + ए = ऐ = वृद्धि संधि।

३—इन धातुओं के क्तान्त और क्त्वान्त रूप लिखो—

वस्, पच्, दह्, नी, श्रु।

वस्—(क्त)—उषितः, उषिता, उषितम्। वस्—त्वा—उषित्वा। पच्—त—पक्वः, पक्वा, पक्वम्। पच्—त्वा—पक्त्वा। दह्—त—दग्धः, दग्धा, दग्धम्। दह्—त्वा—दग्ध्वा। नी—त—नीतः, नीता, नीतम्। नी—त्वा—नीत्वा। श्रु—त—श्रुतः, श्रुता, श्रुतम्। श्रु—त्वा—श्रुत्वा।

४—चिरम्, एकदा, अधुना, प्रातर्, सुखेन—इनका अर्थ लिख कर वाक्यों में प्रयोग करो।

चिरम्—अधिक समय—सः प्रात काले चिरं व्यायाम करोति। एकदा—एक बार—एकदा नृपः मृगयार्थं सघने वने प्रविष्टः। अधुना—अब। त्वमधुना स्वगृहं गच्छ, अत्र नोपविश। प्रातर्—अहं सदा प्रात भ्रमणार्थं गच्छामि। सुखेन = सुख से। मोहनोऽतिथिमुवाच—एतद् तव गृह, सुखेन भक्षय।

५—फुल्लोत्पलम्, संकट-विकट-नामानौ, धीवरालापः, दृष्ट-व्यतिकर, पक्ष-बलेन, अप्राशः—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ।

फुल्लोत्पलम्—फुल्लानि उत्पलानि यस्मिन् तत्—फुल्लोत्पलम् – बहुव्रीहि। अथवा—फुल्लं च तत् उत्पलम्—कर्मधारय। संकट-विकट-नामानौ—संकट च विकटः च—संकट-विकटौ—द्वन्द्व. संकट-विकट नाम्नी ययो तौ बहुव्रीहि। धीवरालापः—धीवराणाम् आलापः इति—तत्पुरुष। दृष्ट-व्यतिकरः—दृष्ट व्यतिकर येन सः – बहुव्रीहि। पक्षबलेन—पक्षयो बलेन—तत्पुरुष। अप्राश—न प्राश इति—नञ् तत्पुरुष।

६—राजाओं को कितने प्रकार की संधि करनी चाहिए? उत्तर संस्कृत में दीजिए।

कपालः, उपहारः, सन्तान संगतः, उपन्यास, प्रतीकार पुरुषान्तर, अदृष्टनरः, आदिष्टः, आत्मादिष्टः, उपग्रह, परिक्रम, परभूषण, स्कन्धोपनेय एते षोडश सन्धयः प्रकीर्तिताः। एतेषु यः सन्धिरनुकूल. स्यात स एव विधेय इति विस्तरेणालम्।

त्रयाणां मत्स्यानां कथा

अभ्यास

१—सरसि, नाम्ना, जालात्, धीवरैः, मया, अस्मिन—इन पदों के शब्द लिंग, विभक्ति और वचन लिखो।

सरसि—सरस्—शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन नाम्ना—नामन्—शब्द, नपुंसकलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन। जालात्—जाल—शब्द, नपुंसकलिंग, पंचमी विभक्ति, एकवचन। धीवरैः—धीवर शब्द, पुंल्लिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन। मया—अस्मद्—शब्द, तृतीया विभक्ति, एकवचन। अस्मिन्—इदम्—शब्द, पुल्लिंग या नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

२—सन्धि करो और नियम लिखो—

तौ + आहुः–औ को आव्–अयादि

अस्मिन् + एव–यदि ङ्, ण् या न् के बाद स्वर आता है तो न्, या

डबल–हो जाता है—व्यंजन संधि । नाम + एकः = नामैकः–वृद्धि

लिखा जा चुका है । तेन + उत्तम्–तेनोत्तम्–गुण संधि । मृतवत्

त् को द्–व्यंजन संधि । यत् + अभावि–यदभावि–त् को द्–व्यंजन

३—पुरा, अपरेण, यथाकार्यम्, यथाशक्ति, उत्पन्ने—इन शब्द

और वाक्यों में प्रयोग करो ।

पुरा–पहले–प्राचीन काल में–पुराहं वाराणस्यां न्यवसम् । अप

अपरेण मन्त्रेण कथितम् । यथाकार्यम्–जैसा कार्य अर्थात् को

हो–अरण्ये सहसा आगतं सिंहं वीक्ष्य व्याधः यथाकार्यं तत्

शक्ति–शक्ति के अनुसार–छात्राः देवदत्तः परीक्षामयने यथा

उत्पन्ने = उत्पन्न होने पर–विवादे उत्पन्ने तयोः सन्धिर्न जातः

४—यद्भविष्य मत्स्य का किस प्रकार नाश हुआ ?

किसी सरोवर में अनागत–विधाता–भविष्यद्रष्टा–आने

प्रतिकार करने वाला, प्रत्युत्पन्न मति–तत्काल उपाय का जानने

यद्भविष्य–भाग्य के भरोसे रहने वाला–ये तीन मत्स्य रहते थे । एक

वहाँ आकर कहा कि कल इस तालाब में जाल डाल कर मछलि

मछुओं के ऐसा कहने पर तीनों मत्स्यों ने विचार किय

ने सोचा—मछुओं के जाल डालने से पहले ही दूसरे तालाब

[illegible] । यह विचार कर वह अनागत–विधाता दूसरे [illegible]

दूसरे प्रत्युत्पन्नमति–तत्काल उपाय वाले–ने कहा—[illegible]

दूसरे दिन जाल में फँस कर प्रत्युत्पन्नमति ने अपने को [illegible]

जाल के हटाने पर वह अपनी पूर्ण शक्ति से उछल कर [illegible]

और इस प्रकार उसने अपनी रक्षा की ।

[illegible] यद्भविष्य–भाग्यवादी–ने सोचा–जो होगा, [illegible]

के बीच [illegible] है । यह विचार कर वह उसी [illegible]

दिन [illegible] मछुओं ने आकर यद्भविष्य को [illegible]

[illegible]

बक-नकुलयोः कथा

अभ्यास.

१—बका निवसन्ति, नकुलैरागत्य, तत्रानेके, सर्पस्तिष्ठति, विवरादारभ्य—इनमें संधि-च्छेद करो और वाक्यों में प्रयोग करो।

बकाः + निवसन्ति । नकुलैः + आगत्य । तत्र + अनेके । सर्पः+तिष्ठति । विवरात् + आरभ्य ।

तत्र महावृक्षे बका निवसन्ति । नकुलैरागत्य बक शावकाः खादिताः । तत्रानेके-तत्रानेके वीराः युद्धे हताः । सर्पस्तिष्ठति-विवरे सर्पस्तिष्ठति । विवरादारभ्य-नकुल-विवरादारभ्य सर्प-विवर यावत् बकैः मत्स्याः विकीर्णाः ।

२—बालापत्यानि, शोकार्त्तानाम्, नकुल-विवरात्, सर्प-विवरम्, तदाहार-लुब्धैः, बक-शावक-रावः—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ।

बालापत्यानि—बालानि च तानि अपत्यानि इति कर्मधारय। शोकार्तानाम्—शोकेन आर्ताः इति-तत्पुरुष-तेषाम् । नकुल-विवरात्—नकुलानां विवरात्—तत्पुरुष । सर्प विवरम्—सर्पस्य विवरम्—तत्पुरुष । तदाहार-लुब्धैः—तेषाम् आहारः इति तदाहारः—तत्पुरुष । तदाहारेण लुब्धा इति तत्पुरुष-तैः । बक-शावक-रावः—बकानां शावका इति—बक—शावकाः—बक—शावकानां राव इति—तत्पुरुष ।

३—अनेके, विवरे, महतः अपत्यानि, शोकार्तानाम्, तैः—इन पदों के शब्द, लिंग, विभक्ति और वचन लिखो।

अनेके—अनेक-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन । विवरे—विवर—शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन । महतः—महत्—शब्द, पुल्लिंग, पंचमी या षष्ठी विभक्ति, एकवचन । अपत्यानि—अपत्य—शब्द, नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन । शोकार्तानाम्=शोकार्त—शब्द, पुल्लिंग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन ।

४—नीचे लिखे शब्दों का पद-परिचय दो और अर्थ भी बताओ—

निवसन्ति—नि उपसर्ग, वस्—धातु, वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष, बहुवचन । खादन्तु—खाद्—धातु, कर्तृवाच्य, आज्ञा लोट्, अन्य पुरुष, बहुवचन । अभि-हितम्—अभि उपसर्ग, धा धातु (धा को हि) त प्रत्यय । उपादाय—उप और आ उपसर्ग, दा धातु, ल्यप् (य) प्रत्यय । विकिरत—वि उपसर्ग, कृ—धातु, कर्तृवाच्य,

आज्ञा लोट् मध्यम पुरुष, बहुवचन। आगत्य-आ उपसर्ग गम् धातु, ल्यप् (य) प्रत्यय। द्रष्टव्यः-दृश्-धातु, तव्य प्रत्यय। वृत्तम्-वृत्-धातु, त प्रत्यय। आरुह्य-आ उपसर्ग, रुह्-धातु, ल्यप् (य) प्रत्यय।

मुनि-मूषकयोः कथा

अभ्यासः

महातपा नाम, शावको दृष्टः, मुनिनोक्तम्, मूषकोऽयम्, तज्ज्ञात्वा, महर्षिः, एतच्छ्रुत्वा-इनमें संधिच्छेद करो और नियम भी बताओ।

महातपा नाम—विसर्ग का लोप-विसर्ग संधि। शावकः दृष्टः-विसर्ग को उ, फिर ओ-विसर्ग संधि। मुनिनोक्तम्-मुनिना+उक्तम्-आ+उ-ओ-गुणसंधि। मूषकः+अयम्-विसर्ग को उ फिर ओ तत्पश्चात् पूर्वरूप संधि। तज्ज्ञात्वा-त् को ज्-व्यंजन संधि। महा+ऋषिः-गुणसंधि। एतत्+श्रुत्वा-त् को च्-व्यंजन संधि।

२—मुनिना, महर्षेः, अयम्, तेन, कुक्कुरात्, आत्मना, सर्वे, अनेन, क्रोडे-इन पदों के शब्द, लिंग, विभक्ति तथा वचन लिखो।

मुनिना-मुनि-शब्द, पुलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन। महर्षेः-महर्षि-शब्द, पुल्लिंग, पंचमी या षष्ठी विभक्ति, एकवचन। अयम्-इदम्-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। तेन-तत्-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन। कुक्कुरात्-कुक्कुर-शब्द, पुल्लिंग, पंचमी विभक्ति, एकवचन। आत्मना-आत्मन्-शब्द, पुल्लिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन। सर्वे-सर्व-शब्द, पुल्लिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। अनेन-इदम्-शब्द, पुल्लिंग या नपुंसकलिंग, तृतीया विभक्ति, एकवचन। क्रोडे-क्रोड-शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

३—इन धातुओं के क्त्वान्त तथा तुमुन्नन्त बनाओ—

खाद्, वृध्, धाव्, भी, कृ, दृश्, वद्, स्था, श्रु।

खाद्-क्त्वा-खादित्वा। खाद्-तुमुन्-खादितुम्। वृध्-क्त्वा-वृद्ध्वा। वृध्-तुमुन्-वर्धितुम्। धाव्-धावित्वा, धाव्-तुमुन्-धावितुम्। भी-क्त्वा-भीत्वा। भी-तुमुन्-भेतुम्। कृ-क्त्वा-कृत्वा। कृ-तुमुन्-कर्तुम्। दृश्-क्त्वा-दृष्ट्वा। दृश्-तुमुन्-द्रष्टुम्। वद्-क्त्वा-उदित्वा। वद्-तुमुन्-वदितुम्। स्था-क्त्वा-स्थित्वा। स्था-तुमुन्-स्थातुम्। श्रु-क्त्वा-श्रुत्वा। श्रु-तुमुन्-श्रोतुम्।

४—पंचमी विभक्ति (अपादान कारक) किन-किन विशेष दशाओं में प्रयुक्त होती है, सोदाहरण लिखो।

भय (fear) और निवारण (Preventing) अर्थवाली धातुओं के योग में पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—मुनिः मृत्योः अपि न बिभेति। यत्नेभ्यो गां निवारयति।

जन्—To be Produced (उत्पन्न होना) तथा इसी अर्थ को प्रकट करने वाली अन्य धातुओं के योग में भी पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—गंगा हिमालयात् प्रभवति। कामात् क्रोधः जायते।

प्रभृति, आरभ्य, बहिः, अनन्तरम्, ऊर्ध्वम् आदि शब्दों के योग में भी पंचमी विभक्ति होती है।

जैसे—ततः प्रभृति। ततः आरभ्य ग्रामाद् बहिः। विवाहाद् अनन्तरम् गृहात्। ऊर्ध्वम् आदि।

५—इस कथा को अपने शब्दों में लिखो।

मुनि ने मूषक शावक का पालन किया। बिलाव उस शावक को खाने दौड़ा। मुनिजी ने उसे तपोबल से बिलाव बना दिया। बिलाव कुत्ते को देख कर भागा, तब उसे कुत्ता बना दिया। कुत्ता बाघ से डरता, तब उसे व्याघ्र बना दिया। व्याघ्र बन कर मूषक-शावक ने सोचा—जब तक मुनि जीवित है, तब तक पुराने रूप की मेरी कथा मनुष्यों की जिह्वा पर सदा बनी रहेगी—यह विचार कर उसने मुनि को ही समाप्त करना चाहा। मुनिजी ने यह देखकर उसे फिर मूषक-शावक बना दिया। सत्य है, नीच ऊँचा पद पाकर अपने स्वामी का ही सफाया करना चाहता है, अतः नीच को उच्च पद नहीं देना चाहिए।

शरावः+एकः=शराव एकः। यदि+अहम्=यद्यहम् । कोप + आकुलः अहम् = कोपाकुलोऽहम्। शरावः + चूर्णितः = शरावश्चूर्णितः ।

३—नीचे लिखी धातुओं के क्तवतु तथा तव्य (कृदन्त) बताओ—

स्वप्, चिन्त्, कृ, क्षिप्, दा, आप्।

स्वप् – तवत् – सुप्तवान् । स्वप् + तव्य – स्वपितव्यः, स्वपितव्या, स्वपितव्यम्। चिन्त्–तवत्–चिन्तितवान्। चिन्त्–तव्य–चिन्तितव्यः, चिन्तितव्या, चिन्तितव्यम्। कृ–तवत्–कृतवान्। कृ–तव्य–कर्त्तव्यः, कर्त्तव्या, कर्त्तव्यम्। क्षिप्–तवत्–क्षिप्तवान्। क्षिप्–तव्य–क्षेप्तव्यः, क्षेप्तव्या, क्षेप्तव्यम्। दा–तवत्–दत्तवान्। दा–तव्य–दातव्यः, दातव्या। दातव्यम्, आप्–तवत्–आप्तवान्। आप–तव्य–आप्तव्यः, आप्तव्या, आप्तव्यम ।

४—प्र+आप्, क्री, कृ, ताड्, दा, स्वप्–इन धातुओं के लृट् प्रथम पुरुष, एकवचन के रूप लिखो।

प्र+आप्=प्राप्–लृट् (भविष्यत्काल) प्रथम पुरुष, एकवचन–प्राप्स्यते। क्री–लृट्–प्र० पु० एकवचन–क्रेष्यति, क्रेष्यते। कृ–लृट्, प्र० पु० एकवचन–करिष्यति। ताड्–लृट्–प्र० पु० एकवचन–ताडयिष्यति। दा–लृट् प्र० पु० एकवचन–दास्यति। स्वप्–लृ० प्र० पु० एकवचन–स्वप्स्यति।

५—इस कथा को अपने शब्दों में लिखो।

कथा—देवीकोट नामक नगर में देव शर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। मेष संक्रान्ति के दिन उसे सत्तू से भरा एक सकोरा मिला। उसे लेकर वह एक कुम्हार की कोठरी में आकर लेट गया, जिसमें उसके बर्त्तन भरे थे। तत्पश्चात् सत्तू की रक्षा के लिए एक डंडा लेकर सोचने लगा—यदि मैं सत्तुओं को बेच दूँ तो मुझे दस कौड़ियाँ मिल जायेंगी। उन कौड़ियों से सकोरे, घड़े आदि मिट्टी के बर्त्तनों के खरीदने और बेचने से धन-वृद्धि हो जायगी। फिर सुपारी, वस्त्र आदि के व्यापार से मुझे लाखों रुपया मिलेगा। तब मैं अपने चार विवाह करूँगा। उन स्त्रियों में जो अधिक रूपवती होगी, उसके प्रति मेरा गहरा अनुराग होगा। जब सौतें आपस में लड़ेंगी, तब मैं क्रोध में भर कर उन्हें डंडे से पीटूँगा। यह कर उसने जोर से डंडा फेंका-पटका। जिससे उसका सत्तू का सकोरा चूर-चूर हो गया और कुम्हार के अनेक

४—करण कारक की उपपद विभक्तियाँ सोदाहरण लिखो—

करण कारक की उपपद विभक्तियां—प्रकृत्या चारुः। सुखे गच्छति। विकार अर्थ में—अक्ष्णा काणः। कर्णाभ्यां बधिरः। शिरसा खल्वाटः आदि। शपथ में—भगवत्चरणैः शपामि। गत्यर्थक धातुओं में के वाहन में—रथेन याति। अलं और कृतम्—के योग में भी तृतीया होती है—अलं शोकेन, कृतम् एभिः प्रलापैः। सह-साकं-समं आदि के योग में-मया साकं, सह, समं गृहमागच्छ आदि। हीन-कम-कम-शब्दों के योग में भी तृतीया होती है। जैसे-धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

५—इनके विरोधी शब्द लिखो—

उपकारः—अपकारः। प्रियः=अप्रियः। उत्साहः—निरुत्साहः। सज्जनः—दुर्जनः। सन्धिः—विग्रहः। मित्रम्—शत्रुः। सुलभम=दुर्लभम्।

त्रिधूर्तानां कथा

१—ततस्ते, एष छागः, विप्रेणोक्तम्, तथैव, मुहुर्निरीक्ष्य, स ब्राह्मणः, वदन्नेव—इनमें संधिच्छेद करो और नियम बताओ।

ततः+ते। एषः+छाग। विप्रेण+उक्तम्। तथा+एव। मुहु+निरीक्ष्य। सः+ब्राह्मणः। वदन्+एव। नियम पहले लिखा जा चुका है।

२—प्रस्तुतयज्ञः, धूर्तत्रयेण, मतिप्रकर्षः, क्रोशान्तरेण, यज्ञच्छागः, दोलायमानमतिः, स्वमति-विभ्रमः—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ।

२—प्रस्तुतयज्ञः—प्रस्तुतः यज्ञः येन सः—बहुव्रीहि। धूर्तत्रयेण—धूर्तानां त्रयेण—तत्पुरुष। मति प्रकर्ष—मतेः प्रकर्षं इति—तत्पुरुष। क्रोशान्तरेण—क्रोशस्य अन्तरेण—तत्पुरुष। यज्ञच्छागः—यज्ञाय छाग इति—तत्पुरुष। दोलायमानमतिः दोलायमाना मतिः यस्य सः—बहुव्रीहि। स्वमतिविभ्रमः—स्वस्य मतिरिति स्वमतिः स्वमतेर्विभ्रम इति—तत्पुरुष।

३—उपक्रीय, गच्छन्, लभ्यते, प्रतीक्ष्य, उक्तं, निरीक्ष्य, निधाय, मानः—इन पर व्याकरणसम्बन्धी टिप्पणियाँ दो।

उपक्रीय—उप उपसर्ग, क्री—धातु, ल्यप् (य) प्रत्यय। गच्छन्—गच्छ्-धातु-अत्-प्रत्यय। लभ्यते—लभ्-धातु, वर्तमान काल, अन्य पुरुष, . . वचन

दानेषु-दान-शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन। अस्माभिः-अस्मद् शब्द, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

३—सार्थभ्रष्टः, शरीर-वैकल्यात्, वृष्टि-कारणात्, कण्टक-भुक्, क्षुधार्त्ताः सिंहान्तिकम्, जीवनोपायः, शरणागतः—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ।

सार्थ-भ्रष्टः—सार्थात् भ्रष्टः इति—तत्पुरुष। शरीरवैकल्यात्—शरीरस्य वैकल्यम् इति—तत्पुरुष-तस्मात्। वृष्टि-कारणात्—वृष्टेः कारणम् – तत्पुरुष – तस्मात्। कण्टक भुक्—कण्टकानि भुंक्ते इति—तत्पुरुष। क्षुधार्त्ताः=क्षुधया आर्त्ताः इति तृतीया तत्पुरुष। सिंहान्तिकम्—सिंहस्य अन्तिकम्—षष्ठी तत्पुरुष। जीवनोपायः—जीवनस्य उपायः—षष्ठी तत्पुरुष। शरणागतः—शरणे आगत इति—सप्तमी तत्पुरुष।

४—इनमें संधि करो—

सेवकाः+त्रयः=सेवकास्त्रयः। तैः+अमद्भिः=तैर्भ्रमद्भिः। व्यग्राः+बभूवुः= व्यग्रा बभूवुः। क्षीणः+नरः=क्षीणो नरः। किन्तु+अस्माभिः=किन्त्वस्माभिः।

५—(क) इनके अर्थ लिखो—

अभय-प्रदानम् = अभयदान = निर्भय करना। सार्थः = झुंड। मत्तः = मतवाला। प्रमत्तः = भूलने वाला। उन्मत्तः = पागल। त्वरा = शीघ्र। दोलायते = चलायमान हो जाता है। बुभुक्षितः = भूखा।

५—(ख) सिंह ने चित्रकर्ण को अभयदान दिया था, फिर उसकी बुद्धि कैसे फिर गई, जिसके परिणामस्वरूप चित्रकर्ण को प्राणों से हाथ धोने पड़े!

मदोत्कट सिंह के काक, व्याघ्र और सियार तीन सेवक थे। एक बार सिंह बीमार हो गया। कई दिन तक शिकार न कर सकने से वह भूख से व्याकुल हो गया। तीनों सेवक भी अनाहारवश व्यग्र थे। तब यह विचार हुआ कि चित्रकर्ण को मार कर स्वामी तथा अपने प्राणों की रक्षा की जाय। यह सोचकर काक ने सिंह से कहा—महाराज, अपने पास के भोजन का त्याग करने से यह समस्या उपस्थित हुई है। सिंह के पूछने पर काक ने उसके कान में चित्रकर्ण का नाम बताया। सिंह इस पर सहमत न हुआ। तब काक ने कहा—आप उसे न मारें, परन्तु हम ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देंगे, जिससे वह स्वयं ही अपना

उत्तम पुरुष, द्विवचन । अपश्याव = हम दोनों ने देखा । ब्रवीमि–ब्रू–बोलना धातु, वर्त्तमान काल, उत्तम पुरुष, एकवचन । ब्रवीमि = मैं कहता हूँ । कुर्युः कृ–करना–धातु, विध्यर्थ, अन्य पुरुष, बहुवचन । कुर्युः=उन्हें करना चाहिए ।

२—अक्रियमाणः, बालक–रक्षायाम्, कृष्णसर्पः रक्त–विलिप्त–मुख–पादः चिरकाल–पालितम् , तच्चरणयोः—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समास के नाम बताओ ।

अक्रियमाणः–न क्रियमाण इति–नञ–निषेधवाचक तत्पुरुष । बालक-रक्षायाम्–बालकस्य रक्षा इति बालक–रक्षा–तत्पुरुष–तस्याम् । कृष्ण-सर्पः–कृष्ण श्चासौ सर्प इति–कर्मधारय । रक्त–विलिप्त–मुख-पादः–रक्तेन विलिप्तः मुखः पादश्च यस्य सः बहुव्रीहि । चिरकाल–पालितम्–चिरकालेन पालितम् इति–तत्पुरुष । तच्चरणयोः–तस्य चरणौ इति तच्चरणौ–तत्पुरुष–तयोः ।

३—राजन्, कर्मन्, मन्त्रिन्, चन्द्रमस् , सम्पद्, संधि—इनके लिंग बताओ और प्रथमा एकवचन तथा द्वितीया बहुवचन में रूप लिखो ।

राजन्–राजा–पुल्लिंग–प्रथमा विभक्ति एकवचन–राजा । द्वितीया बहुवचन–राज्ञः । कर्मन्–कर्म–नपुंसकलिंग–प्रथमा एकवचन–कर्म । द्वितीया बहुवचन–कर्माणि । मन्त्रिन्–मंत्री–पुल्लिंग, प्रथमा एकवचन–चन्द्रमाः । द्वितीया बहु-वचन–चन्द्रमसः । सम्पद्–सम्पत्ति–स्त्रीलिंग, प्रथमा, एकवचन–सम्पद् । द्वितीया बहुवचन–सम्पदः । सन्धि–मेल–पुल्लिंग–प्रथमा एकवचन–सन्धिः । द्वितीया बहुवचन–संधीन् ।

४—इस कथा से क्या शिक्षा मिलती है ?

इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि बिना विचारे, बिना सोचे-समझे कोई काम नहीं करना चाहिए । बिना विचारे जो पुरुष काम करते हैं, उन्हें पीछे पछताना पड़ता है, अतएव आगा-पीछा सोच कर ही काम करना चाहिए ।

बिना विचारे जो करै सो पाछे पछताय ।
काम बिगारै आपनो जग में होत हंसाय ॥
जग में होत हंसाय चित्त में चैन न पावै ।
खान पान सन्मान, राग रंग मन ही न भावै ॥

चतुरः, चतुर्भिः, चतुर्भ्यः, चतुर्भ्यः, चतुर्णाम्, चतुर्षु । चतुर्—चार—स्त्रीलिंग—चतस्रः, चतस्रः, चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृभ्यः, चतसृणाम्, चतसृषु । चतुर्—चार—नपुंसकलिंग चत्वारि, चत्वारि—शेष रूप—तृतीया से सप्तमी तक—पुंलिंग के समान होते हैं।

सुभाषितानि

मित्रलाभे

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा ।
अप्रिय व्यक्ति से प्रिय वस्तु मिले तो भी कल्याण नहीं होता है ।
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ?
विधि का लिखा को मेटनहारा ।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ।
प्रायः विपत्काल में बुद्धिमान् मनुष्य भी गलत काम कर जाते हैं ।
विपत्काले विस्मय एव कापुरुषलक्षणम् ।
विपत्ति के समय अचरज करना कायरता का चिह्न है ।
अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
छोटे मिलि बहु बल करे यह जानत सब कोय ।
तिनकन की रसरी करी, करी निबन्धन होय ॥
कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ।
मौत सिर पर नाच रही है, वह दूर से ही पकड़ लेती है ।
अज्ञात कुल-शीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।
स्वभाव, कुल से अपरिचित को स्थान न दो ।
अहिंसा परमो धर्मः ।
अहिंसा—किसी को न सताना—बड़ा धर्म है ।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे कः कुर्यात् पातकं महत् ।
इस पापी पेट के लिए कौन पाप करे ।
उदार-चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।
उदार के लिये संसार परिवार है ।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ।

व्यवहार से ही अन्य मित्र और शत्रु हो जाते हैं।
दुर्बलः विवादी न भवेद् विश्वासभाजनम्।
विवादी दुष्ट का विश्वास मत करो।
आपत्सु मित्रं जानीयात्।
बिपति कसौटी सुख नहीं थो थोड़े दिन होत।
दुष्ट-मित्र अरु शत्रु अब जान परै सब कोन।
दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्।
दुष्ट के साथ मित्रता मत करो।
साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम्।
सज्जन क्रुद्ध होने पर बुराई नहीं सोचता।
न च्छेदेऽपि साधूनां गुणा नायान्ति विक्रियाम्।
छेद न करने पर भी सज्जन का हृदय शुद्ध रहता है।
सर्वस्याभ्यागतोऽतिथिः।
अतिथि सदा पूज्य है
तत्सुखं यत्र निर्वृतिः।
जहाँ सन्तोष है, वहाँ सुख है।
चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।
सुख और दुःख आते-जाते रहते हैं।
शूरं कृतज्ञं दृढ-सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवास-हेतोः।
शूरवीर, कृतज्ञ और दृढ-पुरुष के पास धन स्वयं चला आता है।
कर निहित-कन्दुक समाः पातोत्पाता मनुष्याणाम्।
मनुष्यों की उन्नति और अवनति अस्थायी होती है।
सन्त एव सतां नित्यमापदुद्धरणक्षमाः।
सज्जन ही सज्जनों की विपत्तियाँ दूर कर सकते हैं।
समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम्।
संयोग होने पर वियोग और उत्पन्न वस्तु का विनाश अवश्यंभावी है।
छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।
बुराइयों में बुराइयाँ होती ही हैं—गूँगा बहरा भी होता है।

सुहृद्भेदे

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्।
जाको राखै साइयाँ मारि न सकि है कोय।
सेवाधर्मः परम-गहनो योगिनामप्यगम्यः ॥
सेवाधर्म योगियों के लिए भी कठिन है।
पृष्ठतः सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्।
सूर्यताप पीछे से और अग्निताप सम्मुख लो।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया।
निष्कपट मन से ईशभक्ति और स्वामिभक्ति करो।
जठरं को न बिभर्ति केवलम्।
पेट सब ही भर लेते हैं।
आत्मार्थे को न जीवति।
अपने लिए कौन जीवित नहीं रहता।
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम्।
शेर भूखा होने पर भी घास नहीं खाता।
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते।
कौआ भी अपना पेट पालता है।
लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयन्ति।
मनुष्य के कर्म ही उसे ऊँचा उठाते और नीचे गिराते हैं।
परेङ्गित-ज्ञान-फला हि बुद्धयः।
खत का मज़मूँ भाँप लेते हैं लिफ़ाफ़ा देख कर।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च यः पार्श्वतो वसति तं परिवेष्टयन्ति।
जो पास रहता है, उसका ही आश्रय सब चाहते हैं।
कदर्थितस्यापि हि धैर्य-वृत्तेर्बुद्धेर्विनाशो न हि शंकनीयः।
अनादर करने पर भी धैर्यवान् बुद्धि से काम लेता।
स्थान एव नियोज्यन्ते भृत्याश्चाभरणानि च।
जो जिस योग्य है, उससे वैसा ही व्यवहार करो।
विरलाधां नीतौ सकलमपरं क्रीडति जगत्।

बलिना सह योद्धव्यमिति नास्ति निदर्शनम् ।
बलवान् से वैर करना अनुचित है ।
यः स्वभावो हि यस्यास्ति स नित्यं दुरतिक्रमः ।
कुत्ते की पूँछ बारह वर्ष नली में रक्खी–जब निकाली तब टेढ़ी ।
धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
परोपकाराय सतां विभूतयः ।
नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः ।
नीतिज्ञ और शूर जीवन का आनन्द पाते हैं ।
श्रियः समृद्धा अपि हन्ति दुर्नयः ।
दुर्नीति लक्ष्मी का विनाश कर देती ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ।
अंधे के आगे रोना–अपने नैन खोना ।
मूर्ख विद्या से लाभ नहीं उठा सकता ।
स्वामिनाधिष्ठितः श्वापि किं न सिंहायते ध्रुवम् ।
देत सिरारिश की गधी देराकी के लात ।

सन्धी

मतिर्दोलायते सत्यं सतामपि खलोक्तिभिः ।
दुष्ट सज्जनों को ठग ही लेते हैं ।
सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ।
अभय देना सर्वोत्तम दान है ।
[illegible]रसरागस्य परं तपोवनम् ।
मन चंगा तो कठौती में गंगा ।
न लिंगं धर्म-कारणम् ।